डॉ. रमाशंकर पाण्डेय

# मालविकाग्निमित्रम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

45

महाकविकालिदासविरचितं

# मालविकाग्निमित्रम्

## संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्


व्याख्याकार:

**डॉ. रमाशंकर पाण्डेय**

एम० ए०, पी-एच० डी०

साहित्याचार्य, साहित्यरत्न


**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

वाराणसी

**मालविकाग्निमित्रम्**
पृष्ठ : 4+44+208
ISBN : 978-93-81484-69-2

प्रकाशक
**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के.37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : + 91 542-2335263
email : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in





अन्य प्राप्तिस्थान
**चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस**
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

**चौखम्बा विद्याभवन**
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

45

# MĀLAVIKĀGNIMITRAM

OF

**MAHĀKAVI KĀLIDĀSA**

*Edited with*

Sanskrit & Hindi Commentaries

*By*

**Dr. Ramashankar Pandey**

*M. A. Ph. D.*

Sahityacharya, Sahityaratna

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

MĀLAVIKĀGNIMITRAM
Pages : 4+44+208
ISBN : 978-93-81484-69-2

*Publishers :*
© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
*(Oriental Publishers & Distributors)*
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. +91 542-2335263; 2335264
email : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

*Also can be had from :*
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road. Darya Ganj
New Delhi 110002
Tel. +91 11-23286537
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

•

CHAUKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

# भूमिका

## महाकवि कालिदास

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। यही कारण है कि भारतीय परम्परा ने इन्हें "कविकुलगुरु" की उपाधि से विभूषित किया है। इन्होंने "कुमारसम्भव" एवं 'रघुवंश" नामक दो महाकाव्य, मालविकाग्निमित्र, "विक्रमोर्वशीय" एवं "अभिज्ञानशाकुन्तल" नामक तीन नाटक तथा "ऋतुसंहार" और "मेघदूत" नामक दो "गीति काव्य" लिखे हैं। नस्सन्देह तीनों काव्य-विधाओं में महाकवि की रचनाएँ सर्वोत्कृष्ट हैं।

## कालिदास का जीवन-वृत्त

महाकवि कालिदास का जीवन-वृत्त अज्ञानान्धकार के पटलों में दब सा गया है। सम्भावना यही है कि दबा ही रहेगा। परिपुष्ट प्रमाणों के अभाव में कितनी कहानियाँ गढ़कर कालिदास के जीवन-वृत्त में रख दी गई हैं।

इन्हीं कल्पित कथाओं में से एक कथा के अनुसार कालिदास पहले एक निरक्षर एवं महामूर्ख थे। राजा शारदानन्द की एक कुमारी पुत्री थी, जिसका नाम था "विद्योत्तमा"। विद्वत्ता के गर्व एवं अनिन्ध सौन्दर्य का अपूर्व संयोग उस कुमारी में विद्यमान था। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति मुझको शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा, उसी विद्वान् के साथ उसका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न होगा। विद्योत्तमा की विद्वत्ता के समक्ष बड़े-बड़े शास्त्रार्थी पण्डित परास्त हो गए। अतएव पण्डितों ने ईर्ष्यावश षडयन्त्र करके उसका विवाह किसी अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति के साथ करा देने का निश्चय किया।

अनेक पण्डितों का समुदाय उस मूर्खप्रवर के अन्वेषण के लिए निकल पड़ा। अन्वेषण करते हुए उन पण्डितों ने देखा कि एक व्यक्ति, वृक्ष की जिस शाखा पर बैठा है, उसको काट रहा है। उन पण्डितों को आवश्यक वर प्राप्त हो गया। उन लोगों ने उस मूर्ख व्यक्ति से कहा कि 'हम लोग तुम्हारा विवाह एक परमसुन्दरी कन्या से करवा देंगे किन्तु तुम्हारे लिए आवश्यक है कि तुम मौन धारण किए हुए रहना, बोलना नहीं। यदि बोल दोगे, तुम्हारा विवाह कट जायगा। पण्डितों ने विद्योत्तमा के समीप उस मूर्ख को ले जाकर कहा कि ये हम लोगों के गुरुदेव हैं, जो परम विद्वान् हैं किन्तु इस समय मौनव्रत धारण किए हैं, ये संकेत द्वारा ही शास्त्रार्थ करेंगे। विद्योत्तमा ने एक अंगुली उठाकर यह संकेत किया कि ईश्वर एक है। परन्तु मूर्ख व्यक्ति ने यह समझा कि यह मेरी एक आँख को फोड़ देने का संकेत कर रही है, तो क्यों न उसकी दोनों आँखों को फोड़ देने का उत्तर दे दिया जाय। अत. दो अंगुलियाँ उठा दीं। बस, पण्डितों ने दो अंगुलियों के ऐसे तत्त्वपूर्ण शास्त्रीय अर्थ निकाले कि विद्योत्तमा को उस मूर्ख के साथ विवाह करना ही पड़ा।

मूर्खता प्रकट होने में देर ही कितनी लगती है। प्रथम वार्तालाप के अवसर पर ऊँट के स्वर को सुनकर विद्योत्तमा ने पूछा कि यह क्या है ? तो उस मूर्ख ने उट्र कहकर अपनी मूर्खता का परिचय दे दिया। पण्डितों के षडयन्त्र से उत्पन्न अपनी इस दशा पर उसे घोर दुःख हुआ। क्रोधावेश में उन्मत्त होकर उसने मूर्ख पति को अपमानित करके घर के बाहर ढकेल दिया। पत्नी के द्वारा प्राप्त अपमान के घोर कष्ट से पीडित होकर वह मूर्ख काली देवी के मन्दिर में जाकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो गया। भगवती प्रसन्न हो गई। बोली—वरं ब्रूहि। मूर्ख कालिदास ने विद्या की सिद्धि की याचना की। देवी ने कहा—"एवमस्तु"। फिर क्या था। कालिदास पूर्ण

पण्डित हो गए। शीघ्र ही त्वरित गति से घर गए। द्वार बन्द थे। पुकारा—"अनावृत्तं कपाटं द्वारं देहि" ( दरवाजे के किवाड़ खोलो ) विद्योत्तमा ने पूछा "अस्ति कश्चिद् वाग् विशेषः" ( क्या वाणी में कुछ विशेषता है ? ) कालिदास ने वाणी की विशेषता को प्रदर्शित करने के लिए "अस्ति" पद के द्वारा "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" प्रारम्भ करके कुमारसम्भव नामक महाकाव्य की रचना की, "कश्चित्" पद को लेकर "कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा" से प्रारम्भ होने वाले "मेघदूत" नामक गीतिकाव्य की रचना की और "वाग्" पद को लेकर "वागर्थाविव सम्पृक्तौ" से प्रारम्भ होने वाले "रघुवंश" नामक महाकाव्य की रचना कर डाली। इस प्रकार विद्योत्तमा के द्वार खोलने पर स्वयं उसके सौभाग्य द्वार खुल गए कि पति पूर्ण विद्वान् होकर घर लौटा।

उक्त किम्वदन्ती सारहीन इस कारण से प्रतीत होती है कि ( १ ) एक संकोचहीन विदुषी वर के विषय में विना पूरी छानबीन किए ही विवाह कर ले, विश्वास करना कठिन है। ( २ ) विद्योत्तमा राजा की पुत्री थी, साधारण व्यक्ति की नहीं, तो क्या विवाह कराते समय पण्डित लोग भयभीत नहीं हुए कि वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर राजदण्ड भोगना होगा? ( ३ ) यदि कालिदास को "काली" द्वारा विद्या प्राप्त हुई होती, तो वे काली के प्रति अवश्य कृतज्ञ होते और अपने ग्रन्थों में उसे विशिष्ट स्थान देते, किन्तु ऐसा नहीं है। ( ४ ) ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के नाम में "कालि" शब्द देखकर किसी व्यक्ति ने प्रकृत घटना की कथा को गढ़ लिया हो अथवा काली के किसी भक्त ने ऐसी कल्पना की हो। ( ५ ) "अस्ति कश्चिद् वाग् विशेषः" प्रश्न के उत्तर में लिखे गए तीनों ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ को कालिदास की सर्वप्रथम कृति नहीं माना जा सकता अतः यह मानना होगा कि कुछ ग्रन्थ पहले लिखे गए और बाद में उक्त प्रश्न के उत्तर रूप में निर्दिष्ट ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। यह क्यों? ( ६ ) उक्त प्रश्न के उत्तर में "अभिज्ञान शाकुन्तल" नाटक को क्यों नहीं लिखा गया जो कालिदास की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है ? क्या प्रश्नगत पदों में से किसी एक पद द्वारा महाकवि अपने विश्वविख्यात नाटक की रचना नहीं प्रारम्भ कर सकते थे ?

**अन्य कथा**—इसी प्रकार कालिदास के विषय में एक अन्य कथा भी है। लङ्का के राजा कुमारदास ( लगभग ५०० ई० ) ने एक वेश्या की गृहभित्ति पर एक श्लोक का आधा भाग लिखवा दिया था ( कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते ) उस श्लोक की पूर्ति करने वाले को प्रचुर मात्रा में स्वर्ण प्रदान करने की घोषणा की गई थी। रसिक महाकवि भी वहाँ पधारे और अपूर्ण श्लोक को पूरा कर दिया।

बाले ! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम् ?<br>
कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते।

वेश्या ने स्वर्ण के लोभ में आकर कालिदास को मार डाला और स्वयं श्लोक रचयित्री बन बैठी। कुमारदास वेश्या द्वारा कालिदास के वध को जानकर इतना सन्तप्त हुआ कि कालिदास की चिता में जलकर मर गया।

यह कथा भी कल्पित ही प्रतीत होती है किन्तु प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं। वैसे कालिदास ने अपनी कृतियों में वेश्याओं का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में वेश्या अधम नहीं है। अतः कालिदास की हत्या सम्बन्धी इस कथा को केवल उनके वेश्या सम्बन्ध के कारण मिथ्या नहीं बतलाया जा सकता। इस प्रकार प्रकृत कथा के खण्डन एवं मण्डन हेतु प्रबल प्रमाणों का सर्वथा अभाव होने के कारण किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं।

## कालिदास की जन्मभूमि

**जन्मभूमि—( बङ्गदेश )** महाकवि ने अपने जन्म द्वारा किस ग्राम, नगर अथवा प्रान्त को पवित्र किया है, कहना अत्यधिक कठिन है। पुष्ट प्रमाणों के अभाव में उन-उन प्रान्तों के विद्वान्

अपने-अपने प्रान्तों में कालिदास का जन्म मानते हैं। हमारे बंगाली विद्वान् मुर्शिदाबाद के "गड्डा सिगरू" नामक ग्राम में महाकवि का जन्म मानते हैं। कालिदास ( लेखक मिराशी-पृष्ठ ५३-५४, तृतीय संस्करण ) बंग विद्वानों के अन्य तर्कों में एक प्रबल तर्क यह है कि बंग देश में काली की उपासना सर्वाधिक होती है तथा काली से महाकवि को काव्य प्रतिभा या विद्या प्राप्त हुई थी अतः कालिदास निस्सन्देह बंग देश में अवतरित हुए। किन्तु बंग विद्वानों के उक्त तर्क में सार नहीं है। "कालिदास का जीवन वृत्त" शीर्षक द्वारा पिछले पृष्ठों में इस मत का खण्डन किया जा चुका है।

**जन्मभूमि ( काश्मीर देश )**—प्रोफेसर लक्ष्मीधर कल्ला ने अधिक प्रयास एवं विस्तार के साथ कालिदास को काश्मीर में जन्म लेने वाला सिद्ध करना चाहा है, विशेष रूप से हिमालय एवं हिमालय से सम्बद्ध स्थानों के कालिदास-कृत वर्णन के आधार पर। किन्तु राजतरंगिणी में कालिदास का नाम काश्मीरी कवियों के अन्तर्गत उल्लिखित नहीं है तथा हिमालय का काश्मीर से सम्बद्ध स्थानों के वर्णन कर देने मात्र से कालिदास को काश्मीरी नहीं मान लेना चाहिए। हिमालय के वर्णन के अतिरिक्त अन्य स्थानों का वास्तविक वर्णन भी कालिदास ने प्रस्तुत किया है। फिर क्यों कालिदास का जन्म काश्मीर से सम्बद्ध किया जाए, अन्य स्थानों से नहीं ? पूर्वाग्रह पर आधृत तर्क निर्णय के लिए समर्थ नहीं होता।

**जन्मभूमि ( विदर्भ प्रान्त )**—एक मत के अनुसार कालिदास का जन्म विदर्भ है क्योंकि विदर्भ का उल्लेख कालिदास के ग्रन्थों में हुआ है किन्तु कालिदास ने अपने ग्रन्थों में विदर्भ का सांगोपांग वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है अतः यह मत भी अमान्य ही सिद्ध होता है।

**जन्मभूमि ( विदिशा )**—महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का मत है कि कालिदास का जन्म विदिशा में हुआ होगा। क्योंकि विदिशा के समीपस्थ वनों, नदियों एवं स्थानों का वर्णन कालिदास ने "मेघदूत" में किया है। यह मत इसलिए मान्य नहीं है कि विदिशा के वर्णन की सीमा केवल तीन ही श्लोक हैं तथा उस वर्णन से भी मातृभूमि जैसा प्रेम नहीं प्रकट होता।

**जन्मभूमि ( मिथिला )**—"दरभंगा" जनपद के "उच्चैठ" नामक ग्राम के समीप भगवती दुर्गा की एक मूर्ति तथा पास ही में एक टीला है। परम्परा के अनुसार यहीं कालिदास को विद्या प्राप्त हुई थी। मैथिल विद्वान् उक्त स्थान के आधार पर कालिदास को मिथिला में जन्म लेने वाला मैथिल मानते हैं।

**कालिदास का निवास स्थान ( उज्जयिनी )**—उज्जयिनी से महाकवि का बहुत अधिक सम्बन्ध है। उज्जयिनी का जितना और जैसा वर्णन महाकवि ने किया है, उतना एवं वैसा वर्णन अन्य किसी नगरी का नहीं किया है। यद्यपि कालिदासकृत "अलका वर्णन" सर्वोत्कृष्ट है तथापि अलका है दिव्यनगरी और उसके वर्णन में कवि-कल्पना अंकुश हीन है। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास का अधिक समय उज्जयिनी में व्यतीत हुआ था। इतना तो स्पष्ट ही है कि उज्जयिनी से महाकवि को अतिशय प्रेम रहा था। यह भी असम्भव नहीं कि कालिदास का जन्म भी उज्जयिनी में ही हुआ हो, किन्तु जब किसी भी मत के प्रबल प्रमाण न मिल सके, तो कोई भी मत स्थिर करना समाधान नहीं।

## कालिदास का व्यक्तित्व

कालिदास का जन्म स्थान एवं समय तो विवादास्पद है ही किन्तु उनके व्यक्तित्व से सम्बद्ध अनेक विषयों में हमारा ज्ञान असंदिग्ध नहीं है। कालिदास किस वर्ण के थे ? इनके माता पिता का नाम क्या था ? उनकी आजीविका क्या थी ? महाकवि के गुरु कौन थे ? शिक्षा कहाँ हुई थी ? उनका दाम्पत्य जीवन कैसा था ? वंशपरम्परा कैसी थी ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्रायः अन्धकार के गर्त्त में पड़े हुए हैं, सम्भवतः पड़े ही रहेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास का जन्म

किसी अतीव समृद्ध एवं प्रकाण्ड विद्वान् के घर में नहीं हुआ होगा अन्यथा उसका संकेत कहीं न कहीं अवश्य किया गया मिलता। उनकी प्रतिभा ने ही उनको उठाया होगा और प्रसिद्धि पाने के लिए अथवा काव्य के उचित मूल्यांकन के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ा होगा। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में कालिदास ने स्वयं इस प्रश्न को उठाया है कि यदि "भास" "सौमिल्ल" एवं "कविपुत्र" आदि कवियों की रचनाएँ पहले से ही विद्यमान हैं तो फिर क्यों कालिदासकृत नवीन नाटक का अभिनय होना चाहिए? यह प्रश्न कालिदास का नहीं था, सहृदयों का था, जो कालिदासीय प्रतिभा से परिचित नहीं हो पाए थे।

**वैदिक धर्म के अनुयायी—**

कालिदास श्रुतिस्मृतिसम्मत वैदिक धर्म के अनुयायी थे। "श्रुतेरिवार्थम् स्मृतिरन्वगच्छत्" ( रघुवंश २-२ ) "पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः" ( अभिज्ञानशाकुन्तलम्—अंक ६ ) तथा जैसा कि अन्य विद्वानों का मत है, अधिक सम्भावना है कि कालिदास वर्ण से ब्राह्मण हों। कालिदास के प्रगाढ पाण्डित्य से तथा ऋषियों एवं आश्रमों के वर्णन से ऐसा अनुमान होता है कि उन्होंने किसी अच्छे गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की थी। इनके ग्रन्थों से पता चलता है कि उन्होंने अवश्य ही संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन, धर्मशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, पुराण, इतिहास, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, चित्रकला, सङ्गीत, युद्धविज्ञान तथा साहित्य-शास्त्र के समस्त अंगों का सूक्ष्म अध्ययन किया था तथापि वे अभिमान शून्य थे।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

**सरल एवं विनोदप्रिय व्यक्ति—**

कालिदास सरल एवं विनोदप्रिय व्यक्ति थे। तभी तो उन्हें "कविताकामिनी का विलास" कहा जाता है। विद्वत्ता का प्रदर्शन छोड़कर महाकवि सरल एवं सरस भाषा में अपने वक्तव्य का प्रकाशन करके श्रोताओं को रस से आप्लावित कर देना चाहते हैं।

**भूगोल का प्रगाढ़ ज्ञान—**

कालिदास को भूगोल का अच्छा ज्ञान था। "मेघदूत" भौगोलिक स्थानों के वर्णनों से भरा पड़ा है। "कुमारसम्भव" में हिमालय का यथार्थ चित्रण मिलता है। सुदूर पूर्व में किया गया वर्णन आज के समालोचकों की दृष्टि में खरा इसलिए उतरा है कि भूगोल सम्बन्धी विवरण का आधार कल्पना न होकर स्वयं निरीक्षण था। रघु की विजय-यात्रा का वर्णन कालिदास के भौगोलिक ज्ञान का प्रौढ प्रमाण है।

**प्रेय एवं श्रेय के पक्षपाती—**

कालिदास का प्रेय एवं श्रेय दोनों के प्रति पक्षपात था। जहाँ उन्होंने यह लिखा है :—

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानाम्।
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ ( पूर्वमेघ )

वहीं पर श्रेय भी उतना ही अनिवार्य है :—

प्रजायै गृहमेधिनाम् ( रघुवंश १-७ ) योगेनान्ते तनुत्यजाम् ( रघुवंश १-८ ) इत्यादि।

प्रेय एवं श्रेय का एकत्र मिलन भी द्रष्टव्य है—

वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर! हतास्त्वं खलु कृती। ( अभिज्ञानशा० अंक १ )

दुष्यन्त शकुन्तला के रूप का उपयोग करना चाहता है। प्रेय के प्रति उसका अतीव अनुराग है किन्तु श्रेय उसके लिए अपरिहार्य है। उसका उतना ही संभवतः उससे भी अधिक महत्त्व है

तत्त्वान्वेषण के पूर्व उसने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया। कालिदास को श्रेयसात्मा प्रेय भी स्वीकार्य है। एवमेव—

भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं।
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥ ( अभिज्ञान०-५ )

का भाव विचारणीय है।

**शिव के उपासक—**

कालिदास शिव के उपासक थे। "अभिज्ञानशाकुन्तल" के नान्दी श्लोक में शिव की स्तुति है। "रघुवंश" के आदि श्लोक में शिव पार्वती की वन्दना है। "कुमारसम्भव" तो शिवतनय कार्त्तिकेय के जन्म से सम्बद्ध महाकाव्य है। मेघदूत में अत्यधिक शिव का सङ्कीर्तन है।

**तप और योग के समन्वय का समर्थक :—**

कालिदास का योग पक्ष तप से शून्य नहीं था। उन्होंने सांसारिक समृद्धि के लिए तप के मार्ग को आवश्यक माना है। महाराज दिलीप को पुत्र रत्न प्राप्ति के लिए वशिष्ठ के आश्रम में रहकर नन्दिनी के पीछे-पीछे वनों में घूमना पड़ा तथा उसकी सेवा में दिन बिताने पड़े। अभिज्ञान शाकुन्तल में भी दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों को वियोग पूर्ण जीवन लगभग बारह वर्षों तक व्यतीत करना पड़ा और तब उनका मिलन सम्भव हुआ। मेघदूत में विरही यक्ष को अपनी प्राण प्रिया पत्नी से दूर रामगिरि की निम्न भूमि में वियोग के दिन बिताने पड़े। भगवान् शङ्कर रूपी वर की प्राप्ति में पार्वती को घोर तपस्या की साधना अपनानी पड़ी, दोनों का परिणय सम्पन्न हो सका।

ऐसा सरस एवं सहृदय विश्वविश्रुत महाकवि कितनी आयु भोग कर इस मधुर मर्त्यलोक को छोड़ने के लिए विवश हुआ होगा, हम निश्चित रूप से नहीं बतला सकते तथापि विद्वानों की गवेषणा के अनुसार कालिदास ने कम से कम पचपन वर्ष की आयु अवश्य प्राप्त की होगी।

## कालिदास का समय

कालिदास के समय को लेकर विद्वानों में विशेष रूप से मतभेद है। केवल ऐकमत्य इसी में है कि कालिदास का समय ईसा पू० द्वितीय शताब्दी के पूर्व नहीं है और ईसा के छठी शताब्दी के बाद नहीं है। प्राय: सभी मुख्य मतों का सार यहाँ दिया जा रहा है। प्रमुख मत पाँच हैं—

( १ ) ईसा के पूर्व द्वितीय शताब्दी।
( २ ) ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी।
( ३ ) ईसा की तृतीय शताब्दी।
( ४ ) ईसा की पञ्चम शताब्दी।
( ५ ) ईसा की छठी शताब्दी।

**( १ ) ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी—**

यह मत प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० कुह्नन राजा का है। इनके अनुसार कालिदास कृत "मालविकाग्निमित्रम्" नाटक के भरत वाक्य में शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र का उल्लेख हैं। ईसा के पूर्व द्वितीय शताब्दी में अग्निमित्र राज्य करता था। इसकी राजधानी विदिशा थी। कालिदास इन्हीं अग्निमित्र के आश्रय में रहते होंगे। "विदिशा" का उल्लेख "मेघदूत" में हुआ है।

"तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्" ( पूर्वमेघ २५ )

यह मत बहुसमर्थित नहीं हैं। संभव है कि अग्निमित्र कालिदास के समसामयिक न रहे हों अपि तु अग्निमित्र और कालिदास के बीच में अधिक समय का व्यवधान हो विदिशा का उल्लेख मात्र कर देने से यदि कालिदास को अग्निमित्र के समय से सम्बद्ध करना उचित माना जाय तो

अनेक नगरों के विशदवर्णन के कारण तत्तत् नगरों के शासकों के काल से कालिदास को क्यों न सम्बद्ध माना जाय ? अतः इस मत को समर्थन न मिल सका ।

## ( २ ) ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी—

भारतीय पण्डितमण्डल की परम्परा कालिदास को विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक मानती है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

विद्वद्वर्ग में इस विषय पर मतभेद है कि ईसा से २६ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् के संस्थापक तथा "विक्रमादित्य" की उपाधि को धारण करने वाले उज्जयिनी के राजा कालिदास के आश्रय-दाता थे अथवा विक्रमादित्य की उपाधि को धारण करने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय जिनका समय ईसवी सन् ३५१ से ४१३ है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के समर्थक विद्वान् चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता नहीं मानते अपितु ईसा पूर्व २६ वर्ष विक्रम संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य को क्योंकि—

( १ ) भारतीय परम्परा चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता मानने के पक्ष में नहीं है। ( २ ) गुणाढ्य की "बृहत्कथा" पर आधृत सोमदेव कृत "कथासरित्सागर" में उज्जयिनी के राजा एवं महेन्द्रादित्य के पुत्र परमारवंशीय राजा विक्रमादित्य का वर्णन मिलता है। विदेशियों को हटाकर "मालवगणस्थिति" संज्ञक एक नवीन संवत् को प्रवर्तित करने वाले इस परमशैवसम्राट् ने वैदिक धर्म का पुनः प्रचार प्रसार करवाया तथा उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर का निर्माण करवाया। ( ३ ) कालिदास कृत "विक्रमोर्वशीयम्" नाटक में विक्रमादित्य एवं उनके पिता महेन्द्रादित्य दोनों का प्रकारान्तर से उल्लेख मिलता है और ऐसी सम्भावना है कि इस नाटक का अभिनय विक्रमादित्य के सिंहासनारूढ होने के समय हुआ होगा। ( ४ ) हाल ( प्रथम शताब्दी ) द्वारा प्रणीत "गाथासप्तशती" संज्ञक ग्रन्थ में विक्रम का उल्लेख हुआ है ( ५ ) विक्रमा-दित्य परमारवंशीय होने के साथ ही सूर्यवंशीय भी थे। रघुवंश में कालिदास ने सूर्यवंश का वर्णन किया है। ( ६ ) महाकाल के मन्दिर को बनवाने वाले विक्रमादित्य शैव थे तथा कालिदास भी शैव थे। ( ७ ) अश्वघोष ( ईसा की प्रथम शताब्दी ) का काव्य कालिदास के काव्य से प्रभावित है ( ८ ) कालिदास के काव्य में परवर्ती कवियों की अपेक्षा अपाणिनीय प्रयोगों का आधिक्य कालिदास को अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती सिद्ध करता है। ( ९ ) अभिज्ञानशाकुन्तल में यज्ञ सम्बन्धी "पशुमारण" शब्द इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि कालिदास उस काल में विद्यमान थे, जब कि समाज में यज्ञ कर्मों की प्रधानता थी। ( १० ) "अभिज्ञानशाकुन्तल" में अन्त में भरत-वाक्य में "गणशत परिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यैः" का पद इस बात को प्रमाणित करता है कि कालिदास के समय में गणराज्यों की प्रधानता थी। "गणराज्य" ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में ही विद्यमान थे, बाद के समयों में नहीं।

## ( ३ ) ईसा की तृतीय शताब्दी—

ज्योतिष के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री "केतकर" ने "रघुवंश महाकाव्यम्" के कतिपय पद्यों के आधार पर कालिदास का समय ईसा पश्चात् तृतीय ( लगभग २८० वर्ष ईसा के पश्चात् ) माना है। उन्होंने सामान्य वर्णन में ज्योतिष शास्त्र की सूक्ष्मता की कल्पना करके प्रकृत मत को स्थिर करने का प्रयास किया है।

विद्वन्मण्डली ने उक्त मत का समर्थन नहीं किया है। यद्यपि कालिदास को ज्योतिष शास्त्र का सूक्ष्म ज्ञान था तथापि उनका प्रयोजन काव्य द्वारा सहृदयों के हृदयों को आनन्दित करना था, ज्योतिष की सूक्ष्मताओं द्वारा काव्य को जटिल बनाना अथवा ज्योतिष शास्त्र के पाण्डित्य का प्रदर्शन करना नहीं था।

**( ४ ) ईसा की पञ्चम शताब्दी—**

प्रो० के० बी० पाठक के अनुसार "रघुवंश" के कतिपय पद्यों से ( ४-६६-६८ ) सूचित होता है कि "वक्षु" संज्ञक नदी के तट पर रघु ने हूणों को पराजित किया था। आधुनिक "आक्सस" नदी ही "वक्षु" नदी है। ई० सन् ४५० के आसपास "आक्सस" नदी पर हूणों का आधिपत्य हुआ और उसी समय उन्होंने भारत पर आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने हूणों से युद्ध किया। यह बात एक शिलालेख से ( गिरिनार का शिलालेख ) जिसका समय ४५५–४५६ ई० सन् है, सिद्ध होती है। अतः कालिदास का समय ४५० ई० सन् और ४५५–४५६ सन् के बीच है अर्थात् ईसा की पञ्चम शताब्दी ( का मध्य ) है।

हूणों का उल्लेख "अवेस्ता" "महाभारत" "ललितविस्तार" ( ईसा की तृतीय शताब्दी ) आदि ग्रन्थों में भी है अतः कालिदास पञ्चम शताब्दी के पूर्व भी हो सकते हैं। इस प्रकार प्रो० पाठक के तर्क निर्बल पड़ जाते हैं और उनके मत को सिद्ध करने में सहायक नहीं हो पाते।

**( ५ ) ईसा की छठी शताब्दी—**

इस मत के जन्मदाता जर्मन विद्वान् "मैक्समूलर" थे। इनके समर्थकों में से प्रमुख हैं—डा० हार्नली, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, कृष्णमाचरियर। जेम्स फर्ग्युसन इत्यादि।

मैक्समूलर का कथन है कि छठीं शताब्दी के पूर्व के जितने शिलालेख हैं, वे सब प्राकृत भाषा में हैं अतः छठीं शताब्दी के पूर्व का समय संस्कृत वाङ्मय के विकास की दृष्टि से वैभवशाली नहीं था, अतएव कालिदास का समय छठी शताब्दी के पूर्व नहीं हो सकता। किन्तु मैक्समूलर की उक्त धारणा समीचीन नहीं है क्योंकि ईसा की प्रारम्भिक पाँच शताब्दी में प्राप्त शिलालेखों से तत्कालीन संस्कृत भाषा के विकास की पुष्टि हो चुकी है। अश्वघोष के महाकाव्य बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द संस्कृत भाषा की अनूठी कृतियाँ हैं।

फर्ग्युसन महोदय की धारणा है कि राजा विक्रमादित्य ने शकों को ५४४ ई० सन् में पराजित किया था और अपनी इस विजय को चिरस्थायी करने के निमित्त विक्रम संवत् को चलाया किन्तु इस सन् को उन्होंने अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन सिद्ध करने के लिए ६०० वर्ष का समय दे दिया अर्थात् इस सन् का प्रारम्भ ईसा पूर्व ५६-५७ वर्ष से किया जब कि इसके प्रचलित होने का वास्तविक समय ईसवी सन् ५४४ है। इस प्रकार विक्रमादित्य का समय ५४४ ई० के आसपास है और विभिन्न विद्वानों के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। अतएव कालिदास का समय छठीं शताब्दी है।

भारतीय शिलालेखों के अध्ययन से स्पष्ट हो गया है कि ५४४ ई० सन् से एक शताब्दी से भी अधिक पहले मालव संवत् के नाम से विक्रम संवत् चल चुका था। फिर विक्रम सम्वत् के आधार पर कालिदास का समय छठीं शताब्दी कैसे हो सकता है?

ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य वराहमिहिर की कृति "बृहत्संहिता" तथा कालिदासकृत "रघुवंश" में प्राप्त ज्योतिष सम्बन्धी विवरण में अत्यधिक समानता है। यथा—( १ ) भूमि की छाया के कारण चन्द्रग्रहण होना। ( २ ) चन्द्रमा का सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित होना। वराह-मिहिर एवं कालिदास एक ही नृप विक्रमादित्य की सभा के रत्न थे। इस परम्परा पर विश्वास करने पर कालिदास का समय छठीं शताब्दी ठहरता है तथापि प्रथम तर्क में कालिदास चन्द्रमा की कालिमा का वर्णन करते हैं चन्द्रग्रहण का नहीं। तथा द्वितीय तर्क में सूर्य किरणों द्वारा चन्द्र का प्रकाशित होना तो ई० पू० आठवीं शताब्दी के यास्करचित ग्रन्थ "निरुक्त" तक में वर्णित है। अतः ज्योतिष के आधार पर प्रकृत तर्क प्रमाणशून्य है।

कुछ विद्वान् कालिदास के "मेघदूत" में छठी शताब्दी ईसवी के बौद्ध न्यायाचार्य "दिङ्नाग" ( पूर्वमेघ-१४ ) का उल्लेख होने के कारण कालिदास का समय छठी शताब्दी मानते हैं। किन्तु

दिङ्नाग से अभिप्रेत अर्थ "बौद्धाचार्य दिङ्नाग" नहीं अपितु "दिशाओं के हाथी" है। दूसरे "दिङ्नाग" का समय चौथी शताब्दी ईसवी का अन्तिम भाग है, छठी शताब्दी नहीं।

कालिदास के समय के विषय में प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ० वासुदेव विष्णु मिराशी का यह विचार है :—

कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के आश्रय में थे, यह स्पष्ट हो जाता है। चन्द्रगुप्त ने ई० सन् ३८० से लेकर ४१३ ई० पर्यन्त राज्य किया अर्थात् कालिदास चौथी शताब्दी के अन्त में या पाँचवीं शताब्दी के आस पास हुए होंगे। ( कालिदास मिराशी पृष्ठ ३८ )

## अनुशीलन

( १ ) यह बात अब ऐतिहासिक अन्वेषणों से सिद्ध हो गई है कि प्रारम्भ में मालव-प्रदेश में प्रचलित होने वाला संवत् मालव-गण का संवत् था। सिकन्दर के भारतीय आक्रमण के समय मालव जाति पंजाब में रहती थी। मालव, क्षुद्रक गणसंघ ने सिकन्दर का विरोध किया था किन्तु पारस्परिक फूट के कारण मालव-गण अकेला लड़कर यूनानियों से हार गया। इसके पश्चात् मौर्यों के कठोर नियन्त्रण से मालव जाति निष्प्रभ सी हो गई। मौर्य साम्राज्य के अन्तिम काल में जब पश्चिमोत्तर भारत पर बाख्त्रियों के आक्रमण प्रारम्भ हुए, तब उत्तरापथ की मालवादि कई गणजातियाँ वहाँ से पूर्वी राजपूताना होते हुए मध्यभारत पहुँची और वहाँ पर उन्होंने अपने नए उपनिवेश स्थापित किए। समुद्रगुप्त के प्रयाग-प्रशस्ति लेख से सिद्ध है कि चौथी शताब्दी ई० पू० के पूर्वार्द्ध में उसके साम्राज्य की दक्षिणपश्चिम सीमा पर कई गणराष्ट्र वर्तमान थे किन्तु इसके पहले प्रथम द्वितीय शताब्दी ई० पू० में मालव जाति आकर अवन्ति ( मालव-प्रान्त ) में पहुँच गई थी, यह बात मुद्राशास्त्र से प्रमाणित है। यहाँ पर एक प्रकार के सिक्के मिले हैं, जिनपर ब्राह्मी अक्षरों में "मालवानां जयः" लिखा है। ( इण्डियन म्यूजियम क्वायन्स, जिल्द १, पृ० १६२, कनिंगहैम-आर्किलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द ६ पृष्ठ १६५–७४ )

( २ ) ई० पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य में मगध साम्राज्य का भग्नावशेष काण्वों की क्षीण शक्ति के रूप में पूर्वी भारत में बचा हुआ था। बाख्त्रियों के पश्चात् पश्चिमोत्तर भारत पर शकों के आक्रमण होने लगे। शक जाति ने सिन्ध प्रान्त के मार्ग से भारतवर्ष में प्रवेश किया। यहाँ से उसकी एक शाखा सुराष्ट्र होते हुए अवन्ति-आकर की ओर बढ़ने लगी। इस बढ़ाव में मध्यभारत के गणराष्ट्रों से शकों का संघर्ष होना सर्वथा स्वाभाविक था। बाहरी आक्रमण के समय गणजातियाँ संघ बनाकर लड़ती थीं। इस संघ का नेतृत्व मालवगण ने किया और शकों को पीछे ढकेल कर सिन्धप्रान्त के छोर तक पहुँचा दिया। कालकाचार्य-कथा में शकों को निमन्त्रण देना, अवन्ति के ऊपर उनका अस्थायी आधिपत्य और अन्त में विक्रमादित्य के द्वारा उनका निर्वासन–इन सभी घटनाओं का मेल इतिहास की उपर्युक्त धारा से बैठ जाता है।

( ३ ) शकों को पराजित करने के कारण मालव-गण-मुख्य का शकारि एक विरुद हो गया। यद्यपि इस घटना से शकों का आतंक सदा के लिए दूर नहीं हुआ तथापि यह एक क्रान्तिकारी घटना थी और इसके फलस्वरूप लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक भारतवर्ष शकों के आधिपत्य से सुरक्षित रहा। इसलिए इस विजय के उपलक्ष्य में संवत् का प्रवर्तन हुआ और मालव-गण के दृढ़ होने से इसका गण नाम मालवगणस्थिति या मालवगण काल पड़ा।

सूक्ष्म पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि अभिज्ञानशाकुन्तल और अन्य नाटकों की संस्कृति रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत की संस्कृति में पर्याप्त अन्तर है। शाकुन्तल में याज्ञिक संस्कृति की प्रधानता है और मेघदूत, रघुवंश आदि में पौराणिक संस्कृति की। अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक का लेख—"वत्से ! दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेरपि यजमानस्य पावकस्यैव मुखे आहुतिर्निपतिता" में शतपथ ब्राह्मण के विधान—"पावकाग्नियज्ञ से अन्न=ऐश्वर्य-प्राप्ति होती है" की

स्पष्ट छाप है। ऐसे स्थल काव्यों में उपलब्ध प्रतीत नहीं होते। नाटकों में सभी नायक अन्त में नायिकाओं से मिल जाते हैं और अन्त सुखमय होता है। काव्यों में अज-इन्दुमती, काम-रति और यक्ष-यक्षपत्नी का पुनर्मिलन चित्रित नहीं किया गया है।

इसी प्रकार यदि उपमाओं, छन्दः प्रयोगों और प्रकृति-वर्णन आदि का सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो नाटकों और काव्यों के मध्य एक रेखा स्पष्ट दिखाई दे जाएगी।

ऐसी स्थिति में नाटककार कालिदास को काव्यकार कालिदास से पृथक् मानना समीचीन जान पड़ता है। यदि ऐसा मान लें, तो तिथिक्रम सम्बन्धी अनेक समस्यायें शान्त हो जाएगी। ( संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास—पृ० २७-२८ )

किन्तु वल्लालसेन के भोज-प्रबन्ध में राज्य-सभा में उछल कूद मचाने वाले कालिदास कौन थे ? इस सम्बन्ध में मेरा विचार है कि कालिदास तीन रहे होंगे।

| १—नाटककार | २—महाकाव्यकार | ३—ऋतुसंहार के रचयिता। |
|---|---|---|
| प्रथम शताब्दी ई० पू० | गुप्तकालीन | राजा भोज के सामयिक। |

## महाकवि कालिदास की कृतियाँ

महाकवि कालिदास के नाम से बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं इनमें से अम्बास्तव, कल्याणस्तव, कालीस्तोत्र, काव्यनाटकालंकार, घटकर्पर, चण्डिका दण्डकस्तोत्र, चर्चास्तव, ज्योतिर्विदाभरण, दुर्घटकाव्य, नलोदय, नवरत्नमाला, पुष्पवाणविलास, मकरन्दस्तव मंगलाष्टक, महापद्यषट्क, रत्नकोष, राक्षस काव्य, लक्ष्मीस्तव, लघुस्तव, विद्वद्विनोद काव्य, बृन्दावन काव्य, वैद्यमनोरमा, शुद्धिचन्द्रिका, श्रृंगारतिलक, श्रृंगाररसाष्टक, श्रृंगारसारकाव्य श्यामलादण्डक, श्रुतबोध, सप्तश्लोकी-रामायण, और सेतुबन्ध ग्रन्थ कालिदास के नाम पर प्रचलित हैं।

क्षेमेन्द्र ने कालिदास के एक कुन्तेश्वरदौत्य नामक ग्रन्थ से एक पद्य उद्धृत किया है, परन्तु इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में अभी और कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है।

कृष्णचरित नामक ग्रन्थ के अनुसार कालिदास ने चार नाटक लिखे और पाँच काव्य।

आजकल कालिदास के निम्नलिखित ग्रन्थ माने जाते हैं—

**नाटक**—( १ ) मालविकाग्निमित्र ( २ ) विक्रमोर्वशीय ( ३ ) अभिज्ञानशाकुन्तल।

**महाकाव्य**—( १ ) कुमारसम्भव ( २ ) रघुवंश।

**खण्डकाव्य**—( १ ) मेघदूत ( २ ) ऋतुसंहार।

महाकवि कालिदास के नाटकों में प्रस्तुत नाटक सर्वप्रथम गणना विद्वत् समाज करता है। प्रसन्नता का विषय है कि 'चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन' वाराणसी के सौजन्य से इसका यथाविधि प्रकाशन होकर सुधीजनों के सम्मुख यह प्रस्तुत है, यह कितना उपादेय बन सका है इसका निर्णय विद्वत्समाज के ऊपर है, हमारा तो मात्र इतना निवेदन है कि यदि इस संस्करण में कहीं कोई प्रमादवश त्रुटि रह गयी हो तो गुणग्राही पाठक मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

विनयावनत—

**रमाशंकर पाण्डेय**

# 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक का कथानक

## प्रथम अंक

ईसवीय शताब्दी से पूर्व विदिशा नगरी में सेनापति पुष्यमित्र के आत्मज महाराज अग्निमित्र राज्य करते थे। उनकी दो रानियाँ थीं (१) धारिणी (२) इरावती। विदर्भ के राजा माधवसेन भी अपनी छोटी बहन मालविका का विवाह अग्निमित्र से ही करना चाहते थे तथा शीघ्र ही इस विवाह-कार्य के सम्पादन के लिए अग्निमित्र से मिलना चाहते थे। माधवसेन के चचेरे भाई यज्ञसेन भी वहीं राजा थे। वे अग्निमित्र से वैर रखते थे। माधवसेन के साथ भी उनकी अनबन हुई और उन्होंने माधवसेन को राजच्युत करके बन्दी बना लिया। उनके मन्त्री ने स्वामी की इच्छा पूर्त्ति के लिए मालविका को अग्निमित्र के पास पहुँचा देना चाहा। तदनुसार वह मालविका और अपनी बहन कौशिकी को साथ लेकर राजधानी से बाहर आकर विदिशा जाने वाले यात्री-दल में सम्मिलित हो गया। मार्ग में चलने से श्रान्त होकर उन लोगों ने एक जंगल में डेरा डाला। वहाँ दस्युओं ने आक्रमण करके उन्हें तितर-बितर कर दिया। माधवसेन के मन्त्री सुमति उस युद्ध में मारे गए।

उनकी बहन कौशिकी मूर्च्छित हो गयी। कुछ देर के बाद चेतना के आने पर उसने मालविका को नहीं देखा। शोकाभिभूत होकर भाई की अग्निक्रिया करने के बाद विदिशा में आकर कौशिकी ने सन्यास ग्रहण कर लिया। कालक्रम से उसका प्रवेश अग्निमित्र के अन्तःपुर में हुआ वह रानी धारिणी की कृपा से वहीं सम्मानित होकर जीवन व्यतीत करने लगी। इधर दस्युओं ने मालविका को बन्दिनी बनाकर उपहार रूप में वीरसेन नामक धारिणी के भाई और अग्निमित्र के सीमान्त रक्षक को समर्पित कर दिया। वीरसेन ने देखा कि मालविका को संगीत की रुचि है, इसलिए उसे अपनी बहन धारिणी देवी के पास इस संवाद के साथ भेज दिया कि इसे संगीत तथा अभिनय की शिक्षा दिलाई जाए। धारिणी देवी ने भी मालविका की कला पटुता से प्रसन्न होकर उसे नाट्याचार्य गणदास से शिक्षा प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था कर दी। कौशिकी ने मालविका को देखा और पहचाना भी, परन्तु विशेष कारण-वश उसका परिचय किसी को नहीं दिया।

एक दिन धारिणी ने अपना चित्र बनवाया, जिसमें उसके परिजन के रूप में मालविका का भी चित्रण किया था। वह चित्र रंगा गया था ही कि चित्रशाला में बैठी धारिणी उस चित्र को देख रही थी, पीछे से आकर राजा वहाँ खड़े हो गए। चित्र में एक अपरिचित सुन्दर तरुणी को देखकर राजा ने उत्सुकता से उसके विषय में पूछना प्रारम्भ किया। रानी ने जान बूझकर उत्तर नहीं दिया। वहीं कुमारी वसुलक्ष्मी भी थी, बालसुलभ चञ्चलता से उसने कहा—इसका नाम मालविका है। राजा द्वारा किए गए कुतूहल प्रश्नों से उनकी उत्सुकता का अनुमान करके रानी के हृदय में खटका पैदा हो गया और मालविका को राजा की दृष्टि से बचाए रखने की व्यवस्था कर ली गई। चित्र में मालविका को देखकर राजा उसकी रूपमाधुरी पर मोहित हो गए, उन्होंने अपने विदूषक से अपनी मनोदशा बता दी और मालविका को दिखा देने तथा उसे मिलाकर संगम करा देने के लिए उपाय करने को कहा विदूषक ने उस दरबार के दोनों नाट्याचार्य गणदास तथा हरदत्त में—झूठी बातें फैलाकर विरोध का वातावरण पैदा कर दिया। उन लोगों ने राजा से यह निर्णय कर देने को कहा कि उनमें कौन अधिक विद्वान् है? राजा ने उसमें कौशिकी को मध्यस्थ बनाया, कौशिकी ने राजा से भी यह मध्यस्थता में रहने के लिए कहा। किस आधार पर विशेषज्ञता निर्धारित की जाय, इस प्रसंग में कौशिकी ने निर्णय दिया कि दोनों आचार्य अपनी अपनी शिष्याओं को स्वाभाविक वेश में छलिक अभिनय प्रदर्शित करने को कहें, जिसकी शिष्या प्रथम होगी, वह विशेषज्ञ माना जाएगा। दोनों आचार्य इस बात को मान गए। विदूषका का प्रथम उपाय सफल रहा। धारिणी ने बहुत प्रयत्न किया कि यह बात किसी प्रकार दब जाय, प्रदर्शन

न हो, लेकिन सभी मिले हुए थे, अतः उसे हताश होना पड़ा। प्रदर्शन होना निश्चित हो गया और रंगशाला में तैयारी होने लगी।

## द्वितीय अंक

वृद्ध होने के कारण गणदास को पहले प्रयोग दिखाने का अवसर दिया गया। राजा, धारिणी, कौशिकी, विदूषक और परिजन सभी उपस्थित थे। राजा मालविका को देखने के लिए अधीर हो रहा था। पर्दा उठने पर मालविका सीधे सादे वेश में सामने आई। उसके लावण्य ने राजा को चकित कर दिया। अब तक राजा की धारणा थी कि चित्रगत मालविका की शोभा चित्रकार की कुशलता प्रसूत है, वह इतनी सुन्दरी नहीं होगी किन्तु साक्षात् मालविका को देखकर उसने स्थिर किया कि चित्रकार मालविका के रूप को सम्पूर्णभाव से चित्र में नहीं ला सका है, वह चित्र से कहीं अधिक सुन्दरी है। नृत्य प्रारम्भ हुआ। शर्मिष्ठा प्रवर्तित चतुष्पद संगीत में भावप्रदर्शन द्वारा मालविका ने राजा के प्रति आत्मनिवेदन किया। राजा मन्त्रमुग्ध की तरह देखते रहे। नृत्य समाप्त हुआ। हरदत्त को यह कहकर विरत कर दिया कि आपका प्रयोग फिर कभी देखा जायगा, अभी भोजन का समय उपस्थित है। सभी लोग भोजन करने के लिए उठकर चले गए। राजा ने विदूषक से कहा—वयस्य! सचमुच यह अतीव सुन्दरी है, विधाता में सौन्दर्य सृष्टि की जितनी क्षमता थी, वह सब इसमें लगा दी गई है। अब तुम शीघ्र ऐसा उपाय करो जिससे इसके साथ मेरा मिलन हो जाय।

राजा की विरह-वेदना दिन-दिन बढ़ती गई, वह बराबर उसी से मिलने की चिन्ता में रहने लगा। विदूषक ने राजा के कथनानुसार राजा की स्थिति से बकुलावलिका को अवगत कराया, वह मालविका की सखी तथा स्नेहपात्र थी।

## तृतीय अंक

अग्निमित्र के अन्तःपुर की चहारदीवारी में रमणियों के आनन्द एवं मनोरंजन के लिए एक बाग लगाया था—जिसका नाम प्रमदवन था। उसमें धारिणी द्वारा लालित एक अशोक वृक्ष था, उसके पत्ते सुनहले रंग के थे, इसी से उसका नाम तपनीयाशोक रखा गया था। उसके दोहद के लिए किसी तरुणी को उस पर नूपुर युक्त चरणों से प्रहार करना था। धारिणी के पैर में पीड़ा थी, अतः उन्होंने मालविका को यह कहकर उस कार्य के लिए भेजा कि यदि पाँच रात्रि के बीच अशोक वृक्ष के फूल निकल आए तो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण कर दूँगी। मालविका अपनी सखी बकुलावलिका को साथ लेकर प्रमदवन पहुँची। बकुलावलिका ने उसके चरणों को रंगकर नूपुर पहनाया, अशोक के दोहद पूरे हुए। इसी समय घूमते फिरते राजा वहाँ पहुँच गए। उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही बकुलावलिका ने राजा का अभिप्राय मालविका को बताया। राजा ने स्वयं भी अपना अनुराग प्रकट किया। उसके और बकुलावलिका के बीच जो बातचीत हुई थी, उससे राजा को मालविका की मानसिक स्थिति का पता चल गया था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में प्रणय याचना की। जिस समय राजा, मालविका बकुलावलिका के बीच बातें हो रहीं थीं, उसी समय एक अन्य कार्य से राजा को ढूँढती हुई राजा की द्वितीय पत्नी इरावती वहाँ आ गई, उसके आने से इस प्रणयवार्ता का रंग उतर गया।

राजा ने तुरन्त अपने को सँभालते हुए इरावती से कहा—देवि! तुम्हारा ही अन्वेषण करता हुआ मैं यहाँ आया और देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था किन्तु जब तक तुम नहीं आ रही थीं, तब तक इससे बातें करके मैं अपना दिल बहला रहा था। इन बातों का इरावती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह क्रोध में भरी हुई राजा की उपेक्षा करके वहाँ से चली गई। जाने से पहले वह बकुलावलिका को भी फटकार सुना गई। इरावती इस बात की उपेक्षा नहीं करना चाहती थी। वह धारिणी के पास जाकर राजा के इस अविनय की सूचना कुछ विस्तार के साथ दे आई। इस बात के सुनने से धारिणी को इरावती की बात रखने के लिए कठोर व्यवस्था करनी पड़ी। मालविका

और वकुलावलिका को कारावास का कठोर दण्ड दिया गया। उनकी रखवाली के लिए धारिणी ने अपनी एक विश्वासपात्र परिचारिका को वहाँ बैठा दिया और उसको आज्ञा दे दी कि बिना धारिणी की मुहर देखे दोनों बन्दियों को किसी प्रकार मुक्त न करे।

## चतुर्थ अंक

मालविका तथा वकुलावलिका के कारावास से राजा को अत्यन्त चिन्ता हुई। उनके खेद तथा प्रार्थना से परवश होकर विदूषक ने एक उपाय सोचा और तदनुसार राजा को धारिणी के पास उनकी खबर लेने के लिए भेजा। इधर विदूषक ने एक षडयन्त्र रचा। उसने अपने हाथ में केतकी कण्टक से सर्प-दंशन का दाढ़ बना लिया और मिथ्या सर्प-दंशन की बात फैलाकर सबको चिन्तित कर दिया। उसने यह प्रचार किया कि रानी को उपहार में देने के लिए मैं फूल लेने गया था कि मुझे काले सर्प ने काट लिया। रानी को इससे बड़ी चिन्ता होने लगी कि संयोग-वश यदि इस सर्पदंशन से इसकी मृत्यु हो गई, तो यह ब्रह्महत्या का कलंक मेरे ही ऊपर आएगा। विदूषक विषवेग से सन्तप्त का स्वाँग बना कर दरबार में उपस्थित हुआ, जहाँ राजा, रानी, कौशिकी इत्यादि उपस्थित थे। विदूषक ने विष-वेग का ऐसा प्रदर्शन किया कि सभी चिन्तित हो उठे। राजा ने विदूषक की विष चिकित्सा के लिए अपने वैद्य ध्रुवसिद्धि को आदेश भेजा विदूषक ध्रुव-सिद्धि के पास गया। ध्रुवसिद्धि ने उसकी चिकित्सा में "नागमुद्रा" की आवश्यकता बताई। सभी के समक्ष एक ब्राह्मण के जीवन का प्रश्न था।

किसी को कुछ सोचने का अवसर नहीं था। धारिणी के पास नागमुद्रा वाली अंगूठी थी। रानी ने तत्क्षण वह अंगूठी जयसेना को दे दी। अंगूठी देखते ही विदूषक का कृत्रिम विष-वेग उतर गया' उसने वही अंगूठी दिखाकर मालविका और वकुलावलिका को कारावास से मुक्त कराया। वहाँ की रक्षिका से कह दिया कि राजा की कुण्डली देखकर दैवज्ञों ने बताया कि ग्रहस्थिति कुछ मन्द है, इसीलिए उसके शान्त्यर्थ सभी बन्दी-जन छोड़े जा रहे हैं। देवी ने केवल इरावती का मन रखने के लिए अपना परिचारिका को नहीं भेजकर मुझे भेजा है जिससे इरावती को यही मालूम हो कि राजा छोड़ रहे हैं, इसमें देवी का कोई हाथ नहीं है। संकेतानुसार–राजा, विदूषक, मालविका और वकुलावलिका–सभी समुद्र-गृह में मिले। मालविका और राजा दोनों एक दूसरे से दिल खोलकर मिले। मालविका ने देवी का भय मात्र अपने मिलन का प्रतिबन्धक बता कर आत्मनिवेदन कर दिया। विदूषक और वकुलावलिका आस-पास छिपे बैठे रहे। यह प्रणय-लीला चल रही थी कि इरावती फिर वहाँ आ गई। उसके साथ उसकी परिचारिका निपुणिका भी थी। समुद्र गृह के द्वार पर बैठा विदूषक स्वप्न में बक रहा था—मालविका राजप्रिया होओ। इरावती को राजप्रणय से जीत लो। निपुणिका को यह अप्रिय लगा, उसने वहीं का कोई कुटिल काष्ठ दण्ड उठाकर विदूषक के ऊपर चला दिया, जिससे विदूषक को पुनः सर्प भय हो आया। राजा विदूषक के समय शब्दों को सुनकर बाहर आया, स्नेहाधीन मालविका भी उसके पीछे थी, वकुलावलिका भी वहाँ आ गई।

इरावती इस दृश्य को देखकर तमक उठी, उसने एक एक को फटकार सुनाई। राजा ने कितना ही समझाया कि इसमें कुछ और बात नहीं है, केवल कारामुक्ति की कृतज्ञता सूचित करने के लिए यहाँ मेरे पास आई है। बकुलावलिका के ऊपर इरावती बहुत बिगड़ी, क्योंकि इरावती की धारणा थी कि इस फसाद की जड़ वकुलावलिका का ही है। बकुलवलिका ने भी कह दिया कि जब राजा ही आकृष्ट हो रहे हैं, तब इसमें मेरा क्या दोष है? सभी स्तम्भित भाव में खड़े रहे। इरावती अंध में भरी थी, राजा उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहे थे, लेकिन वह क्यों मानती? उसने अपनी परिचारिका से कहा जाकर देवी से कह दो—"आपका पक्षपात देखा गया अब हमारे हृदय में विश्वास हो गया कि आपने जानकर इन लोगों को मिलाने का प्रयत्न किया है। इस संवाद से सभी चिन्ता में पड़ गए क्योंकि धारिणी इसे पाकर बिगड़ उठेंगी, तब तो यह कार्य

और सविघ्न हो जाएगा। इसी समय अन्तःपुर की ओर से एक दासी दौड़ती हुई वहाँ आकर कहने लगी—"पिंगल बानर ने कुमारी वसुलक्ष्मी को इस तरह डरा दिया है कि उसकी घिग्घी बँध गई है। महारानी गोद में रखकर आश्वासन दे रही हैं फिर भी उसे होश नहीं हो रहा है। राजा ने सुनते ही कहा—चलो, मैं होश कराता हूँ। इधर यह खबर फैलने लगी कि तपनीयाशोक में फूल लग गए हैं। मालविका को इस पर कुछ आशा बँधी। बकुलावलिका ने भी कहा—देवी सत्यप्रतिज्ञ हैं, वह आपके मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगी।

## पञ्चम अंक

राजा के पास विदर्भ से सूचना आई कि सैनिकों ने यज्ञसेन को परास्त करके माधवसेन को बन्दीगृह से मुक्त करके आधे राज्य पर अधिकार करा दिया है। वन्दियों चारणों ने राजा की स्तुति की। राजा और विदूषक तपनीयाशोक की कुसुम समृद्धि देखने के लिए प्रमद वन चले गए। धारिणी ने मालविका को प्रसाधन निपुण कौशिकी की सहायता से वैवाहिक वेश से अलंकृत करके, उसे, पण्डित कौशिकी और परिजनों को साथ लेकर प्रमद वन में वर्तमान राजा का दर्शन किया। विदूषक ने इस साजसज्जा को देखकर राजा से कहा–आपके मनोरथ अब पूरे होंगे।

इसी समय अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र ने, जो उन दिनों अश्वमेध यज्ञ मे दीक्षित थे, दूत के साथ एक पत्र भेजा, जिसमें यह सूचना थी कि "कुमार वसुमित्र ने यज्ञाश्व की रक्षा में बड़ी वीरता दिखाई है। समुद्र के किनारे यवन सैनिकों ने उस अश्वको घेर लिया था किन्तु धनुर्धर वसुमित्र ने उन सब को परास्त कर यज्ञ को निर्विघ्न बना दिया है। आप सपरिवार यज्ञ में सम्मिलित हों।" पुत्र-विजय-वार्ता से रानी को बड़ा आनन्द हुआ। इसकी सूचना तत्काल अन्तः पुर में दी गई और अन्य रानियों ने भी संवाद देने वाली दासी को पुरस्कार दिए।

तत्पश्चात् धारिणी ने राजा से कहा—"आपने ही प्रियसंवाद सुनाया है। अतः अनुरूप पारितोषिक को स्वीकार करें। इसी समय माधवसेन द्वारा उपहार स्वरूप भेजी गई दो शिल्पिकाएँ वहाँ उपस्थित की गईं। उन बालिकाओं ने मालविका को देखकर आश्चर्य प्रकट किया और बरबस उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े-"यह तो राजकुमारी है"। उन बालिकाओं को देखकर पूर्व परिचय-वश मालविका की आँखों से आँसू निकल पड़े। बालिकाओं ने रूप-परिवर्तन हो जाने पर भी स्वर से कौशिकी को पहचान लिया। इस पर चकित होकर राजा ने जिज्ञासा प्रकट की। तदनुसार उन बालिकाओं ने और शेषांश में कौशिकी ने मालविका का कुल-क्रम, यहाँ आना प्रभृति वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् प्रमाणित हो गया कि मालविका राजकुमारी है।

सभी लोगों को तो प्रसन्नता हुई किन्तु मालविका को चिन्ता होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि राजा मुझे सत्कृत कर मेरे भाई के पास भेज दें। इधर धारिणी ने कौशिकी से पूछा कि इतने दिनों तक आपने मालविका का परिचय न देकर उसका मेरे द्वारा जो अपमान कराया, वह क्या उचित हुआ? कौशिकी ने इसका उत्तर दिया कि यह जान बूझकर ही किया गया है। आप सुनिए—"जिस समय मालविका के पिता भी जीवित थे, उसी समय तीर्थ-यात्रा में आए हुए एक सिद्ध पुरुष ने कहा था कि "मालविका एक वर्ष तक दासी का कार्य करके योग्य पुरुष के साथ ब्याही जा सकेगी"। यहाँ मैंने आपके आश्रय में देखा कि यह अनायास पूरा हो रहा है, इस लिए मैं चुप रही। यदि मैं उस समय इसका परिचय दे देती, तो उसे यह विधि-विधान किसी और स्थान पर भोगना पड़ता, जो अच्छा नहीं होता इसके पश्चात् धारिणी ने इरावती की भी अनुमति से कौशिकी से पूछकर राजा से कहा—"आप पूर्वोक्त पारितोषिक में मालविका को स्वीकार करें। राजा ने कहा कि जब आप इसे स्वतुल्य मान कर देवी शब्द दे रही हैं और घूँघट दी है, तो मैं आपकी इस आज्ञा को स्वीकार करती हूँ।

# परीक्षोपयोगी परिशिष्ट

## ( १ ) 'मालविकाग्निमित्र एक ऐतिहासिक नाटक है' प्रमाणित कीजिए ।

ऐतिहासिक विवरण—

इतिहास की पुस्तकों में शुंग-वंश का विवरण दिया गया है। लिखा है:—सेनापति पुष्यमित्र अपने स्वामी एवं मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर उसके राज्य का स्वामी बन बैठा। इस प्रकार उसने ई० पू०१८३ वर्ष में शुंगवंश के राज्य की स्थापना की। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र रही होगी, ऐसी सम्भावना की जा सकती है। दक्षिण में शुंगवंश का राज्य नर्मदा तक फैला हुआ था। उसके राज्य के अन्तर्गत बिहार, तिरहुत, आगरा तथा अवध के संयुक्त प्रान्त भी सम्मिलित थे। पुष्यमित्र के राज्य पर यूनानी राजा मेनान्दर ने आक्रमण किया था तथा फलस्वरूप उसके कुछ प्रान्तों पर अधिकार भी कर लिया था किन्तु पुष्यमित्र ने निरन्तर युद्ध को कायम रखा और अन्त में बाध्य होकर विदेश आक्रमणकारी को अपने देश लौट जाना पड़ा। उन्हीं दिनों में पुष्यमित्र के राज्य के दक्षिणी प्रान्त में, जो नर्मदा नदी तक फैला हुआ था, राज्यपाल के रूप में उसका पुत्र अग्निमित्र राज्य करता था। उसकी राजधानी विदिशा अर्थात् भिलसा थी। अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र अपने पितामह के अधीन देश की सुरक्षा के कार्य में तल्लीन रहता था। अग्निमित्र ने अपने पड़ोसी राज्य विदर्भ के राजा को परास्त कर दिया। विदर्भ देश के पराजय से प्रसन्न होकर पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। अश्वमेध के अश्व की सुरक्षा के लिए पुष्यमित्र ने अपने प्रपौत्र वसुमित्र को नियुक्त किया। सिन्धुनदी के तटपर यवनों ने पुष्यकी सार्वभौमता को अस्वीकार करते हुए उसके अश्व को पकड़ लिया तत्पश्चात घोर संग्राम छिड़ गया किन्तु वसुमित्र ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध करके यवनों को पराजित किया। तत्पश्चात अश्व के लौट आने पर पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। 'पुष्यमित्र के निधन पर अग्निमित्र राज्यारूढ़ हुआ किन्तु वह कुछ ही वर्ष राज्य कर सका उसके बाद वसुज्येष्ठ या सुज्येष्ठ सम्भवतः अग्निमित्र का भाई राज्यारूढ हुआ। सात वर्ष के पश्चात् वसुमित्र को यह राज्य प्राप्त हुआ।

उक्त ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि पुष्यमित्र सर्वप्रथम सेनापति था। बृहद्रथ को मार कर राज्यारूढ़ होने के पश्चात् भी उसने सेनापति की उपाधि को नही छोड़ा, जैसा कि नाटकीय वर्णन से विदित है। ग्रीक राजा मेनान्दर ने उस पर आक्रमण किया, दोनों में युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा मेनान्दर अपने देश को लौट गया। पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया, उसके प्रपौत्र वसुमित्र ने यज्ञीय अश्व की रक्षा की ओर पश्चिमी सीमा पर यवनों को परास्त किया। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने विदर्भ नरेश को परास्त किया।

**पौराणिक-विवरण—**

पुराणों में भी शुंगवंश का उल्लेख है परन्तु इस वंश के राजाओं के नामों के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया हुआ है। उनमें बताया गया हैं कि सेनापति पुष्यमित्र बृहद्रथ को परास्त कर ३६ वर्ष तक राज्य करेगा, उसका पुत्र अग्निमित्र ८ वर्ष तक राज्य करेगा, पुनः वसुज्येष्ठ ७ वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र वसुमित्र २० वर्ष तक राज्य करेगा।

**"भारतीयेतिवृत्त" पुस्तक में विवरण—**

महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा ने अपने ग्रन्थ "भारतीयेतिवृत्त" नामक ग्रन्थ में लिखा है—

चत्वारिंशतमब्दानामशोकः शोककर्षणः। प्रायः प्रत्यन्तसहिते भारते शासनं व्यधात् ॥
ततः परं दशरथः सङ्गतश्च तथा नृपः। शालिशूको देववर्मा शतधन्वा बृहद्रथः ॥
षडित्येतेऽभवन्मौर्या निर्वीर्याः प्रायशः क्रमात्। अधुश्च मागधं राज्यं षट्चत्वारिंशतं समाः ॥
दर्शिता शेषसैन्यश्च बलदर्शनकैतवात्। सेनानी पुष्यमित्रोऽस्य निष्पिपेष बृहद्रथम् ॥
बृहद्रथं विनिष्पिस्य वन्दीकृत्यास्य मंत्रिणम्। इष्टवानश्वमेधेन पुष्यमित्रो महामनाः ॥

अर्थात् शोक का विनाश करने वाले अशोक ने चालीस वर्षों तक प्रायः सम्पूर्ण सीमावर्ती प्रान्तों सहित भारतवर्ष में राज्य किया। उसके पश्चात् दशरथ, सङ्गत, शालिशूक, देववर्मा, शतधन्वा और बृहद्रथ राजा हुए। प्रायः ये सभी सम्पूर्ण छः राजा लोग निर्वीर्य होते गए तथा छियालीस वर्षों तक इन लोगों ने राज्य किया अन्ततोगत्वा अपने सम्पूर्ण सैन्यबल को दिखाकर अपने बल प्रदर्शन के बहाने राजा के सेनापति पुष्यमित्र ने राजा बृहद्रथ को मारा। बृहद्रथ को मार कर तथा उसके मन्त्री को बन्दी बनाकर महामना पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया।

**नाटकीय-विवरण—**

जहाँ तक नाटक का सम्बन्ध है, यह तो निश्चित है कि अग्निमित्र, पुष्यमित्र और वसुमित्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त मौर्य सचिव, जिसका उल्लेख नाटक के प्रथम अंक के सातवें पद्य में हुआ है, सम्भवतः बृहद्रथ मौर्य हो, परन्तु इसका उल्लेख शिलालेखों आदि में कहीं भी नहीं है। इसके अतिरिक्त विद्वानों का विचार है कि अग्निमित्र का मन्त्री बाहतक, अग्निमित्र का साला वीरसेन, विदर्भ का राजा यज्ञसेन, यज्ञसेन का चचेरा भाई माधवसेन, माधवसेन का मन्त्री सुमति भी ऐतिहासिक पात्र होंगे। इसी प्रकार धारिणी तथा वसुलक्ष्मी भी ऐतिहासिक पात्र हो सकते हैं। मालविका सम्भवतः मालव-प्रदेश की राजकुमारी होगी।

**प्रेम-कथाओं का आश्रय—**

विद्वानों का मत है कि जिस समय कालिदास ने यह नाटक लिखा, उस समय अग्निमित्र की प्रेम कहानियाँ जन-साधारण में अत्यधिक प्रचलित रही होंगी। उन कहानियों से अपने नाटकीय कथानक के लिए कवि ने आवश्यक विवरण चुन लिए होंगे और अपने नाटक का प्रणयन किया होगा। यद्यपि प्रेम कथा में ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्त्ववाली होती हैं अतः इनका और इनसे सम्बन्धित पात्रों का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है।

**ऐतिहासिक कथानक में आपत्ति—**

ऐतिहासिक विवरण के होते हुए भी पुष्यमित्र और अग्निमित्र के सम्बन्ध में यह आपत्ति उठाई जाती है कि ऐतिहासिक विवरण के अनुसार पुष्यमित्र अग्निमित्र का पिता था, परन्तु नाटक में उसे सेनापति कहा गया है। ऐसा क्यों ? इस आपत्ति का निराकरण यह कह कर हो जाता है कि पुष्यमित्र वास्तव में मौर्यराज्य में सेनापति ही कहलाया। इतिहास में इस प्रकार के अन्य कई उदाहरण मिलते हैं—यथा पेशवा लोग। वास्तव में पेशवा प्रधानमन्त्री होते थे, परन्तु राजा बनने के बाद भी वे अपने आपको पेशवा ही कहलाते थे।

दूसरी आपत्ति यह है कि इतिहास में पुष्यमित्र को बौद्ध भिक्षुओं का उच्छेदक कहा गया है परन्तु नाटक से ऐसा प्रतीत होता है कि अग्निमित्र के राज्य में बौद्ध भिक्षुओं का सम्मान था तभी तो परिव्राजिका कौशिकी को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि पुष्यमित्र और उसके पुत्र अग्निमित्र का धार्मिक विश्वास में मतभेद था। पुष्यमित्र बौद्धों को समूल नष्ट करना चाहता था, जब कि अग्निमित्र सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते हुए समान अधिकार देने के पक्ष में था। इसी मतभेद के कारण पिता पुत्र में अधिक मेल मिलाप का अभाव था।

**घटनाओं की ऐतिहासिकता—**

पात्रों के नाम के अतिरिक्त नाटक में दी गई कुछ घटनाएँ भी ऐतिहासिक हैं। यथा—विदर्भ

देश के राजा का अग्निमित्र द्वारा पराजित होना। वसुमित्र द्वारा यवनों का पराजित होना भी एक ऐतिहासिक युद्ध है। पुष्यमित्र द्वारा सम्पादित अश्वमेध यज्ञ भी ऐतिहासिक है।

कथानक के अतिरिक्त इस नाटक में हमें एक बड़े महत्त्व का ऐतिहासिक संकेत मिलता है। वह है—भास, सौमित्र और कविपुत्र का उल्लेख। इस संकेत से संस्कृत साहित्य के विद्यार्थियों को कालिदास तथा भास का समय निश्चित करने में बड़ी सहायता मिली है।

इसके अतिरिक्त नाटक के अन्य पात्र तथा घटनाएँ कवि की कल्पना की उपज हैं। मालविका का बचकर रानी धारिणी की दासी बनना, उसके सौन्दर्य से राजा का प्रभावित होना आदि सभी घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं हैं। कुछ लोगों का मत है कि ये घटनाएँ कवि की कल्पना की उपज भी नहीं हैं अपितु कालिदास के समय में प्रचलित कहानियों से कालिदास ने इन्हें नाटक के रूप में परिवर्तित कर दिया है।

## ( २ ) 'मालविकाग्निमित्र' नाटक की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए—

### ( १ ) मानव-जीवन के धरातल पर कथाओं का चित्रण—

महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों का प्रणयन किया है। ( १ ) अभिज्ञानशाकुन्तलम् ( २ ) विक्रमोर्वशीयम् ( ३ ) मालविकाग्निमित्रम्। इन तीनों नाटकों के कथानकों का निरीक्षण यदि मनोयोग पूर्वक किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि अभिज्ञान-शाकुन्तल में कुछ ऐसे दृश्यों का चित्र खींचा गया है, जिनपर विश्वास पूर्ण रूप से टिक नहीं पाता है। "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटक में तिरस्कृत शकुन्तला को कोई नारी उठाकर उड़कर ले चली जाती है। महाराज दुष्यन्त देवेन्द्र की सहायता करने के लिए स्वर्ग में जाते है "विक्रमोर्वशीय" नाटक में महाराज पुरुरवा का प्रेम उर्वशी नामक एक आप्सरा से हो जाता है, जो इन्द्र भागवान् के दरबार में रहती है। शाप पाकर मृत्यु लोक में आ जाती है। स्कन्द के उपवन में लता बन जाती है तथा संगमनीय मणि के प्रभाव से पुनः नारी रूप में परिवर्तित हो जाती है। ये घटनाएँ ऐसी हैं, जो अलौकिक हैं और जिनपर विश्वास का जमना सरल नहीं है। किन्तु "मालविकाग्निमित्र" नाटक में राजा अग्निमित्र और राजकुमारी मालविका का जो प्रेम दिखाया गया है, वह मानव-जगत का प्रेम है जिसपर दर्शक या पाठक का विश्वास पूर्ण रूप से जम जाता है। कोई भी कथांश अलौकिक या असम्भव ज्ञात नहीं होता है। अत एव इस नाटक में महाकवि ने मानव जीवन के मध्य से चलने का प्रयास किया है, जो अत्यधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक ज्ञात होता है।

### ( २ ) इतिहास और कल्पना का मणिकाञ्चन योग—

"मालविकाग्निमित्र" नाटक के कथानक में इतिहास के लब्धप्रतिष्ठ पात्रों का अंकन किया गया है सेनापति पुष्यमित्र मौर्यवंश के अन्तिम राजा वृहद्रथ को मारकर स्वयं शासन का अधिकारी बन जाता है। उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा नगरी को अपनी राजधानी बना कर शासन करता है। उसका पुत्र वसुमित्र अश्वमेधयज्ञ में छोड़े गए अश्व का रक्षक बनकर यवनों को परास्त करता है। अग्निमित्र स्वयं विदर्भ देश के राजा को परास्त करता है। इस प्रकार इतिहास के पृष्ठों से प्रभूत सामग्री महाकवि ने अपने नाटक में संगृहीत किया है। इस ऐतिहासिक वृत्त में कवि ने अपनी कल्पना का अद्भुत प्रयोग किया है। मालविका, कौशिकी परिव्राजिका तथा इरावती एवं परिचारिकाओं का प्रवेश, अशोक दोहद की समस्या, संगीत शास्त्र का अध्ययन, दोनों नाट्याचार्यों का कलह। विदूषक गौतम की बुद्धिमत्ता, उसका बुद्धि कौशल, मालविका की मुक्ति के लिए सर्पदंशन का बहाना इत्यादि। इस प्रकार हम देखते हैं कि "मालविकाग्निमित्र" नाटक में महाकवि कालिदास ने इतिहास और कल्पना का मणिकाञ्चनयोग सम्पादित किया है।

### ( ३ ) नाटक के वैशिष्ट्य पर कवि का अडिग विश्वास—

यद्यपि "मालविकाग्निमित्र" नाटक, नाटकों के क्षेत्र में नाटककार कालिदास का प्रथम

प्रयास है। सम्भावना इस बात की है कि नाटक पूर्ण रूप से विशेषताओं से सम्पन्न न हो सके, उसमें प्रथम प्रयास होने के कारण अवश्य कुछ न कुछ त्रुटि रह जाय, किन्तु प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही महाकविने जो अपना आत्म विश्वास प्रकट किया है, उससे प्रमाणित हो जाता है कि कविको अपनी कृति पर दृढ़ विश्वास है। उसे पूर्ण आशा है कि मेरा अभिनव नाटक अवश्य ही दर्शकों एवं विद्वानों को सन्तोष प्रदान करेगा। यही कारण है कि जब भास, कविपुत्र और सौमिल्लक आदि प्रख्यात नाटककारों के नाटक विद्यमान हैं, तो फिर क्यों आजकल के नए कवि कालिदास के नाटक का इतना सम्मान दिया जा रहा है। तब सूत्रधार कहता है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

अर्थात् अरे! यह तुमने बिना सोचे समझे कह डाला। देखो पुराने होने के कारण ही सब ( नाटक ) अच्छे नहीं होते है और न तो नए होने के कारण कोई नाटक बुरा होता है। विद्वान् लोग तो दोनों की परीक्षा करके एक को ( जो भी अच्छा लगे ) ग्रहण करते हैं। किन्तु मूर्ख मनुष्य की बुद्धि दूसरों की बुद्धि के पीछे-पीछे चलती है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि कवि को अपनी अभिनव प्रथम कृति पर पूर्ण विश्वास है कि यह कृति सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न है, इसमें कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है।

**( ४ ) कवि-समय का समुचित सन्निवेश—**

हमारे संस्कृत साहित्य के मनीषियों ने काव्य को अत्यन्त रमणीय, सरस एवं मार्मिक बनाने के लिए कुछ कुछ प्रकृति सम्बन्धी संगतियों की उद्भावना की है और आपस में मिलकर समझौता सा कर लिया है, कि इन संगतियों का सन्निवेश काव्यों में अवश्य किया जाय। इनको कवि-समय कहते हैं।

कवियों ने कवि-समय के अन्तर्गत फूलने वाले कुछ पौधों एवं वृक्षों का नाम गिनाया है तथा रमणी शरीर के सौन्दर्य से उनको विशेष रूप से प्रभावित होने का वर्णन किया है। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में जब रानी धारिणी अस्वस्थ हो जाती है, तब वह मालविका को आदेश देती है कि तुम्हीं आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत होकर तपनीयाशोक के दोहद को पूर्ण करो मालविका उक्त सुसज्जित वेश में जाती है, तपनीयाशोक पर अपने कोमलचरणों से आघात करती है। पाँच रात्रियों के अन्तर्गत ही वह अशोक का वृक्ष फूलों के गुच्छों से लद जाता है। "मेघदूत" की टीका में टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है—

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकः तिलककुरवकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनात् चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुः विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः॥

अर्थात् परम रूपवती रमणी के स्पर्श से प्रियंगु लता विकसित हो जाती है। रमणी के मुखमद्य के सिंचन से बकुल का वृक्ष पुष्पित हो जाता है। चरणों के आघात से अशोक वृक्ष में फूल लग जाते हैं। रमणी के अवलोकन से तिलक का वृक्ष पुष्पित हो जाता है तथा आलिंगन करने से कुरवक में फूल निकल आते हैं। रमणी के नर्म वाक्यों को सुनकर मन्दार का वृक्ष फूलने लगता है। मधुर हँसी से चम्पक खिल जाता है। मुख की हवा लगने से आमों में कोरक आ जाते हैं। गीत के स्वरों को सुनकर नमेरु और नृत्य से कर्णिकार खिल जाता है।

**( ५ ) वीररस और शृंगार रस का समुचित संयोग—**

"मालविकाग्निमित्र" नाटक में आदि से अन्ततक शृंगार रसका रमणीक प्रवाह पाया जाता है।

राजकुमारी "मालविका" जो अन्तःपुर में दासी के रूप में निवास करती है, अतीव सुन्दरी है। महाराज अग्निमित्र जो पराक्रमी, मधुर एवं सौन्दर्य-पूर्ण है उसे चित्र में देखता है तथा जान जाता है कि इसका नाम मालविका है। अभिनय के प्रदर्शन में वह उसे पूर्णरूप से देखता है, शरीर के सम्पूर्ण अवयवों के सौष्ठव का साक्षात्कार करता है तथा अभिनय की चातुरी को देखकर वह मन्त्रमुग्ध सा हो जाता है। अशोक दोहद के समय उससे मिलता है। इस प्रकार हम देखते है कि दोनों के हृदय में परस्पर प्रेम की भावना है, जो रानी धारिणी के भय से गुप्त सी रहती है। अन्त में धारिणी के द्वारा दोनों का परिणय भी सम्पन्न होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में पूर्वराग, विरह, मिलन, वियोग एवं पुनः विवाह आदि शृंगार रस की सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पादित होती हैं। किन्तु साथ ही साथ महाराज अग्निमित्र एक पराक्रमी सम्राट् है, वह विदर्भ-नरेश को पराजित करता है, उसके पिता पुष्यमित्र के द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होता है तथा उसके पुत्र के द्वारा सीमावर्ती प्रदेशों की पराजय भी होती है। अग्निमित्र में शौर्य और स्नेह की अप्रतिम धारा नित्य प्रवाहित हो रही है, यह बात उक्त नाटक से प्रतिपादित होती हैं। अत एव हम देखते हैं कि इस नाटक में शृंगार एवं दोनों रसों का समुचित सन्निवेश है।

### ( ६ ) विदूषक का उत्कर्ष—

वैसे तो प्रायः नाटकों में विदूषक पात्र अवश्य पाया जाता है किन्तु "मालविकाग्निमित्र" नाटक का विदूषक अत्यन्त कार्य-कुशल है, प्रत्युत्पन्नबुद्धि से सम्पन्न एक व्यक्ति है। कार्य-साधन के लिए युक्तियों का प्रयोग वह बड़ी सरलता के साथ कर लेता है। जिस समय धारिणी की आज्ञा से मालविका और बकुलावलिका दोनों बन्दिनी बना ली जाती हैं और द्वाररक्षिका को आज्ञा दे दी जाती है कि बिना मेरी मुहर को देखे कदापि इन दोनों को बन्दी गृह से मुक्त न करना। उस समय विदूषक इस फेर में पड़ जाता है कि किस प्रकार रानी से अंगूठी प्राप्त की जाय। उसने ऐसा विकट बहाना बनाया कि रानी को उपहार के लिए मैं फूल तोड़ने गया था, वहीं पर मुझे काले सर्प ने डँस लिया तथा उसने अपनी अंगुली में केतकी के कण्टक से खँरोच बना लिया। उसकी चिल्लाहट को सुनकर रानी धारिणी अत्यधिक चिन्तित हो गई कि मेरे ही सिर पर ब्रह्महत्या का दोष पड़ेगा शीघ्र ही विषवैद्य बुलाया गया, उसने नागमुद्रा की आवश्यकता बतलाई, तब रानी ने अपनी नागमुद्रा शीघ्र ही दे दी। विदूषक का मिथ्या विषवेग तुरत ही शान्त हो गया तथा उसी नागमुद्रा की मुहर को दिखाकर मालविका की मुक्ति भी कर दी गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण नाटक में विदूषक की चातुरी अधिक सक्रिय है। राजा उसी की बुद्धि से पूर्णतया सफल हो जाता है। और प्रेयसी मालविका को प्राप्त कर लेता है। लगता है, महाकवि कालिदास ने इस नाटक में विदूषक के बहाने स्वयं अपने को लाकर रख दिया है।

### ( ७ ) नाटक में विविध शास्त्रों का उपयोग—

हम देखते हैं कि "मालविकाग्निमित्र" नाटक में कवि ने अनेक प्रकार के शास्त्रों के ज्ञान को लाकर चित्रित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में कवि की बहुज्ञता स्पष्ट रूप से प्रतिफलित होती है। सर्वप्रथम इस नाटक में संगीत शास्त्र का विवरण प्राप्त होता है। आचार्य गणदास और हरदत्त जो संगीतशास्त्र में पारङ्गत है, राजा के आदेश से संगीत एवं अभिनय का शिक्षण-कार्य सम्पादित करते हैं। नाटक में ज्यौतिष शास्त्र का भी अनुचित प्रयोग किया गया है। ग्रहण के सम्बन्ध में कवि ने ज्योतिष शास्त्र की बातों का नाटक में सन्निवेश कराया है तथा अन्त में चलकर वैधक शास्त्र की बातों का भी उल्लेख हुआ है। सर्पदंशन हो जाने पर सर्प के विष को निष्क्रिय करने के लिए कौन-कौन से उपाय किए जा सकते हैं। कामशास्त्र का चित्रण करने में महाकवि ने अपने असाधारण चातुर्य का परिचय दिया है क्योंकि कवि स्वयं इस शास्त्र का प्रखर पारखी है। उक्त शास्त्रों के सम्बन्ध में निम्नाङ्कित उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

**संगीतशास्त्र का उदाहरण**—( मायूरी मार्जना का चित्रण )

जीमूतस्तनितविशङ्किभिर्मयूरैः उद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य ।
निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि ॥ ( अंक १-२१ )

संगीतशास्त्र में मृदङ्ग की इस जाति की थाप को मायूरी इस लिए कहते है कि उसके शब्द को सुनकर मयूर मस्त हो जाते हैं ।

**ज्योतिषशास्त्र का वर्णन ( ग्रहण सम्बन्धी )**—

कदा मुखं वरतनु कारणादृते तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम् ।
अपर्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला विभावरी कथय कथं भविष्यति ॥ ( अंक ४-१६ )

**वैद्यक शास्त्र का उल्लेख**—( सर्पदंश का प्रतिकार )

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम् ।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥ ( अंक ४-४ )

अर्थात् दंश स्थान का छेदन, दाह और रक्तमोक्षण, यह सभी उपचार सर्प दष्ट लोगों के जीवन के उपाय माने गए हैं ।

ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति उदकुम्भविधानेन सर्पमुद्रितं किमपि कल्पयितव्यम् । तदन्विष्यताम् । अर्थात् उदकुम्भ विधान में सर्पमुद्रा की आवश्यकता होगी, अतः सर्पमुद्रा का अन्वेषण कराया जाय ।

**काम-शास्त्र का चित्रण**—( कामदेव से प्रार्थना )

क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ ! दृश्यते त्वयि ॥

अर्थात् हे कामदेव ! कहाँ तो हृदय को मथ डालने वाली वेदना और कहाँ तुम्हारा विश्वास किया जाने योग्य तेरा पुष्पों का बाण । यह जो कहावत है कि जो कोमल होता है, वह और कठोर होता है—वह तुममें घटती हुई सी ज्ञात होती है । कामदेव का विश्वसनीय आयुध पुष्पों का माना गया है, जो कामशास्त्र के अनुसार है ।

**( ८ ) वास्तविक अध्यापक का लक्षण**—

महाकवि कालिदास ने योग्य अध्यापकों का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि जो अध्यापक विद्वान् होने के साथ शिक्षण-कला में भी निपुण हो, वही वास्तविक अध्यापक माना जा सकता है । इस सम्बन्ध में परिव्राजिका कहती है :—

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥ ( अंक १-१६ )

अर्थात् कोई तो ऐसा होता है कि उसकी क्रिया-विद्या अपने आप में ही सुन्दर होती है और दूसरा ऐसा होता है कि वह अच्छी तरह सिखाना ही जानता है, किन्तु जिसमें दोनों ही बातें अच्छी हों, वही शिक्षकों में श्रेष्ठ माना जाना चाहिए ।

**ज्ञानपण्य वणिक् के समान शिक्षक**—

गणदास अवर अध्यापकों के सम्बन्ध में बतलाता है कि "मुझे नौकरी मिल गई है—इस विचार से जो अध्यापक विवादों से डरता है, दूसरों के द्वारा की गई अपनी निन्दा को सहता है और जिसका शास्त्र-ज्ञान केवल पेट भरने के लिए ही है, उसे बनिया कहते हैं, वह अपना ज्ञान बेचा करता है । लिखा है—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ ( अंक १-१७ )

**( ९ ) नाटक की सुखान्त-भावना**—

भारतीय संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्यों ने नाटक के सम्बन्ध में यह मान्यता दी है कि

नाटक को सुखान्त होना चाहिए अर्थात् असत् पर सत् की विजय होनी चाहिए, इससे नाटक के पाठकों एवं दर्शकों के हृदय में आशा एवं उत्साह का संचार होता है। उनमें प्रज्ञाशक्ति का विकास होता है तथा मानसिक प्रवृत्तियाँ सबल होकर कार्य में अग्रसर होती हैं। प्रस्तुत नाटक "मालविकाग्निमित्र" में आशा का संचार दोनों पक्षों से होता है। महाराज अग्निमित्र अपने विरोधी विदर्भ देश के राजा पर विजय प्राप्त करता है। अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न करता है। सीमावर्ती राजाओं पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। यह तो हुई राजनैतिक सुखान्त भावना। दूसरी ओर परिचारिका रूप में वर्तमान परमसुन्दरी राजकुमारी मालविका पर अनुरक्त होने वाला राजा अग्निमित्र अनेकानेक कठिनाइयों, समस्याओं एवं उलझनों का सामना करता हुआ, विदूषक गौतम की परम चातुरी से परिणय सम्बन्ध में भी सफल होता है। यह हुई श्रृंगारिक सुखान्त-भावना। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक सुखान्तभावना से ओतप्रोत है।

**( १० ) मानव समाज के धरातल पर घटनाचक्र—**

"मालविकाग्निमित्र" नाटक की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें दृश्यों का अङ्कन मानव समाज के धरातल पर किया गया है। इस नाटक में अतिमानवीय एवं अलौकिक कार्यों का वर्णन नहीं हुआ है। वैसे महाकवि कालिदास ने "अभिज्ञानशाकुन्तल" में स्वर्ग की यात्रा का वर्णन तथा "विक्रमोर्वशीय" में इन्द्र के दरबार का वर्णन करके नाटक के कार्य कलापों को अलौकिक बना दिया हैं, जिस पर विश्वास करना कठिन सा हो जाता है। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में मानव समाज के वास्तविक एवं सहज कार्य-कलापों का चित्रण हुआ है, जिससे इन कार्यों पर पाठकों एवं दर्शकों का आन्तरिक विश्वास पूर्ण रूप से जम जाता है। कालिदास ने प्रेम और युद्ध का सम्मिलन करके नाटक की एक ऐसी परम्परा निकाली, जिस पर संस्कृत के अनेक कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है।

## ( ३ ) महाकवि कालिदास की शैली पर प्रकाश डालिए—

**( १ ) कालिदास की वैदर्भी रीति—**

कालिदास वैदर्भी रीति के आचार्य हैं। शृङ्गार रस के वर्णन में स्वभावतः कोमलता आवश्यक है। यही कारण है कि उनके नाटकों में लम्बे-लम्बे समासों का नितान्त अभाव है। अनेक स्थलों पर तो लम्बे समास हैं ही नहीं। जहाँ पर समास पाए जाते हैं, वे अत्यन्त छोटे छोटे हैं। शब्द ध्वनि और स्पष्टता का समन्वय, समन्वय, उदात्तता, ओजस्विता और रमणीयता का मिश्रण तथा शब्द और अर्थ के अलंकारों की प्रभावशालिनी योजना है। इसमें माधुर्य और प्रसाद गुण अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके हैं। प्रसाद गुणसम्पन्नता कालिदास की भाषा की विशेषता है। यथा—

त्वदुपलब्ध समीपगतां प्रियां हृदयमुच्छ्वसितं मम विक्लवम्।
तरुवृतां पथिकस्य पिपासतः सरितमारसितादिव सारसात्॥ ( ३-६ )
किसलयमृदोर्विलासिनि कठिने निहितस्य पादपस्कन्धे।
चरणस्य न ते बाधा सम्प्रति वामोरु वामस्य॥ ( ३-१८ )

**( २ ) शैली की स्वाभाविकता—**

महाकवि कालिदास की शैली अत्यन्त स्वाभाविक तथा कल्पना-प्रसूत है। उनकी शैली में पिछले कवियों के समान पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति एकदम नहीं पाई जाती है। देखा जाता है कि कालिदासोत्तर काल के कवियों ने अपने काव्य को दुरूह बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने अनुचित स्थानों में कवित्व दर्शन को प्रदर्शित किया है। उन कवियों के वर्णन अत्यन्त अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। अलंकारों के बोझ से बोझिल बनाने की प्रवृत्ति इन कवियों में पाई जाती है तथा वर्ण्य-विषय को अनावश्यक विस्तार दे देते हैं। किन्तु कालिदास की शैली में ये दोष बिल्कुल नहीं हैं। उनके काव्य के शब्द, अर्थ, अलंकार एवं भाव अत्यन्त स्वाभाविक हैं। चमत्कार-प्रदर्शन की भावना एकदम नहीं पाई जाती। यथा—

मधुररवा परभृतिका भ्रमरी च प्रफुल्लिताम्रसंगिन्यौ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते ॥ ( ४-२ )
कदा मुखं वरतनु कारणादृते तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम्।
अपर्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला विभावरी कथय कथं भविष्यति ॥ ( ४·१६ )

**( ३ ) व्यञ्जना का विशेष प्रयोग—**

महाकवि कालिदास व्यञ्जना का प्रयोग विशेष रूप में करते हैं। बहुत सी बातों को वे पाठक की कल्पना के लिए छोड़ देते हैं। भवभूति के समान खोलकर नहीं कहते हैं। ऐसा होने पर भी स्पष्टता और शैली के औचित्य का व्याघात नहीं होने पाया है। कवि ने अपने पात्रों के अनुरूप भाषा के प्रयोग में सूक्ष्म भेद दिखलाया है। पुलिस के कर्मचारियों और पुरोहित की भाषाएँ पृथक्-पृथक् हैं। स्त्रियों की प्राकृत भाषा की सरल, लम्बे समासों से हीन तथा दीर्घ रचनाओं से शून्य है। कालिदास के काव्यों की गणना ध्वनि काव्य के अन्तर्गत की जाती है। काव्यमीमांसकों ने ध्वनि काव्य को उत्तम माना है। अभिधेय एवं लक्ष्य अर्थ के अतिरिक्त सहृदयहृदयवेद्य अर्थ के बोधक काव्य को ध्वनि काव्य कहते हैं, जिनमें व्यञ्जना की प्रधानता होती है। यथा—ऋषि अंगिरा हिमालय से पार्वती की मँगनी का प्रस्ताव करते हैं। समीप में बैठी हुई पार्वती सब कुछ सुन रही हैं। आकार एवं चेष्टाओं द्वारा उसकी मानसिक स्थिति का अद्भुत चित्रण कालिदास की लेखनी से इस प्रकार हुआ है :—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीला कमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥ ( कुमार० ६-८४ )

पिता के पास बैठी पार्वती का सिर नीचा कर लेना, कमल की पंखुड़ियों को गिनने लगना उसकी लज्जा, आनन्द, प्रस्ताव की स्वीकृति एवं कोमलता के द्योतक हैं। यथा—

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितिमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम् ॥ ( २·६ )

अर्थात् "वह मणिबन्ध में निश्चल वलयों से युक्त बाम बाहु को कटि पर रखकर, श्यामा विटप के पल्लव के समान दाएँ हाथ को शिथिल भाव से लटकाए, पैर के अंगूठे से फूलों को हटाकर फर्श की ओर दृष्टि लगाए खड़ी है। इसका देहार्ध सरल भाव से स्थित है। इसका इस प्रकार खड़ा रहना तो नृत्य से भी मनोरम है। इसमें आए हुए सन्धि स्तिमित वलय शब्द से मालविका का निष्पन्द भाव से स्थित होना, भुजाओं का गोल होना, वलय के मिलने से अग्राम्यत्व, श्यामा-विटप सदृश शब्द से हाथों की कोमलता, स्निग्धता तथा अस्थूल होना, स्रस्तमुक्त शब्द से थकावट को न सहन करने के कारण सौकुमार्य, पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे शब्द से फर्श पर पुष्पशय्या, उससे राजा की समृद्धि, कुट्टिम का सौन्दर्य, वातावरण की सुगन्धित स्थिति, पातिताक्ष शब्द से कन्याजनोचित शालीनता, ऋज्वायतार्धम् शब्द से स्वाभाविक भाव से स्थिति की सूचना से शान्त-चित्तता का भाव ध्वनित होता है। इस ध्वनि काव्य में व्यञ्जना शक्ति अपना कौशल प्रदर्शित कर रही है।

**( ४ ) अलङ्कारों का समुचित प्रयोग—**

कालिदास के नाटकों में उपमा, स्वभावोक्ति, रूपक, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि प्रायः सभी मुख्य अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है। वैसे तो "उपमा कालिदास" की प्रसिद्धि पूर्ण रूप से विख्यात है किन्तु उपमेतर अन्य अलंकार भी उनके नाटकों में विशदता के साथ प्राप्त होते हैं। कालिदास की उपमाएँ क्यों प्रसिद्ध हैं। इसके कारण निम्नांकित हो सकते हैं—

( क ) कालिदास ने काव्य में प्रयुक्त करने के लिए जिन उपमाओं का चयन किया हैं, वे उपमाएँ स्थूल होती हैं, सूक्ष्म नहीं। स्थूल होने के कारण उनका चित्र आँखों के समक्ष खिंच जाता है तथा समानता का भाव हृदयस्थ हो जाता है।

( ख ) कालिदास ने जिन उपमाओं का चयन किया है, वे सभी उपमायें या तो आकाश से सम्बन्धित हैं या पृथ्वी से सम्बन्धित हे या अरण्य तथा समुद्र आदि से सम्बन्धित हैं। इन उपमाओं का प्रयोग पूर्ण रूप से आँखों के सामने चित्र सा खींच देता है।

( ग ) कालिदास की उपमाएँ प्रायः ऐसी होती हैं, जो हम लोगों के वातावरण से पूर्णतया सम्बद्ध हैं। जिनका प्रभाव काव्य को पढ़ते ही मनःपटल पर खिंच-सा जाता है।

( घ ) कालिदास ने जो उपमाएँ प्रकृति से चुनी हैं, वे उपमाएँ प्रायः ऐसी हैं, जिनका साम्य पूर्ण रूप से मेल खाता है और चमत्कार उत्पादन में वे उपमाएँ अत्यन्त प्रौढ़ होती हैं।

( ङ ) कालिदास की उपमायें माघ कविके समान कल्पना-प्रसूत नहीं होती हैं, जिनका चित्र आँखों के सामने स्पष्ट ही नहीं होता। कालिदास काल्पनिक उपमाओं के पक्ष में नहीं है। उपमाओं में चिरपरिचित वस्तुओं एवं दृश्यों का प्रयोग करने में वे दक्ष हैं। कालिदास की उपमाओं के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं:—

### उपमा

त्वदुपलभ्य समीपगतां प्रियां हृदयमुच्छ्वसितं मम विक्लवम्।
तरुवृतां पथिकस्य जलार्थिनः सरितमारसितादिव सारसात्॥ ( ३–६ )

इस पद्य में अग्निमित्र के व्याकुल हृदय की उपमा प्यासे पथिक के हृदय से दी गई है। जिस प्रकार प्यासा पथिक नदी की धारा को पास में पाकर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार मेरा व्याकुल हृदय समीप में स्थित मालविका को जानकर प्रफुल्लित हो उठा है। इसमें उपमान प्यासा पथिक एवं नदी की धारा है। ये दोनों उपमान चिरपरिचित एवं अपने ही वातावरण के हैं।

### उपमा

शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलेयमाभाति परिमिता।
माधव परिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता॥ ( ३–८ )

अर्थात् इसका कपोल शरकण्डे के समान पाण्डुवर्ण, शरीर परिमितालङ्कार है, ज्ञात होता है कि वसन्त में परिणत पत्र और कतिपय पुष्पों से युक्त कुन्दलता हो। इसमें पूर्ण वाक्य में उपमा अलंकार है। इसमें मालविका की उपमा कुन्दलता से दी गई है। कुन्दलता, उपवन की एक लता है, जो सर्वविदित है।

### उपमा

वाष्पासारा हेमकाञ्चीगुणेन श्रोणीविम्बादप्युपेक्षाच्युतेन।
चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम्॥ ( ३–२१ )

अर्थात् मेघमाला जिस प्रकार विद्युन्माला से विन्ध्यपर्वत को प्रताडित करती हो, उसी प्रकार क्रोधावेश में साश्रुनयना यह इरावती उपेक्षावश पतित मेखला से मेरे ऊपर प्रहार करना चाह रही है।

इस उपमा का मेघमाला, विद्युन्माला तथा विन्ध्यपर्वत तीनों ही पदार्थ मानवजीवन में चिर परिचित हैं। जिनको उपमान बनाकर इरावती, मेखला एवं राजा की समानता दिखाई गई है। भावों में अतिशय चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

### अर्थान्तरन्यास

अनिमित्तमिन्दुवदने किमत्र भवतः पराङ्मुखी भवसि।
प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारणकोपाः कुटुम्बिन्यः॥ १–१८।

अर्थात् चन्द्रमुखि ! तुम बिना कारण महाराज से क्यों रूठ रही हो? समर्थ होकर भी कुल-ललनाएँ अपने पतियों पर किसी खास कारण के होने पर ही, कोप प्रकाशित करती हैं। इस पद्य में सामान्य बात कहकर विशेष बात का समर्थन किया गया है अतएव अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

### उत्प्रेक्षा अलङ्कार

चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादि शंकि मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता ॥ २-२ ॥

अर्थात् चित्रगत मालविका को देखकर हमारे मन में यह सन्देह अवश्य उठा था कि वह इतनी सुन्दरी न होगी परन्तु इसको साक्षात् देखकर अब तो हमारी राय में वह चित्रकार अपनी कला में अतिशय सफल नहीं हुआ था, जिसने इसका चित्र बनाया था। इसमें चित्रकार को शिथिल समाधि होने की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा है।

### काव्यलिङ्गम्

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभिमुखम्।
असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ॥ २-१० ॥

अर्थात् इन आँखों ने अल्पमात्रा में जिसके केसर दीख रहे हों, ऐसे विकासोन्मुख कमल के समान मुस्कराहट से युक्त इस विशालाक्षी के अल्प दृश्य दन्तयुक्त मुख को देखा है। इसमें काव्य-लिंग अलंकार है।

### विषमालङ्कार

क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम्।
मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ ३-२ ॥

अर्थात् हे भगवन् कामदेव ! कहाँ हृदय को प्रसन्न देने वाला यह सन्ताप ! और कहाँ तुम्हारे यह विश्वसनीय पुष्पमय अस्त्र ! संसार जो "कोमल और अतिशय तीक्ष्ण" इस प्रकार कहा करता है, वह तुम्हीं में देख रहा हूँ।

उक्त पद्य में सन्ताप और कुसुम बाण का अन्तर दिखाया गया है। अतएव विषम अलंकार है।

### विशेषोक्ति अलंकार

शठ इति मयि तावदस्तु ते परिचयवत्यवधीरणा प्रिये।
चरणपतितया न चण्डि तां विसृजसि मेखलयापि याचिता ॥ ३-२० ॥

अर्थात् प्रिये ! मुझे पहचानती हो, अतः शठ कहकर मेरा तिरस्कार कर सकती हो, किन्तु हे चण्डि ! चरणों पर गिरकर मनाने वाली इस मेखला को कथा क्यों नहीं सुनाती हो? यहाँ पाद पतन रूप कारण के सम्पन्न होने पर भी उसके फल प्रसाद का अभाव है, अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास ने अपने भावों में उत्कर्ष लाने के लिए अनेकानेक अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे उनके काव्य में विशेष प्रकार का चमत्कार सा आ जाता है, वर्ण्य विषय आँखों के सामने चित्रित सा हो जाता है।

### ( ४ ) कवि की बहुज्ञता—

कालिदास की कृतियों का मनन करने पर यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि कवि को विविध शास्त्रों का ज्ञान था अतएव उनकी प्रतिभा बहुमुखी कही जा सकती है। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में संगीत शास्त्र, कामशास्त्र, ज्यौतिष-शास्त्र, वैद्यक शास्त्र तथा शिक्षाशास्त्र की प्रमुख स्थापनाओ का वर्णन आया है, जिससे कवि के विविध विषयों का ज्ञान प्रकाशित हो जाता है तथा यह सिद्ध हो जाता है कि महाकवि कालिदास की प्रतिभा बहुमुखी थी एवं उनको बहुज्ञ कहा जा सकता है।

**( ६ ) रसों का पूर्ण परिपाक—**

वैसे तो कालिदास के ग्रन्थों में समस्त रसों का समावेश हुआ है किन्तु रसराज शृंगार की प्रधानता महाकाव्यों के नाटकों में पूर्ण रूप से विद्यमान है। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में प्रधान रस शृङ्गार है तथा वीर रस उसका सहायक बनकर आया है। जिस समय विदूषक को सर्पदंशन हुआ है, उस समय रानी धारिणी के हृदय में करुण रस का उद्रेक हो जाता है, क्योंकि वह समझने लगती है कि मेरे ही कारण इस ब्राह्मण की हत्या होने जा रही है। तपनीयाशोक में पुष्पों के गुच्छों के आ जाने पर अद्भुत रस प्रस्फुटित होता है। इस प्रकार इस नाटक में कई प्रकार के रसों क परिपाक देखा जा सकता है। सम्भोग शृंगार का उद्रेक अग्निमित्र और मालविका के संगम में देखा जा सकता है। अग्निमित्र कहता है—

हस्तं कम्पयते रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिंग्यमाना बलात्।
पातुं पक्ष्मलनेत्रमुन्नमयतः साचीकरोत्याननम्
व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं निर्वर्तयत्येव मे ॥ ४-१५ ॥

मालविका एवं बकुलावलिका को बन्दिनी बना देने के बाद महाराज अग्निमित्र पर मानों विपत्तियों का पहाड़ टूट सा पड़ता है। वह प्रियतमा के जीवन-संकट के लिए चिन्तित सा हो जाता है। उसके हृदय में करुणा की भावना व्याप्त हो जाती है और करुण रसाप्लुत शब्दों को प्रकट करने लगता है। वह कहता है:—

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसंगिन्यौ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते ॥ ४-२ ॥

अर्थात् मंजरित आम्र वृक्ष पर बैठी मधुर कण्ठ कोयल और पुरवैया हवा से भीषण अकाल ःृष्टि के द्वारा घोसले की शरण लेने को बाधित हो गई।

इसके अतिरिक्त विदर्भ देश पर आक्रमण करके उसकी विजय करना अश्वमध यज्ञ का सम्पादित होना, यवनों का विनाश आदि घटनाएँ वीर रस की निष्पत्ति में सहायक हुई है।

दस्युसेना के प्रबल आक्रमण के अवसर पर भयानक रस का संचार हो जाता है। परिव्राजिका कहती है :—

तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालमापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि।
कोदण्डपाणिविनदत्प्रतिरोधकानामापातदुष्प्रसहभाविरभूदनीकम् ॥ ५-१० ॥

**( ७ ) कालिदास का प्रकृति-वर्णन—**

कालिदास का प्रकृति-चित्रण अनुपम है। इनके काव्य में गिरि, समुद्र, नदी, निर्झर, सरोवर, वन, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, दिन, वनस्पति, लता एवं पशुपक्षियों आदि प्राकृतिक वस्तुओं का हृदयाकर्षक चित्रण किया गया है। "कुमार-सम्भव" के प्रारम्भ में अनेक पद्यों में हिमालय का विशद एवं विस्तृत चित्रण किया गया है। कविकी दृष्टि में हिमालय मात्र पत्थरों का ढेर नहीं है, अपि तु वह देवता है। यथा—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

कालिदास ने प्रकृति का चित्रण संश्लिष्ट रूप में किया है, जिससे उस दृश्य का पूरा पूरा चित्र आँखों के सामने खिन्च जाता है। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में मध्याह्नकाल का वर्णन उसी संश्लिष्टरूप में किया है।

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिका पद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि

विन्दूत्क्षेपत्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम्
सर्वैरुस्त्रैः समग्रस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥

वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कालिदास ने बतलाया है कि उसमें इतनी शोभा का बाहुल्य हो गया है, जिसके सामने स्त्रियों का शृंगार परास्त हो गया है। मालविकाग्निमित्र नाटक में राजा अग्निमित्र कहता है—

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तकः,
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् ।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥

अर्थात् लाल अशोक की लालिमा ने स्त्रियो के बिम्बाधरों की लालिमा का अतिक्रमण कर दिया। काले, श्वेत एवं लाल कुरवक पुष्प ने स्त्रियों के मुख की चित्रकारी का तिरस्कार कर दिया। काले भ्रमरों से लिपटे तिलक पुष्प ने स्त्रियों के मस्तक की बिन्दी का अतिक्रमण कर दिया। लगता है, वसन्त की शोभा आज स्त्रियों के प्रसाधन का अनादर करने पर उतारू है।

कालिदास की प्रकृति में समवेदना का भाव निहित है। शकुन्तला के पतिगृह जाते समय वियोग के कारण हरिणियाँ अपने ग्रास को उगल देती हैं, मोर नाचना बन्द कर देते हैं, लताएँ पीले पत्तों के गिराने के बहाने आँसू टपकाकर रोने लगती हैं—

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥

यहीं क्यों, शकुन्तला के द्वारा पालित मृग शावक शकुन्तला के वस्त्र को पकड़ लेता है। इसके अतिरिक्त अन्य पादप शकुन्तला के लिए रेशमीवस्त्र, लाक्षारस एवं आभूषण उपहार में देते हैं और कोयल के शब्दों द्वारा शकुन्तला के लिए विदाई की अनुमति देते हैं।

"मालविकाग्निमित्र" नाटक में मलयानिल का वर्णन करते हुए महाकवि ने बतलाया है कि उस पवन में अभिलाषा को उत्पन्न करने की गरिमा छिपी हुई है—

बोढा कुरबकरजसां किसलयपुटभेदशीकरानुगतः ।
अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः ॥

अर्थात् कुरवक पुष्प के पराग से सना हुआ, नूतन विकसित पल्लवों के मकरन्द से भींगा हुआ यह मलयानिल बिना किसी कारण के भी हृदय को उत्कण्ठित कर देता है।

प्रकृति के परिवेश में अपने अशेष जीवन को व्यतीत करने वाले एवं महान् पर्यटक महाकवि कालिदासका प्रकृति से इतना अधिक सामीप्य है, वह प्रकृति की रमणीय वस्तुओं में घुल मिल गया है।

**( ८ ) भारतीय संस्कृति का भव्य चित्रण—**

कालिदास की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का व्यापक चित्रण हुआ है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सभी पुरुषार्थों के प्रति महाकवि का समान पक्षपात है राज-धर्म, तपस्विव्रत, वर्ण एवं आश्रम आदि के धर्मों का व्यापक चित्रण किया गया है। महाराज दुष्यन्त वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते हुए अपने राजधर्म का पालन करते हैं। कौत्स एवं वरतन्तु का कथानक, दिलीप की गो सेवा, ऋषियों एवं मुनियों के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान के साथ व्यवहार, राजा द्वारा प्रजापालन, मर्यादित योग, धर्म के लिए कष्ट सहन करना आदि विषयों से कालिदास के ग्रन्थ भरे हुए हैं। महाराज रघु, तपस्वी कौत्स से किस प्रकार कुशल क्षेम पूछते हैं? उनका पूछना कितना स्पृहणीय है। लिखा है :—

**कायेन वाचा मनसापि शश्वत् यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि ।**
**आपाद्यते न खलु अन्तरायैः कच्चिन्न महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥**

**( ९ ) कालिदास की सूक्तियाँ—**

काव्यको प्रभावोत्पादक एवं रमणीक बनाने के लिए सूक्तियों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है। वार्तालाप करते समय भी जो चतुर व्यक्ति अपनी वार्ता के अन्तर्गत जितनी ही अधिक से अधिक संगत सूक्तियों का प्रयोग करता है, उसकी वार्ता अत्यन्त रोचक और मार्मिक हो जाती है। श्रोता उसकी बातचीत को कान लगाकर सुनते हैं और आनन्द का अनुभव करते हैं। ठीक उसी प्रकार नाटकों या काव्यों में समागत सूक्तियाँ पाठकों एवं दर्शकों को मन्त्रमुग्ध बना देती है। "मालविकाग्निमित्र" नाटक में भी कालिदास की लेखनी से मार्मिक सूक्तियों की उद्भावना हुई है, जिनके कुछ उदाहरण निम्नाङ्कित हैं—

( क ) अहो कुम्भीलकैः कामुकैश्च परि-रणीया खलु चन्द्रिका।

( ख ) चन्दनं खलु मया पादुकापरिभोगेण दूषितम्।

( ग ) न शोभते प्रणीयजने निरपेक्षता।

( घ ) पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा।

( ङ ) पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

( च ) बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतको विडालिकालोके पतितः।

( छ ) स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः।

**( १० ) राष्ट्रीयता का उद्बोधन—**

महाकवि कालिदास राष्ट्रकवि हैं क्योंकि एक राष्ट्रीय कवि में जो गुण होने चाहिए, वे सभी कालिदास में एक साथ विद्यमान हैं। उनकी दृष्टि व्यापक एवं उदार है। उनके ग्रन्थों में उन तत्त्वों का समावेश है, जिनके आधार पर राष्ट्र समुन्नत हो सकता है। भारत के प्रहरी हिमालय का उत्कर्ष-वर्णन, रघुवंश में विश्वविख्यात सूर्यवंशीय राजाओं का चरित्र-चित्रण, "कुमारसम्भव" में शिव का संयम तथा कार्त्तिकेय द्वारा तारक राक्षससे युद्ध करके उसका वध, दुष्यन्त की धर्मभीरुता एवं कर्त्तव्यपरायणता, कण्व द्वारा शकुन्तला को गृहिणी उपदेश, अग्निमित्र का अश्वमेध यज्ञ-सम्पादन आदि ऐसे प्रभूत विषय हैं, जो हमारे राष्ट्र को अविरत प्रेरणा देने में एवं उसे समुन्नत और सबल बनाने में सक्षम हैं। देश के अतीत का यशोगान एवं उसकी गरिमा पाठकों को महत्त्व की भावना से भर देती हैं। देश-वासियों का मानस उत्साह से आप्लावित हो जाता है। धन्य हैं महाकवि कालिदास एवं धन्य है, उनके काव्य, जिनसे हम आज भी जीवनी शक्ति प्राप्त करते हैं।

**( ११ ) कालिदास के दोष—**

आलोचकों की दृष्टि में कालिदास की कृतियों में पाए जाने वाले प्रमुखदोष निम्नाङ्कित हैं—

**१. अश्लीलत्व**—"कुमारसम्भव में" शिव पार्वती के सम्भोग शृंगार का वर्णन तथा मेघदूत के "ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः" ( रति रस को चखा हुआ कौन ऐसा पुरुष होगा, जो खुली जाँघों वाली सुन्दरी को देखकर बिना सम्भोग किए ही छोड़ सकता है ) आदि स्थलों में अश्लीलता का दोष खटकता है।

**२. च्युतसंस्कृति**—व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध शब्द के प्रयोग को "च्युत संस्कृति" दोष कहा जाता है। कालिदास ने कतिपय स्थलों पर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो पाणिनीय व्याकरण से सम्मत नहीं है। यथा—"कामयमान" शुद्ध रूप के स्थान पर "कामयान" इस अशुद्ध रूप का प्रयोग।

"राजयक्ष्मपरिहानिरायय़ौ कामदानसमवस्थया तुलाम्॥ रघुवंश-१९.५०।

**३. अनौचित्य**—यद्यपि कालिदास के काव्य में "औचित्य" का आश्चर्य-जनक उत्कर्ष है तथापि एक आध स्थल पर वे चूक गए हैं। देखिए—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥

यहाँ शंकर की नेत्राग्नि से काम को भस्म कर देने की बात कही गई है फिर भी शङ्कर के लिए उत्पत्तिबोधक "भव" शब्द का प्रयोग किया गया है न कि संहार बोधक किसी शब्द का ।

**४. रसदोष**—कालिदास की कृतियों में कतिपय स्थलों पर रस-दोष दिखलाई पड़ता है, इसके अतिरिक्त अन्य दोषों के भी दर्शन होते हैं तथापि महाकवि के काव्यों की समग्र गुण सम्पत्ति के समक्ष ये दोष वैसे ही नगण्य हो जाते हैं, जैसे सूर्य की किरण राशि के समक्ष अन्धकार। कालिदास ने स्वयं लिखा है—

"एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः ।"

कालिदास के विषय में बाण का यह आभाणक सर्वथा सत्य है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ ( हर्षचरित )

## ( ५ ) मालविकाग्निमित्र नाटक के आधार पर उस समय की सामाजिक दशाओं का चित्रण कीजिए—

### ( १ ) बहुविवाह की प्रथा—

ग्रन्थकार का प्रयत्न तो यह रहता है कि वह जिस समय के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ की रचना कर रहा है, उसी समय की सामाजिक अवस्था का वर्णन अपने ग्रन्थ में करे । इस प्रयत्न में वह अपने समय की सामाजिक अवस्था का उल्लेख अपनी रचना में नहीं आने देता किन्तु लेखक कितना भी प्रयत्न क्यों न करे- उसके अपने समय की सामाजिक अवस्था का चित्रण हर दशा में उसकी रचना में झलक ही जाता है । अतः यह प्रमाणित है कि "मालविकाग्निमित्र" नाटक में केवल महाराज अग्निमित्र के समय की ही सामाजिक अवस्था-चित्रण नहीं है अपितु नाटककार कालिदास के समय की घटनाओं एवं सामाजिक अवस्थाओं का चित्रण हुआ है ।

नाटक के आधार पर प्रमाणित हो जाता है कि उस समय में राजा लोग बहुविवाह करते थे । बहुविवाह की प्रथा उस समय ही प्रचलित नहीं रही, बाद में भी यह प्रथा चलती रही । आधुनिकतम काल के राजाओं में भी इस प्रथा का जोर पाया जाता है । पाश्चात्य विद्वानों को यह भारतीय प्रथा अत्यधिक अखरती है, परन्तु भारत में इसे अभीतक बुरी दृष्टि से नहीं देखा गया तथा राजाओं की प्रतिष्ठा और सम्मान में कमी नहीं आने पाई ।

### ( २ ) राजाओं की नैतिक एवं पवित्र-भावना—

उस काल में राजन्यवर्ग भले ही बहुविवाह में विश्वास रखता हो, उसे जीवन के लिए आवश्यक मानता हो, किन्तु उनके चरित्र में अनैतिकता एवं अपवित्रता कभी नहीं आने पाई । उन राजाओं ने कभी पर-नारी से न तो सम्बन्ध रखा और न तो सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा ही रखी। अथवा न तो किसी अविवाहिता से अवैध सम्बन्ध रखा । प्रेम के विषय में राजाओं का अत्यन्त उच्च आदर्श था । यथा—

"दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि ! बैम्बिकानां कुलव्रतम् ।"

तथा—अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति ।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ॥

### ( ३ ) पातिव्रत-धर्म की पराकाष्ठा—

राजाओं द्वारा बहुविवाह किए जाने पर भी स्त्रियाँ अपने पतिका पूर्ण सम्मान करती थीं । राजा की सेवा मन लगाकर करती थीं । उनका सपत्नी आदि के प्रति भी परस्पर सम्बन्ध ईर्ष्या द्वेष से

रहित होता था यथा इरावती रानी धारिणी का पूर्ण सम्मान करती थी। वह अपनी प्रत्येक शिकायत रानी धारिणी से करती थी और रानी धारिणी उसका पूर्ण मान रखती हुई उसकी इच्छा को पूर्ण करती थीं। इस प्रकार परस्पर प्रेम-भावना से रहती हुई वे अपने पति की पूर्ण सेवा करती थीं। यहाँ तक कि—"प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः।"

**( ४ ) धर्म पर पूर्ण आस्था—**

तात्कालिक राजा लोग धर्म को पूर्ण महत्त्व देते थे। यही कारण है कि उस समय ब्राह्मणों, ऋषियों, मुनियों आदि का समाज में बड़ा ही सम्मान था। सनातन धर्म अपने चरम उत्कर्ष पर था। यज्ञादिकार्य-कलापों पर जनता का पूर्ण विश्वास था। राजा लोग अश्वमेधादि यज्ञ करते थे। पुष्यमित्र का अश्वमेध यज्ञ इस तथ्य का प्रमाण है। यज्ञादि कर्म बड़े महत्त्व के साथ सम्पन्न किए जाते थे।

**( ५ ) सर्व-धर्म-सम्मान—**

ऐतिहासिकों के अनुसार पुष्यमित्र बौद्धधर्मावलम्बियों का प्रबल विरोधी था। उसके सम्बन्ध में तो यह प्रसिद्ध है कि उसने बौद्ध भिक्षुओं के वध की आज्ञा दे रखी थी। परन्तु "मालविकाग्निमित्र" नाटक में इस सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता, अपितु इसके विपरीत भिक्षुओं का सम्मान था। यदि ऐसा न होता, तो परिव्राजिका को कभी राज्याश्रय नहीं मिलता। राजा अग्निमित्र ने परिव्राजिका को न केवल आश्रय ही दिया, अपितु उससे अपने प्रतिदिन के महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श भी करता है।

**( ६ ) अन्य धर्मावलम्बियों का सम्मान—**

बौद्ध धर्मावलम्बिनी परिव्राजिका का सम्मान महाराज अग्निमित्र के अन्तःपुर में इतना अधिक व्याप्त हो चुका था कि रानी धारिणी भी परिव्राजिका के बचनों को टाल नहीं सकी प्रत्युत उसका पूर्णरूपेण समादर ही किया। गणदास और हरदत्त के पारस्परिक कलह का निर्णय भी परिव्राजिका ही करती है। दोनों आचार्य परिव्राजिका के कथन को मान्य समझते हैं। तभी तो वे दोनों कहते हैं—"यदाज्ञापयति भगवती"। राजा अग्निमित्र भी यही कहता है—"यदादिशति"। साधुओं आदि का मार्ग उस समय अत्यधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था। तभी तो यह सुनकर कि परिव्राजिका ने गैरिक वस्त्र धारण कर लिए हैं, राजा अग्निमित्र कहता है—युक्तः सज्जनस्येष्टः पन्थाः"।

**( ७ ) प्रजा एवं व्यापार व्यवस्था—**

महाराज अग्निमित्र के समय में प्रजा सुखी थी, लोगों का व्यापार बड़ा सुव्यवस्थित था। व्यापारी एक कोने से दूसरे कोने तक जाया करते थे। इन व्यापारियों के सार्थ ( दल ) के साथ अपने व्यापार की वृद्धि की इच्छा से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक जाते थे। माधवसेन राजकुमारी मालविका को साथ लेकर किसी ऐसे ही सार्थ से मिल गया था। यथा—"स चाटव्यन्ते निविष्टो गताध्वा वणिग्जनः"। ये व्यापारी मार्ग में अपनी रक्षा के लिए सैनिकों को भी नियुक्त करते थे। ऐसा होने पर भी मार्ग में "दस्यु-दल" इन व्यापारियों को लूटने के लिए सदैव उद्यत रहता था। माधवसेन व्यापारियों के जिस सार्थ के साथ मिल गया था, मार्ग में उसको डाकुओं की सेना ने घेर लिया था। लिखा है—

तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालमाकर्णलम्बिशिखिपिच्छकलापधारि ।
कोदण्डपाणि विनदत् प्रतिरोधकानामापात-दुष्प्रसहमाविरभूदनीकम् ॥

**( ८ ) नृत्य एवं संगीत का उत्कर्ष—**

महाराज अग्निमित्र के समय में नृत्य एवं संगीत की कलाओं का विशेष रूप से प्रचार ने

रहा था। प्रजा इन कलाओं को बड़े प्रेम से सीखती थी। इन कथाओं का महत्त्व इतना अधिक था कि राजा लोग भी इनमें बड़ी रुचि रखते थे। नर्तकों एवं गायकों को राज्याश्रय भी प्रदान होता था। महाराज अग्निमित्र के यहाँ गणदास एवं हरदत्त नामक दो आचार्य नृत्य और संगीत के ही आचार्य थे। वे राजाश्रित कन्याओं आदि को नृत्य एवं संगीत की शिक्षा देते थे। परिव्राजिका संन्यासिनी होते हुए भी नृत्यकला में अत्यन्त निपुण थी। यही कारण है कि गणदास एवं हरदत्त के कलह में राजा उसी परिव्राजिका को निर्णायिका बनाता है। अधोलिखित पद्य से नृत्य एवं संगीत का ज्ञान प्रकट होता है:—

यथादृष्टं सर्वमनवद्यम्। कुतः—

अङ्गैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ भावो भावं नुदति विषयाद् रागबन्धः स एव॥

नृत्य एवं संगीत कला का मान विदर्भ देश में भी अधिक था। इसके प्रमाण स्वरूप विदर्भ देश से उपहार में भेजी गई दो कन्याएँ हैं, जो संगीत में पूर्णतया सिद्धहस्त हैं। राजा के पूछने पर कि वे किस कला में निपुण हैं, वे कन्याएँ उत्तर देती हैं—

"भर्तः संगीतेऽभ्यन्तरे स्वः"।

## ( ९ ) चित्र-कला की प्रधानता—

संगीत एवं नृत्यकला के समान चित्रकला को भी राज्याश्रय प्राप्त था। यह चित्रकला का ही चमत्कार है कि राजा मालविका के चित्र को देखकर उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। कलाकार अपने चित्रों में प्राण फूँक देने की सामर्थ्य रखते होंगे। यदि ऐसा न होता तो एक ओर राजा मालविका के चित्र को देखकर इतना उद्विग्न न होता और उधर मालविका इरावती की ओर देखते हुए राजा के चित्र को देखकर ईर्ष्यान्वित न होती। मालविका बकुलावलिका से कहती है—

"सखि! अदक्षिण इव भर्ता मे प्रतिभाति यः सर्वदेवीजनमुज्झित्वैकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः।"

## ( १० ) "ज्ञान-वर्द्धन ही विद्याओं का लक्ष्य"—

महाराज अग्निमित्र के समय में वेद, कामशास्त्र, राजनीति शास्त्र और ललित कलाओं के साथ अन्य विद्याओं का अध्ययन किया जाता था, परन्तु इन विद्याओं का अध्ययन ज्ञान-वर्द्धन के लिए ही उचित माना जाता था, आजीविका कमाने के लिए नहीं। इस सम्बन्ध में संगीतज्ञ गणदास के विचार अत्यन्त उत्कृष्ट हैं—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

## ( ११ ) चिकित्सा-शास्त्र का प्राधान्य—

महाराज अग्निमित्र के समय में चिकित्सा-शास्त्र का भी अत्यधिक सम्मान था। ऐसा विश्वास था कि बीमारी के समय दिया गया दान भी पर्याप्त मात्रा में सहायक सिद्ध होता है। अतः तत्कालीन चिकित्सा में क्रिया तथा दान आदि का भी कुछ भाग मिला जाता था। ध्रुवसिद्धि उस समय का महान् चिकित्सक समझा जाता था। इसको भी राज्याश्रय प्राप्त था। वह विदूषक की चिकित्सा उदकुम्भ विधान द्वारा करता है। लोग स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए नियत समय पर भोजन किया करते थे, क्योंकि वैद्यराज लोग नियत समय के पूर्व अथवा बाद में भोजन करना अच्छा नहीं समझते थे। लिखा है—"उचितवेलाव्यतिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति"। परिव्राजिका द्वारा बताया गया साँप के दशन का औषध आज भी अद्वितीय है—

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः॥

वैसे उस समय विषवैद्य हुआ करते थे, जिनका कार्य केवल साँप आदि विषैले कीटों का विष उतारना ही होता था।

**( १२ ) ज्योतिष विद्या का समादर—**

उस काल में ज्योतिष विद्या का समाज में अत्यधिक समादर था। ज्योतिर्विदों के वचनों को आप्त वाक्य मानकर उनके अनुसार कार्य किया जाता था। यदि राजा के ऊपर भावी कष्ट की सम्भावना हो, तो ज्योतिषियों के कथनानुसार प्रचुर मात्रा दानादि दिया जाता था। बन्दियों की मुक्ति कर दी जाती थी। एक उदाहरण है—

"दैवचिन्तकैर्विज्ञापितो राजा, सोपसर्गं वो नक्षत्रम् तदवश्यं सर्वबन्धनमोक्षः क्रियताम्"।

ग्रहों की वक्रगति भी अशुभ मानी जाती थी। लिखा है :—"यावदङ्गारको राशिमियानुक्रं प्रतिगमनं करोति"। ज्योतिषियों के कथनानुसार किसी महान् कार्य में संलग्न पुरुष की प्राणरक्षा के लिए अतुल धन सम्पत्ति का दान भी किया जाता था। जैसा कि पहले कहा गया है, लोग ज्योतिषियों के वचनों को आप्तवाक्य मानकर उनके अनुसार आचरण करते थे। ज्योतिषियों के वचन प्रायः सत्य निकलते थे, तभी तो ज्योतिष विद्या की धाक बौद्धभिक्षुओं पर भी थी। यदि ऐसा न होता तो परिव्राजिका राजा अग्निमित्र को मालविका के सम्बन्ध में वास्तविकता पहले ही बता देती। परिव्राजिका कहती है—

"इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रागतेन सिद्धाऽऽदेशेन साधुना मत्समक्षमादिष्टा संवत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः सदृशभर्तृगामिनी भविष्यति इति। तदवश्यम्भाविनमादेशमस्यास्त्वत्पादशुश्रूषया परिणमन्तमवेक्ष्य कालप्रतीक्षया मया साधु कृतमिति पश्यामि।"

उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उस समय लोगों को भाग्य पर विश्वास था। वे समझते थे कि विधाता ने एक बार उनके मस्तक पर जो कुछ लिख दिया है, उसे किसी दशा में दूर नहीं किया जा सकता। परिव्राजिका समझती थी कि यदि मालविका का विवाह राजा के साथ एक वर्ष दासी के रूप में जीवन व्यतीत करने के पहले ही कर दिया जाता, तो उसे पुनः एक बार किसी की दासी अवश्य ही बननी पड़ती।

**( १३ ) मन्त्रिपरिषद् का गठन—**

उस काल के राजतन्त्र में राजा लोग अपने राज्य का प्रबन्ध करने के लिए "मन्त्रिपरिषद्" की सहायता लिया करते थे। वैसे मन्त्रिपरिषद् राजा की प्रत्येक इच्छा का पालन किया करती थी परन्तु विशेष कार्यों के सम्बन्ध में मन्त्रि-परिषद् विचार विनिमय करके अपना निश्चय दिया करती थी। राजा अग्निमित्र ने विदर्भराज को बन्दी बनाना चाहा परन्तु ऐसा करने से पहले उसने अपना विचार मंत्रिमण्डल में भेजा। लिखा है—कञ्चुकी—देव ! एवममात्यपरिषदे निवेदयामि। कञ्चुकी—विजयतां देवः। देव ! अमात्यो विज्ञापयति, "कल्याणी देवस्य बुद्धिः।"

**( १४ ) राज्यपालों की नियुक्ति—**

महाराज अग्निमित्र के समय में प्रदेशों का शासन करने के लिए राज्यपाल नियुक्त किए जाते थे। यथा विदर्भ राज्य की सीमा पर रानी धारिणी के भाई वीरसेन की नियुक्ति इसी कारण की गई थी। राजा का सीमाप्रान्तों की सुरक्षा का प्रबन्ध सर्वोत्तम था तभी राजाज्ञा प्राप्त करते ही वीरसेन ने विदर्भ पर आक्रमण करके उसे एक सप्ताह के भीतर जीत लिया।

## ( ५ ) अग्निमित्र का चरित्र-चित्रण कीजिए—

**( १ ) धीरोदात्त नायक—**

महाराज अग्निमित्र "मालविकाग्निमित्र" नामक नाटक का नायक है। लक्षणग्रन्थों की परिभाषा का विश्लेषण करने पर इस राजा को धीरोदात्त नायक कहा जा सकता है। धीरोदात्त

नायक पराक्रमी एवं बुद्धिमान् होता है। हो सकता है कि धीरोदात्त नायक कामी हो, परन्तु उसमें यह विशेषता अवश्य होती है कि वह पग-पग पर समस्याओं के समक्ष सोच विचार कर काम करता है। इस नाटक के नायक अग्निमित्र में धीरोदात्त नायक के सम्पूर्ण गुण पाये जाते हैं। प्रमुख रूप से राजा अग्निमित्र इस नाटक में सौन्दर्य-प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। राजा एक विवाहित पुरुष है, जिसकी दो रानियाँ हैं। १—धारिणी २—इरावती। इन दोनों पत्नियों के रहते हुए भी राजा की कामाग्नि पर्याप्त उत्तेजित है, वह शान्त होना नहीं जानती। इसी नाटक के अन्त में स्पष्टरूप से वर्णित है कि राजा के पुत्र वसुमित्र ने अपने पितामह पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा करते हुए यवनों का विनाश किया है और उनको पराजित करके अश्व को छीन लिया है। उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि राजा की आयु कम से कम ४०-४५ वर्ष की होगी। इतनी आयु का वृद्ध व्यक्ति एक ऐसी रमणी के प्रेम-पाश में आबद्ध हो, जिसकी आयु उसके पुत्र की आयु के बराबर हो, कुछ उचित नहीं ज्ञात होता। इस बात को देखकर कुछ पाश्चात्य आलोचकों को राजा के चरित्र की यह हीनता बहुत खटकी है। कुछ आलोचकों ने तो राजा को कापुरुष, प्रमत्त कामी तथा कपटी तक कहा है। राजा कामी अवश्य था, परन्तु प्रमत्त कामी नहीं था। वह मालविका का सौन्दर्य चित्र में ही देखकर बहुत व्याकुल हो गया एवं उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो गया। मालविका के वियोग में उसकी तड़प संयम की सीमा के बाहर नहीं हुई। मालविका के साथ अपने इस सम्बन्ध और तड़प को छिपाने के लिए उसने कतिपय स्थलों पर असत्य-भाषण भी किया है। यथा—सुन्दरि न मे मालविकया कश्चिदर्थः।

**( २ ) समयानुसार कार्य-दक्षता—**

राजा की बुद्धि अत्यन्त प्रखर है। यही कारण है कि एक समझदार व्यक्ति है, अवसर को पहचानने वाला है। अकारण किसी के हृदय को कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता। दाक्षिण्य की भावना उसमें चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। इसी दाक्षिण्य-भावना के परिणाम स्वरूप वह अपनी रानियों के साथ असाधारण विनीत व्यवहार करता है। यदि वह चाहता, तो रानी धारिणी और छोटी रानी इरावती की तनिक भी चिन्ता न करके मालविका सुन्दरी के साथ पाणिग्रहण संस्कार कर लेता, परन्तु वह ऐसा नहीं करता है। उसमें यह शालीनता असाधारण है। लिखा है—

"बलवत्खलु साभिलाषस्तस्यां भर्ता, केवलं देव्या धारिण्याश्चित्तं रक्षन्नात्मनः प्रभुत्वं न दर्शयति"।

**( ३ ) विनम्र भावना से ओतप्रोत—**

तीसरे अंक में रानी इरावती जब महाराज अग्निमित्र पर असीम क्रुद्ध होती है, तो राजा को शठ तक कह देती है और अपनी तागड़ी से राजा को प्रताडित तक करने के लिए उद्यत तक हो जाती है तथापि राजा उसपर तनिक भी क्रोध नहीं करता। बड़ी विनम्रता से रानी को समझाने का प्रयास करता है। यहाँ तक कि रानी के चरणों पर भी गिर जाता है। लिखा है—

अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि।
वर्धयसि विलसितं त्वं दासजनायाद्य कुप्यति च॥

नूनमिदमनुज्ञातम् ( इति पादयोः पतति )

चौथे अंक में भी जब इरावती समुद्रगृह में मालविका के साथ राजा अग्निमित्र को बातें करते हुए देख लेती है, तो बहुत बिगड़ती है, परन्तु राजा फिर उसे बड़ी नम्रता के साथ समझाने का प्रयास करता है। लिखा है—

नार्हति कृतापराधोऽप्युत्सवदिवसेषु परिजनो दण्डम्।
इति मोचिते मयैते प्रणिपतितुं मामुपगते च॥

**( ४ ) दाक्षिण्य गुणाभिलाषी—**

राजा अग्निमित्र दाक्षिण्य भावना से सम्पृक्त पुरुष है। उसके दाक्षिण्य का विशद उदाहरण उस समय दृष्टिगोचर होता है, जब मालविका ने यह समझा कि राजा रानी धारिणी से डरता है। यथा—"यो न बिभेति स मया भर्त्रिनी दर्शने दृष्टसामर्थ्यो भर्ता"। उस समय राजा कहता है—"दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि ! बैम्बिकानां कुलव्रतम्"। राजा के इस दाक्षिण्य की धाक तो अन्तःपुर में जमी हुई थी। राजा अग्निमित्र जब रानी इरावती से मिलने के लिए नहीं जाना चाहता, तब विदूषक उसे समझाता है कि अन्तःपुर में प्रतिष्ठित दाक्षिण्य को एक पग भी पीछे न करो। लिखा है—

"नार्हति भवान् अन्तःपुर प्रतिष्ठं दाक्षिण्यमेकपदे पृष्ठतः कर्तुम्"।

**( ५ ) संयमशील व्यक्ति—**

महाराज अग्निमित्र अत्यन्त संयमी व्यक्ति है। वह अन्तःपुर में ऐसा व्यवहार कदापि नहीं प्रदर्शित करना चाहता, जिससे किसी के हृदय को ठेस लगे, मुख्यरूप से रानियों को। मालविका के प्रति प्रेम-भावना के जागृत हो जाने के कारण उस राजा के हृदय में व्याकुलता है किन्तु वह बार-बार इस बात से डरता रहता है कि कभी उसकी व्याकुलता अन्तःपुर में रानियों पर प्रकट न हो जाय। लिखा है—

उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिको भावशून्यः॥

**( ६ ) धैर्यसम्पन्न पुरुष—**

राजा अपने हृदय में अधैर्य की भावना कदापि नहीं रखता। वह अधीर स्वभाव का व्यक्ति नहीं है। मालविका को चित्र में देखकर वह उसके प्रेम में उन्मत्त तो हो गया, परन्तु ऐसा नहीं हुआ कि उसका प्रेम सम्पूर्ण व्यक्तियों पर प्रकट हो जाय। अशोक वृक्ष के नीचे बकुलावलिका ने मालविका से कहा—"एष उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरस्ते वर्तते।" तब मालविका के पूछने पर कि—"किं भर्ता" ? राजा बड़ा प्रसन्न होता है और कहता है—"सखे ! पर्याप्तमेतावता कामिनाम्"।

**( ७ ) पराक्रमशीलता—**

राजा केवल कामुक ही नहीं वीरभाव से आप्लुत भी है। यद्यपि नाटक में कहीं भी उसके शौर्य का प्रदर्शन नहीं हुआ है, परन्तु स्थान-स्थान पर उसके शौर्य की ओर संकेत किया गया है। यवनों पर वसुमित्र की विजय का समाचार सुनते ही विदूषक, परिव्राजिका तथा कञ्चुकी के क्रमशः निम्नलिखित वाक्य राजा के शौर्य को प्रबलरूप में उद्घोषित करते हैं—

( १ ) परितुष्टोऽस्मि यत् पितरमनुगतो वत्सः।
( २ ) कलभेन खलु यूथपतिरनुकृतः।
( ३ ) देव ! अयं कुमारः।

नैतावता वीर विजृम्भितेन चित्तस्य नो विस्मयमादधाति।
यस्या प्रधृष्यः प्रभवस्त्वमुच्चैर्ग्नेरपां दग्धुरिवोरुजन्मा॥

**( ८ ) कार्यकुशलता—**

महाराज अग्निमित्र शासन सम्बन्धी राज-कार्यों को बड़ी कुशलता के साथ सम्पन्न करता है। प्रथम अंक में ही राजा राज्य की सुरक्षा के सम्बन्ध में चिन्तित दिखाई देता है और अपने साले वीरसेन को विदर्भ पर आक्रमण करने की आज्ञा देता है। शत्रु राज्य को जीत लेना उसकी कार्यकुशलता का परिचायक है।

( ९ ) उदारता—

राजा अग्निमित्र अत्यन्त उदार व्यक्ति है। उसने यज्ञसेन से उसका राज्य छीना नहीं अपितु उसका राज्य माधवसेन के साथ आधा-आधा बाँटकर अपनी उदारता का परिचय दिया है। विजित राजा को अपने आश्रित बनाकर रखना राजनीति का उत्तम उदाहरण है।

( १० ) मन्त्रिमण्डल से परामर्श लेना—

महाराज अग्निमित्र के समक्ष जब कोई समस्या आ जाती है, तो उसके समाधान के लिए वह अपने मन्त्रिमण्डल से परामर्श लेता है और परामर्श के अनुसार ही कार्य करना चाहता है। यद्यपि वह चाहे, तो स्वयं आज्ञा देकर सभी कार्य करवा सकता है, परन्तु वह ऐसा न करके मन्त्रिमण्डल को अपने विश्वास में रखना उचित समझता है। विदर्भ के राज्य को बाँटने की अपनी इच्छा को राजा ने मन्त्रि-मण्डल के समक्ष रखा, जिसका उत्तर मिला—

"कल्याणी देवस्य बुद्धिः। मन्त्रिपरिषदोऽप्येवमेव दर्शनम्"।

( ११ ) सेवा-धर्म का अनुयायी—

महाराज अग्निमित्र अपने जीवन में सेवा-धर्म को उत्कृष्ट धर्म मानता है। सेवक की सर्वोत्तम विशेषता यही है कि वह अपने स्वामी की सेवा करते हुए प्राण त्यागे। इसी विचार से सुमति की मृत्यु पर वह परिव्राजिका को यह कहकर धैर्य बँधाता है कि—

"न शोच्यस्तत्रभवान् सफलीकृतभर्तृपिण्डः"।

( १२ ) ललितकला का अनुरागी—

महाराज अग्निमित्र ललितकलाओं से विशेष अनुराग रखता है। यही कारण है कि उसके शासन में नृत्यकला, नाट्यकला एवं संगीतशास्त्र के दो-दो पारंगत आचार्य गणदास और हरदत्त अपनी जीविका वृत्ति चला रहे थे। चित्रकला को भी राज्याश्रय प्राप्त था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा अग्निमित्र केवल शृंगारिक पुरुष ही नहीं था प्रत्युत एक कुशल राजनीतिज्ञ, योद्धा तथा कला-प्रेमी भी था। राजा के सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न होकर अपने राजतन्त्र को सफलतापूर्वक चला रहा था तथा जीवन के आनन्द और भोग के प्रति भी आकृष्ट था। इस प्रकार उसमें शृंगाररस एवं वीररस का पर्याप्त सन्निवेश था, जिसका सफल अंकन कालिदास की लेखनी ने किया है।

## ( ६ ) मालविका का चरित्राङ्कन कीजिए—

( १ ) नाटक की नायिका—

मालविका "मालविकाग्निमित्र" नाटक की नायिका है। सरल स्वभाव एवं पवित्र आचरण वाली मालविका एक राजकुमारी है। उसकी शिक्षा दीक्षा के सम्बन्ध में नाटक से कोई भी संकेत प्राप्त नहीं होता है किन्तु उसके वार्तालाप एवं सम्पूर्ण व्यवहार से यही ज्ञात है कि वह अवश्य एक विदुषी एवं शिक्षिता कुमारी है। उसका सौन्दर्य अनुपम है। यही कारण है कि मालविका का चित्र देखकर राजा अग्निमित्र उस पर मोहित हो जाता है, परन्तु जब उसके शरीर को राजा ने अपनी आँखों से देखा, तब तो उसके सौन्दर्य से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसके सौन्दर्य का वर्णन भी वह नहीं कर सका। वह विदूषक से बोला—

चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादिशङ्कि मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता॥

( २ ) सन्तोषधारिणी राजकुमारी—

मालविका अपने हृदय में पूर्णरूप से सन्तोष धारण करने वाली राजकुमारी ज्ञात होती है। वह

अपने बुरे समय को बड़े धैर्य के साथ व्यतीत करती है। राजकुमारी होते हुए भी वह महारानी धारिणी के पास दासी के रूप में सहर्ष कार्य करती रहती है। वह कदापि विलाप करके किसी को अपनी वास्तविक दशा से परिचित नहीं कराती और न कोई आपबीती कहानी बताती है। उसके ऐसा करने के अन्य कारण भी हो सकते हैं। एक तो उसका भविष्यवाणी पर विश्वास और दूसरा राजा का उसके प्रति आकर्षण का होना। जब मालविका यह बात पूर्ण रूप से जानती है कि उसको हर दशा में एकवर्ष दासी के रूप में कार्य करना ही पड़ेगा, तो फिर वह अपने कष्टमय जीवन और बुरे भाग्य पर क्यों विलाप करे। दूसरी बात यह भी है कि महारानी धारिणी के समीप में रहते हुए उसको पर्याप्त आदर प्राप्त हुआ, ललित कलाओं अर्थात् संगीत कला एवं नृत्य कला के सीखने का पूर्ण अवसर मिला और अन्ततोगत्वा महाराज का प्रेम भी मिला। ये सभी बातें उसके एक वर्ष-पर्यन्त रहने वाले कष्ट को भुलाने के लिए पर्याप्त थीं।

**( ३ ) कुशाग्रबुद्धि राजकुमारी—**

मालविका एक कुशाग्रबुद्धि राजकुमारी ज्ञात होती है। रानी धारिणी ने नृत्य-कला सीखने के लिए नाट्याचार्य गणदास के पास भेजा है। उसकी ग्रहण करने की कुशलता को देखकर गणदास चकित रह जाते हैं। केवल आचार्य गणदास चकित ही नहीं हुए प्रत्युत उन्होंने मुक्त कण्ठ से उसके कला-प्रदर्शन पर प्रशंसा भी व्यक्त की—

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै।
तत्तद्विशेषकरणाद् प्रत्युपदिशतीव मे बाला॥

उसकी नृत्य-कला एवं संगीत-कला की निपुणता का अवलोकन कर केवल आचार्य गणदास ही सन्तुष्ट नहीं हुए, प्रत्युत परिव्राजिका तथा विदूषक भी उसकी प्रशंसा किए बिना न रह सके। परिव्राजिका ने उसके नृत्य को निर्दोष बताया। कहा—

यथादृष्टं सर्वमनवद्यम्। कुतः—

अङ्गैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद् रागबन्धः स एव॥

विदूषक द्वारा की गई प्रशंसा भी पूर्णतया उचित है। कहा है—

"भो न केवलं रूपं शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका।"

मालविका का सुन्दरी होना और उसके साथ ही साथ एक उत्तम कलाकारिणी होना, उसके महत्त्व को एवं उसके लावण्य को चार चाँद लगा देता है। राजा के शब्दों में कहा गया है—

अव्याजसुन्दरीं तां विज्ञानेन ललितेन योजयता।
परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः॥

**( ४ ) शालीनता-पूर्ण स्वभाव—**

मालविका के स्वभाव में परपुरुषों के समक्ष स्वतन्त्रतापूर्वक नृत्य करने का साहस परिलक्षित नहीं होता। कुछ लोग इसको कायरता अथवा भीरुत्व भी कह सकते हैं परन्तु यह हमारी दृष्टि में न तो उसकी कायरता थी और न भीरुत्व। स्त्रियों का गुण है लज्जाशील होना। कोई भी उच्च-कुलोत्पन्न कन्या निस्संकोच परपुरुष के समक्ष नृत्य नहीं कर सकती, यह नृत्य चाहे उसकी परीक्षा के लिए ही क्यों न हो। यही कारण है कि मालविका को जब राजा एवं राजपुरुषों के समक्ष अपने नृत्य की परीक्षा देनी पड़ी, तो वह बहुत घबड़ा गई। उसकी इस व्यग्रता को दूर करने के लिए गणदास ने कहा—"वत्से! मुक्तसाध्वसा सत्त्वस्था भव"।

**( ५ ) भयातुरता—**

मालविका सर्प आदि से अत्यन्त भयभीत होती थी। विदूषक के सांप सांप चिल्लाने पर राजा जब उसकी रक्षा के लिए बाहर जाता है, तब मालविका बहुत घबड़ा जाती है। वह राजा को बाहर जाने से रोकती है और कहती है—

"भर्तः ! मा तावत् सहसा निष्क्रम सर्प इति भण्यते।'

मालविका दस्युवर्ग का नाम सुनते ही कांप जाती है क्योंकि वह अपने अतीत जीवन में उनका आतंक देख चुकी है। डाकुओं की चर्चा चलने पर मालविका अत्यधिक भयभीत हो जाती है। लिखा है—"मालविका भयं रूपयति", विदूषक उसकी इस अवस्था को पहचान कर कहता है—

"भवति ! मा बिभेहि। अतिक्रान्तं खलु भगवती कथयति।"

**( ६ ) रहस्यगोपन की भावना से शून्य—**

मालविका अपनी सखी बकुलावलिका से अपने हृदय की बात नहीं छिपा पाती है। राजा के प्रति मालविका के हृदय में इतना अधिक प्रेम है कि बकुलावलिका के कथन ( एष उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरस्ते वर्तते ) पर उसके मुख से अनायास ही निकल पड़ता है—"किं भर्त्ता"।

**( ७ ) सपत्नीद्वेष से पूर्ण—**

अन्य नारियों के समान मालविका के हृदय में स्वभाव सुलभ सपत्नी द्वेष की भावना व्याप्त है। वह जानती है कि इरावता राजा की परिणीता पत्नी है परन्तु ऐसा होने पर भी वह नहीं कह सकती कि राजा चित्र में उसी की ओर देखे। वह ईर्ष्यावश कह उठती है—

"अदक्षिण इव भर्त्ता मे प्रतिभाति यः सर्वदेवीजनमुज्झित्वैकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः"।

जब बकुलावलिका उसे बताती है कि वह राजा की चहेती है, तब उसे धैर्य होता है—

"ततः किमिदानीमात्मानमायासयिष्यामि"।

**( ८ ) प्रेम और भय से समन्वित कुमारी—**

मालविका महाराज अग्निमित्र से प्रेम अवश्य करती है किन्तु साथ ही साथ महारानी धारिणी से अत्यधिक डरती भी है। इस भय के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो उसके मन की यह शङ्का कि यदि रानी धारिणी को उसके प्रेम का पता चल गया, तो सम्भव है कि वह उसे वहाँ से निकाल दे और द्वितीय धारिणी द्वारा दिया गया कारावास का दण्ड भी उसके मन में भय पैदा करता था। यही कारण है कि वह राजा से हृदय खोलकर अपने अन्तस्तल की बात नहीं कह सकती। वह राजा से कहती है—

"देव्या भयेनाऽऽत्मनः प्रियं कर्तुं न पारयामि"।

उसके उत्तर में जब राजा उससे कहता है—"अयि न भेतव्यम्" तब वह व्यंगपूर्ण शब्दों में राजा से कहती है—

"यो न बिभेति स मया भट्टिनीदर्शने दृष्ट सामर्थ्यो भर्त्ता।"

यही कारण है कि जब इरावती उसे राजा के साथ देख लेती है, तब वह भावी दण्ड के भय से काँप उठती है तथा कहती है—

"देवीं चिन्तयित्वा वेपते मे हृदयम्। न जाने अतः परं किं वाऽनुभवितव्यं भविष्यतीति।"

**( ९ ) दीर्घवयस्क के प्रति अनुराग—**

मालविका के चरित्र में एक प्रकार का दोष भी परिलक्षित होता है। वह है "अतिवयस्क राजा पर आसक्त होना"। मालविका जानती है कि राजा की दो परिणीता पत्नियाँ हैं। राजा के

पुत्र की आयु लगभग उतनी ही है, जितनी उसकी। तो पुनः राजा के प्रति वह इतनी अनुरक्त क्यों हुई? इसके दो कारण हो सकते हैं—एक तो उसके भाई का यह निश्चय कि मालविका का पाणिग्रहण राजा अग्निमित्र से कर दिया जाएगा। दूसरा राजा को अपने प्रति आकृष्ट हुआ देखकर वह अपने आपको बड़ी सौभाग्यशालिनी समझती होगी, क्योंकि वह रानी बनने जा रही थी। स्त्रियों का स्वभाव बड़ा विचित्र होता है, वे किसी की आयु एवं सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट नहीं होतीं अपितु पुरुष का अनुरक्त एवं आकृष्ट होना उनके लिए सर्वस्व है। षोडशवर्षीया सुन्दरी किशोरी चालीसवर्षीय अन्धे सूर से विवाह करती हुई देखी जाती है, उसके मूल में क्या कारण है? आप समझ सकते हैं। पुरुष का अनुराग एवं आकर्षण।

## ( ७ ) महारानी धारिणी के चरित्र का वैशिष्ट्य बतलाइए—

### ( १ ) अग्निमित्र की पटरानी स्त्री—

महारानी धारिणी राजा अग्निमित्र की पटरानी है। उसकी आयु कितनी है? इस बात का ज्ञान तो हमें नाटक के किसी स्थल से प्राप्त नहीं होता, परन्तु यह कहा जा सकता है कि उसकी आयु अवश्य अधिक होगी। उसका पुत्र वसुमित्र, पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अश्व की सुरक्षा के लिए नियुक्त था और उसने सीमाप्रान्तवर्ती यवनों को पराजित भी किया था अतएव इससे स्पष्ट हो जाता है कि रानी धारिणी अवश्य प्रौढा होगी। उसकी आयु चालीस वर्ष के आसपास अवश्य रही होगी।

### ( २ ) आर्य-रमणी का आदर्श—

रानी धारिणी आदर्श आर्य रमणी है। उसका प्रत्येक कदम बड़े सोच विचार के साथ उठता है। अपने पति की सेवा करना वह अपना परम धर्म मानती है। उसका प्रेम सच्चा है और वह पति की आत्मा से है। वह अपने पति के लिए सुख और चैन तक त्याग सकती है। उसके चरित्र की इस विशेषता को समझते हुए परिव्राजिका कहती है—

"प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः"।

### ( ३ ) पति-प्रकृति से परिचिता—

रानी धारिणी अपने पति महाराज अग्निमित्र की स्वभाव की त्रुटियों को पूर्ण रूप से जानती है। वह पूर्ण रूप से जानती है कि राजा सौन्दर्य का प्यासा है। यदि वह अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न किसी किशोरी को कहीं देख लेगा, तो उस पर अवश्य मोहित हो जाएगा। इस प्रकृति का ज्ञान रखते हुए रानी धारिणी मालविका को राजा की दृष्टि से बचाकर रखती है। संयोगवश जब राजा मालविका के चित्र को देख लेता है और पुनः उसका परिचय प्राप्त करना चाहता है, तब रानी कोई उत्तर नहीं देती। वह जानती है कि राजा को यदि उसके नाम का पता लग गया, तो वह अवश्य ही मालविका को देखने का प्रयत्न करेगा।

### ( ४ ) सहानुभूतिशीला रमणी—

रानी धारिणी बड़ी सहानुभूतिशीला रमणी है। वह यह जानती है कि प्रभूत सुन्दरी मालविका को महलों में रखना उसके लिए हानिकारक सिद्ध होगा। तथापि वह मालविका को स्थान देती है। उसके लिए यह सहज था कि वह मालविका को अपने महल में स्थान न दे परन्तु एक पीड़ित एवं असहाय बालिका को वह निकाल भी कैसे देती? ऐसा वज्र हृदय वह कहाँ से लाती? विदूषक को साँप ने काट लिया, यह जानकर वह बड़ी उद्विग्न हुई। जब उसको ज्ञात हुआ कि नागमुद्रा देने से उसके प्राण बच सकते हैं, तो निःसंकोच परिणाम की तनिक भी परवाह न करके उसने नागमुद्रा दे ही दी। ये सभी कार्य उसकी सहानुभूति के ही उदाहरण हैं।

**( ५ ) परगुणज्ञता—**

दूसरे के गुणों को परखने की कला रानी की प्रकृति में पूर्ण रूप से व्याप्त थी। कुछ ही दिनों में वह मालविका के गुणों को पहचान गई। तभी तो उसने गणदास के पास नृत्य एवं संगीत कला को सीखने के लिए मालविका को भेज दिया। इतना ही नहीं, तपनीयाशोक की दोहद-पूर्त्ति के लिए अपने आपको असमर्थ पाकर उसने मालविका को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। मालविका को दोहद-पूर्त्ति के लिए नियुक्त करना सम्पूर्ण नारी समाज की ईर्ष्या का विषय बन गया। रानी इरावती ने तो यहाँ तक कह दिया—"महती खल्वस्याः सम्भावना।"

**( ६ ) क्रोधहीन एवं विनीत महिषी—**

महारानी धारिणी अपनी सपत्नी इरावती के समान न तो क्रोध करने वाली है और न अविनीत ही है। राजा का मालविका के प्रति आकृष्ट होना उसके लिए दुःखद था, पर वह इरावती के समान न बुरा भला कहती है और न तो प्रियतम को प्रताडित करने के लिए उद्यत होती है। उसने अत्यन्त विनम्र शब्दों में राजा को कुछ भी न कहकर सब कुछ कह दिया, यथा—

"यदि राजकार्येष्वपीदृश्युपायनिपुणतार्यपुत्रस्य ततः शोभनं भवेत्"।

उसके क्रोध की पराकाष्ठा निम्नलिखित शब्दों तक ही सीमित रहती है—

"अहो अविनय आर्यपुत्रस्य"।

**( ७ ) ईर्ष्या की भावना से शून्य—**

रानी धारिणी अपनी सपत्नी इरावती के समान ईर्ष्यालु नहीं है। वह जानती है कि मालविका तथा अग्निमित्र के पारस्परिक प्रेम में दोष अग्निमित्र का है, मालविका का नहीं। अतएव वह मालविका को दण्ड देना नहीं चाहती, फिर भी अपनी सपत्नी इरावती की प्रसन्नता के लिए वह मालविका तथा बकुलावलिका को कारावास का दण्ड भी देती है। उसने इरावती से स्पष्ट कह दिया—

"न मे एष मत्सरकालः। तव खलु बहुमानं वर्धयितुं वयस्यया सह निगडबन्धनीकृता मालविका।"

इससे स्पष्ट है कि रानी धारिणी अत्यन्त पूर्वपरज्ञा नारी है। वह जानती है कि किस प्रकार सपत्नी का मान रखा जाता है। अन्तिम अंक में रानी धारिणी यह निश्चय कर लेती है कि मालविका का परिचय राजा से करा दिया जाय। उस समय वह रानी इरावती से भी इसकी अनुमति लेती है। इस प्रकार रानी धारिणी कभी भी इरावती के मन को ठेस पहुँचाना नहीं चाहती।

**( ८ ) प्रतिभासम्पन्न नारी—**

रानी धारिणी तीव्र प्रतिभासम्पन्न नारी है। गणदास तथा हरदत्त के कलह के समय वह भाँप जाती है कि इसमें राजा तथा विदूषक का कुछ हाथ है अतएव वह नहीं चाहती कि मालविका नृत्य-कला की परीक्षा राजा के समक्ष दे। इसके साथ साथ वह इतनी धृष्ट भी नहीं बन सकती थी कि राजा का प्रत्याख्यान कर देती। अन्त में उसने मालविका की परीक्षा का प्रस्ताव मान लिया।

**( ९ ) वचन-दृढ़ता—**

रानी धारिणी जो वचन कह देती है, उस पर पूर्ण रूप से दृढ़ रहती है। बकुलावलिका रानी की इस विशेषता को पूर्णरूप से जानती है। रानी ने मालविका को अशोक की दोहद-पूर्त्ति के लिए नियुक्त किया और साथ ही यह भी प्रण किया कि तपनीयाशोक पाँच दिनों में पुष्पित हो जायगा, तो वह मालविका को अभिप्रेत पुरस्कार प्रदान करेगी। एक तो अशोक तीन रातों के अन्दर ही अन्दर पुष्पित हो गया और दूसरी ओर राजा के साथ मालविका को फिर देख लिया। फलस्वरूप मालविका दण्ड के भय से बहुत घबरा रही थी इस पर बकुलावलिका उसे मनोरथ

पूरा करने की बात कहकर प्रसन्न करती है, क्योंकि वह जानती है कि रानी अपना वचन अवश्य पूरा करेगी। कहती है—

"आश्वसितु सखी। सत्यप्रतिज्ञा देवी।"

**( १० ) उचित अधिकार-दात्री—**

रानी धारिणी किसी को भी उसके अधिकार से वञ्चित करना नहीं चाहती। जब उसे पता लगा कि मालविका उच्चवंश की कुमारी है, तो उसे इस बात का दुःख हुआ कि उसने मालविका को उस अधिकार से वञ्चित किया, जो उसे मिलना चाहिए था। अतः उसने बड़े खेद से कहा—

"चन्दनं खलु मया पादुका परिभोगेन दूषितम्।"

अनजान में किए गए अपने इस अपराध के पश्चाताप स्वरूप उसने मालविका का पाणिग्रहण संस्कार राजा से कर दिया। उक्त विवरण से स्पष्ट है कि रानी धारिणी आदर्श आर्यललना थीं, वह पति को ही सर्वस्व समझती थीं। पति की प्रसन्नता के लिए वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहती थीं।

## ( ८ ) राजा की द्वितीय पत्नी इरावती का चरित्र-चित्रण कीजिए—

**( १ ) अपूर्व सुन्दरी रमणी—**

इरावती अग्निमित्र की द्वितीय रानी थी। वह रानी धारिणी की अपेक्षा युवती थी। मालविका के आगमन से पूर्व राजा अग्निमित्र इरावती से अधिक प्रेम करता था। समुद्रगृह में टँगे चित्र भी इरावती के प्रति राजा के प्रणय को सूचित करते हैं। एक चित्र में राजा अग्निमित्र बड़े प्रेम से इरावती को देखता हुआ दिखाया गया था। इस चित्र को देखकर मालविका को ईर्ष्या हो गई। लिखा है—

"कैषा परिवृत्त वदनेन भर्त्रा स्निग्धया दृष्ट्या निध्यायते-अदक्षिण इव भर्ता मे प्रतिभाति यः सर्वदेवीजनमुज्झित्वैकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः।"

**( २ ) अद्वितीय मानिनी—**

इरावती इस तथ्य से पूर्णरूप से अवगत थी कि रानी धारिणी के प्रति राजा का प्रेम उतना नहीं जितना मेरे प्रति है। वह नहीं चाहती कि राजा उसे छोड़कर किसी दूसरी रमणी से प्रेम करे। जब उसे ज्ञात हुआ कि राजा का प्रेम मालविका से भी है, तब वह क्रोध में उन्मत्त हो गई। परिणाम स्वरूप उसने राजा को बहुत बुरा भला कहा—"शठ ! अविश्वसनीयहृदयोऽसि" उसके क्रोध की पराकाष्ठा उस समय दिखाई पड़ती है, जब वह राजा को अपनी तागड़ी से पीटना चाहती है। वह कहती है—"इयमपि हताशा त्वामेवानुसरति"। ( इति रशनामादाय राजानं ताडयितुमिच्छति। ) वह क्रोधावेश में इतनी पागल हो जाती है कि उसे ज्ञान ही नहीं रहता कि क्या करना चाहिए और वह क्या कर रही है ? राजा इरावती के चरणों पर भी गिरता है, पर वह राजा की एक नहीं सुनती। उल्टे उसे कहती है—"न खल्विमौ मालविकायाश्चरणौ, यौ ते स्पर्शदोहदं पूरयिष्यतः"। रानी इरावती वास्तव में इस प्रकार की अविनीत स्त्री नहीं है। उसका यह आचरण उसके मदयुक्ता होने के परिणामस्वरूप हुआ। मद प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि का अपहरण कर लेता है, इरावती की तो बात ही क्या ? परन्तु प्रकृतिस्थ होने पर वह अपने दुर्व्यवहार पर पश्चात्ताप करती है—"चित्रगतमार्यपुत्रं प्रसादयितुम्"।

**( ३ ) शंकालु हृदया—**

रानी इरावती का स्वभाव शंकालु है राजा अग्निमित्र के व्यवहार से उसे इस बात की शंका पहले ही हो जाती है कि राजा मालविका के प्रति आकृष्ट होता जारहा है। प्रमदवन में इरावती राजा को देखती है, पर जब वह दिखाई नहीं देता, तब वह निपुणिका के आगे अपना शंकालु हृदय प्रकट करती है—

"हञ्जे न मे चरणावन्यतः प्रवर्तेते। मनो मम किमपि विकारयति। आशङ्कितस्य तावदन्नं गमिष्यामि। स्थाने खलु कातरम् मे हृदयम्।"

इतना कहकर वह वहीं राजा की खोज में तल्लीन हो जाती है। अन्ततोगत्वा उसकी शंका सत्य ही निकलती है। राजा वहीं गुप्त रूप से मालविका के सौन्दर्य का पान कर रहा था।

**( ४ ) प्रतिकार-भावना से सम्पन्न—**

इरावती के स्वभाव में प्रतिकार की भावना पूर्ण रूप से व्याप्त थी। जब उसने राजा को मालविका के साथ बातें करते देख लिया, तब बहुत दुःखी हुई। उसने रानी के पास शिकायत की और फलस्वरूप मालविका तथा बकुलावलिका को कारावास का दण्ड दिलाया। जब विदूषक अपनी युक्ति से मालविका को कारा-मुक्त कराने में समर्थ हो गया, तब इरावती वास्तविकता को न समझकर इस कार्य में रानी धारिणी का हाथ समझने लगी। वह नहीं चाहती थी कि मालविका का विवाह राजा के साथ हो, पर परिस्थिति-वश उसे रानी धारिणी को अनुमति देनी पड़ी। उसे उसका दुःख बहुत था, तभी तो वह राजा को बधाई देने के लिए स्वयं न आई। वह बड़ी क्रोधशील स्त्री थी, तभी तो राजा ने उसके सम्बन्ध में कहा—"दीर्घरोषता तत्र भवत्याः।

## ( ९ ) परिव्राजिका कौशिकी के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए—

**( १ ) परिव्राजिका स्वरूपा—**

कौशिकी नाटक में परिव्राजिका के रूप में विद्यमान है। वह माधवसेन की बहन है। माधवसेन जब कौशिकी के साथ मालविका को लेकर आ रहा था, तब मार्ग में दस्युओं से मुठभेड़ में माधवसेन मारा जाता है। मालविका भी अलग हो जाती है। तब सर्वनाश के समुपस्थित होने पर कौशिकी सन्यासिनी बन जाती है। घूमते घूमते वह रानी धारिणी के पास पहुँचती है और रानी का आश्रय ग्रहण कर लेती है। सौभाग्य-वश मालविका को भी वहीं पाकर प्रसन्नचित्त हो जाती है और वहाँ रहने का निश्चय करती है।

**( २ ) बुद्धिमती नारी—**

कौशिकी एक बुद्धिसम्पन्न स्त्री है। उसने अपने मानसिक गुणों के कारण सभी के मन में ऊँचा स्थान बना लिया है। यही कारण है कि सभी लोग उसे पण्डित कौशिकी कहकर पुकारते हैं। वह प्रत्येक कार्य को बड़ी निपुणता के साथ करती है। वह अपने हृदय में निरन्तर अभिलाषा रखती है कि मालविका एक वर्ष के दासी-जीवन के पश्चात् महाराज अग्निमित्र की पत्नी बन जाए। अतएव विदूषक के साथ मिलकर मालविका और राजा के मिलन की योजनाएँ बनाने लगी। कितनी निपुणता के साथ उसने यह कार्य किया, जिसका अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि रानी धारिणी तथा इरावती तक को उसके ऊपर तनिक भी सन्देह नहीं हुआ। रानी धारिणी को कदापि यह इच्छा नहीं थी कि मालविका किसी भी दशा में अग्निमित्र के सामने आकर नृत्य करे। परन्तु परिव्राजिका कितनी चतुराई से रानी को अन्ततोगत्वा ऐसा करने पर सहमत कर ही लेती है। यह समझकर कि रानी कुछ क्रुद्ध है, वहीं बड़ी विनम्रता के साथ रानी को समझाती है—

अनिमित्तमिन्दुवदने ! किमत्रभवतः पराङ्मुखी भवसि।
प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारणकोपाः कुटुम्बिन्यः॥

**( ३ ) नृत्य-कला की बारीकियों का ज्ञान रखनेवाली—**

कौशिकी को नृत्यकला की बारीकियों का ज्ञान पूर्ण रूप से था। उसने चलित-नृत्य को जान-बूझकर चुना था। इस नृत्य में नर्तकी अपने मन में स्थित प्रेम के भावों को संगीत की सहायता से

अपने प्रिय के आगे प्रकट करने में समर्थ होती है। यही नहीं, राजा मालविका के शारीरिक सौन्दर्य को भी सम्यक् देख सके, कौशिकी ने नाट्याचार्यों को आदेश दिया—

"निर्णयाधिकारे ब्रवीमि सर्वाङ्गसौष्ठवाभिव्यक्तये विरलनेपथ्ययोः पात्रयोः प्रवेशोऽस्तु"।

**( ४ ) रानी धारिणी की सहायिका—**

पण्डित कौशिकी का रानी धारिणी से बड़ा प्रेम है। वह प्रतिक्षण उसके साथ रहती है। उसके सुख दुःख को अपना सुख दुःख समझती है। तभी तो उसे रानी धारिणी की सहायिका कहा गया गया है। विदूषक पण्डित कौशिकी के सम्बन्ध में कहता है—

"अपिहा अपिहा ! उपस्थिता पीठमर्दिकां पण्डितकौशिकीं पुरस्कृत्य देवी धारिणी।"

जब रानी धारिणी के चरणों में चोट आ गई थी, तब कौशिकी उसके पास बैठी कथाएँ कह-कह कर उसका मनोरञ्जन करती थी। प्रतिहारी राजा से कहती है—"प्रवातशयने देवी निषण्णा रक्त-चन्दनधारिणा परिजनहस्तगतेन चरणेन भगवत्या कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति।"

**( ५ ) नृत्य एवं संगीत-कला में कुशल—**

पण्डित कौशिकी नृत्य एवं संगीत कला में बड़ी कुशल है। उसके इस ज्ञान की धाक नाट्या-चार्यों पर भी है। इसी गुण के कारण दोनों नाट्याचार्यों के विवाद को समाप्त करने के लिए उसे ही निर्णायिका चुना गया। इस सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर अनेक नृत्य एवं संगीत सम्बन्धी ज्ञान का संकेत मिलता है। वह राजा से कहती है,—"देव ! चतुष्पदोद्भवं चलितं दुष्प्रयोज्यमुदाहरन्ति तत्रैकार्थसंश्रयमुभयोः प्रयोगं पश्यामः।" यही नहीं, निम्नांङ्कित पद्य तो संगीत में उसकी पारंगतता को प्रकट करता है—

अङ्गैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ भावो भावं नुदति विषयाद् रागबन्धः स एव॥

**( ६ ) श्रृंगार-कला में दक्ष—**

कौशिकी श्रृंगार-कला में भी परमपटु है। वह जानती है कि किस समय किस प्रकार का श्रृंगार उचित होगा। जब रानी धारिणी की आज्ञा से मालविका को वैवाहिक वेश में सजाया जा रहा था, तब उसने कहा—"यत्त्वं प्रसाधन-गर्वं वहसि, तद् र्शय मालविकायाः शरीरे वैदर्भविवाहनेपथ्यम्।"

**( ७ ) सर्पदंशन की चिकित्सा का ज्ञान—**

पण्डित कौशिकी को साँप द्वारा काटे गए व्यक्ति की चिकित्सा का ज्ञान भी है। वह ज्ञान इतना सफल सिद्ध हुआ है कि आधुनिक विज्ञान के युग में भी इसे कोई नहीं बदल सका। कौशिकी के अनुसार—

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दष्टमात्राणामायुषः प्रतिपत्तयः॥ ( ४।४ )

**( ८ ) अनुभव सम्पन्ना—**

पण्डित कौशिकी को सांसारिक अनुभव का विशेष ज्ञान है। इसी अनुभव के आधार पर बुराई और अच्छाई को पहचानने में उसे देर नहीं लगती। यही कारण है कि वह वास्तविक शिक्षक की परिभाषा स्पष्ट रूप से देती है। वह कहती है—

"तदेव वक्तुकामास्मि"—

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥ ( १।१६ )

**( ९ ) ज्योतिषशास्त्र पर विश्वास—**

पण्डित कौशिकी ज्योतिष शास्त्र पर पर्याप्त विश्वास रखती है । यही कारण है कि वह मालविका के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी को आप्तवाक्य समझ कर उस पर आचरण करती है । उसे इस तथ्य का ज्ञान था कि मालविका को उचित वर प्राप्ति से एक वर्ष पूर्व दासी-जीवन व्यतीत करना होगा। अतः रानी धारिणी के पास दासी का जीवन व्यतीत करती हुई मालविका को देखकर वह वास्तविकता नहीं बताती । यदि वह वास्तविकता को बतला देती तो सम्भवतः उसे कहीं अन्यत्र दासी-जीवन व्यतीत करना पड़ता ।

**( १० ) परोपकार-भावना ही जीवन का उद्देश्य—**

पण्डित कौशिकी का रानी धारिणी के पास जीवन व्यतीत करने का प्रमुख प्रयोजन यही था कि वह मालविका की देखरेख करे और समुचित समय आने पर उसका विवाह करके अपने भाई के पास चली जाए । तभी तो नाटक के अन्त में रानी धारिणी की कृपा से मालविका महाराज की रानी बन गई, तब वह वापस जाना चाहती है, परन्तु राजा ने उसे जाने नहीं दिया ।

## ( १० ) विदूषक गौतम का चरित्राङ्कन कीजिए—

**( १ ) राजा का सहायक मित्र—**

प्रस्तुत नाटक में विदूषक का नाम गौतम है । संस्कृत नाटकों में विदूषक एक आवश्यक पात्र है । यह नायक का मित्र होता है तथा हास्य रस का अभिनेता होता है । विदूषक का जितना महत्त्व "मालविकाग्निमित्र" नाटक में है, उतना अन्य किसी नाटक में नहीं । इसमें विदूषक हास्यकारी कम और राजा का सहायक अधिक दिखाया गया है । वास्तविकता तो यह है कि इस नाटक में विदूषक का महत्त्व इतना प्रबल है कि यदि इसे इस नाटक से बहिष्कृत कर दिया जाय, तो नाटक का सम्पूर्ण कलेवर ही निरस्त हो जाएगा । इसी विदूषक की सहायता एवं युक्तियों से नाटक का कथानक आगे बढ़ता है और राजा को सफलता प्राप्त होती है ।

**( २ ) राजा का आज्ञाकारी सेवक—**

"मालविकाग्निमित्र" नाटक के प्रारम्भ में ही गौतम राजा का आज्ञाकारी सेवक प्रतीत होता है । वह स्पष्ट रूप से कहता है—

"आज्ञप्तोऽस्मि तत्र भवता राज्ञा-गौतम ! चिन्तय तावदुपायम्, यथा मे यदृच्छा-दृष्ट-प्रतिकृतिः मालविका प्रत्यक्षदर्शना भवति ।" यह एक आज्ञाकारी सेवक के रूप में राजा की सहायता करने लग जाता है । वह नाट्याचार्यों में परस्पर झगड़ा पैदा कर देता है । इसी झगड़े के निर्णय के लिए पण्डित कौशिकी निर्णायिका बनाई जाती है । गौतम ने परिव्राजिका को पहले ही से अपनी ओर मिला लिया था । फलस्वरूप मालविका नृत्य-प्रदर्शन के लिए रंगमंच पर आती है । नृत्य के पश्चात् कुछ समय के लिए मालविका को रंगमंच पर रोककर विदूषक ने उसके सौन्दर्य-पान के लिए राजा को और भी अधिक अवसर दिया । विदूषक कहता है—"भवति तिष्ठ, किमपि वो विस्मृतः क्रमभेदः । तं तावत् प्रक्ष्यामि ।" विदूषक ने मालविका की सखी बकुलावलिका को भी अपने साथ मिला लिया और प्रमदवन में तथा समुद्रगृह में मालविका के साथ राजा का मिलन सम्भव बना दिया । समुद्रगृह में कितनी निपुणता के साथ बकुलावलिका को वहाँ से हटा देता है और राजा को पूर्ण एकान्त की सुविधा प्रदान करता है । वह कहता है—

"बकुलावलिके ! एष बालाशोक वृक्षस्य पल्लवानि लंघयति हरिणः एहि निवारयाव एनम्" । इस प्रकार दोनों वहाँ से निकल जाते हैं ।

उसकी इस असीम सहायता के लिए राजा गौतम का अत्यन्त आभारी है । वह जानता है कि उसकी सहायता से ही उसे इस कार्य में आशा होने लग गई है । यथा—

"साधु वयस्य ! निपुणमुपक्रान्तम् । इदानीं दुरधिगमसिद्धावप्यस्मिन्नारम्भे वयमाशंसामहे कुतः—

अर्थं स प्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना स चक्षुरपि" ॥

**( ३ ) प्रेम-विषयक सचिव—**

वास्तविकता तो यह है कि विदूषक राजा के व्यक्तिगत कार्यों अर्थात् प्रेम का मन्त्री है, तभी तो राजा ने उसे "कार्यान्तर सचिवः" कहकर आदर्श प्रदर्शित किया है ( अयमपरः कार्यान्तर सचिवः ) उसकी कुशल बुद्धि पर राजा को बड़ा विश्वास है । फलतः उसकी हर बात को मानकर राजा आगे बढ़ता है । वह विदूषक से कहता है—

"प्रतिगृहीतं वचः सिद्धिदर्शिनो ब्राह्मणस्य" ।

**( ४ ) भोजनभट्ट एवं आलस्यपूर्ण—**

"मालविकाग्निमित्र" नाटक में विदूषक अपने वास्तविक रूप में भी सामने आता है । अन्य नाटकों के विदूषकों के समान वह अधिक भोजन और आलस्य के दोष से भी मुक्त नहीं । अन्य नाटकों में तो विदूषक को सदैव भोजन के स्वप्न देखने को मिलते हैं, परन्तु इस नाटक में विदूषक की भोजनलिप्सा केवल दो स्थलों पर ही प्रकट की गई है । द्वितीय अंक में जब भोजन का समय हो गया तब विदूषक असीम प्रसन्न हुआ । वह कहता है—

"अविहा ! अविहा ! ब्राह्मणस्य भोजनवेला संवृत्ता, अत्रभवतोऽपि । उचितवेलातिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति भवति विशेषपानभोजनं त्वरय ।"

"भवताप्यहम् दृढं विपणिकन्दुरिव मे उदराभ्यन्तरं दह्यते ।"

तृतीय अंक में भी भोजन का स्वप्न देखता हुआ कहता है—

"ही ही इयं खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिका उपनता" ।

**( ५ ) सर्पभीरूता—**

विदूषक गौतम की हास्यप्रधान प्रवृत्ति का दूसरा स्वरूप उसकी सर्पभीरुता है । निपुणिका विदूषक की इस प्रवृत्ति को जानती है । तभी तो वह कहती है—

"इमं भुजंगभीरुकं ब्रह्मबन्धुमनेन भुजंग कुटिलेन दण्डकाष्ठेन स्तम्भान्तरिता भीषयिष्यामि ।"

निपुणिका अपने इस कार्य में सफल हो गई । विदूषक केवल डरा ही नहीं, अपितु उसने सर्प द्वारा काटे जाने का सम्पूर्ण बहाना भी व्यक्त कर दिया—

"( सप्रहासम् ) कथं दण्डकाष्ठमेतत् । अहं पुनर्जाने यन्मया केतकीकण्टकैर्दंशं कृत्वा सर्पस्य इव देशः कृतस्तन्मे फलितमिति ।"

**( ६ ) दिवास्वप्न का द्रष्टा—**

विदूषक द्वारा दिन में सोया जाना भी कम हास्यप्रद नहीं है । सोते हुए विदूषक बुड़बुड़ाता है, फलस्वरूप उसकी योजनाओं का रहस्य इरावती के समक्ष प्रकट हो जाता है । बुडबुड़ाता हुआ विदूषक कहता है—

"भवति मालविके ! इरावतीमतिक्रामन्ती भव ।"

**( ७ ) तीव्रबुद्धि गौतम—**

अन्य नाटकों में विदूषक प्रायः मन्दबुद्धि दिखाया जाता है परन्तु "मालविकाग्निमित्र" नाटक में विदूषक गौतम मन्दबुद्धि नहीं है । उसी की बुद्धिमत्ता के परिणामस्वरूप राजा-मालविका-मिलन में सफल हो जाता है । वैसे विदूषक अपने आपको मन्दबुद्धि समझता है । वह कहता है—

"तेन हि पण्डितपरितोषप्रत्यया ननु मूढा जातिः ।
पुनर्मन्दस्यापि मे तस्मिन् प्रत्युत्पन्ना मतिः ।"

**( ८ ) रानियों की दृष्टि में विदूषक की दुष्टता—**

"मालविकाग्निमित्र" नाटक में रानी धारिणी तथा रानी इरावती के अतिरिक्त सभी पात्र विदूषक को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। रानी धारिणी उसे कलह-नायक कहकर पुकारती है—"ननु कलहप्रियोऽसि ।" रानी इरावती विदूषक और उसके वचनों को आदर नहीं देती। वह कहती है—"गौतमवचनमपि आर्यः हृदये करोति ।" गौतम को इरावती ब्रह्मबन्धु कहती है—"कथं खलु ब्रह्मबन्धुरन्यथा जीविष्यति तथा सत्यमत्र ब्रह्मबन्धुना कृतः प्रयोगः" । वह अग्निमित्र का पूर्णरूप से कामतन्त्र सचिव मानती है—"इयमस्य कामतन्त्रसचिवस्य नीतिः" । इसी कारण से वह निपुणिका के इस प्रस्ताव का अनुमोदन करती है कि विदूषक को "दण्ड प्रक्षेपण" से हटाया जाय। विदूषक भी इस बात को जानता है कि दोनों रानियां मुझे अच्छा नहीं समझतीं। यही कारण है कि विदूषक रानी धारिणी के सम्मुख आकर कहता है—

"भवति ! जीवेयं वा न वा यन्मयात्रभवन्तं सेवमानेन तेऽपराद्धं तन्मर्षय ।"

**( ९ ) अन्य व्यक्तियों के द्वारा आदरणीय—**

रानियों को छोड़कर अन्य सभी लोग गौतम को आदर की दृष्टि से देखते हैं। वे उसे "आर्य गौतम" कहकर पुकारते हैं। गणदास विदूषक की बुद्धि का महान् प्रशंसक है। वह कहता है—

"देव प्रत्ययात् सम्भाव्यते सूक्ष्मदर्शिता गौतमस्य ।"

वस्तुतः गौतम प्रशंसा का पात्र है। दोनों रानियाँ उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखती हैं, केवल अपने स्वार्थ के लिए। विदूषक की सफल योजनाओं से ही राजा मालविका से एकान्त में मिल सका और उसके मानस में भी अपने लिए प्रेम की पीड़ा को जगा सका। यदि रानियों को छोड़कर निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो कहा जा सकता है कि विदूषक राजा का सच्चा मित्र एवं हितैषी है। राजा के सुखों के लिए अपना सर्वस्व सुख स्वाहा कर सकता है।

**( १० ) ज्योतिषशास्त्र एवं कला का ज्ञाता—**

विदूषक गौतम विद्वान् भी है। वह ज्योतिषशास्त्र की अनेक बातों को जानता है तथा नृत्य-कला का भी पर्याप्त ज्ञान रखता है—

"यावदङ्गारको राशिमिवानुवक्रं प्रतिगमनं न करोति ।"
"न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका ।"

**( ११ ) नाटक का सर्वोत्तम पात्र—**

वास्तविकता तो यह है कि "मालविकाग्निमित्र" नाटक से यदि विदूषक गौतम को निकाल दिया जाय तो नाटक का मूल्य अत्यधिक गिर जाएगा। विदूषक के कार्य-कलापों के आधार पर ही नाटक गौरव का पात्र हुआ है। जान पड़ता है कि स्वयं महाकवि कालिदास ने अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही गौतम को अर्पण कर दिया है। गौतम की चातुरी ही नाटक का प्राण है। गौतम के व्यक्तित्व के समक्ष नाटक के अन्य पात्र निर्जीव से ज्ञात होते हैं।
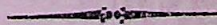
# पात्र-परिचय

## पुरुष-पात्र

**सूत्रधार**—नाटक का प्रबन्धक ।
**पारिपार्श्वक**—सूत्रधार का सहायक ।
**अग्निमित्र**—विदिशा-नरेश ( नायक ) ।
**वाहतक**—अग्निमित्र का मन्त्री ।
**गौतम**—विदूषक ( राजा का मित्र ) ।
**मौद्गल्य**—कञ्चुकी ( वृद्ध ब्राह्मण ) ।
**गणदास**—नाट्याचार्य ।
**हरदत्त**—नाट्याचार्य ।
**सारस**—कुब्ज ( धारिणी का भृत्य )
**वैतालिक**—स्तुति गायक ।

## स्त्री-पात्र

**मालविका**—माधवसेन की बहन ( नायिका ) ।
**धारिणी**—अग्निमित्र की पटरानी ।
**इरावती**—अग्निमित्र की दूसरी रानी ।
**कौशिकी**—( परिव्राजिका ) माधवसेन के सचिव सुमति की विधवा बहन ।
**बकुलावलिका**—धारिणी की दासी ( मालविका की सखी ) ।
**मधुकरिका**—मालिन ।
**कौमुदिका**—दासी ।
**समाहितिका**—परिव्राजिका की सेविका ।
**निपुणिका**—इरावती की दासी ।
**जयसेना**—प्रतीहारी ।
**मदनिका**— } माधव से भेजी गई शिल्पी दासियाँ ।
**ज्योत्स्निका**— }

## उल्लिखित-पात्र

**यज्ञसेन**—विदर्भ का राजा ।
**माधवसेन**—यज्ञसेन का चचेरा भाई ( मालविका का भाई ) ।
**सुमति**—माधवसेन का सचिव ।
**वसुमित्र**—अग्निमित्र का पुत्र ।
**पुष्यमित्र**—अग्निमित्र का पिता ।
**वीरसेन**—धारिणी का भाई ( सेनापति ) ।
**मौर्यसचिव**—मौर्यवंशियों का मन्त्री ( यज्ञसेन का साला ) ।
**ध्रुवसिद्धि**—विषवैद्य ।
**वसुलक्ष्मी**—राजकुमारी ( अग्निमित्र की पुत्री ) ।
**माधविका**—भू-गृह में नियुक्त सेविका ।
**चन्द्रिका**—रानी इरावती की दासी ।

॥ श्रीः ॥

महाकविकालिदासविरचितम्

# मालविकाग्निमित्रम्

## संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्

### प्रथमोऽङ्कः

**एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः**
**कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः पुरस्ताद् यतीनाम् ।**
**अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः**
**सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥ १ ॥**

अन्वयः—प्रणतबहुफले एकैश्वर्ये स्थितः अपि स्वयं कृत्तिवासाः, कान्तासम्मिश्रदेहः अपि यः अविषयमनसां यतीनां पुरस्तात्, अष्टाभिः तनुभिः जगत् बिभ्रतः अपि यस्य अभिमानः न, स ईशः सन्मार्गविलोकनाय वः तामसीं वृत्तिं अपनयतु ॥ १ ॥

**एकैश्वर्ये इति ।** प्रणतबहुफले = विनम्राधिकधने, एकैश्वर्ये = महदैश्वर्यसम्पन्ने, स्थितः = वर्तमानः अपि स्वयं = स्वकीयशरीरेण, कृत्तिवासाः = व्याघ्रचर्मधारी, कान्ता-सम्मिश्रदेहः = गौरीसम्मिलितशरीरः अपि यः = भगवान् शङ्करः, अविषयमनसां = विषय-शून्यहृदयानां, यतीनां = तपस्विनाम्, पुरस्तात्=श्रेष्ठतमः, अष्टाभिः तनुभिः=अष्टसंख्यकाभिः मूर्त्तिभिः ( पृथिवीजलाग्निवायुवियद्यजमानेन्दुसूर्यरूपाभिः ) कृत्स्नं = समस्तम्, जगत् = चराचरात्मकं भुवनम्, बिभ्रतः = धारयतः अपि यस्य अभिमानः = अहङ्कारः न = नास्ति, स ईशः = सः परमेश्वरः वः = युष्माकं सामाजिकानां, सन्मार्गावलोकनाय = यमनियमादि-दर्शनाय, तामसीं = तमोगुणोत्पन्नां, वृत्तिं = चेतोवृत्तिम्, व्यपनयतु = दूरीकरोतु ॥ १ ॥

**समासः**—प्रणतबहुफले = प्रणतानां बहूनि फलानि यस्मात् सः तस्मिन् । कृत्तिवासाः=

---

अपने भक्तों को मनोवांछित फल देने के लिए अपार भाण्डार अपने पास होते हुए भी जो केवल हाथी की खाल ओढ़ कर ही अपना काम चला लेते हैं, अपने आधे शरीर में अपनी पत्नी गौरी को बैठाए रहने पर भी जो संसार के भोगों से अपना मन दूर हटाए रहते हैं और अपने आठों रूपों से सारे संसार का पालन करते हुए भी जो अभिमान को पास फटकने नहीं देते, ऐसे संसार के स्वामी शङ्कर भगवान्, पाप की ओर ले जाने वाली आप लोगों की बुद्धि को इस प्रकार नष्ट कर दें कि आप लोगों का मन अच्छे कार्यों के सम्पादन में उन्मुख हो जाय ॥ १ ॥

**शङ्कर की विलक्षण मनोवृत्ति**—भगवान् शङ्कर की मनोवृत्ति अति विलक्षण बताई गई है। वे संसार को देने के लिए अपार सम्पत्ति रखते हुए भी केवल गजचर्म धारण करते हैं। अपनी पत्नी

( नान्द्यन्ते । )

कृत्तिः वासः यस्य सः । कान्तासंमिश्रदेहः = कान्तया गौर्या सम्मिश्रः देहः यस्य सः । अविषयमनसां = न विद्यन्ते विषया यत्र तानि अविषयाणि, अविषयाणि मनांसि येषां तेषाम् ।

**भावार्थः**—यो भगवान् शङ्करः स्वकीयभक्तेभ्यो मनोवांछितफलानां अपारं भाण्डारं दधानोऽपि केवलं गजचर्म परिधाय स्वकार्यं सम्पादयति । स्वशरीरार्धं स्वकीयपत्नीं गौरीं निधायापि विश्वस्य भोगेभ्यः स्वकीयं मनो निवारयति । स्वाष्टाभिर्मूर्त्तिभिः संसारस्य पालनं कुर्वन्नपि स्वमनसि न धारयत्यभिमानम् । एतादृशो विश्वस्य प्रभुः भगवान् शङ्करः पापमार्गानुसारिणीं युष्माकं बुद्धिं नाशयतु येन सतां मार्गाणामवलोकनं पूर्णरूपेण भवेत् ।। १ ।।

एष नान्दी श्लोकः—तल्लक्षणाम्—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संमता ।।
मांगल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।।

---

गौरी को अपने आधे शरीर में स्थापित करते हुए भी तपस्वी एवं योगियों में अग्रगण्य हैं । अपने आठों स्वरूपों से विश्व-पालन करते हुए भी अभिमान-शून्य हैं । इस प्रकार उनमें तीन विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं :—

१—त्याग, २—संयम, ३—अभिमानशून्यता ।

**शङ्कर की अष्टमूर्ति**—महाकवि कालिदास ने अपने सर्वोत्तम नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल" में स्पष्ट रूप से आठों मूर्त्तियों का वर्णन किया है । लिखा है :—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।।

इस पद्य में जल, अग्नि, होता, चन्द्र, सूर्य, आकाश, पृथ्वी, वायु को आठ मूर्तियों के रूप में प्रतिपादित किया गया है ।

विष्णुपुराण में लिखा है :—

सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः ।।

**अलंकार**—इस पद्य में "विरोधाभास' अलंकार है । जिसका लक्षण निम्नांकित है :—

श्लेषादिभूर्विरोधस्य] विरोधाभासता मता ।
अप्यन्धकारिणानेन जगदेतद् प्रकाश्यते ।।

**छन्द**—इसमें स्रग्धरा वृत्त है ।

**( नान्दीपाठ के अनन्तर )**

**नान्द्यन्ते**—नान्दी आशीर्वादात्मक वचन से सम्पन्न होती है । इसमें देवता, ब्राह्मण, राजा आदि की स्तुति की जाती है । प्रायः इसमें मंगलात्मक वाक्य, शंख, चन्द्रमा, कमल, कोक, कैरव आदि के वर्णनों से सम्पन्न होती है । कहीं द्वादश पदों से तथा कहीं आठ पदों से युक्त होती है ।

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण ( नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ) मारिष, इतस्तावत् ।

( प्रविश्य )

पारिपार्श्विकः—भाव, अयमस्मि ।

---

सूत्रं "अभिनेयसूचनं धारयति" इति सूत्रधारः । सूत्रधारस्तु नाटके प्रधाननटो भवति । तस्य लक्षणम्—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयते यस्तु सूत्रधारः स उच्यते ॥

**सूत्रधारः**—कथयति–भूयसा नान्दीप्रयोगेण अलम् । अधिको नान्दीपाठो मा कर्तव्य इति ।

नेपथ्याभिमुखमवलोक्य—वेशसम्पादनार्थं निश्चितं प्रदेशं दृष्ट्वा । मारिष ! अत्र, आगम्यताम् ।

**पारिपार्श्वकः**—महोदय ! आगतोऽस्मि ।

---

नान्दी नाटक के प्रारम्भ में की जाती है. जो प्रार्थना रूप में पाई जाती है । नन्दयति आनन्दयति स्तवेन देवादीन् आशीर्वादेन सभ्यादीन् वेति नान्दी । आचार्य भरत ने कहा है :—

देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा ।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति कीर्त्तिता ।

नान्दी के द्वारा देवता लोग प्रसन्न होते हैं अथवा यह प्रसन्न करती है । भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार नान्दी नाटक के प्रारम्भ में अवश्य की जाती है । कविराज विश्वनाथ ने अपने लक्षण "साहित्यदर्पण में लिखा है :—

"तथाप्यवश्यं कर्त्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये"

नान्दी के स्वरूप—नान्दी तीन प्रकार की होती है । (१) आशीर्वादस्वरूप, (२) नमस्कारस्वरूप, (३) वस्तुनिर्देशस्वरूप ।

( १ ) आशीर्वादस्वरूप—इस नान्दी में श्रोतागणों को आशीर्वाद दिया जाता है । "मालविकाग्निमित्र" नाटक की इस नान्दी में आशीर्वादस्वरूपा नान्दी विद्यमान है क्योंकि इसमें श्रोताओं को आशीर्वाद दिया गया है, उनके कल्याण की कामना की गई है ।

( २ ) नमस्कारस्वरूप—इस नान्दी में किसी देवता को नमस्कार किया जाता है ।

( ३ ) वस्तुनिर्देशस्वरूप—इस नान्दी में नाटक में विद्यमान होने वाली वस्तुओं की सूचना दी जाती है ।

**सूत्रधार**—नान्दी पाठ के विस्तार की आवश्यकता नहीं । **( नेपथ्य की ओर देखकर )** अरे भाई मारिष ! इधर तो आओ ।

**विशेष**—नाटक के प्रधान संचालक को सूत्रधार कहते हैं । "सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः" सूत्र अर्थात् नाटक के उपकरणों को धारण करने वाला सूत्रधार कहा जाता है । जो नाटक में प्रधान नट होता है । "काष्ठपुत्तलिका" नृत्य में सूत्र को धारण करने की आवश्यकता पड़ती है । सम्भवतः इसी आधार पर सूत्रधार शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ हो ।

**नेपथ्ये**=प्रसाधन-स्थान को कहते हैं । लिखा है—"नेपथ्यं स्यात् जवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्" । जिस स्थान पर नाटक के पात्र अपना स्वरूप तथा वेशभूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं ।

**पारिपार्श्वक**—**( प्रवेश कर )** आर्य ! यह मैं आ गया हूँ ।

**विशेष**—परिपार्श्व में स्थित रहने वाले को पारिपार्श्विक कहते हैं । यह सूत्रधार का सहायक

**सूत्रधारः**—अभिहितोऽस्मि विद्वत्परिषदा—"कालिदासग्रथितवस्तु मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकमस्मिन्वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमि"ति। तदारभ्यतां संगीतकम्।

**पारिपार्श्विकः**—मा तावत्। प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः।

**सूत्रधारः**—अयि, विवेकविश्राममभिहितम्। पश्य—

**पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।**
**सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ २॥**

---

**सूत्रधारः**—विदुषां सभा मामकथयत् यत् महाकविकालिदासेन विरचितं मालविकाग्निमित्रं नाटकमस्मिन् वसन्तोत्सवावसरे अभिनेयम्। अतएव संगीतकार्यं प्रारम्भं कुरु।

**पारिपार्श्वकः**—तव कथनमुचितं नास्ति। प्रथितं यशो येषान्ते तेषां विख्यातकीर्तीनां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्राचीनानां विख्यातकवीनां प्रबन्धान् ग्रन्थान् अतिक्रम्य उल्लंघ्य कालिदासस्य तात्कालिकस्य ( वयसा यशसा चावृद्धस्य ) क्रियायां ग्रन्थे बहुमानं आदराधिक्यं कथं केन प्रकारेण ? यदा प्रसिद्धानां कवीनां ग्रन्था वर्तन्ते तर्हि कथमप्रसिद्धस्य कालिदासस्य ग्रन्थेऽत्यादरः ?

**सूत्रधारः**—मारिष ! तव कथनन्तु विचारशून्यमस्ति। स्वकीयमर्थं सम्पादयितुं कथयति पुनः सूत्रधारः।

**अन्वयः**—सर्वं पुराणम् इति एव साधु न, काव्यं नवम् इति एव अवद्यं न। सन्तः परीक्ष्य अन्यतरत् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ( भवति )॥ २॥

**पुराणमिति**। सर्वं = सम्पूर्णं, पुराणम् = प्राचीनम्, इति एव = अनेन कारणेन ( प्राचीनत्वेन ) साधु = रमणीयम् न = न भवितुमर्हति। काव्यम् = अचिररचितम् नवम् =

---

होता है तथा उसके आसपास रहा करता है, सूत्रधार इसको "मारिष" कहकर पुकारता है तथा पारिपार्श्विक सूत्रधार को "भाव" शब्द के द्वारा सम्बोधित करता है। साहित्यदर्पण में लिखा है :—

सूत्रधारं वदेत भाव इति वै पारिपार्श्विकः।
सूत्रधारो मारिषेति।

**सूत्रधार**—विद्वानों की सभा ने मुझसे कहलाया है कि वसन्तोत्सव के अवसर पर महाकवि कालिदास द्वारा विरचित "मालविकाग्निमित्र" नाटक का ही अभिनय किया जाय। अतएव चलकर संगीत का कार्य प्रारम्भ करो।

**पारिपार्श्वक**—नहीं, यह उचित नहीं है। भास, सौमिल्लक और कविपुत्र जैसे बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों के नाटकों को छोड़कर आप आजकल के इस नौसिखुए कवि कालिदास के नाटक को इतना महत्त्व क्यों दे रहे हैं ?

**विशेष**—कथन में आये हुए महाकवि भास के नाटक प्रतिमा इत्यादि उपलब्ध हैं किन्तु सौमिल्लक और कविपुत्र की रचनाएँ अप्राप्य है।

**सूत्रधार**—अरे, यह बात तो तुमने अपनी बुद्धि को विश्राम देकर कही है। देखो—

पुराने होने से ही न तो सब अच्छे हो जाते है, न नए होने से सब बुरे हो जाते हैं। समझदार लोग तो दोनों के गुण दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना करके, उनमें से जो अच्छा होता है, उसे

पारिपार्श्विकः—आर्यमिश्राः प्रमाणम् ।

सूत्रधारः—तेन हि त्वरतां भवान् ।

**शिरसा प्रथमगृहीतामाज्ञामिच्छामि परिषदः कर्तुम् ।**
**देव्या इव धारिण्याः सेवादक्षः परिजनोऽयम् ॥ ३ ॥**

---

नवीनम् इति एव = अनेन कारणेन ( नवीनत्वेन ) अवद्यम् = निन्दनीयम् न नोचितमिति भावः । पुराणस्यापकर्षदर्शनान्नवस्योत्कर्षदर्शनाच्च पुराणात्वमुत्कर्षसूचकं नवत्वञ्चापकर्ष-सूचकमिति विचारः नोचितः । अस्य समाधाने कथयति । सन्तः = विद्वांसः परीक्ष्य = गुणदोषौ पूर्णरूपेण आलोच्य अन्यतरत् = पुराणकाव्ययोर्मध्ये एकतरम् उत्तममेव भजन्ते = सेवन्ते । एतेन उत्कृष्टं काव्यमेव समादरपात्रं भवतीति बोध्यम् । मूढः=मूर्खः परस्य = अन्यस्य प्रत्ययेन = ज्ञानेन, नेया = प्राप्या बुद्धिर्यस्य तादृशः । परकीयसम्मत्या एव स्वसम्मति-व्यवस्थापक इति भावः । एतेन कथनेन ( पद्येन ) मालविकाग्निमित्रं नाटकं सारसम्पन्नमेव मन्तव्यम् ॥ २ ॥

समासः—परप्रत्ययनेयबुद्धिः—परस्य प्रत्ययेन नेया बुद्धिर्यस्य तादृशः परप्रत्यय-नेयबुद्धिः ॥ २ ॥

भावार्थः—प्राचीनमेव सर्वमुत्तमं नवीनमेव सर्वमनुत्तममेतत्कथनं नोचितम् । पण्डितास्तु गुणादोषौ निरीक्ष्य किमपि उत्तमं अनुत्तमं वा कथयन्ति किन्तु मूर्खः परविश्वासेन उत्तम-मनुत्तमं च जानाति ॥ २ ॥

पारिपार्श्वकः—आर्यमिश्राः = सभ्यश्रेष्ठाः, प्रमाणम् = निर्णयकारिणः प्रधानसभ्याः यत् उत्कृष्टत्वेन स्वीकुर्वन्ति तदेवोत्तमं भवति । श्रीमतां कथनमेव प्रमाणसम्पन्नं वर्तते ।

सूत्रधारः—अतएव भवान् शीघ्रतां करोतु ।

अन्वयः—देव्या धारिण्या अयं सेवादक्षः परिजन इव ( अहं ) परिषदः शिरसा प्रथमगृहीताम् आज्ञां कर्तुम् इच्छामि ॥ ३ ॥

शिरसेति । देव्याः = राजमहिष्याः, धारिण्याः = अग्निमित्रस्य ज्येष्ठाया भार्यायाः, अयम् = पुरोदृश्यमानः, सेवादक्षः = परिचरणनिपुणः, परिजनः = परिचर्याधिकृतदासी-

---

अपना लेते हैं और जिनके पास अपनी समझ नहीं होती है, उन्हें तो जैसा दूसरे समझा देते हैं, उसे ही वे ठीक मान लेते हैं ॥ २ ॥

**विशेष**—उक्त विवरण से स्पष्ट है कि "मालविकाग्निमित्र" नाटक यद्यपि नया है किन्तु सारवान् होने के कारण उत्कृष्ट है । इसके अभिनय से दर्शकों को सन्तोष प्राप्त हो सकता है ।

"पुराण ही आदरणीय नहीं प्रत्युत् नवीन सत्काव्य भी उत्तम हो सकता है ।"

"अन्धानुकरण कदापि उचित नहीं, विवेक से कार्य करना चाहिए ।"

**पारिपार्श्वक**—आपका विचार प्रमाणसम्पन्न है ।

**सूत्रधार**—अतएव आप शीघ्रता करें ।

सभा ने मुझे पहले से ही जो आज्ञा दे रखी है, उसका मैं वैसे ही आदर के साथ पालन करना चाहता हूँ जैसे आदर से यह स्वामिनी भक्त दासी अपनी स्वामिनी महारानी धारिणी की आज्ञा पालन करने के लिए इधर चली आ रही है ॥ ३ ॥

( इति निष्क्रान्तौ ) ।

इति प्रस्तावना ।

( ततः प्रविशति बकुलावलिका । )

**बकुलावलिका**—आणत्तम्हि देवीए धारिणीए । अइरप्पउत्तोवदेसं छलिअं णाम णट्टअं अन्दरेण कीरिसी मालविअत्ति णट्टाअरिअं अज्जगणदासं पुच्छिदुं । ता दाव संगीदसालं गच्छम्हि ( इति परिक्रामति । ) [ आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या । अचिरप्रवृ-

---

**समुदय** इव, परिषदः = सभायाः, शिरसा = मूर्ध्ना, प्रथमगृहीताम् = स्वीकृतपूर्वाम्, आज्ञां = आदेशं कर्त्तुम् = सम्पादयितुम्, इच्छामि = अभिलषामि ॥ ३ ॥

**समासः**—सेवादक्षः = सेवायां दक्षः सेवादक्षः ॥ ३ ॥

**अलङ्कारः**—अस्मिन् पद्ये उपमाऽलङ्कारः । छन्दः—आर्यावृत्तम् ॥ ३ ॥

( ततः सूत्रधारपारिपार्श्वकौ निर्गच्छतः )

इति प्रस्तावना—प्रस्तावयति अभिनेयमर्थमवतारयति या सा प्रस्तावना । अत्र पदावलीरूपा प्रस्तावना वर्तते । तल्लक्षणम्—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेणा सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

सा चेयं सादृश्यप्रदर्शनेन पात्रप्रवेशात् अवगलिताख्या । लक्षणमिदम्—

यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत् प्रसाध्यते । ।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावगलितं बुधैः ॥

**बकुलावलिका**— आज्ञप्ता = आदिष्टा । देव्या धारिण्या = महामहिष्या धारिणीति नाम्न्या

---

**( दोनों का प्रस्थान )**

**॥ प्रस्तावना समाप्त ॥**

**प्रस्तावना**—सूत्रधार सभा के आदेश को पालन करने में अपनी तत्परता की तुलना रानी की आज्ञा पालन करने में निपुण बकुलावलिका दासी की तत्परता के साथ करता हूं अर्थात् मुझे भी सभी ने उक्त मालविकाग्निमित्र नाटक खेलने की जो आज्ञा दी है, उसे इसी प्रकार पालन करना चाहता हूं जिस प्रकार यह बकुलावलिका धारिणी की आज्ञा का पालन कर रही है । इस प्रकार रंगमंच पर आते हुए एक पात्र की सूचना देकर सूत्रधार निपुणता के साथ नाटक की भूमिका प्रारम्भ कर देता है । इसे नाट्यशास्त्र में प्रस्तावना कहते हैं । प्रस्तावना नान्दी के पश्चात् होती है जिसमें सूत्रधार अपनी भार्या नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्वक के साथ वार्तालाप करता हुआ नाटक प्रारम्भ कर देता है ।

यह प्रस्तावना समानता दिखाने के कारण, पात्र के प्रवेश होने से अवगलित नाम की है । जिसका लक्षण है :—जहाँ एक स्थान पर समावेश से दूसरा कार्य सिद्ध होता है, प्रयोग में पण्डितों ने उसे अवगलित नाम की संज्ञा दी है ।

**( बकुलावलिका का प्रवेश )**

**बकुलावलिका**—देवी की आज्ञा है कि नाटकाचार्य गुरु गणदास के समीप जाकर पूछों कि छलिक नृत्य में मालविका ने कैसी प्रगति की है ? इसलिए रंगशाला की ओर चलूँ । **(घूमती है )**

त्तोपदेशं छलिकं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यंगणदासं प्रष्टुम् । तत्तावत्संगीतशालां गच्छामि । ]

( ततः प्रविशत्याभरणहस्ता द्वितीया चेटी । )

बकुलावलिका – ( द्वितीयां दृष्ट्वा ) हला कोमुदीए, कुदो दे दाणिं इअं धीरदा । ज समीवेण वि अदिक्कमन्ती इदो दिट्ठिं ण देसि । [ सखि कौमुदिके कुतस्त इदानीमियं धीरता । यत्समीपेनाप्यतिक्रामन्तीतो दृष्टिं न ददासि । ]

कुमुदिनी—अम्हो बउलावलिआ । सहि, देवीए इदं सिप्पिसआसादो आणीदं णागमुद्दासणाहं अङ्गुलीअअं सिणिद्धं णिज्झाअन्ती तुह उवालम्भे पडिदम्हि । [ अहो बकुलावलिका । सखि, देव्या इदं शिल्पिसकाशादानीतं नागमुद्रासनाथमंगुलीयकं स्निग्धं निध्यायन्ती तवोपालम्भे पतितास्मि । ]

---

देव्या । अचिरप्रवृत्तोपदेशं ( अचिरात् प्रवृत्तः उपदेशो यस्य तत् ) शीघ्रप्रारम्भशिक्षा वाला । छलिकं नाम नाट्यम् = वृषपर्वस्य असुरस्य कन्यया शर्मिष्ठया प्रवर्तितं छलिकं नाम नृत्यम् । कीदृशी मालविका = कियती योग्या मालविकाऽस्ति इति प्रष्टुम् = ज्ञातुम् । नाट्याचार्यम् = नाटकगुरुम् । आर्यगणदासम् = तन्नामकं शिक्षकम् । संगीतशालाम् = संगीतस्य गानविद्यायाः शालाम् आलयम्, गानविद्यालयम् । गच्छामि = व्रजामि ।

( आभरणहस्ता = आभरणं हस्ते यस्या सा गृहीतालंकारा द्वितीया चेटी
दासी प्रविशति आगच्छति )

बकुलावलिका —( द्वितीयाम् = अपरां, दृष्ट्वा = प्रेक्ष्य ) सखि कौमुदिके = भो सखि कौमुदिके । कुतः = कथम्, ते = तव मनसि, इदानीम् = सम्प्रति, इयं धरिता = दृश्यमाना गम्भीरता वर्तते । यत् = यतः, समीपेन अपि = पार्श्वेनापि अतिक्रामन्ती = गच्छन्ती, इतः= मां प्रति, दृष्टिं न ददासि = न पश्यसि ।

कुमुदिनी—भो बकुलावलिके ! देव्या महाराज्ञ्या धारिण्या इदं शिल्पिसकाशात् ( शिल्पमस्यास्तीति शिल्पिन, शिल्पिनः स्वर्णकारस्य सकाशात् समीपात् ) आनीतम् = प्राप्तम्, नागमुद्रासनाथम् = नागस्य सर्पस्य मुद्रा चिह्नं तया सनाथं युक्तम् सर्पचिह्नयुक्तम्,

---

**विशेष**—नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र संस्कृत नहीं बोलते हैं, प्राकृत भाषा बोलते हैं । स्त्रियाँ कैसी भी क्यों न हों, वे सभी निम्न पात्रों में गिनी जाती हैं और प्राकृत बोलती हैं ।

**छलितम्** = वृषपर्व नामक राक्षस की पुत्री शर्मिष्ठा के द्वारा प्रचलित छलित नाम का नृत्य कहा जाता है । महारानी धारिणी, मालविका को इस नृत्य की शिक्षा इसीलिए दिला रही है कि वह नृत्य कला में निपुण इरावती को नीचा दिखा सके ।

**( हाथ में आभूषण लिए दूसरी दासी का प्रवेश )**

**बकुलावलिका—( दूसरी दासी को देखकर )** अरी कौमुदिका ! आज इतनी गम्भीर क्यों दिखाई दे रही है ? जो पास से ही जाती हुई इधर देखती भी नहीं ।

**कुमुदिनी**—अरे ! तुम हो, बकुलावलिका ! सखी ! अभी स्वर्णकार के यहाँ से महारानी की यह नागमुद्राजटित अंगूठी लाई हूँ । उसी को मैं ध्यान से देख रही थी कि तुमने शीघ्र ही मुझे उलाहना दे दिया ।

**बकुलावलिका**—( विलोक्य ) ठाणे सज्जदि दिट्ठी। इमिणा अङ्गुलीअएण उब्भिण्णकिरणकेसरेण कुसुमिदो विअ दे अग्गहत्थो पणिभादि। [ स्थाने सज्जति दृष्टिः। अनेनाङ्गुलीयकेनोद्भिन्नकिरणकेसरेण कुसुमित इव तेऽग्रहस्तः प्रतिभाति। ]

**कुमुदिनी**—हला, कहिं पत्थिदासि। [ सखि कुत्र प्रस्थितासि। ]

**बकुलावलिका**—देवीए एव्व वअणेण णट्टाआरिअं अज्जगणदासं पुच्छिदुं, उवदेसग्गहणे कीरिसी मालविएत्ति। [ देव्या एव वचनेन नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुमुपदेशग्रहणे कीदृशी मालविकेति। ]

**कुमुदिनी**—सहि, ईरिसेण वावारेण असण्णिहिदा वि सा कहं भट्टिणा दिट्ठा। [ सखि, ईदृशेन व्यापारेणासन्निहितापि सा कथं भर्त्रा दृष्टा। ]

---

अंगुलीयकं = मुद्रिकाम् स्निग्धम् = प्रेम्णा, निध्यायन्ती = ध्यानेन पश्यन्ती। तव = भवत्याः उपालम्भे = स्नेहसूचकतिरस्कारे, पतिता = गताऽस्मि।

**बकुलावलिका**—तव दृष्टिः स्थाने = उचिते स्थले, सजति = आसक्तिमेति। अनेन = एतेन, अङ्गुलीयकेन = मुद्रिकया, उद्भिन्नकिरणकेसरेण = उद्भिन्नानि प्रकटीभूतानि किरणा एव केशराणि किञ्जल्कानि यस्य तेन, प्रकटितकिरणकिञ्जल्कानि। तेऽग्रहस्तः = भवत्या, अग्रहस्तः = कराग्रभागः, कुसुमित = सञ्जातपुष्प इव प्रतिभाति = ज्ञायते।

**कुमुदिनी**—सखि ! कस्मिन् स्थाने गन्तुमिच्छसि।

**बकुलावलिका**—देव्याः महाराज्ञ्या धारिण्या आदेशेन नाट्याचार्यम्—नाट्यकार्याध्यापकम्, आर्यगणदासम् = गणदासनामकम् नाट्यगुरुम्, प्रष्टुम् = ज्ञातुं गच्छामि यद् नृत्यकार्यशिक्षायाः ग्रहणे मालविका कीदृशी वर्तते।

**कुमुदिनी**—सखि ! ईदृशेन व्यापारेण = एतादृशेन संगीतशास्त्राध्ययनेन, असन्निहिता = पार्श्वेऽनुपस्थितापि सा = मालविका' कथम् = केन प्रकारेण भर्त्रा = स्वामिना अग्निमित्रेण दृष्टा = प्रत्यक्षीकृता।

---

**बकुलावलिका—( देखकर )** वास्तव में बड़ी सुन्दर वस्तु पर तुम्हारी दृष्टि पड़ी है। इस अंगूठी से केसर के समान जो किरणें निकल रही हैं, उससे तुम्हारी हथेली मानो फूल उठी है।

**कुमुदिनी**—क्यों सखी ! तुम किधर जा रही थी !

**बकुलावलिका**—मैं भी महारानी धारिणी की आज्ञा से नाट्याचार्य गणदास से यह पूछने जा रही थी कि मालविका नाट्यशिक्षा के प्राप्त करने कैसी चल रही है ?

**कुमुदिनी**—सखी ! इस प्रकार शिक्षा-कार्य में तल्लीन रहने के कारण परोक्षावस्था में होते हुए भी उस मालविका को महाराज अग्निमित्र ने कैसे देख लिया ?

**विशेष**—उक्त दासियों के वार्तालाप से प्रमाणित होता है कि महाकवि कालिदास के समय में ललितकलाओं के शिक्षण का प्रबन्ध था। विशेष रूप से राजधानियों में तो इस संगीत, नृत्य एवं चित्रकला का अध्ययनाध्यापन अवश्य होता था। यही कारण है कि सुन्दरी मालविका को महारानी धारिणी ने मालविका को संगीतशाला में निपुणता प्राप्त करने के लिए भेज दिया है तथा प्रायः उसकी शिक्षा की प्रगति पर निरन्तर ध्यान रखती है।

**बकुलावलिका**—आम् । सो जणो देवीए पास्सगदो चित्ते दिट्ठो । [ **आम् । स जनो देव्याः पार्श्वगतश्चित्रे दृष्टः ।** ]

**कुमुदिनी**—कहं विअ । [ **कथमिव ।** ]

**बकुलावलिका**—सुणु । चित्तसालं गदा देवी जदा पच्चग्गावण्णराअं चित्तलेहं आआरिअस्स आलोअन्ती चिट्ठदि । भट्टा अ उवट्ठिदो । [ **श्रृणु । चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठति । भर्ता चोपस्थितः ।** ]

**कुमुदिनी**—तदो तदो । [ **ततस्ततः ।** ]

**बकुलावलिका**—उवआराणन्तरं एक्कासणोवविट्ठेण भट्टिणा चित्तगदाए देवीए परिअणमज्झगदं आसण्णदारिअं देक्खिअ देवी पुच्छिदा । [ **उपचारानन्तरमेकासनोपविष्टेन भर्त्रा चित्रगताया देव्याः परिजनमध्यगतामासन्नदारिकां दृष्ट्वा देवी पृष्टा ।** ]

---

**बकुलावलिका**—आम् इति स्मरणसूचकमव्ययम् । स जनः मालविकालक्षणा व्यक्तिः देव्याः = धारिण्याः । पार्श्वगतः = समीपे वर्तमानः । चित्रे आलेख्ये । दृष्टः = साक्षात्कृतः । चित्रे देवीसमीपचित्रिता मालविका दृष्टा महाराजेन ।

**कुमुदिनी**—केन प्रकारेण ।

**बकुलावलिका**—श्रृणु चित्रशालाम् = आलेख्यागारम्, गता=प्रविष्टा । देवी=धारिणी । प्रत्यग्रवर्णरागाम् = प्रत्यग्रः = शीघ्रसम्पादितः वर्णस्य = शुक्लत्वादेः, रागो = रञ्जनं यस्यां सा ताम् । शीघ्रकृतरंगयुक्ताम् । चित्रलेखाम् = आलेख्यम् । आचार्यस्य = शिल्पिनः । आलोकयन्ती = पश्यन्ती, तिष्ठति = आसीत् । तदा भर्ता = महाराजः । उपस्थितः = स्वयमागतः ।

**कुमुदिनी**—ततस्ततः = द्विरुक्तिरुत्कण्ठाव्यंजकसम्भ्रमसूचनार्था । कथितमस्ति विवादे विस्मये हर्षे खेदे दैन्येऽवधारणे । प्रसादने सम्भ्रमे च द्विस्त्रिरुक्तिर्न दुष्यति ।

**बकुलावलिका**—उपचारानन्तरम् = उपचारस्य व्यवहारस्य, अनन्तरम् = पश्चात् एकासनोपविष्टेन = देव्या सह एकासनमुपेयुषा, भर्त्रा = स्वामिना, चित्रगतायाः = चित्रे आलिखितायाः । देव्याः = धारिण्याः । परिजनमध्यगताम् = चित्रितदासीसमूहस्थाम् । आसन्नदारिकाम् = धारिण्याः समीपे चित्रितां बालिकां, देवी = धारिणीः पृष्टा=जिज्ञासिता ।

---

**बकुलावलिका**—अरे ! वह चित्र में महारानी के पास बैठी हुई थी, उसी को महाराज ने देख लिया ।

**कुमुदिनी**—कैसे ?

**बकुलावलिका**—सुनो । जब महारानी चित्रशाला में पहुंचकर चित्रकला के आचार्य के हाथ के बनाए हुए गीले चित्रों को देख रही थीं, उसी समय स्वामी भी वहाँ पहुँच गये ।

**कुमुदिनी**—तब, तब ।

**बकुलावलिका**—अभिवादन-व्यवहार हो चुकने पर महाराज भी महारानी के साथ एक ही आसन पर बैठ गए । तब चित्र में बनी हुई महारानी की दासियों में पास ही खड़ी हुई कन्या को देखकर महाराज ने देवी से पूछा ।

कुमुदिनी—किं ति। [ किमिति। ]

बकुलावलिका—अपुव्वा इअं दारिआ देवीए आसण्णा आलिहिदा किंणामहे एत्ति। [ अपूर्वेयं दारिका देव्या आसन्ना आलिखिता किन्नामधेयेति। ]

कुमुदिनी—आकिदिविसेसेसु आअरो पदं करेति। तदो तदो। [ आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति। ततस्ततः। ]

बकुलावलिका—तदो अवहीरिअवअणो भट्टा सकिदो देवीं पुणोवि अणुबन्धिदुं। तदो कुमारीए वसुलच्छीए आअक्खिदम्। अज्ज, एसा मालविएत्ति! [ ततोऽवधीरितवचनो भर्ता शङ्कितो देवीं पुनरप्यनुबन्धुम्। ततः कुमार्या वसुलक्ष्म्याख्यातम्! आर्य, एषा मालविकेति। ]

कुमुदिनी—( सस्मितम्। ) सरिसं खु वालभाअस्स। अतो अवरं कहेहि। [ सदृशं खलु बालभावस्य। अतोऽपरं कथय। ]

बकुलावलिका—किं अण्णं। संपदं मालविआ सविसेसं भट्टिणो दंसणपहादो रक्खीअदि। [ किमन्यत्। सांप्रतं मालविका सविशेषं भर्तुर्दर्शनपथाद्रक्ष्यते। ]

---

कुमुदिनी—किमिति = प्रश्नरूपेच्छासूचकम्।

बकुलावलिका—अपूर्वा = अभूतपूर्वा, इयम् = चित्रगता, आसन्ना = समीपस्था, आलिखिता = चित्रिता, किं नामधेया = किमभिधाना। तव समीपस्था इयं चित्रिता सुन्दरी किमभिधानास्ति?

कुमुदिनी—आकृति विशेषे = परमरमणीयशरीरे। आदरः = बहुमानः पदं करोति = स्थानं लभते। रमणीयाकृतिः आकर्षणमुत्पादयति।

बकुलावलिका—अवधीरितवचनः = अवधीरितं तिरस्कृतं वचनं प्रश्नवाक्यं यस्यासौ। अप्राप्तोत्तरः राजा शङ्कितो भूत्वा पुनरपि पुनः पुनः देवीं = राज्ञीम् अनुबन्धुम् = आग्रहमकरोत्। राज्ञः आग्रहे प्रवर्त्तमाने कुमार्या = पञ्चवर्षीयया बालिकया वसुलक्ष्म्या आख्यातम् = उक्तम्। आर्य = भो राजन्, एषा मालविका = इयं मालविका परिचारिका अस्ति।

कुमुदिनी—( स्मितं कृत्वा ) सदृशम् = समानम् खलु = निश्चये, बालभावस्य = बाल्यचापल्यस्य। शिशवः सरला भवन्ति रहस्यमपि कथयन्ति। अतः अतएव, अपरम् = अन्यत् कथय = वद। बाल्यभावात् कथितम् अनयेति। अग्रे कथय।

बकुलावलिका—किमन्यत् = नास्ति किञ्चिदपरम्। साम्प्रतम् = अधुना तत्पश्चात्।

---

कुमुदिनी—क्या?

बकुलावलिका—कि चित्र में देवी के पास बैठी हुई यह कौन सुन्दर दासी है?

कुमुदिनी—सुन्दर की ओर सबका हृदय आकृष्ट हो ही जाता है। हाँ तो फिर क्या हुआ?

बकुलावलिका—देवी को चुप देखकर महाराज के मन में शङ्का उत्पन्न हो गई। उन्होंने फिर वही प्रश्न दुहराया। इसी बीच कुमारी वसुलक्ष्मी बोल उठी—आर्य! यह मालविका है।

कुमुदिनी—( मुस्कराती हुई ) यह तो बाल्य-काल के अनुरूप ही है। हाँ, तो फिर क्या हुआ?

बकुलावलिका—और कोई बात नहीं है। उसी दिन से मालविका को महाराज की दृष्टि से विशेष रूप से अलग रखा जाता है। अर्थात् उसपर कड़ा पहरा लगा दिया गया है।

**कुमुदिनी**—हला अणुचिट्ठ अत्तणो णिओअं । अहं वि एदं अङ्गुलीअअं देवीए उवणइस्सम् । ( इति निष्क्रान्ता । ) [ **सखि, अनुतिष्ठात्मनो वियोगम् । अहमप्येतदङ्गुलीयकं देव्यै उपनेष्यामि ।** ]

**बकुलावलिका**—( परिक्रम्यावलोक्य । ) एसो णट्टाअरिओ संगीदसालादो णिग्गच्छदि । जाव से अत्ताणं दंसेमि । ( इति परिक्रामति । ) [ **एष नाटचाचार्यः संगीतशालातो निर्गच्छति । यावदस्यः आत्मानं दर्शयामि ।** ]

( प्रविश्य । )

**गणदासः**—कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता । न पुनरस्माकं नाट्यं प्रति मिथ्यागौरवम् । तथा हि ।

**देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्**
**रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।**

---

मालविका = सा सुन्दरी परिचारिका । सविशेषं = विशेषरूपेण भर्तुः = स्वामिनः राज्ञः । दर्शनपथात् = दृष्टिमार्गात्, रक्ष्यते = अपवार्यते ।

**कुमुदिनी**—सखि ! आत्मनो वियोगम् = स्वकीयकर्त्तव्यम् । अनुतिष्ठ = सम्पादय । अहमपि एतद् = इदम्, अंगुलीयकम् = करमुद्रिकाम्, देव्यै = महाराज्यै धारिण्यै उपनेष्यामि = प्रापयिष्यामि । अंगुलीयकं दातुं देवीं गच्छामि ।

( निष्क्रान्ता = ततः स्थानात् गता )

**बकुलावलिका**—परिक्रम्यावलोक्य = इतस्ततो गत्वा दृष्ट्वा च । एष नाट्याचार्यः = अयं नाटकाध्यापको गणदासः । संगीतशालातः = गानविद्यालयात्, निर्गच्छति = बहिरागच्छति । यावद् = ततोऽस्मिन् काले । अस्मै = गणदासाय, आत्मानम् = स्वकीयाकृतिम्, दर्शयामि = प्रकटयामि । ( इति परिक्रामति = इदं विचार्य इतस्ततः परिभ्रमति ।

( प्रविश्य = रङ्गमञ्चमागत्य )

**गणदासः**—कामम् = यद्यपि, खलु = निश्चये, सर्वस्य = सर्वेषां विद्यावतां जनानां अपि कुलविद्या = वंशपरम्परागता विद्या । बहुमता = सम्मानपात्रम् । सर्वेषां मनसि स्वकुलविद्यां प्रति आदरभावना विद्यते । अस्माकं नाट्यं प्रति नाटकं प्रति मिथ्यागौरवम् = अनुचितं समादरभावना नास्ति ।

**अन्वयः**—मुनयः इदं देवानां कान्तं चाक्षुषं क्रतुं आमनन्ति, रुद्रेण इदं उमाकृतव्यतिकरे

---

**बीज** = अग्निमित्र और मालविका विषयक अभिलाषा यहाँ नाटक का बीज है ।

**कुमुदिनी**—अच्छा सखी ! जाओ तुम भी अपना काम करो और मैं भी जाकर यह अंगूठी महारानी को दे आती हूँ । **( चली जाती है )**

**बकुलावलिका—( घूमकर और देखकर )** नाट्याचार्य जी तो संगीतशाला से निकले आ रहे हैं । मैं चलकर इनसे मिल लूँ । **( घूमती है )**

**गणदास—( प्रवेश करके )** यों तो सभी अपनी वंशपरम्परागत विद्या को सबसे अच्छा समझते हैं पर हम लोग जो अपनी विद्या का इतना अभिमान करते हैं, वह झूठा नहीं । क्योंकि—

नाट्य-शास्त्र के प्रवर्तक भरतादि मुनि लोगों का कहना है कि नाट्य देवताओं की आंखों के

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ॥ ४ ॥

---

स्वाङ्गे द्विधा विभक्तम्, अत्र त्रैगुण्योद्भवं नानारसं लोकचरितं दृश्यते, नाट्यं भिन्नरुचेः अपि जनस्य बहुधा एकं समाराधनम् ( अस्ति ) ॥ ४ ॥

**देवानामिति ।** मुनयः = नाट्यशास्त्रप्रवर्तका भरतमतंगादयो ऋषयः, इदम् = नाट्यम्, देवानाम् = इन्द्रादीनां सुराणाम्, शान्तम् = सौम्यम्, चाक्षुषम = चक्षुषा अनुभाव्यम् नेत्रदर्शनीयम्, क्रतुम् = यज्ञम्, आमनन्ति = उपदिशन्ति । रुद्रेण = शङ्करेण, उमया = पार्वतया कृतः = सम्पादितः, व्यतिकरः = सम्बन्धी यस्य सः तस्मिन् । पार्वतीनित्याश्लिष्टे, स्वाङ्गे = आत्मशरीरे द्विधा = लास्यताण्डवरूपप्रकारद्वयेन विभक्तम् । अत्र = अस्मिन् नाट्ये, त्रैगुण्योद्भवम्—त्रयाणां गुणानां समाहारः त्रिगुणम्, त्रिगुणम् एव त्रैगुण्यम् तस्मादुद्भवः यस्य तत् । त्रिगुणात्मकम् । लोकचरितम् = मानवाचरणम् । नानारसम् = विभिन्नरसयुक्तम् दृश्यते = ज्ञायते । तदेवं नाट्यम् = नटनप्रयोगः । भिन्नरुचेः = विविधाभिलाषस्य अपि जनस्य = मानवस्य बहुधा = प्रायः, एकम् = अद्वितीयम्, समाराधनम् = मनोरञ्जनम् अस्ति । समासः—उमाकृतव्यतिकरे = उमया कृतः व्यतिकरः यस्य सः तस्मिन् । त्रैगुण्योद्भवम् = त्रयाणां गुणानां समाहारः त्रिगुणम् त्रिगुणम् एव त्रैगुण्यम् तस्मादुद्भवः यस्य तत् । भिन्नरुचेः = भिन्ना रुचयो यस्य तस्य ॥ ४ ॥

**भावार्थः**—नाट्यशास्त्रप्रवर्तका मुनयः कथयन्ति यत् यत् इदं नाट्यम् इन्द्रादीनां सुराणां नेत्रदर्शनीयं यज्ञमस्ति । महादेवः शङ्करः उमया सह विवाहं कृत्वा अर्द्धनारीश्वरस्वरूपे लास्यताण्डवरूपेण विभक्तम् । अस्मिन् नाट्ये त्रयो गुणा दृश्यन्ते विभिन्नरसेषु मानवचरितानि दृश्यन्ते । अतो भिन्नरुचीनां लोकानां मनोविनोदः अनया नाट्यकलया भवति । अलंकारः—अस्मिन् पद्ये उल्लेखोऽलंकारः । नाट्यस्य बहुविधं वर्णनमस्ति ॥ ४ ॥

**छन्दः**—शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः । तल्लक्षणम्—"सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥ ४ ॥

---

सुहाने वाला यज्ञ है । स्वयं महादेव शङ्कर ने पार्वती से विवाह करके अपने अर्द्धनारीश्वर अंग में इसके दो भाग कर लिए हैं । एक ताण्डव और दूसरा लास्य । इसमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुण दिखलाई पड़ते है और अनेक रसों से सम्पन्न मानवों के चरित्र भी दिखाई पड़ते हैं । अतएव भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए प्रायः नाटक ही एक ऐसा उत्सव हैं, जिसमें सबको एक सा आनन्द मिलता है ॥ ४ ॥

**अलंकार**—इस पद्य में उल्लेख अलंकार है क्योंकि इस पद्य में नाट्य का भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णन किया गया है ।

लास्य और ताण्डव नृत्य—

"स्त्रीनृत्यं लास्यमित्युक्तं पुन्नृत्यं ताण्डवं मतम्"

पार्वती के नृत्य को लास्य और शङ्कर भगवान् के नृत्य को ताण्डव कहते हैं ।

**नानारसं लोकचरितम्** = लोक में अनुकार्य राम आदि के सुख और दुःख से मिश्रित नाट्य के अभिनयरूप में समर्पित चरित्र भी सामाजिक दर्शकों के द्वारा सुखात्मक रूप में ही आस्वादित किया जाता है । साहित्यदर्पण में लिखा है—

बकुलावलिका—( उपेत्य । ) अज्ज, वन्दामि । [ आर्य, वन्दे । ]

गणदासः—भद्रे, चिरं जीव ।

बकुलावलिका—अज्ज, देवी पुच्छदि, अवि उवदेसग्गहणे णादिकीलिस्सदि वो सिस्सा मालविएत्ति । [ आर्य, देवी पृच्छति, अप्युपदेशग्रहणे नातिक्लिश्नाति वः शिष्या मालविकेति । ]

गणदासः—भद्रे, विज्ञाप्यतां देवी परमनिपुणा मेधाविनी चेति । किं बहुना—

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै ।
तत्तद्विशेषकरणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला ॥ ५ ॥

---

बकुलावलिका—( पार्श्वं गत्वा ) आर्य ! नमामि त्वाम् ।

गणदासः—कल्याणमयि ! आयुष्मती भव ।

बकुलावलिका—महोदय ! महाराज्ञी धारिणी त्वां पृच्छति यत् मदीया परिचारिका मालविका संगीतशिक्षादाने भवतः छात्री भवन्तं नाधिकं व्यथयति ।

गणदासः—कल्याणमयि ! गत्वा देवीं धारिणीं कथय यत् मालविका परमनिपुणा = अतिकुशला, मेधाविनी = शिक्षाविषयपदार्थचिरधारणाशक्तिर्मेधा, मेधया सम्पन्ना मेधाविनी बुद्धिमती च । किं बहुना = अधिकं किं कथयामि ।

अन्वयः—प्रयोगविषये मया तस्यै यत् यत् भाविकम् उपदिश्यते, तत्तत् बाला विशेषकरणात् मे प्रत्युपदिशति इव ॥ ५ ॥

यद्यदिति । प्रयोगविषये = अभिनयसम्बन्धे मया ( आचार्येण ) तस्यै मालविकायै यद्यत् भाविकम् = भाववत् उपदिश्यते = बोध्यते तत्तत् विशेषकरणात् = अतिशयरम्यतामानीय प्रत्युपदिशति = समर्पयतीव ॥ ५ ॥

समासः—प्रयोगविषये = प्रयोगस्य विषये प्रयोगविषये । विशेषकरणात् = विशेषस्य-करणम् विशेषकरणम् तस्मात् । भाविकम् = भावाय हितम् भाविकम् ॥ ५ ॥

---

करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम् । सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम् ॥

करुण आदि रसों के आस्वादन में भी आनन्द का ही अनुभव होता है ऐसी मान्यता रसवादी आचार्यों ने दी है । नाट्य चतुर्वेदों का सार है । लिखा है :—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च । यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

वेदोपवेदसम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना । एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मना ॥

ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को लेकर नाट्यवेद की रचना की ।

बकुलावलिका—( समीप जाकर ) आर्य ! तुम्हें नमस्कार है ।

गणदासः—कल्याणमयि ! आयुष्मती हो ।

बकुलावलिका—महोदय ! महारानी धारिणी आपसे पूछती हैं कि मेरी परिचारिका और आपकी शिष्या मालविका संगीत शिक्षा के ग्रहण करने में आपको अधिक कष्ट तो नहीं देती है ?

गणदास—भद्रे ! महारानी से कह देना कि वह बड़ी चतुर और समझदार है । शिक्षाग्राहिका बुद्धि से सम्पन्न है । अधिक क्या कहूँ—

मैं जो जो भाव उसे सिखलाता हूँ उन्हें जब वह और भी सुन्दरता के साथ करके दिखाने लगती है तब ऐसा जान पड़ता है मानों वह उल्टे मुझे ही सिखा रही है ॥ ५ ॥

**बकुलावलिका**—( आत्मगतम् । ) अदिक्कमतीं विअ इरावदिं पेक्खामि । ( प्रकाशम् ) किदत्था दाणिं वो सिस्सा । जाए गुरुअणो एव्वं तुस्सदि । [ **अतिक्रान्तीमिवेरावतीं पश्यामि । कृतार्थेदानीं वः शिष्या । यस्या गुरुजन एव तुष्यति ।** ]

**गणदासः**—भद्रे, तद्विधानामसुलभत्वात्पृच्छामि । कुतो देव्या तत्पात्रमानीतम् ।

**बकुलावलिका**—अत्थि देवीए वण्णावरो भादा वीरसेणो णाम । सो भट्टिणा णम्मदातीरे अन्तवालदुग्गे ठाविदो । तेण सिप्पाहिआरे जोग्गा इअं दारिएत्ति भणिअ भइणीए देवीए उवाअणं पेसिदा । [ **अस्ति देव्या वर्णावरो भ्राता वीरसेनो नाम । स भर्त्रा नर्मदातीरेऽन्तपालदुर्गे स्थापितः । तेन शिल्पाधिकारे योग्येयं दारिकेति भणित्वा भगिन्या देव्या उपायनं प्रेषिता ।** ]

**गणदासः**—( स्वगतम् ) आकृतिविशेषप्रत्ययादेनामनूनवस्तुकां संभावयामि । ( प्रकाशम् ) भद्रे, मयापि यशस्विना भवितव्यम् । यतः ।

---

**भावार्थः**—अभिनय सम्बन्धे यद्भावपूर्णं नृत्यमहं शिक्षयामि तत्तद् सा रमणीयरूपेण दर्शयित्वा इत्थं प्रतिभाति यन्मां सा एव शिक्षयतीव ॥ ५ ॥

**बकुलावलिका** — ( स्वमनसि कथयन्तीव ) इरावतीं महिषीमतिक्रम्याधिका भविष्यति । ( प्रकटरूपेण ) भवदीया शिष्या स्वार्जितैर्गुणैः प्रसीदति अतः कृतार्थाऽस्ति ।

**गणदासः**—कल्याणमयि ! मालविकासदृशाः शिष्या दुर्लभा सन्ति । अतोऽहं पृच्छामि । एतादृशी बाला कुतः समासादिता राज्ञ्या धारिण्येति ।

**बकुलावलिका**—राज्ञ्या धारिण्या हीनवर्णः वीरसेनो नामा भ्राताऽस्ति । सः नर्मदातटेऽन्तपालदुर्गे नियुक्तः । स इदं कथयित्वा यदियं बाला संगीतशास्त्रे निपुणा भविष्यति स्वकीय भगिन्यै उपहाररूपेण प्रेषिता ।

**गणदासः**—आकृतिविशेषप्रत्ययात् = आकृत्या विशेषः आकृतिविशेषः तस्य प्रत्ययः तस्मात् रमणीकरूपविश्वासात् । अनूनवस्तुकाम् = अनूनं अनल्पं वस्तु वृत्तं यस्या सा ताम् अनूनवस्तुकाम विशिष्टवृत्ताम् । एनां मालविकां संभावयामि = मन्ये । रमणीयरूपविश्वासात् एनां मालविकां विशिष्टवृत्तां मन्ये । आकृतिविशेषं दृष्ट्वापि कुलशीलादयो विशेषज्ञैरवधार्यंते । मयापि गणदासेन यशस्विना कीर्त्तिमता भवितव्यम् । यतः—

---

**बकुलावलिका—( मन ही मन )** जान पड़ता है कि यह इरावती को तो पछाड़ ही देगी । **( प्रकट )** धन्य है आपकी वह शिष्या जिसके गुरु उससे इतने प्रसन्न हैं ।

**गणदास**—भद्रे ! ऐसे शिष्य दुर्लभ होते हैं आसानी से नहीं मिलते । इसीलिए मैं तुमसे पूछता हूँ कि ऐसी योग्य बाला रानी को कहाँ से मिली ?

**बकुलावलिका**—महारानी के वीरसेन नामक एक दूर के भाई हैं । उन्हें महाराज ने नर्मदातट वाले अन्तपाल दुर्ग की सुरक्षा का काम सौंप रखा है । उन्होंने ही अपनी बहिन धारिणी देवी के पास इस कन्या को यह कहलाकर भेज दिया है कि यह गाने-बजाने का काम भली-भाँति सीख सकेगी ।

**गणदास—( मन ही मन )** पर रूप रंग से तो यह किसी ऊँचे घराने की जान पड़ती है क्योंकि—

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ ६ ॥

बकुलावलिका--अज्ज, कहिं दाणिं वो सिस्सा । [ आर्य, कुत्रेदानीं वः शिष्या । ]

गणदासः--इदानीमेव पञ्चाङ्गादिकमभिनयमुपदिश्य मया विश्रम्यतामित्यभिहिता दीर्घिकावलोकन गवाक्षगता प्रवातमासेवमाना तिष्ठति ।

---

**अन्वयः**—पयोदस्य समुद्रशुक्तौ न्यस्तं जलं मुक्ताफलताम् इव आधातुः शिल्पं पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति ॥ ६ ॥

**पात्रविशेष इति** । पयोदस्य = जलदस्य, समुद्रशुक्तौ = सामुद्रिक शुक्तिकायां, न्यस्तं = निहितं जलं मुक्ताफलताम् = मौक्तिकत्वम् इव आधातुः = उपदेशकरस्य शिल्पम् = कला विद्या पात्रविशेषे = विशिष्टे शिष्ये न्यस्तं = निहितम् गुणान्तरम् = गुणातिशयम् व्रजति = प्रतिपद्यते ॥ ६ ॥

**समासः**—पयो ददातीति पयोदः तस्य । समुद्रस्य शुक्तिः समुद्रशुक्तिः तस्याम् । मुक्ताफलस्य भावः मुक्ताफलता ताम् मुक्ताफलताम् । पात्रेषु विशेषः पात्रविशेषः तस्मिन् । अन्यः गुणः गुणान्तरः तम् गुणान्तरम् ॥ ६ ॥

**भावार्थः**—यथा मेघस्य जलं समुद्रशुक्तौ पतित्वा मौक्तिकं भवति तथैव विशिष्टपात्रेषु दत्ता शिक्षा उत्कर्षं प्रकटयति । उपमाऽलङ्कारः ॥ ६ ॥

**बकुलावलिका**—आर्य ! अधुना भवदीया शिष्या कुत्र वर्तते ?

**गणदासः**—अस्मिन् समये पञ्चाङ्गादिकम् = पञ्चाङ्गम् आदौ यस्य तम् । अभिनयम् = प्रयोगम्, उपदिश्य = शिक्षयित्वा, विश्रम्यताम् = विश्रामः क्रियताम् इति अभिहिता = उक्ता । दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता = दीर्घिकायाः अवलोकनं यस्मात् तादृशं यत् गवाक्षम्

---

सिखाने वाले की कला उत्तम शिष्य के पास पहुँचकर उस प्रकार विकसित हो जाती है जैसे बादल का जल समुद्र की सीपों में पहुँच कर मोती बन उठता है ॥ ६ ॥

**विशेष**—भारतीय धारणाके अनुसार स्वाती नक्षत्र में मेघ से गिरा हुआ जल सीप के मुख में पड़कर मोती बन जाया करता है । आचार्य गणदास अपनी शिष्या मालविका को सत्पात्र मानता है । उसे वह जो कुछ शिक्षा प्रदान करता है, वह उसमें ऐसे भव्य और उत्कृष्ट रूप में परिणत होती है कि शिक्षक को उसकी तुलना उस जलबिन्दु से करनी पड़ती है, जो सीप के अन्दर पड़कर मोती बन जाता है । शिक्षा जलविन्दु है, जो मालविका रूपी सीपी में जाकर मुक्ता तुल्य चमक उठती है । कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में लिखा है :—"क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ।" ३।१९

इसी भाव को महाकवि भवभूति ने "उत्तररामचरित" नाटक में लिखा है :—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे, न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति च पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा, प्रभवति शुचिर्बिम्बोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चयः ॥

**बकुलावलिका**—आर्य ! आपकी शिष्या इस समय कहाँ है ?

**गणदास**—अभी उसे पाँचों अंगों का अभिनय सिखाकर मैंने उसे थोड़ा विश्राम करने को कहा है । अतएव वह उस खिड़की पर वायु सेवन करती हुई बैठी है, जहाँ से बावली दिखलाई पड़ती है ।

**अंगपञ्चक** = संगीत रत्नाकर में लिखा है—नृत्त, कैवार, मर्मर, जागर और गीत ये पाँच अंग हैं । कैवार और जागर को छोड़ कर शेष तीन प्रयोग योग्य माने गए हैं ।

**बकुलावलिका**—तेण हि पुणो अणुजाणादु मं अज्जो। जावसे 'अज्जस्स परितोसणिवेदणेण उस्साहं वड्ढेमि। [ तेन हि पुनरनुजानातु मामार्यः। यावदस्याः आर्यस्य परितोषनिवेदनेनोत्साहं वर्धयामि। ]

**गणदासः**—दृश्यतां सखी। अहमपि लब्धक्षणः स्वगृहं गच्छामि।

( इति निष्क्रान्तौ )

मिश्रविष्कम्भकः।

( ततः प्रविशत्येकान्तस्थितपरिजनो मन्त्रिणा लेखहस्तेनान्वास्यमानो राजा। )

---

तत्र गता। वापीदर्शनवातायनस्था। प्रवातम् = प्रशस्तवायुयुक्तम् प्रदेशम् आसेवमाना = अध्यासीना वर्तते।

**बकुलावलिका**—तेन = अतएव पुनः = भूयः, आर्यः = भवान् माम् अनुजानातु = गन्तुमादिशतु यावत् अस्याः = मालविकायाः उत्साहम् आर्यस्य भवतः श्रीमतः परितोष-निवेदनेन = सन्तोषश्रावणेन वर्धयामि = समेधयामि। शिक्षकसन्तोषज्ञानेन शिष्योत्साहो हि वर्धते इति भावार्थः।

**गणदासः**—दृश्यतां सखीं = मालविकां पश्यतु भवती। अहमपि लब्धक्षणः = प्राप्तविरामावसरः स्वगृहं गच्छामि।

( द्वावपि गतौ )

**मिश्रविष्कम्भकः**—दशरूपके लिखितमस्य लक्षणम्—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥

अतीतानां भाविनां च कथावयवानां ज्ञापको मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां प्रयोजितो विष्कम्भक इति।

एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः।

एकेन द्वाभ्यां वा मध्यमपात्राभ्यां शुद्धो भवति। मध्यमाधमपात्रैर्युगपत्प्रयोजितः संकीर्णः ( मिश्रः ) कथ्यते।

( तत्पश्चात् अन्यत्रस्थदासो राजा पत्रकरेण सचिवेन अन्वास्यमानः सहोपविष्टः रंगमञ्चमागच्छति )

---

**बकुलावलिका**—आर्य ! आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उसे यह कहकर उत्साहित करूँ कि गुरुदेव उससे इतने प्रसन्न है।

**गणदास**—अपनी सखी को देखो मैं भी अवकाश प्राप्त कर अपने घर जा रहा हूँ।

**( दोनों चले जाते हैं )**

**मिश्रविष्कम्भक** = नाटक में घटित घटनाओं या भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं का सूचक विष्कम्भक कहलाता है। यह शुद्ध तथा संकीर्ण ( मिश्र ) दो प्रकार का होता है। एक अथवा अधिक मध्यम श्रेणी के पात्रों वाला विष्कम्भक शुद्ध कहलाता है। मध्यम श्रेणी के तथा अधम श्रेणी के पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक संकीर्ण या मिश्र कहलाता है।

**( तब महाराज प्रवेश करते हैं, जिनके परिजन एक ओर बैठे हैं और मन्त्री समीप में हाथ में पत्र लिए बैठे हैं )**

**राजा**—( अनुवाचितलेखममात्यं विलोक्य । ) वाहतक, किं प्रतिपद्यते वैदर्भः ।

**अमात्यः**—देव, आत्मविनाशम् ।

**राजा**—संदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि ।

**अमात्यः**—इदमिदानीमनेन प्रतिलिखितम् । पूज्येनाहमादिष्टः । भवतः पितृव्यपुत्रः कुमारो माधवसेनः प्रतिश्रुतसम्बन्धो ममोपान्तिकमुपसर्पन्नन्तरा त्वदीयेनान्तपालेनावस्कन्द्य गृहीतः । स त्वया मदपेक्षया सकलत्रसोदर्यो मोक्तव्य इति । एतन्ननु वो विदितम् । यत्तुल्याभिजनेषु राज्ञां वृत्तिरीदृशी । अतोऽत्र मध्यस्थः पूज्यो भवितुमर्हति । सोदरा पुनरस्य ग्रहणविप्लवे विनष्टा । तदन्वेषणाय प्रयतिष्ये । अथवा, अवश्यमेव माधवसेनो मया पूज्येन मोचयितव्यः' श्रूयतामभिसंधिः ।

---

**राजा**—( अनुवाचितलेखम् = पठितलिपिम् अमात्यम् = मन्त्रिणम् अवलोक्य ) वाहतक ! सचिव ! वैदर्भः = विदर्भदेशाधिपतिः यज्ञसेनः किम्प्रतिपद्यते = किमभिसन्धाय लिखति इति प्रश्नः ।

**अमात्यः**—महाराज ! स्वकीयनाशम् ।

**राजा**—तस्य सन्देशं श्रावय ।

**अमात्यः**—इदम् = वक्ष्यमाणप्रकारम् । इदानीमधुना प्रतिलिखितम् = प्रत्युत्तररूपेण लिखितम् । पूज्येन = आदरणीयेन भवता । अहं = यज्ञसेनः, आदिष्टः = पत्रेणाज्ञप्तः । भवतः पितृव्यपुत्रः कुमारो माधवसेनः प्रतिश्रुतसम्बन्धः = अंगीकृतपरिणयसम्बन्धः ममाग्निमित्रस्य उपान्तिकम् = समीपम् उपसर्पन् = आगच्छन्, अन्तरा = मध्येमार्गम्, त्वदीयेन = यज्ञसेन-सम्बन्धिना अन्तपालेन = सीमानरक्षाधिकृतेन, अवस्कन्द्य = आक्रम्य, गृहीतः = रणे वन्दीकृतः, त्वया यज्ञसेनेन, मदपेक्षया = ममानुरोधेन, सकलत्रसोदर्य। = भार्याभगिनीसमेतः स माधवसेनः, मोचयितव्यः = बन्दीगृहाद् बहिष्करणीयः । एतन्ननु वः विदितम् = इदन्तु भवान् जानाति । तुल्याभिजनेषु = समानवंशेषु राज्ञां वृत्तिः = नृपाणां व्यवहारः प्रचलति । अतोऽत्र अस्मात् कारणात् अस्मिन् विषये भवान् मध्यस्थः=तटस्थो भूत्वा पूज्यः आदरणीयो भवितुमर्हति । सोदरा = भगिनी, अस्य = माधवसेनस्य, ग्रहणविप्लवे = आदानकर्मणि विनष्टा = लुप्ता । तस्याः अन्वेषणाय प्रयतिष्ये = प्रयत्नं करिष्ये । यदि भवान् माधवसेनं मोचयितुमभिलषति तदा मदीयं अभिसंधिः = पणं श्रूयताम् = शृणोतु ।

---

**राजा**—( मन्त्री द्वारा पढ़ लेने पर ) वाहतक ! विदर्भ के राजा क्या चाहते हैं ?

**अमात्य**—देव ! अपना सत्यानाश ।

**राजा**—अब उनका सन्देश सुनना चाहता हूँ ।

**अमात्य**—उन्होंने उत्तर में लिखा है—आपने जो मुझे यह आज्ञा दी थी—कि आपके चचेरे भाई कुमार माधवसेन पहले से निश्चित किये सम्बन्ध के अनुसार मुझसे अपनी बहिन का ब्याह करने के लिए जब चले आ रहे थे तब बीच में ही आपके राज्य की सीमा के रक्षकों ने उन्हें पकड़ कर बाँध लिया है । उन्हें आप मेरे कहने से स्त्री और बहिन के साथ छोड़ दीजिए ।' इस सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि आप महान् हैं और आप यह पूर्णरूप से जानते हैं कि समवंशीय राजाओं के झगड़े किस प्रकार निपटाने चाहिए । अतः आप इसमें बीचबचाव कर सकते हैं । इसी झंझट में

मौर्यसचिवं विमुञ्चति यदि पूज्यः संयतं मम श्यालम् ।
मोक्ता माधवसेनस्ततो मया बन्धनात्सद्यः ॥ ७ ॥ इति ।

राजा—( सरोषम् । ) कथं कार्यविनिमयेन मयि व्यवहरत्यनात्मज्ञः । वाहतक प्रकृत्यमित्रः प्रतिकूलकारी च मे वैदर्भः । तद्यातव्यपक्षे स्थितस्य पूर्वसंकल्पित-समून्मूलनाय वीरसेनमुखं दण्डचक्रमाज्ञापय ।

अमात्यः—यदाज्ञापयति देवः ।

राजा—अथवा किं भवान्मन्यते ।

अमात्यः—शास्त्रदृष्टमाह देवः ।

---

अन्वयः—यदि पूज्यः संयतं मम श्यालं मौर्यसचिवं विमुञ्चति ततः मया अपि सद्यः माधवसेनं बन्धनात् मोक्ता ॥ ७ ॥

**मौर्यसचिवमिति** । यदि पूज्यः = आदरणीयः भवानग्निमित्रः संयतम् = निगडितम् ( वन्दीकृतम् ; मम श्यालम् = मदीयं भार्याभ्रातरम् मौर्यसचिवम् = तदाख्यम् विमुञ्चति = त्यजति यदि चेत् ततः = तदनन्तरम् ( मौर्यसचिवे मुक्ते ) सद्यः = शीघ्रम् माधवसेनं बन्धनात् = वन्दीगृहात् मोक्ता = मया मोचयिष्यते ॥ ७ ॥

**भावार्थः**—यदि पूज्यो भवान् वन्दीकृतं मम श्यालं मौर्यसचिवं बन्धनात् त्यजति तदाऽहमपि शीघ्रं माधवसेनं मुक्तं करिष्यामि ।

**छन्दः**—आर्या वृत्तम् ।

**राजा**—( सक्रोधम् ) तदा अयमनात्मज्ञो मां प्रति प्रतिकारभावनां व्यवहरति वाहतक ! विदर्भराजः स्वभावतः मम शत्रुः प्रतिकूलाचारी चास्ति । अत एव शत्रुभूतस्य विदर्भराजस्योन्मूलनाय वीरसेनप्रमुखं सैन्यमण्डलमाज्ञापय ।

**अमात्यः**—महाराजस्य याज्ञा ।

**राजा**—अथवा भवतः किमनुमानम् ?

**अमात्यः**—महाराज ! भवान् नीतिसंगतमादेशं दत्तवान् ।

---

माधवसेन की बहिन कहीं खो गई है । मैं उसे खोजने का प्रयत्न करूँगा । यदि आप भी माधवसेन को मुक्त करना चाहते हैं तो यह शर्त मान लीजिए—

आदरणीय आप यदि मेरे साले मौर्यसचिव को, जो आपका बन्दी है, छोड़ दें तो मैं भी माधवसेन को शीघ्र बन्धन-मुक्त कर दूँगा ॥ ७ ॥

**राजा—( क्रोध के साथ )** क्या यह धृष्ट मुझसे इस प्रकार बदला लेने का व्यवहार करना चाहता है ? देखो वाहतक ! यह विदर्भ का राजा स्वभाव से ही मेरा शत्रु है । मेरे विपरीत ही कार्य करता है । अतः वीरसेन के नायकत्व में जितनी सेना है, उसे आज्ञा दो कि जाकर उसे जड़ से उखाड़ फेंके क्योंकि हम लोगों का संकल्प है कि ऐसे खोटे शत्रु को उखाड़ फेंकना ही उचित है ।

**अमात्य**—जैसी महाराज की आज्ञा ।

**राजा**—पर इसमें आपकी क्या सम्मति है ?

**अमात्य**—महाराज ने तो पहिले ही शास्त्र की बात कह दी है कि—

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् ।
नवसंरोपणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ ८ ॥

राजा—तेन ह्यवितथं तन्त्रकारवचनम् । इदमेव वचनं निमित्तमुपादाय समुद्योज्यतां सेनाधिपतिः ।

अमात्यः—तथा ( इति निष्क्रान्तः । )

( परिजनो यथाव्यापारं राजानमभितः स्थितः । )

( प्रविश्य । )

---

अन्वयः—अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिषु अरूढमूलत्वात् नवसंरोहणशिथिलः तरुः इव समुद्धर्तुं सुकरः ॥ ८ ॥

अचिरेति । अचिराधिष्ठितराज्यः = अभिनवलब्धाधिपत्यः शत्रुः = अरिः प्रकृतिषु—सचिवादिषु अथवा भूमिवृक्षादिषु । अरूढमूलत्वात् = अनुत्पन्नगाढानुरागत्वात् अथवा निर्बलमूलत्वात् । नवसंरोहणशिथिलः = अभिनवरोपणनिर्बलः अथवा नवराज्यारोहणास्थिरः । तरुः = वृक्षः इव समुद्धर्तुं = उत्पाटयितुम् सुकरः = सरलोऽस्ति ॥ ८ ॥

समासः—अचिराधिष्ठितराज्यः = अचिरेण अधिष्ठितं राज्यं येन सः । अरूढमूलत्वात् = अरूढं मूलं यस्य सः अरूढमूलः तस्य भावः तस्मात् । नवसंरोहणशिथिलः = नवं संरोहणं नवसंरोहणं तेन शिथिलः नवसंरोहणशिथिलः ।

अलंकारः—उपमालंकारः ।

छन्दः—आर्यावृत्तम्

राजा—तेन अरूढमूलत्वेन हेतुना तन्त्रकारवचनम् = शास्त्रकारोक्तिः अवितथम् = सत्यम् भविष्यति । इदमेव वचनं = वैदर्भस्य वाक्यम् निमित्तम्=हेतुम्, उपादाय = आलम्ब्य समुद्योज्यताम् = प्रवर्त्यताम् ।

अमात्यः—तथा = देव ! आज्ञापयति तथा करिष्ये । ( इति निर्गच्छति )

( स्व स्व कार्यं कुर्वन्तो दासा राजानं परितः स्थिताः सन्ति )

( प्रवेशं कृत्वा )

---

जो शत्रु अभी नया नया राज्यसिंहासन पर बैठा हो और जो पूर्णरूप से प्रजा में अपनी जड़ न जमा सका हो, वह नये रोपे हुए दुर्बल पौधे के समान बड़ी सरलता के साथ उखाड़ा जा सकता है ॥ ८ ॥

**विशेष**—जो राजा शीघ्र ही राजसिंहासन पर बैठता है, उसे अपदस्थ करना कोई कठिन कार्य नहीं क्योंकि वह नया-नया होने के कारण न तो प्रजा का विश्वास प्राप्त किए रहता है और न उसकी स्थिति ही दृढ़ रहती है । वह तो एक ऐसा पौधा है जिसे अभी-अभी लगाया गया हो तथा जड़ के पृथ्वी में जमा न होने के कारण जब चाहे उखाड़ा जा सकता है । अमरकोश में लिखा है :—

'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्यांगानि प्रकृतयः ।'

**राजा**—तब तो शास्त्र की बात यहाँ पर सत्य ज्ञात हो रही है । अतः शास्त्र के इसी वचन के आधार पर सेनापति को तैयार करो ।

**अमात्य**—अच्छी बात है **( चला जाता है )**

**( सम्पूर्ण सेवक राजा के चारों ओर खड़े हुए अपना अपना काम कर रहे हैं )**

**विदूषकः**—आणत्तोम्हि तत्तभवदा रण्णा। गोदम, चिन्तेहि दाव उवाअं। जह मे जदिच्छादिट्ठप्पदिकिदी मालविआ पच्चक्खदंसणा होदित्ति। मए अ तं तहा किदं दाव से णिवेदेमि। (इति परिक्रामति।) [आज्ञप्तोऽस्मि तत्रभवता राज्ञा गौतम, चिन्तय तावदुपायम्। यथा मे यदृच्छादृष्टप्रतिकृतिर्मालविका प्रत्यक्षदर्शना भवतीति। मया च तत्तथा कृतं तावदस्मै निवेदयामि।]

**राजा**—(विदूषकं दृष्ट्वा।) अयमपरः कार्यान्तरसचिवोऽस्माकमुपस्थितः।

**विदूषकः**—(उपगम्य।) वड्ढदु भवं [वर्धतां भवान्।]

**राजा**—(सशिरःकम्पम्।) इत आस्यताम्।

(विदूषक उपविष्टः।)

**राजा**—अपि कच्चिदुपेयोपायदर्शने व्यापृतं ते प्रज्ञाचक्षुः।

**विदूषकः**—पओअसिद्धिं पुच्छ। [प्रयोगसिद्धिं पृच्छ।]

---

**विदूषकः**—महाराजेन आदिष्टोऽस्मि। गौतम! भवान् उपायं चिन्तयतु मया दृष्टा मालविका चित्रे अधुना सा ममाक्ष्णोः सम्मुखे भवेत्। स्वचिन्तितमुपायं राजानं कथयिष्यामि (इति परिभ्रमति)

**राजा**—(विदूषकमवलोक्य) अयम् = विदूषकः, अपरः = अन्यः, कार्यान्तरसचिवः = अन्यस्मिन् गोपनीये मालविकासाक्षात्कारे सचिवः = सहायकः आगतः।

**विदूषकः**—(समीपं गत्वा) भवान् वृद्धिं गच्छतु।

**राजा**—(शिरश्चालनेन सह) आगच्छ अत्र तिष्ठतु।

(विदूषकः तिष्ठति)

**राजा**—उपेयस्य = प्राप्यस्य, मालविकादर्शनस्य उपायदर्शने = साधननिश्चये ते = तव विदूषकस्य, प्रज्ञाचक्षुः = ज्ञाननेत्रम्, कच्चित् = मनागपि व्याप्तम् = प्रसरति। भवतो बुद्धिः कच्चिदुपायमपश्यत् ? इति भावः।

**विदूषकः**—प्रयोगस्य = कार्यस्य सिद्धिं = परिणतिं पृच्छ = जिज्ञासस्व। कार्यसिद्धिं प्रति पृच्छ। उपायप्रश्नो वृथा स्यादिति भावः।

---

**विदूषकः**—(**प्रवेश कर**) मुझे महाराज ने आज्ञा दी थी कि गौतम! कोई ऐसा उपाय सोच निकालो कि जिस मालविका को मैंने अचानक चित्र में देख लिया है उसे मैं अपनी आँखों से तो देख पाऊं। मैंने उसके लिए जो उपाय निकाला है, चलकर उसे अभी महाराज को बताता हूँ। (**घूमता है**)

**विशेष**—यहाँ पर मालविका के दर्शन की महाराज की उत्सुकता आरम्भ नामक प्रथम अवस्था है। यहाँ बीज और आरम्भ के समन्वय से मुखसन्धि ज्ञात होती है।

**राजा**—(**विदूषक को देखकर**) ये हमारे अन्य कार्य के सहायक सचिव आ गये

**विदूषक**—(**पास पहुँच कर**) महाराज की जय हो।

**राजा**—ऐ (**सिर हिलाकर**) आओ यहाँ बैठो। (**विदूषक बैठ जाता है**)

**राजा**—ज्ञान-नेत्र-सम्पन्न आपने मालविका मिलन के लिए कोई उपाय सोचा ?

**विदूषक**—कार्य-सिद्धि के विषय में पूछिये, उपाय क्या पूछ रहे हैं ?

राजा—कथमिव

विदूषकः—( कर्णे । ) एव्वमिव । [ एवमिव । ]

राजा—साधु वयस्य, निपुणमुपक्रान्तम् । इदानीं दुरधिगमसिद्धावप्यास्मन्नारम्भे वयमाशंसामहे । कुतः—

अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥ ९ ॥

( नेपथ्ये । )

अलं बहु विकत्थ्य । राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तरयोर्व्यक्तिर्भविष्यति ।

राजा—( आकर्ण्य । ) सखे, त्वत्सुनीतिपादपस्य पुष्पमुद्भिन्नम् ।

विदूषकः—फलं वि अइरेण दक्खिस्ससि । [ फलमप्यचिरेण द्रक्ष्यसि । ]

---

राजा—केन प्रकारेण ।

विदूषकः—( श्रोत्रे ) अनेन प्रकारेण ।

राजा—मित्र ! आदरणीयोऽसि । त्वया निपुणम् = अत्युत्तमम्, उपक्रान्तम् = कृतम् । इदानीम् = अधुना, दुरधिगमसिद्धौ = अत्यन्तदुर्लभसाफल्येऽपि अस्मिन्नारम्भे = त्वया आरब्धे उपाये वयम् आशंसामहे = साफल्यं सम्भावयामः । मित्र ! उचितं कृतम् । कार्यन्तु कठिनमस्ति किन्तु इदानीं आशाऽस्ति यत् सिद्धिर्भविष्यति । कुतः—

अन्वयः—सहायवान् एव स प्रतिबन्धम् अर्थम् अधिगन्तुं प्रभुः सचक्षुः अपि दीपेन विना तमसि दृश्यं न पश्यति ॥ ९ ॥

अर्थमिति—सहायवान् = सहायकसम्पन्नः एव जनः सप्रतिबन्धम् = सविघ्नम् अर्थं = वस्तु अधिगन्तुम् = समासादयितुम् प्रभुः = समर्थः । सचक्षुः = नेत्रवान् अपि जनः, दीपेन विना प्रकाशमन्तरेण तमसि = अन्धकारे, दृश्यं = दर्शनीयं वस्तु न पश्यति = नेक्षते ॥ ९ ॥

अलंकारः—अत्र दृष्टान्तोऽलंकारः । परिकर नाम सन्ध्यङ्गम् । छन्दः—आर्या वृत्तम् ।

( नेपथ्ये ) स्वकीय प्रशंसां मा कुरु । नृपस्य समक्षे एव निर्णयो भविष्यति यत् आवयोः कः श्रेष्ठः ?

राजा—( श्रुत्वा ) मित्र ! भवतो नीतिवृक्षे पुष्पं विकसितमस्ति ।

विदूषकः—शीघ्रमेव तस्मिन् फलमपि भवान् पश्येत् ।

---

**राजा**—कैसे ?

**विदूषक—(कान में )** इस प्रकार ।

**राजा**—वाह मित्र ! तुमने बड़ी चतुराई का काम किया है । यह कार्य तो अत्यन्त कठिन है परन्तु तुमने जैसा आरम्भ किया है, उससे कुछ कुछ आशा हो चली है । क्योंकि—

कठिन कार्यों में जब कोई सहायक मिल जाय तो समझ लेना चाहिये कि अब कार्य हो जायगा । क्योंकि आँखों वाला मनुष्य भी अन्धकार में बिना दीपक के कुछ नहीं देख सकता ॥ ९ ॥

**( नेपथ्य में )** अधिक बकवाद न करो । अभी महाराज के सामने ठीक-ठीक पता चल जाएगा कि हम दोनों में कौन छोटा है कौन बड़ा ?

**राजा—( सुनकर )** मित्र ! तुम्हारे नीति-वृक्ष में फूल निकल आए ।

**विदूषक**—शीघ्र ही फल भी देखिएगा ।

( ततः प्रविशति कञ्चुकी । )

**कञ्चुकी**—देव, अमात्यो विज्ञापयति । अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा । एतौ पुनर्हर-दत्तगणदासौ—

**उभावभिनयाचार्यौ परस्परजयैषिणौ ।**
**त्वां द्रष्टुमुद्यतौ साक्षाद्भावाविव शरीरिणौ ॥ १० ॥**

**राजा**—प्रवेशय तौ ।

**कञ्चुकी**—यदाज्ञापयति देवः । ( इति निष्क्रम्य ताभ्यां सह प्रविश्य । ) इत इतो भवन्तौ ।

---

( तत्पश्चात् वृद्धो विप्रः आगच्छति )

कञ्चुकी—महाराज ! सचिवः कथयति । श्रीमतः आज्ञा पालिता । अत्र वर्तेते हरदत्त गणदासौ ।

**अन्वयः**—साक्षात् शरीरिणौ भावौ इव परस्परजयैषिणौ उभौ अभिनयाचार्यौ त्वां द्रष्टुमुद्यतौ ॥ १० ॥

**उभाविति**—साक्षात् = प्रत्यक्षम् । शरीरिणौ = मूर्त्तिमन्तौ भावौ = नृत्यगीतादिपदार्थौ इव परस्परजयैषिणौ = अन्योन्यविजयेच्छुकौ उभौ = द्वौ, अभिनयाचार्यौ = संगीतशिक्षकौ, त्वां द्रष्टुमवलोकितुम् उद्यतौ = तत्परौ । द्वावपि संगीतशिक्षकौ विजयेच्छुकौ स्तः । भवतः दर्शनार्थमुपस्थितौ । ज्ञायते द्वावपि मूर्त्तिमन्तौ संगीतपदार्थौ स्तः ॥ १० ॥

**अलंकारः**—अस्मिन् पद्ये उत्प्रेक्षालंकारेण पटुत्वं ज्ञायते ।

**छन्दः**—अनुष्टुप् ।

**राजा**—आगच्छताम् द्वावपि ।

**कञ्चुकी**—देवस्य यादृशी आज्ञा । ( निर्गच्छति ताभ्यां सह प्रविशति ) अनेन मार्गेण भवन्तौ आगच्छताम् ।

---

**( तब कञ्चुकी प्रवेश करता है )**

**विशेष**—राजाओं के अन्तःपुर में रहने वाला गुण समूहों से समन्वित, सम्पूर्ण कार्यों के सम्पादन में प्रवीण, वृद्ध जाति का ब्राह्मण होता है जो कञ्चुकी कहलाता है ।

कञ्चुकी का लक्षण—

अन्तःपुरचरो विप्रो वृद्धो गुणगणान्वितः ।
सर्वशास्त्रार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

**कञ्चुकी**—देव ! मन्त्री जी का कथन है कि आपकी आज्ञा का पालन हो गया । अभिनय के आचार्य हरदत्त और गणदास आपस में एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के इच्छुक होकर आपसे मिलने के लिए बाहर स्थित इस प्रकार ज्ञात हो रहे रहे हैं मानों स्वयं नाटक के भाव ही शरीर धारण करके चले आए हों ॥ १० ॥

**विशेष**—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा पटुता की ध्वनि होती है ।

**राजा**—दोनों को भीतर प्रवेश कराओ ।

**कञ्चुकी**—महाराज की जो आज्ञा । **( बाहर निकलकर दोनों के साथ प्रवेश करके )** इधर से आइए आपलोग, इधर से ।

गणदासः—( राजानं विलोक्य । ) अहो, दुरासदो राजमहिमा ।

**न च न परिचितो न चाप्यरम्यश्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य ।**
**सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः ॥ ११ ॥**

हरदत्तः—महत्खलु पुरुषाकारमिदं ज्योतिः । तथाहि—

---

**गणदासः**—( नृपमवलोक्य ) नृपस्य प्रभावोऽतिदुर्धर्षो वर्तते ।

**अन्वयः**—( अयं ) च न परिचितः इति न, अपि च अरम्यः न तथापि अस्य पार्श्वम् चकितम् उपैमि । स एव अयं सलिलनिधिः इव मे अक्ष्णोः प्रतिक्षणं नवः भवति ॥ ११ ॥

**न च नेति** । अयम् = एष राजाग्निमित्रः न परिचितः = न विज्ञातः इति न = अपितु चिरपरिचित एव । अरम्यः = असौम्यदर्शनोऽपि न अस्तीति । तथापि अस्य राज्ञः = महाराजस्याग्निमित्रस्य पार्श्वम् = समीपम् चकितम् = भीतम् उपैमि = उपगच्छामि । अस्य पार्श्वं गत्वा चकितो भवामि । स एव पूर्वतो दृष्ट एव स राजा सलिलनिधिः = सागर इव प्रतिक्षणम् क्षणे क्षणे मे = मम, अक्ष्णोः = नेत्रयोः नवः नवः = नित्यनूतन इव भवति = प्रतिभासते ॥ ११ ॥

**समासः**—सलिलस्य निधिः सलिलनिधिः ।

**भावार्थः**—यद्यपि महाराजोऽग्निमित्रः परिचितोऽस्ति तथा अस्य पार्श्वमपि गन्तुं शक्नोमि तथापि अस्य समीपं गच्छन् अहं भयभीतो भवामि । समुद्र इव अयं महाराजः मम नेत्रयोः समक्षे नूतन इव प्रतिभाति ।

**टिप्पणी**—महाकविः माघोऽप्यलिखद् शिशुपालवधे—"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवं रूपं रमणीयतायाः" ।

**अलंकारः**—उपमोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः ।

**हरदत्तः**—इदम् = पुरतो दृश्यमानम् पुरुषाकारम् = मानवमूर्त्तिधरम् महत् = परमोत्कृष्टम् ज्योतिः = तेजः । नायं महाराजः पुरुषः किन्तु महान् प्रभासमूहः । तथाहि = यतः ।

---

**गणदास—( राजा को देखकर )** वाह, महाराज का तेज भी अद्वितीय है । इनके पास तक पहुँचना कठिन बात हो रही है । क्योंकि—

ऐसी बात नहीं है कि इनसे पहिले से परिचय न हो या ये देखने में भयंकर लग रहे हों फिर भी न जाने क्यों मुझे इनके पास जाते हुए भय लग रहा है । समुद्र के समान ज्यों के त्यों रहते हुए भी ये मेरी आँखों को पल पल में नवीन से दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ११ ॥

**विशेष**—इसी भाव को "शिशुपालवध" के चतुर्थ सर्ग में महाकवि माघ ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" अर्थात् वही वस्तु अनुपम सुन्दर मानी जाती है, जो क्षण-क्षण में नवीनता को प्राप्त करती रहती है ।

**अलंकार**—उपमा और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है ।

**हरदत्त**—पुरुष के रूप में राजा का तेज सचमुच महान् प्रभावशाली है । क्योंकि—

द्वारे नियुक्तपुरुषाभिमतप्रवेशः
सिंहासनान्तिकचरेण सहोपसर्पन् ।
तेजोभिरस्य विनिवर्तितदृष्टिपातै-
र्वाक्यादृते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि ॥ १२ ॥

**कञ्चुकी**—एष देवः । उपसर्पतां भवन्तौ ।

**उभौ**—( उपेत्य । ) विजयतां देवः ।

**राजा**—स्वागतं भवद्भ्याम् । ( परिजनं विलोक्य । ) आसने तावदत्र भवतोः ।

( उभौ परिजनोपनीतयोरासनयोरुपविष्टौ । )

**राजा**—किमिदं शिष्योपदेशकाले युगपदाचार्याभ्यामत्रोपस्थानम् ।

---

**अन्वयः**—द्वारे नियुक्तपुरुषानुमतप्रवेशः सिंहासनान्तिकचरेण सह उपसर्पन् ( अहम् ) अस्य विनिर्वर्तितदृष्टिपातैः तेजोभिः वाक्यात् ऋते पुनः प्रतिवारित इव अस्मि ॥ १२ ॥

**द्वारे नियुक्तादि** । द्वारे = द्वारदेशे नियुक्तपुरुषाभिमत प्रवेशः = अधिकृतद्वारपाल-प्राप्तप्रवेशः । सिंहासनान्तिकचरेण = राजासनसमीपचारिणा । सह = साकम् उपसर्पन् = उपगच्छन् ( अहम् ) अस्य = राज्ञः विनिर्वर्तितदृष्टिपातैः = निवारितदृष्टिप्रसारैः तेजोभिः = प्रभाभिः, वाक्यादृते = वाक्यं विनैव पुनः = भूयः प्रतिवारित = निवारित इवास्मि ॥१२॥

**समासः**—नियुक्तपुरुषाभिमतप्रवेशः = नियुक्तः पुरुषः नियुक्तपुरुषः, तेन अनुमतः प्रवेशो यस्य सः । सिंहासनान्तिकचरेण = सिंहासनस्य अन्तिके चरतीति सिंहासनान्तिकचरः तेन । विनिर्वर्तितदृष्टिपातैः—विनिर्वर्तितः दृष्टिपातः यैः तादृशैः = विनिर्वर्तितदृष्टिपातैः ।

**अलंकारः**—क्रियोत्प्रेक्षालंकारः । **छन्दः**—वसन्ततिलका वृत्तम् ।

**कञ्चुकी**—एषः महाराजोऽस्ति आगच्छताम् भवन्तौ ।

**उभौ**—( समीपमागत्य ) देवस्य विजयो भवतु ।

**राजा**—संगीतशिक्षकाभ्यां भवद्भ्यां स्वागतम् । ( दासमवलोक्य ) आभ्याम् शिक्षकाभ्यामासनं देहि ।

( द्वावपि दासप्रदत्तविष्टरयोर्निषीदतः )

**राजा**—छात्रशिक्षणसमये युगपद् = एकदैव आचार्याभ्याम् = शिक्षकाभ्याम् अत्रोप-स्थानम् = अत्रागमनं आश्चर्यकरमस्ति । कथमागतौ ?

---

यद्यपि द्वारपाल ने मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया है और मैं इनके सिंहासन के पास रहने वाले कञ्चुकी के साथ ही भीतर भी आया हूँ फिर भी इनके तेज से मेरी आँखें इतनी चकित हो गई हैं मानों विना रोके ही मैं बढ़ने से रोक दिया गया हूँ ॥ १२ ॥

**कञ्चुकी**—ये महाराज हैं, आप लोग आगे बढ़ें ।

**दोनों**—( **आगे आकर** ) देव की जय हो ।

**राजा**—आप दोनों का स्वागत हैं । ( **सेवक को देखकर** ) आप लोगों के लिए आसन तो लाओ ।

**( सेवकों के लाए हुए आसनों पर दोनों बैठते हैं )**

**राजा**—कहिए, यह तो शिष्यों को पढ़ाने का समय है । इस समय आप दोनों आचार्य एक साथ कैसे आ पहुँचे ?

**गणदासः**—देव, श्रूयताम् । मया सुतीर्थादभिनयविद्या सुशिक्षिता । दत्तप्रयोग-श्चास्मि । देवेन देव्या च परिगृहीतः ।

**राजा**—वाढं जाने । ततः किम् ।

**गणदासः**—सोऽहमनुना हरदत्तेन प्रधानपुरुषसमक्षमयं मे न पादरजसापि तुल्य इत्यधिक्षिप्तः ।

**हरदत्तः**—देव, अयमेव प्रथमं परिवादकरः । अत्रभवतः किल मम च समुद्र-पल्वलयोरिवान्तरमिति तत्र भवानिमं मां च शास्त्रे प्रयोगे च विमृशतु । देव एव नौ विशेषज्ञः प्राश्निकः ।

**विदूषकः**—समत्थं पइण्णादं । [ समर्थं प्रतिज्ञातम् । ]

---

**गणदासः**—शृणोतु महाराजः । मया = गणदासेन । सुतीर्थाद् = प्रसिद्धात् शिक्षकाद् अभिनयविद्या = नाटचशिक्षा सुशिक्षिता = सम्यक् रूपेण अधीता । दत्तप्रयोगः = छात्रेभ्यो दत्ताभिनयविद्यः । देवेन = महाराजेन अग्निमित्रेण देव्या च = धारिण्या महाराज्ञ्या च परिगृहीतः = योग्यतया पूर्णरूपेण सम्मानितश्च ।

**राजा**—वाढं जाने=साधु जानामि । ततः किम्=एतेन परिचयेन किम् प्रयोजनमस्ति ।

**गणदासः**—सोऽहम् = स एव अहम् अमुना = अनेन हरदत्तेन = द्वितीयेन अध्यापकेन प्रधानपुरुषसमक्षम् = सचिवादि प्रधानराजपुरुषाणां सम्मुखे मे न = मम न पादरजसापि = चरणधूल्यापि तुल्यः = समानः इति = अनेन प्रकारेण कथनेन अधिक्षिप्तः = अवमानितोऽस्मि ।

**हरदत्तः**—देव ! = भो महाराज ! अयमेव = गणदास एव प्रथमं = पूर्वम् पारिवादकरः = निन्दकः । अत्र भवतः = माननीयस्य, ( व्यंग्यरूपेणोक्तम् ) मम च, समुद्रपल्वलयोः = जलनिधिक्षुद्रगर्त्तयोः ( यावदन्तरं रूपमहत्त्वगाम्भीर्यादौ तावदेवान्तरं मम हरदत्तस्य च विद्यायां इति निन्दां प्रथमं गणदास एवाकथयत् इति भावः ) तदत्र = ततोऽस्मिन् स्थाने भवान् = श्रीमान् महाराजः इमम् = गणदासम् माम् = हरदत्तम् । शास्त्रे = नाटचशास्त्रे प्रयोगे च = अभिनयकर्मणि च । विमृशतु = विचारयतु । अस्य मम च परीक्षां करोतु । देव एव = महाराज एव, नौ = आवयोः विशेषज्ञः = भेदज्ञाता प्राश्निकः = प्रश्नं कृत्वा कोटिनिर्धारकः ।

**विदूषकः**—समर्थम् = उचितम् प्रतिज्ञातम् = स्वीकृतम् ।

---

**गणदास**—सुनिए देव ! मैंने बड़े योग्य गुरु से विद्या सीखी है और इतने दिनों से सिखा भी रहा हूँ । महाराज और महारानी के द्वारा मैं सम्मानित भी हुआ हूँ ।

**राजा**—यह तो मैं जानता हूँ तो फिर क्या हुआ !

**गणदास**—आज इन हरदत्तजी ने प्रधानराजपुरुष के समक्ष यह कहकर अपमानित किया है कि मैं इनकी पदधूलि के समान भी नहीं हूँ ।

**हरदत्त**—इन्होंने ही सर्वप्रथम मेरी निन्दा करते हुए कहा कि इनमें और मुझमें समुद्र और गड्ढे का सा अन्तर है । अब आप इन्हें और मुझे नाट्यशास्त्र तथा अभिनय कर्म में जाँच कर लें । आप ही हम दोनों के प्रश्नों द्वारा गुणनिश्चित करने वाले परीक्षक हैं ।

**विदूषक**—उचित कहा ।

**गणदासः**—प्रथमः कल्पः। अवहितो देवः श्रोतुमर्हति।

**राजा**—तिष्ठ तावत्। पक्षपातमत्र देवी मन्यते। तदस्याः पण्डितकौशिकी-सहितायाः समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः।

**विदूषकः**—सुट्ठु भवं भणादि। [ सुष्ठु भवान्भणति। ]

**आचार्यौ**—यद्देवाय रोचते।

**राजा**—मौद्गल्य, अमु प्रस्ताव निवेद्य पण्डितकौशिक्या सार्धमाहूयतां देवी।

**कञ्चुकी**—यदाज्ञापयति देवः। ( इति निष्क्रम्य सपरिव्राजिकया देव्या सह प्रविष्टः। ) इत इतो भवती।

**धारिणी**—( परिव्राजिका विलोक्य। ) भअवदि, हरदत्तस्स गणदासस्स अ संरम्भं कहं पेक्खसि। [ भगवति, हरदत्तस्य गणदासस्य च संरम्भे कथं पश्यसि। ]

---

**गणदासः**—प्रथमः कल्पः = मुख्यः पक्षः अवहितः = सावधानः देवः श्रोतुमर्हति = आकर्णयितुं युज्यते।

**राजा**—तिष्ठ यावत् = किञ्चित्कालपर्यन्तं प्रतीक्षस्व। अत्र = विवादनिर्णये देवी = धारिणी पक्षपातम् = अनुचितं स्नेहम् मन्यते = ज्ञास्यति। तद् = ततः अस्याः = देव्याः पण्डितकौशिकीसहितायाः = विदुषीकौशिकीयुक्तायाः समक्षमेव = सम्मुखे न्याय्यः = उचितः व्यवहारः = विवादनिर्णयः।

**विदूषकः**—भवान् समीचीनं कथयति।

**आचार्यौ**—यद् भवान् इच्छेत्।

**राजा**—मौद्गल्य ! भो कञ्चुकिन् ! अमुं प्रस्तावं = एतं निर्णयम् निवेद्य = उक्त्वा पण्डितकौशिक्या = विदुष्या कौशिक्या सार्द्धं = सह आहूयतां देवी = धारिणी आगच्छतु।

**कञ्चुकी**—देवस्य या आज्ञा। ( निर्गत्य राज्ञ्या परिव्राजिकया सह पुनः प्रविशति )।

**धारिणी**—( अवलोक्य कौशिकीम् ) हरदत्तस्य गणदासस्य च विवादे भवती किं जानासि ?

---

**गणदास**—ठीक है। आप सावधान होकर सुनें।

**राजा**—अभी ठहरो। यदि हम निर्णय करेंगे तो देवी समझेंगी कि मैंने पक्षपात किया है अतएव उनके और विदुषी कौशिकी के सामने ही निर्णय किया जाना चाहिए।

**विदूषक**—आप ठीक कह रहे हैं।

**दोनों**—जैसा देव उचित समझें।

**राजा**—मौद्गल्य ! यह प्रस्ताव कहकर पण्डिता कौशिकी के साथ रानी को बुला लाओ।

**कञ्चुकी**—महाराज की जो आज्ञा। **( निकलकर परिव्राजिका सहित देवी के साथ प्रवेश करता है। )** इधर से आइए देवी इधर से।

**धारिणी**—**( परिव्राजिका को देखकर )** हरदत्त और गणदास के विवाद में आप किसकी विजय सोचती हैं ?

**परिव्राजिका**—अलं स्वपक्षावसादशङ्कया । न परिहीयते प्रतिवादिनो गणदासः ।

**धारिणी**—जइ वि एवं तह वि राअपरिग्गहो पहाणत्तणं उवहरदि । [**यद्यप्येवं तथापि राजपरिग्रहः प्रधानत्वमुपहरति ।**]

**परिव्राजिका**—अयि, राज्ञी शब्दभाजनमात्मानमपि चिन्तयतु भवती । पश्य—

**अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः ।**
**अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ॥ १३ ॥**

---

**परिव्राजिका**—स्वपक्षावसादशंकया = गणदासपराजयचिन्तया अलम् = व्यर्थम् । न परिहीयते = न न्यूनः । प्रतिवादिनो = शत्रुतः । गणदासः = शिक्षकः ।

**धारिणी**—यद्यपि तव कथनमुचितमस्ति तथापि राजपरिग्रहः = नृपाश्रयः प्रधानत्वम् = प्रामुख्यम् उपहरति = सम्पादयति । राजाश्रयः पुरुषः प्रमुखतां प्राप्नोतीति भावः ।

**परिव्राजिका**—अयि = भोः राज्ञीशब्दभाजनम् = महाराज्ञीपदप्रयोगपात्रम् । आत्मानम् = स्वकीयम् चिन्तयतु = विचारयतु भवती = श्रीमती । पश्य—

**अन्वयः**—अनलः भानोः परिग्रहात् अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति । चन्द्रः अपि निशापरिगृहीतः ( सन् ) महिमानं अधिगच्छति ॥ १३ ॥

**अतिमात्रभासुरत्वमिति** । अनलः = अग्निः, भानोः = सूर्यस्य परिग्रहात् = स्वायत्तीकरणात् अतिमात्रभासुरत्वम् = अत्यन्तप्रकाशत्वम् पुष्यति = वर्धयति । चन्द्रोऽपि = निशाकरोऽपि निशापरिगृहीतः = रात्रिस्वीकृतः महिमानम् = प्रकाशम् अधिगच्छति = प्राप्नोति ॥ १३ ॥

**समासः**—अतिमात्रभासुरत्वम् = भासुरस्य भावः भासुरत्वम् अतिमात्रं भासुरत्वम् अतिमात्रभासुरत्वम् । निशापरिगृहीतः = निशया परिगृहीतः = निशापरिगृहीतः ।

**भावार्थः**—यथानलः सूर्यस्य कृपया नक्तं प्रकाशते तथा चन्द्रोऽपि निशानुरागेण ।

**अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः । **छन्दः**—आर्या छन्दः ।

---

**परिव्राजिका**—आप अपने पक्ष के पराजय की बात न सोचिए । गणदास अपने प्रतिवादी से न्यून नहीं है ।

**धारिणी**—यद्यपि यह ठीक है तथापि राजा की कृपा जिस पर होगी वह जीत जाएगा ।

**परिव्राजिका**—आप भी स्मरण रखें कि आप भी महारानी हैं । देखिए—

जिस प्रकार सूर्य की कृपा से अग्नि में बहुत चमक आ जाती है, वैसे ही रात की कृपा पाकर चन्द्रमा में भी बहुत चमक आ जाती है ॥ १३ ॥

**विशेष**—यह तथ्य स्वाभाविक है कि दिन में अग्नि में कम प्रकाश होता है किन्तु रात्रि के समय उसमें अधिक प्रकाश आ जाता है । कवि की दृष्टि में इसका कारण है अग्नि पर सूर्य की कृपा । शास्त्रों में कहा गया है कि सूर्य, अस्त होने पर अग्नि में प्रवेश कर जाता है । दूसरी ओर चन्द्रमा भी रात्रि की कृपा से अधिक प्रकाशित हो जाता है । इस अन्योक्ति में अग्नि और भानु, हरदत्त तथा महाराज के सूचक हैं । हरदत्त रूप अग्नि, राजा रूप भानु से प्रतिष्ठा को प्राप्त किए हुए है । दूसरी ओर चन्द्रमा और निशा क्रमशः गणदास और महारानी धारिणी के सूचक हैं । रानी के आश्रय से गणदास को भी प्रतिष्ठा प्राप्त है । दोनों आचार्य प्रतिष्ठा में बराबर हैं । अतएव परिव्राजिका, महारानी को अपने पक्ष ( गणदास ) के हारने की शंका से रोकती है ।

**अलंकार**—समान अप्रस्तुत से समान प्रस्तुत की प्रतीति होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है ।

विदूषकः—अइ, उणट्ठिदा देवी पीठमहिअं पण्डिअकोसिइं पुरोकरिअ तत्तभोदी धारिणी। [ अयि, उपस्थिता देवी पीठमर्दिकां पण्डितकौशिकीं पुरस्कृत्य तत्रभवती धारिणी। ]

राजा—पश्याम्येनाम्। यैषा—

**मङ्गलालंकृता भाति कौशिक्या यतिवेषया।**
**त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया॥ १४॥**

परिव्राजिका—( उपेत्य। ) विजयतां देवः।

राजा—भगवति, अभिवादये।

परिव्राजिका—**महासारप्रसवयोः सदृशक्षमयोर्द्वयोः।**
**धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम्॥ १५॥**

---

विदूषकः—अयि = भोः उपस्थिता = समागता, देवी = महाराज्ञी, पीठमर्दिकाम् = शृङ्गारसहायिकाम् पण्डितकौशिकीम् = एतन्नाम्नीं परिव्राजिकाम् पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्वा तत्र भवती = माननीया देवी धारिणी।

**राजा**—पश्यामि = अवलोकयामि एनाम् = परिव्राजिकाम्। येयम्—

**अन्वयः**—मंगलालंकृता यतिवेषया कौशिक्या समम् त्रयी विग्रहवत्या अध्यात्मविद्यया ( समम् ) इव भाति॥ १४॥

**मङ्गलालंकृतेति**। मंगलालंकृता = शोभनकृतवेशविन्यासा, यतिवेषया = धृतविरक्तभूषया, कौशिक्या समं = सह त्रयी = वेदत्रयी, विग्रहवत्या = शरीरिण्या अध्यात्मविद्यया = दर्शन-शिक्षया समम् इव भाति = प्रकाशते॥ १४॥

**समासः**—मंगलं यथास्यात्तथाऽलंकृता। यतिवेषया=यतेः वेषः इव वेषो यस्या सा तया।

**अलंकारः**—उपमालंकारः।

**परिव्राजिका**—( समीपं गत्वा ) देवस्य विजयो भवतु।

**राजा**—भवतीं प्रणमामि।

**अन्वयः**—महासारप्रसवयोः सदृशक्षमयोः धारिणीभूतधारिण्योः द्वयोः भर्ता शरच्छतं भव॥ १५॥

---

**विदूषक**—अहा! महरानी धारिणी जी संगिनी पण्डिता कौशिकी को साथ लिए हुए इधर चलीं आ रही हैं।

**पीठमर्द** = "किञ्चित्तद्गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः"। यद्यपि पीठमर्द पुरुष ही होता है किन्तु विदूषक के कथन से यहाँ स्त्रीलिंग में प्रयुक्त है।

**राजा**—इनको देखता हूँ। जो यह—

सन्यासिनी वेशवाली कौशिकी के साथ वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित महारानी ज्ञात होती है मानों अध्यात्मविद्या के साथ शरीरधारिणी वेदमयी चली आ रही हो॥ १४॥

**परिव्राजिका**—( **समीप जाकर** ) महाराज की जय हो।

**राजा**—भगवती! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

**परिव्राजिका**—सैकड़ों वर्षों तक महातेजस्वियों को उत्पन्न करने वाली उन पृथ्वी और धारिणी देवी के आप स्वामी बने रहें जिनमें सहन करने की शक्ति एक समान है॥ १५॥

धारिणी—जेदु जेदु अज्जउत्तो । [ जयतु जयत्वार्यपुत्रः । ]

राजा—स्वागतं देव्यै । ( परिव्राजिकां विलोक्य ) भगवति, क्रियतामासनपरिग्रहः ।

( सर्वे उपविशन्ति )

राजा—भगवति, अत्रभवतोर्हरदत्तगणदासयोः परस्परं विज्ञानसंघर्षिणोर्भगवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम् ।

परिव्राजिका—( सस्मितम् । ) अलमुपालम्भेन । पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा ।

राजा—नैतदेवम् । पण्डितकौशिकी खलु भगवती, पक्षपातिनावहं देवी च ।

आचार्यौ—सम्यगाह देवः । मध्यस्था भगवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति ।

---

**महासारेति ।** महासारप्रसवयोः = उन्नतबलफलापत्ययोः सदृशसमयोः = समानतितिक्षयोः धारिणीभूतधारिण्योः = देवीभूतधात्र्योः पतिः = स्वामी भव ॥ १५ ॥

**समासः**—महासारप्रसवयोः = महान् सारो येषान्ते महासाराः महासाराः प्रसवाः ययोस्तयोः । सदृशक्षमयोः = सदृशी क्षमा ययोस्तयोः । धारिणीभूतधारिण्योः = धारिणी भूतधारिणी च तयोः ।

**अलंकारः**—अतिशयोक्तिरलंकारः । समासोक्तिश्च एतयोः संसृष्टिः ।

**धारिणी**—आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु ।

**राजा**—देव्यै = महाराज्ञ्यै स्वागतम् = शुभागमनम् । ( कौशकीमवलोक्य ) भगवति ! आसनमुपविशतु ।

**राजा**—भगवति ! अत्रभवतोः = श्रीमतोः हरदत्तगणदासयोः = द्वयोः नाट्यशिक्षकयोः परस्परं विज्ञानसंघर्षिणोः = मिथः ज्ञानस्पर्द्धाशालिनोः भगवत्या = त्वया प्राश्निकपदम् = परीक्षकस्थानम् अध्यासितव्यम् = आश्रयणीयम् ।

**परिव्राजिका**—( स्मितं कृत्वा ) तिरस्कारेणालम् । पत्तने = नगरे सति ग्रामे = कृषकनिवासस्थले रत्नपरीक्षा = मरकतादिपरीक्षा भवति किम् ।

**राजा**—एवम् = तिरस्कारम् न एतद् = न मम कथनम् । भवती भगवती पण्डिता कौशिकी वर्तते अहं देवी च पक्षपातयुक्तौ भवितुमर्हतः ।

**आचार्यौ**—महाराज उचितं अकथयत् । मध्यस्था = परीक्षिका भूत्वा कौशिकी नौ =

---

**धारिणी**—जय हो, आर्यपुत्र की जय हो ।

**राजा**—देवी का स्वागत है । **( परिव्राजिका की ओर देखकर )** आइए बैठिए भगवती ।

**( सब बैठते हैं )**

**राजा**—भगवती आचार्य हरदत्त और गणदास अभिनय कला का विवाद लेकर आए हैं । इन दोनों में कौन योग्य हैं ? इसके निर्णय के लिए आप मध्यस्थ बनें ।

**परिव्राजिका—( मुस्कराकर )** आप मुझे अपमानित न करें । भला नगर के रहते हुए कहीं रत्न की परीक्षा गाँव में की जाती है ।

**राजा**—नहीं ऐसी बात नहीं है । आप विदुषी हैं मुझे और देवी को पक्षपाती भी कहा जा सकता है ।

**आचार्यौ**—महाराज ने ठीक कहा । निष्पक्ष भगवती ही हम लोगों के गुणदोष की परीक्षा कर सकेंगी ।

**राजा**—तेन हि प्रस्तूयतां विवादः ।

**परिव्राजिका**—देव, प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम् । किमत्र वाग्व्यवहारेण । कथं वा देवी मन्यते ।

**देवी**—जइ मं पुच्छसि, तदा एदाणं विवादो एव्व ण मे रोअदि । [ **यदि मां पृच्छसि, तदैतयोर्विवाद एव न मे रोचते ।** ]

**गणदासः**—देवि न मां समानविद्यया परिभवनीयमवगन्तुमर्हसि ।

**विदूषकः**—भोदि, पेक्खामो उअरंभरिसंवादं । किं मुहा वेअणदाणेण एदेणं । [ **भवति, पश्याम उदरंभरिसंवादम् । किं मुधा वेतनदानेनैतेषाम् ।** ]

**देवी**—णं कलहप्पिओसि । [ **ननु कलहप्रियोऽसि ।** ]

**विदूषकः**—मा एव्वं चण्डि, अण्णोण्णकलहप्पिआणं मत्तहत्थीणं एक्कदरस्सि अणिज्जिदे कुदो उवसमो । [ **मैवं चण्डि, अन्योन्यकलहप्रिययोर्मत्तहस्तिनोरेकतरस्मिन्ननिर्जिते कुत उपशमः ।** ]

---

आवयोः गुणदोषतः = गुणदोषाभ्याम् परिच्छेत्तुम् = विचारयितुम् अर्हति = योग्याऽस्ति । कतरः श्रेष्ठ इति निर्णेतुं शक्या ।

**राजा**—तेन = तदा प्रस्तूयताम् = प्रवर्त्यताम् विवादः = शास्त्रार्थरूपः कलहः ।

**परिव्राजिका**—देव = महाराज ! नाटयशास्त्रम् प्रयोगप्रधानम् = अभिनयप्रधानम् । वाग्व्यवहारेण = वाक्कलहेन किम् = कोऽर्थः । देव्याः का सम्मतिर्वर्तते ?

**देवी**—यदि भवती मां पृच्छति तदा एतयोः = आचार्ययोः विवादः = शास्त्रार्थः न मे रोचते = मह्यम् न रोचते ।

**गणदासः**—देवि ! मां समानविद्यया = समानविद्यतया तुल्यत्वेन परिभवनीयम् = विजेयम् अवगन्तुं = ज्ञातुम् नार्हसि = न योग्योऽसि ।

**विदूषकः**—भवति = श्रीमति उदरंभरिसंवादम् = उदरं कुक्षिं बिभृत इति उदरम्भरिणौ तयोः विवादम् विवादवार्तालापम् । पश्यामः । एतेषाम् = एष कलाकाराणां वेतनदानेन = पारिश्रमिक प्रदानेन मुधा किम् = नास्ति लाभः ।

**देवी**—भवान् कलहप्रियः = विवादाभिलाषी अस्ति । ननु = प्रश्ने ।

**विदूषकः**—मैवम् = अहं कलहप्रियो नास्मि । चण्डि = कोपने, अन्योन्यकलहप्रिययोः =

---

**राजा**—आप लोग शास्त्रार्थ प्रारम्भ करें ।

**परिव्राजिका**—महाराज ! नाट्यशास्त्र तो अभिनय है । केवल वाग्विवाद से क्या लाभ ? देवी का क्या विचार है ?

**देवी**—यदि मुझसे पूछा जाय तो मुझे इनका विवाद नहीं अच्छा लगता ।

**गणदास**—देवी ! आप न समझें कि मैं नाट्यविधा में किसी से हार जाऊँगा ।

**विदूषक**—तो देवी ! इन दोनों पेटुओं का कार्य देख ही क्यों न लिया जाय ? नहीं तो इन्हें वेतन देकर पालने से क्या लाभ ?

**देवी**—तुम्हें तो कलह ही अच्छा लगता है ।

**विदूषक**—ऐसा न कहें । चण्डी ! इन दोनों झगड़ालू मदमत्त हाथियों में से जब तक एक की हार नहीं हो जाएगी तब तक शान्ति कैसे होगी ?

राजा—ननु स्वाङ्गसौष्ठवातिशयमनुभयोर्दृष्टवती भगवती ।

परिव्राजिका—अथ किम् ।

राजा—तदिदानीमतः परं किमाभ्यां प्रत्याययितव्यम् ।

परिव्राजिका—तदेव वक्तुकामास्मि ।

**श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।**
**यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥१६॥**

---

परस्परविजयेच्छुकयोः । मत्तहस्तिनोः = मदमत्तगजयोः । एकतरस्मिन् = एकस्मिन्नपि । अनिर्जिते = अविजिते कुतः = कथम् । उपशमः = विवादनिवृत्तिः सम्भवति ।

**राजा**—ननु = प्रश्ने । स्वाङ्गसौष्ठवातिशयम् = स्वांगे = रूपविन्यासे, यत्सौष्ठवम् = यत्सौन्दर्यम् । तत्रातिशयम् = अतिरेकम् । रूपविन्याससौन्दर्यतिरेकम् । उभयोः = शिक्षकयोः भगवती = देवी दृष्टवती = अपश्यत् ।

**परिव्राजिका**—अथ किम् = अवश्यमेव ।

**राजा**—तत् = तदा, इदानीम् = अधुना अतः = एतस्मात् परम् = अधिकम् किम् आभ्याम् = हरदत्तगणदासाभ्याम् प्रत्याययितव्यम् = बोधनीयम् । कीदृशी परीक्षा दातव्येति भावः ।

**परिव्राजिका**—तदेव = इदमेव वक्तुकामा = कथनेच्छुका अस्मि ।

**अन्वयः**—कस्यचित् आत्मसंस्था क्रिया श्लिष्टा अन्यस्य संक्रान्तिः विशेषयुक्ता । यस्य उभयं साधु स एव शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्यः ॥ १६ ॥

**श्लिष्टेति** । कस्यचित् = कस्यापि मानवस्य आत्मसंस्था = स्वनिष्ठा क्रिया = शिक्षा श्लिष्टा = संगता । अन्यस्य = कस्यचिदपरस्य पुरुषस्य संक्रान्तिः = शिष्येषु क्रियासंक्रमणम् । विशेषयुक्ता = अतिशयशालिनी । यस्य = पुरुषस्य उभयम् = आत्मसिद्धिः परसंक्रमणञ्च द्वयमपि साधु स एव = स एव पुरुषः शिक्षकाणाम् = उपदेशकानाम् धुरि = अग्रे प्रतिष्ठापयितव्यः = प्रतिष्ठां प्रापणीयः ॥ १६ ॥

**अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः । उपजातिः वृत्तम् ।

---

**राजा**—भगवती ! आपने तो इन दोनों के अभिनय चातुर्य को देखा ही होगा ?

**परिव्राजिका**—हाँ देखा है मैंने ।

**राजा**—तो इससे बढ़कर ये अपनी कुशलता का और क्या प्रमाण देंगे ?

**परिव्राजिका**—मैं बताना चाहती हूँ ।

कोई गुणी ऐसे होते हैं जो अपने गुण को अपने आप भली-भाँति जानते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो अपने गुण दूसरों को सिखाने में चतुर होते हैं पर सच्चा गुणी वही है, जिसमें ये दोनों बातें हों । और ऐसा ही गुणी प्रतिष्ठा योग्य होता है ॥ १६ ॥

**विशेष**—कुछ लोग विद्वान् होते हैं, शिक्षक नहीं होते और कुछ लोग शिक्षक होते हैं किन्तु विद्वान् नहीं होते । अतएव विद्वान् और शिक्षक दोनों होना आवश्यक है । हरदत्त और गणदास दोनों के दोनों विद्वान् हैं, अब यह देखना शेष है कि कौन अपनी शिष्या को किस प्रकार सिखाता है ! उसी से उसका बड़ा और छोटा होना सिद्ध हो जाएगा ।

**विदूषकः**—सुदं अज्जेहिं भअवदीए वअणं। एसो पिण्डितत्थो उवदेसदंसणादो णिण्णओ त्ति। [ श्रुतमार्याभ्यां भगवत्या वचनम्। एष पिण्डितार्थं उपदेशदर्शनान्निर्णय इति। ]

**हरदत्तः**—परमभिमतं नः।

**गणदासः**—देवि, एवं स्थितम्।

**देवी**—जदा उण मन्दमेधा सिस्सा उवदेसं मलिणेन्ति, तदा आअरिअस्स ण दोसो। [ यदा पुनर्मन्दमेधसः शिष्या उपदेशं मलिनयन्ति, तदाचार्यस्य न दोषः। ]

**राजा**—देवि, एवमापठ्यते। विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयतीति।

**देवी**—( जनान्तिकम्। ) कहं दाणिं ( गणदासं विलोक्य, प्रकाशम्। )—अलं अज्जउत्तस्स उस्साहकारणं मणोरहं पूरिअ। विरम णिरत्थआदो आरम्भादो। [ कथमिदानीम्। अलमार्यपुत्रस्योत्साहकारणं मनोरथं पूरयित्वा। विरम निरर्थकादारम्भात्। ]

---

**विदूषकः**—भगवत्याः वचनम् = देवीकथनम्। आर्याभ्याम् = भवद्भ्याम् श्रुतम् = आकर्णितम। एष पिण्डितार्थः = अयं फलितार्थः उपदेशदर्शनात् = शिक्षणदर्शनात् निर्णयः = जय पराजयव्यवस्था भविष्यतीति भावः।

**हरदत्तः**—नः=अस्माकम् परमभिमतम्=स्वविद्याकौशलप्रदर्शनमतिसुन्दरमिति भावः।

**गणदासः**—देवि ! भगवति ! एवम् स्थितम् = इदमेव स्वीकरोमि।

**देवी**—यदा = यदि पुनः = भूयः मन्दमेधाः = मन्दमेधसः हीनबुद्धयः शिष्याः = छात्राः उपदेशम् = गुरुप्रदत्तं ज्ञानम् मलिनयन्ति=अभ्यासशून्यात् कारणात् दूषयन्ति तदा आचार्यस्य = अध्यापकस्य न दोषः = न त्रुटिर्ज्ञायते।

**राजा**—देवि ! एवमापठ्यते = पण्डितैरेवं कथ्यते। विनेतुः = अध्यापकस्य अद्रव्यपरिग्रहः = नीचपात्रस्य शिष्यत्वेन स्वीकारः बुद्धिलाघवम् = ज्ञानहीनत्वम् प्रकाशयति = प्रकटयतीति भावः। तीक्ष्णबुद्धिः शिष्यश्चेतव्य इति भावः।

**देवी**—( जनान्तिकम् = गोपनीयरूपेण ) इदानीम् = अधुना कथम् = किं करिष्यामि। आर्यपुत्रस्य = महाराजस्य उत्साहकारणम् = मालविकादर्शननिमित्तम् मनोरथं पूरयित्वा = पूर्णं कृत्वा अलम् = व्यर्थम्। निरर्थकादारभ्यात् = निष्प्रयोजनविवादात् विरम = तिष्ठ।

---

**विदूषक**—आप लोगों ने देवी का कथन सुन लिया न। उनके कथन का भाव यही है कि उपदेश दर्शन से निर्णय हो जाय।

**हरदत्त**—यही मेरी इच्छा है।

**गणदास**—देवी ! हमको स्वीकार है। यही हो।

**देवी**—मन्दबुद्धि शिष्य यदि गुरु-ज्ञान को दूषित कर दे तो उसमें गुरु का क्या दोष ?

**राजा**—पण्डितों का तो यह कथन है कि यदि अध्यापक अधम शिष्य का चुनाव करता है तो यह उसकी बुद्धिहीनता है।

**देवी**—( **अलग** ) अब क्या किया जाय ? ( **गणदास की ओर देखकर प्रकट रूप में** ) अरे ! आर्यपुत्र की इच्छा मत पूर्ण करो। यह तो उनके प्रोत्साहन का कारण है। इस व्यर्थ के कार्य से रुको।

**विदूषकः**—सुट्ठु भोदी भणादि । भो गणदास, संगीदपदं लम्भिअ सरस्सईए उवाअणमोदआणं खादमाणस्य किं दे मुहणिग्घेण विवादेण । [ **सुष्ठु भवती भणति । भो गणदास, संगीतपदं लब्ध्वा सरस्वत्युपायनमोदकान् खादतः किं ते मुखनिग्रहेण विवादेन ।** ]

**गणदासः**—सत्यमयमेवार्थो देवी वाक्यस्य । श्रूयतामवसरप्राप्तमिदानीम् ।

**लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।**
**यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ १७ ॥**

---

**विदूषकः**—भवती = श्रीमती सुष्ठु = सुन्दरम् भणति = कथयति । भो गणदास ! संगीतपदम् = संगीतशास्त्रज्ञतोत्पन्नां प्रतिष्ठां लब्ध्वा = प्राप्य सरस्वत्युपायनमोदकान् = सरस्वत्यै उपायनानि एव मोदकाः तान् = शारदोपहारमोदकान् खादतः = भक्षयतः किं ते = तव मुखनिग्रहेण = मुखरोधेन विवादेन = कलहेन । मोदकानां स्थाने विवादेन अलम् ।

**गणदासः**—देवीवाक्यस्य = देवीकथनस्य अर्थः = भावः सत्यमयमेव वास्तविकः एव । श्रूयताम् = आकर्णयताम् इदानीम् = अधुना अवसरप्राप्तम् = समयलब्धम् ।

**अन्वयः**—लब्धास्पदः अस्मि इति विवादभीरोः परेण निन्दां तितिक्षमाणस्य यस्य आगमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ १७ ॥

**लब्धास्पद इति ।** लब्धास्पदः = प्राप्तस्थानः अस्मि इति = अस्मात्कारणात् विवादभीरोः = शास्त्रार्थभीतस्य परेण = अन्येन निन्दाम् = अनादरम् तितिक्षमाणस्य = क्षमाशीलस्य यस्य आगमः = यस्य पाण्डित्यम् केवलजीविकायै = स्वपालनमात्रफलाय तं ज्ञानपण्यम् = शास्त्रविक्रेतारं वणिजम् = व्यापारिणम् वदन्ति = कथयन्ति ॥ १७ ॥

**समासः**—लब्धास्पदः = लब्धम् आस्पदं येन सः । विवादभीरोः = विवादात् भीरुः विवादभीरुः तस्य । ज्ञानपण्यम् = ज्ञानं एव पण्यं यस्य स तम् ।

**अलंकारः**—परम्परितरूपकमलंकारः । उपजातिर्वृत्तम् ।

---

**जनान्तिकम्**—त्रिपताककरेणान्यान् अपवार्यान्तरः कथाम् ।
अन्योन्यामन्त्रणं यत् स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम् ॥

जहाँ ( मंच पर ) दूसरे पात्रों के विद्यमान होते हुए भी दो पात्र आपस में इस प्रकार मंत्रणा करें कि उसे दूसरों को न सुनाना अभीष्ट हो तथा दूसरे पात्रों की ओर 'त्रिपताकाकर" के द्वारा हाथ से संकेत कर ( दर्शकों को ) इस बात की सूचना दी जाय कि उनका वारण किया जा रहा है वहाँ जनान्तिक नामक नियतश्राव्य ( कथनोपकथन ) होता है । जिस पात्र को कोई बात नहीं सुनानी हो, उसकी ओर हाथ की सारी अंगुलियाँ ऊँची कर अनामिका अँगुली को टेढ़ा रखना त्रिपताका कहलाता है । ऐसे ढंग से हाथ करना "त्रिपताकाकर" का लक्षण है । इस ढंग से अन्य पात्रों का अपवारण कर बातचीत करना जनान्तिक है ।

**विदूषक**—आप ठीक कहती हैं । हे गणदास ! जब तुम बैठे-बैठे संगीत के अध्यापक बने हुए सरस्वतीजी को चढ़ाए हुए लड्डू खा ही रहे हो तब तुम्हें ऐसे विवाद से क्या प्रयोजन ? जिससे सहज ही में पराजय हो जाय ।

**गणदास**—क्या देवी के कथन का यही अभिप्राय है ? इस प्रसंग में मुझे यही कहना है कि—जो लोग अध्यापक का पद प्राप्त कर लेने पर शास्त्रार्थ करने से भागते हैं, दूसरों की को गई

**देवी**—अइरोवणीदाए सिस्साए अवरिणिट्ठिदस्स उवदेसस्स उण अण्णाय्यं पआसणं। [अचिरोपनीतायां शिष्यास्ते अपरिनिष्ठितस्योपदेशस्य पुनरन्याय्यं प्रकाशनम्]।

**गणदासः**– अत एव मे निर्बन्धः।

**देवी**—तेण हि दुवेवि भअवदीए उवदेसं दंसेघः। [ तेन हि द्वावपि भगवत्यै उपदेशं दर्शयतम्। ]

**परिव्राजिका**—देवि, नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनी निर्णयाभ्युपगमो दोषाय।

**देवी**—( जनान्तिकम्। ) मूढे परिव्वाजिए मां जाग्गतिं पि सुत्तं विअ करेसि। ( इति सासूयं परावर्तते ) [ मूढे परिव्राजिके, मां जाग्रतीमपि सुप्तामिव करोषि। ]

---

**देवी**—ते=तव शिष्या=छात्री मालविका अचिरोपनीता=अध्ययनार्थं शीघ्रमागता अपरिनिष्ठितस्य=अपक्वस्य उपदेशस्य=नाट्यशास्त्रस्य प्रकाशनम्=परीक्षणम् पुनः=भूयः अन्याय्यम्=अनुचितम्।

**गणदासः**—अतएव मे=मम निर्बन्धः=आग्रहोऽस्ति।

**देवी**—तेन हि=तस्मात् कारणात् द्ववपि=हरदत्तगणदासौ, भगवत्यै=श्रीमत्यै उपदेशम्=नाट्यप्रदर्शनम्। दर्शयतम्=प्रत्यक्षीकुरुताम्।

**परिव्राजिका**—देवि! एतद्=इदम् न्याय्यम्=उचितं न=न भविष्यति। एकाकिनः= केवलस्य एकस्य सर्वज्ञस्य=पूर्णविदः अपि निर्णयाभ्युपगमः=मध्यस्थतास्वीकारः दोषाय= हानये भवति।

**देवी**—( एकान्तभावेन ) मूढे!=अभिप्रायानभिज्ञे! परिव्राजिके! सन्यासिनि! मां जाग्रतीम्=सावधानाम् अपि सुप्ताम्=अनभिज्ञाम् इव करोषि=विदधासि। इति=अनेन प्रकारेण सासूयम्=असूयया परावर्तते=पराङ्मुखी भवति।

---

निन्दा को सहन कर लेते हैं और केवल पेट पालने के लिए विद्या पढ़ाते हैं। ऐसे लोग पण्डित नहीं वरन् ज्ञान बेचने वाले बनिया है ॥ १७ ॥

**विशेष**—वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, संघर्ष आदि ही शिक्षण कार्य में जीवन के चिह्न हुआ करते हैं। इनसे पलायन करने वाला विद्वान् अपनी वृत्ति को भूलता है। इससे आचार्य गणदास का यही अभिप्राय है कि वह आचार्य हरदत्त के साथ होनेवाली प्रतियोगिता से मुंह मोड़कर अपने को गिराना नहीं चाहता और उसके साथ प्रतियोगिता अवश्य करेगा।

**देवी**—तुम्हारी शिष्या अभी थोड़े ही दिनों से तो शिक्षा ले रही है अतः विना परिपक्व हुए उसे नाटय प्रदर्शन के लिये लाना बड़ा अन्याय होगा।

**गणदास**—इसी से मैं आग्रह कर रहा हूँ।

**देवी**—तब तुम दोनों शिक्षक कला-चातुर्य केवल भगवती को ही दिखाओ।

**परिव्राजिका**—देवि! यह उचित नहीं होगा। सर्वज्ञ व्यक्ति भी यदि अकेले निर्णय करना चाहता हैं तो उससे भूल हो सकती है।

**देवी**—(अलग) अरी मूर्ख परिव्राजिके! तू मुझ जागती हुई को भी सोती हुई बना देना चाहती हो ( ईर्ष्या से मुँह फेर लेती है )

( राजा देवीं परिव्राजिकायै दर्शयति । )

परिव्राजिका—

**अनिमित्तमिन्दुवदने किमत्र भवतः पराङ्मुखी भवसि ।**
**प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारणकोपाः कुटुम्बिन्यः ॥ १८ ॥**

विदूषकः—णं सकारणं एव्व अत्तणो पक्खो रक्खिदव्वो । (गणदासं विलोक्य) । दिट्ठिआ कोवव्वाजेण देवीए परित्तादो भवं । सुसिक्खिदो वि सव्वो उवदेसदंसणेण णिण्हादो होदि । [ **ननु सकारणमेव । आत्मनो पक्षो रक्षितव्यः । दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान् । सुशिक्षितोऽपि सर्वं उपदेशदर्शनेन निष्णातो भवति ।** ]

**गणदासः**—देवि, श्रूयताम् । एवं जनो गृह्णाति । तदिदानीम्—

---

( राजा = अग्निमित्रः देवीम् = धारिणीम् परिव्राजिकायै = कौशिक्यै दर्शयति । )

**अन्वयः**—इन्दुवदने ! अनिमित्तम् अत्रभवतः किं पराङ्मुखी भवसि ? कुटुम्बिन्यः अपि भर्तृषु कारणकोपा हि ॥ १८ ॥

**अनिमित्तेत्यादि** । इन्दुवदने ! चन्द्रानने ! अनिमित्तम् = अकारणम्, अत्र भवतः = श्रीमतो महाराजात् पराङ्मुखी = विमुखी भवसि । कुटुम्बिन्यः = गृहिण्यः भर्तृषु = पतिषु प्रभवन्त्यः = आधिपत्यसमन्विताः अपि कारणकोपाः = सहेतुक्रोधाः भवन्ति ॥ १८ ॥

**समासः**—इन्दुवदने = इन्दुः इव वदनं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ इन्दुवदने । पराङ्मुखी = पराक् मुखं यस्याः सा । कुटुम्बिन्यः = कुटुम्बः आसाम् अस्ति ताः कुटुम्बिन्यः । **कारण-कोपाः** = कारणेन कोपः यासाम् ताः कारणकोपाः ।

**अलंकारः**—सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

**छन्दः**—आर्या जातिः ।

**विदूषकः**— ननु = प्रश्ने सकारणमेव = सहेतुकम् एव । आत्मनः = स्वकीयस्य पक्षः = भागः रक्षितव्यः = रक्षणीयः । दिष्ट्या = सौभाग्येन कोपव्याजेन = नृपोपरि क्रोधप्रदर्शनच्छलेन देव्या = धारिण्या परित्रातः = रक्षितः भवान् = श्रीमान् । सुशिक्षितः = ज्ञानसम्पन्नः अपि सर्वः = लोकः उपदेशदर्शनेन = परीक्षाप्रदानेन निष्णातः = निपुणः भवति ।

**गणदासः**—देवि = श्रीमति ! श्रूयताम् एवं जनो गृह्णाति = लोकः इदं जानन्ति ।

---

**( राजा परिव्राजिका को संकेत से रानी का भाव दिखाता है )**

**परिव्राजिका**—हे चन्द्रमुखी ! तुम बिना कारण ही महाराज से क्यों मुँह फेरे बैठी हो । जो कुलवन्ती नारियाँ होती हैं उन्हें यद्यपि अपने पतियों पर सभी अधिकार होते हैं फिर भी जब उन्हें रूठना होता है तो वे कोई न कोई कारण निकाल कर ही पति से रूठती हैं ॥ १८ ॥

**अलंकार**—सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

**विदूषक**—कारण तो है ही । उन्हें अपने पक्ष की रक्षा करनी है । **( गणदास को देखकर )** आप भाग्यशाली हैं कि महारानी ने रूठने के बहाने आपको बचा लिया । सुशिक्षित व्यक्ति भी अपना कौशल दिखाकर ही पण्डित माने जाते हैं ।

**गणदास**—देवी ! सुनिए । इस प्रकार लोग दूसरा ही अर्थ लगायेंगे । तो अब—

विवादे दर्शयिष्यामि क्रियासंक्रान्तिमात्मनः ।
यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥ १९ ॥

( इति आसनादुत्थातुमिच्छति । )

**देवी**—( स्वगतम् । ) का गई । ( प्रकाशम् । ) पहुवदि आआरिओ सिस्स-जणस्स । [ का गतिः । प्रभवत्याचार्यः शिष्यजनस्य । ]

**गणदासः**—चिरमपदेशशङ्कितोऽस्मि । ( राजानमवलोक्य । ) अनुज्ञातं देव्या । तदाज्ञापयतु देवः कस्मिन्नभिनयवस्तुनि प्रयोगं दर्शयिष्यामि ।

**राजा**—यदादिशति भगवती ।

**परिव्राजिका**—किमपि देव्या मनसि वर्तते, ततः शङ्कितास्मि ।

---

**अन्वयः**—यदि विवादे आत्मनः क्रियासंक्रान्तिं दर्शयिष्यामि मां न अनुजानासि त्वया अहं परित्यक्तः अस्मि ॥ १९ ॥

**विवादेति** । यदि विवादे = हरदत्तेन सह प्रतियोगितायाम् ( शास्त्रार्थरूपे ) आत्मनः = स्वस्य, क्रियासंक्रान्तिम् = शिक्षासंक्रमणम् दर्शयिष्यामि = प्रकटयिष्यामि । मां न अनुजानासि = नानुमन्यसे । त्वया = भवता अहम् परित्यक्तो जनः = स्वाश्रयाद् विसृष्टः । मदीयोऽत्र कर्मणि निरोधो मदीयत्यागे परिणमेत् ॥ १९ ॥

**समासः**—क्रियासंक्रान्तिम् = क्रियायाः संक्रान्तिम् ।

**अलंकारः**—निदर्शनाऽलंकारः ।

( अनेन प्रकारेण स्वासनाद् बहिर्गन्तुमभिलषति )

**देवी**—( स्वमनसि ) का गतिः = किं करोमि । ( प्रकटरूपेण ) आचार्यः = शिक्षाधिकृतः । शिष्यजनस्य = छात्रस्योपरि प्रभवति = प्रभावयुक्तो भवति ।

**गणदासः**—चिरम् = बहुकालम् उपदेशे = अभिनयप्रदर्शनात्प्रतिषेधे । शङ्कितः = आतङ्कितः अस्मि । ( नृपं दृष्ट्वा ) देव्या = राज्ञ्या अनुज्ञातम् = अनुमतम् । तदा महाराजः आदिशतु कस्मिन् अभिनयवस्तुनि = किन्नामधेये नाट्यप्रयोगे प्रयोगम् = उपदेशम् दर्शयिष्यामि = प्रकटयिष्यामि ।

**राजा**—भगवती = पण्डितकौशिकी यद् आदिशति = यं विषयं प्रदर्शनीयं कथयति ।

**परिव्राजिका**—देव्याः = धारिण्याः मनसि = हृदये किमपि = दोषरूपं कश्मलम् अस्ति ।

---

मैंने अपने शिष्यों को अपनी विद्या कैसे सिखाई है ? और आप यदि मुझे इस समय आज्ञा नहीं देंगी तो मैं यही समझूँगा कि आपने मुझे अपने यहाँ से निकाल दिया ॥ १९ ॥

**( अपने आसन से उठना चाहता है )**

**देवी—( मन ही मन )** अब और उपाय ही क्या है ? **( प्रकट )** शिष्य पर तो आचार्य का ही अधिकार होता है ।

**गणदास**—मैं देर से भयभीत था कि कहीं रानी रोक न दें । **( राजा को देखकर )** देवी ने आज्ञा दे दी है अतः महाराज भी आज्ञा दें कि 'मैं कौन'-सा अभिनय दिखाऊँ ।

**राजा**—भगवती जो कहें ।

**परिव्राजिका**—रानी के मन में कुछ कुण्ठा है अतः मैं डर रही हूँ ।

देवी—भण वीसद्धं । पहवदि प्पहू अत्तणो परिअणस्स । [ भण विस्रब्धम् । प्रभवति प्रभुरात्मनः परिजनस्य । ]

राजा—मम चेति ब्रूहि ।

देवी—भअवदि, भणेदाणीम् । [ भगवति, भणेदानीम् । ]

परिव्राजिका—देव, शर्मिष्ठायाः कृतिं चतुष्पादोत्थं छलिकं दुष्प्रयोज्यमुदाहरन्ति । तत्रैकार्थसंश्रयमुभयोः प्रयोगं पश्यामः । तावता ज्ञायत एवात्र भवतोरुपदेशान्तरम् ।

आचार्यौ—यदाज्ञापयति भगवती ।

विदूषकः—तेण हि दुवेवि वग्गा पेक्खाघरे संगीदरअणं करिअ तत्तभवदो दूदं पेसअह । अहवा मुदङ्गसद्दो एव्व णो उत्थावइस्सदि । [ तेन हि द्वावपि वर्गौ प्रेक्षागृहे संगीतरचनां कृत्वा तत्रभवतो दूतं प्रेषयतम् । अथवा मृदङ्गशब्द एव न उत्थापयिष्यति । ]

---

देवी—भण = कथय विस्रब्धम् = विश्वासपूर्वकम् । आत्मनः = स्वस्य परिजनस्य = स्वपरिवारस्य जनेषु प्रभुः = महाराजः प्रभवति = अधिकरोति ।

राजा—मम च = ममोपरि अपि इति ब्रूहि = एवं कथय ।

देवी—भगवति = परिव्राजिके ! भण = कथय इदानीम् = अधुना ।

परिव्राजिका—देव ! महाराज ! शर्मिष्ठायाः वृषपर्वकन्यायाः ययातिभार्यायाः । कृतिम् = रचनाम्, चतुष्पादोत्थम् = चतुर्णां पादानां उत्था उत्थानं यस्मात् तद् चतुष्पादोत्थम् = चतुष्पदीयुक्तगीतानां मूलभूतम् । छलिकम् = तन्नामकम् दुष्प्रयोज्यम् = कठिनम् उदाहरन्ति = कथयन्ति । तत्र = छलिके । एकार्थसंश्रयम् = एकविषयाधारम् उभयोः = आचार्ययोः प्रयोगं अभिनयोपदेशं पश्यामः = अवलोकयामः । तावता = तेन प्रयोगदर्शनेन ज्ञायते = अवगम्यते एव अत्रभवतोः = शिक्षकयोः उपदेशान्तरम् = शिक्षातारतम्यम् ।

आचार्यौ—भगवती = परिव्राजिका यत् आदिशति ।

विदूषकः—तेन हि = तत्पश्चात् द्वावपि वर्गौ = हरदत्तगणदासयोः पक्षौ प्रेक्षागृहे = अभिनयकक्षे संगीतरचनां = नाट्यारम्भम् कृत्वा = विधाय तत्रभवतो पूज्यस्य नृपस्य पार्श्वे दूतम् = अनुचरं प्रेषयताम् । अथवा मृदङ्गशब्दः = अथवा मृदङ्गवाद्यस्य ध्वनिः नः = अस्मान् उत्थापयिष्यति = अभिनयगृहे गन्तुमुद्योजयिष्यति ।

---

**देवी**—आप विश्वासपूर्वक कहें । राजा को अपने परिवार पर पूर्ण अधिकार है ।

**राजा**—'मेरे ऊपर भी' यह भी कहें ।

**देवी**—भगवती अब आप कहें ।

**परिव्राजिका**—महाराज ! शर्मिष्ठा का बनाया हुआ चौपदों वाला छलिक नामक अभिनय अत्यन्त कठिन बताया जाता है । उसी के किसी एक भाव में दोनों का अभिनय देख लेंगे और उसी से यह पता चल जायगा कि आप लोगों ने अपने अपने शिष्यों को कैसा सिखलाया है !

**दोनों आचार्य**—जैसी भगवती की आज्ञा ।

**विदूषक**—तो आप दोनों नाट्यशाला में चलकर सब संगीत का साज जुटाइये और सब हो चुकने पर किसी दूत से यहाँ कहला दीजिएगा अथवा मृदंग की ध्वनि सुनकर ही हम लोग उठकर चले आयेंगे ।

हरदत्तः—तथा। ( इत्युत्तिष्ठति। )

( गणदासो धारिणीमवलोकयति। )

देवी—( गणदासं विलोक्य। ) विअई भोदु अज्जो। णं विजअब्भत्थिणी अहं अज्जस्स। [ विजयी भवत्वार्यः। ननु विजयाभ्यर्थिन्यहमार्यस्य। ]

( आचार्यौ प्रस्थितौ। )

परिव्राजिका—इतस्तावत्।

आचार्यौ—( परिवृत्य। ) इमौ स्वः।

परिव्राजिका—निर्णयाधिकारे ब्रवीमि। सर्वाङ्गसौष्ठवाभिव्यक्तये विगतनेपथ्ययोः पात्रयोः प्रवेशोऽस्तु।

आचार्यौ—नेदमावयोरुपदेश्यम्। ( इति निष्क्रान्तौ। )

देवी—( राजानमवलोक्य। ) जइ राअकज्जेसु ईरिसी उवाअणिउणदा अज्ज-

---

हरदत्तः—तथास्तु ( गन्तुमुद्यतो भवति )

( गणदासः = एकः आचार्यः धारिणीम् = महाराज्ञीम् अवलोकयति = पश्यति )

देवी—( गणदासं विलोक्य = दृष्ट्वा ) विजयी भवतु = भवतां विजयो भवतु। ननु = प्रश्ने अहम् = राज्ञी धारिणी आर्यस्य = महाराजस्य विजयाभ्यर्थिनी = विजयाकांक्षिणी अस्मि।

( द्वावपि शिक्षकौ गन्तुमुद्यतौ )

परिव्राजिका—अत्र आगच्छतम्।

आचार्यौ—( प्रतिनिवृत्य ) आवाम् आगतौ स्वः।

परिव्राजिका—निर्णयाधिकारे = युवयोर्जयपराजयव्यवस्थाविषये। ब्रवीमि = वदामि। सर्वाङ्गः सौष्ठवाभिव्यक्तये = सर्वेषां अखिलानां अंगानां मुखादीनां सौष्ठवस्य सौन्दर्यस्य अभिव्यक्तये = निरूपणाय। अखिलांगसौन्दर्यनिरूपणाय। विगतनेपथ्ययोः = कृत्रिमवेशहीनयोः पात्रयोः = नटयोः प्रवेशः = आगमनमस्तु।

आचार्यौ—आवयोः = आवाभ्याम् न इदम् = एतद् उपदेश्यम् = बोधनीयम्।

कृत्रिमवेशरहितायाः मालविकायाः अङ्गदर्शनम् पूर्णतया भविष्यतीति भावः।

( इति निर्गतौ )

देवी—( नृपं दृष्ट्वा ) यदि राजकार्येषु = नृपस्य कर्त्तव्येषु प्रजादशापर्यवेक्षणादिषु

---

हरदत्त—अच्छी बात है। ( उठता है )

( गणदास धारिणी की ओर देखता है )

देवी—( गणदास को देखकर ) आपकी विजय हो। आपकी विजय की अभिलाषिणी हूँ।

( दोनों आचार्य जाने को उद्यत )

परिव्राजिका—इधर आइये।

दोनों शिक्षक—( लौटकर ) हम दोनों आ गये।

परिव्राजिका—मुझे निर्णय का अधिकार मिला है अतः मैं कहती हूँ कि पात्रों के सब अंगों के हावभाव स्पष्ट दिखाई देने चाहिए अतएव आप लोग अपने पात्रों को बहुत सजा-धजा कर न लाइयेगा।

आचार्यौ—यह बतलाने की आवश्यकता नहीं थी। ( दोनों जाते हैं )

देवी—( राजा को देखकर ) यदि आर्यपुत्र अपने राज्य के प्रशासन में इतनी कुशलता व्यक्त करते तो अति सुन्दर होता।

उत्तस्स, तदो सोहणं भवे । [ यदि राजकार्येष्वीदृश्यार्यनिपुणतार्यपुत्रस्य, ततः शोभनं भवेत् । ]

राजा—

**अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि मया प्रयुक्तमिदम् ।**
**प्रायः समानविद्याः परस्परयशः पुरोभागाः ॥ २० ॥**

( नेपथ्ये मृदङ्गध्वनिः । सर्वे कर्णं ददति । )

परिव्राजिका—हन्त । प्रवृत्तं संगीतम् । तथा ह्येषा—

**जीमूतस्तनितविशङ्किभिर्मयूरैरुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य ।**
**निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि ॥ २१ ॥**

---

ईदृशी = एतादृशी निपुणता = कुशलता आर्यपुत्रस्य भवेत् तदा शोभनम् = उत्कृष्टम् भवेत् । एतेनाभिनयदर्शनेन मालविकादर्शनावसरलाभार्थं भवेत् इति व्यक्तम् ।

अन्वयः—अन्यथा गृहीत्वा अलम् । मनस्विनि ! इदं मया न खलु प्रयुक्तम् । समानविद्याः प्रायः परस्परयशः पुरोभागाः ( भवन्ति ) ॥ २० ॥

अलमिति । अन्यथा = अन्यथावस्तु गृहीत्वा = अवधार्य अलम् = व्यर्थमस्ति । मदीय सद्भावातिरिक्तं अन्यत्किञ्चित् मत्वा निष्फलम् । मनस्विनि = भो मानिनि ! मया = अग्निमित्रेण इदम् = हरदत्तगणदासयोर्विवादोत्थानं न प्रयुक्तम् = न उपस्थापितम् । समानविद्याः = तुल्यज्ञानिनो जनाः प्रायः = आधिक्येन परस्परयशः पुरोभागा = अन्योन्यकीर्तिद्वेषिणः ( परस्परनिन्दकाः ) भवन्ति। समानज्ञानिनोः शिक्षकयोरन्योन्यनिन्दया एवायं विवादः उपस्थितः नतु मदीयेच्छया ॥ २० ॥

समासः—मनस्विनि ! = प्रशस्तं मनः अस्य अस्तीति मनस्विनी तत्सम्बुद्धौ हे मनस्विनि ! समानविद्याः = समाना विद्या येषान्ते समानविद्याः ।

अलंकारः—अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः ।

छन्दः—आर्या जातिः ।

( नेपथ्ये मृदंगस्य = वाद्यविशेषस्य ध्वनिः = शब्दः सर्वे आकर्णयन्ति )

परिव्राजिका—हन्त = हर्षाभिव्यक्तये । प्रवृत्तम् = आरब्धम् संगीतम् = नाट्याभिनयः ।

अन्वयः—जीमूतस्तनितविशङ्किभिः उद्ग्रीवैः मयूरैः अनुरसितस्य पुष्करस्य निर्ह्रादिनी उपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मार्जना मनांसि मदयति ॥ २१ ॥

जीमूतेति—जीमूतस्तनितविशङ्किभिः = मेघगर्जनशङ्कितैः । उद्ग्रीवैः = उच्चैः कृतकन्धरैः । मयूरैः = कलापिभिः । अनुरसितस्य = अनुशब्दायितस्य । पुष्करस्य = मृदङ्गस्य ।

---

राजा—देवी तुम कुछ और न समझ बैठना । इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । देखो जो लोग समान विद्या वाले होते हैं, वे कभी एक दूसरे की उन्नति नहीं सह सकते हैं ॥ २० ॥

( नेपथ्य में मृदंग का शब्द होता है । सभी सुनते हैं )

परिव्राजिका—अरे लो ! उन्होंने तो संगीत छेड़ भी दिया । देखो,

मृदंग के शब्द को मेघगर्जन समझकर ये मोर ऊपर मुँह करके देखने लगे और दूर तक गूँजने वाली यह मध्यम स्वर से उठी हुई मायूरी नाम की ध्वनि मन को मदयुक्त बना रही है ॥ २१ ॥

**राजा**—देवि, तस्याः सामाजिका भवामः ।

**देवी**—(स्वगतम्) । अहो अविणओ अज्जउत्तस्स । [अहो अविनय आर्यपुत्रस्य] ।

( सर्वे उत्तिष्ठन्ति । )

**विदूषकः**—( अपवार्य । ) भो धीरं गच्छ । तत्तभोदी धारिणी विसंवादइस्सदि । [ भोः, धीरं गच्छ । तत्रभवती धारिणी विसंवादयिष्यति । ]

**राजा**—**धैर्यावलम्बिनमपि त्वरयति मां मुरजवाद्यरागोऽयम् ।**
**अवतरतः सिद्धिपथं शब्दः स्वमनोरथस्येव ॥ २ ॥**

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे । )

इति प्रथमोऽङ्कः ।

---

निर्ह्लादिनी = विशेषध्वनियुक्ता । उपहितमध्यमस्वरोत्था = नियोजितमध्यमस्वरोत्पन्ना । मायूरी = मयूरप्रिया । मार्जना = पुष्करवाद्यध्वनिः । मनांसि = हृदयानि । मदयति = मत्तानि करोति ॥ २१ ॥

**समासः**—जीमूतस्तनितविशङ्किभिः = जीमूतस्य स्तनितं विशङ्कन्ते इति तैः । उद्ग्रीवैः = ऊर्ध्वं ग्रीवा येषान्ते = उद्ग्रीवस्तैः । उपहितमध्यमस्वरोत्था = उपहितः यो मध्यमःस्वरः = उपहितमध्यमस्वरः तस्मात् उत्तिष्ठति इति उपहितमध्यमस्वरोत्था ।

**छन्दः**—प्रहर्षिणी वृत्तम् ।

**राजा**—देवि ! वयम् सामाजिकाः = द्रष्टारो जनाः । भवामः = भवेयुः ।

**देवी**—( स्वमनसि ) अहो अविनयः = धृष्टता, दासीस्नेहः । आर्यपुत्रस्य = नृपस्य । दासीं प्रति राज्ञः लोलुपतां धारिणी धृष्टतामेव जानतीतिभावः ।

( सर्वे जनाः गन्तुमभिलषन्ति अच्छन्ति च )

**विदूषकः**—( अपवार्य = अपवारित रूपेण ) भो वयस्य = राजन् । धीरम् = शनैः शनैः गच्छ = व्रज । तत्र भवती = महाराज्ञी धारिणी । विसंवादयिष्यति = विघटयिष्यति । भवतः शीघ्रगमनेन कुव्यवहारमनुमाय प्रकारान्तरेण कलहं समाप्य मालविकामन्यत्र प्रेष्य तवाशां विफलीकरिष्यतीति भावः ।

**अन्वयः**—अयं मुरजवाद्यरागः सिद्धिपथमवतरतः स्वमनोरथस्य शब्द एव धैर्यावलम्बिनम् अपि मां त्वरयति ॥ २२ ॥

**धैर्येति**--अयम् = आकर्ण्यमानः । मुरजवाद्यरागः = मृदंगरूपवाद्योत्थ शब्दः ।

---

**राजा**—देवि ! चलिए हम लोग भी दर्शक बनें ।

**देवी**—( **मन ही मन** ) शोक है आर्यपुत्र भी कितने धृष्ट है ?

**विदूषक**—( **अलग से** ) मित्र धीरे-धीरे चलिए । कहीं धारिणी जी अब भी गड़बड़ न कर बैठें ।

**अपवार्य** = अपवारित—साहित्यदर्पण में लिखा है :—

तद्भवेद् अपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते ।

यह जनान्तिक में होनेवाली बातचीत से अधिक गुप्त होती है ।

**राजा**—मैं बहुत धीरे ही चल रहा हूँ फिर भी मुरज से निकला हुआ राग मुझे इस प्रकार

# द्वितीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति संगीतरचनायां कृतायामासनस्थो राजा सवयस्यो धारिणी परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः । )

**राजा**—भगवत्यत्रभवतोराचार्ययोः प्रथमं कतरस्योपदेशं द्रक्ष्यामः ।

**परिव्राजिका**—ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वाद् गणदासः पुरस्कार-मर्हति ।

**राजा**—तेन हि मौद्‌गल्य, एवमत्रभवतोरावेद्य नियोगमशून्यं कुरु ।

---

स्वमनोरथस्य = आत्माभिप्रायस्य । शब्दः = ध्वनिः इव । धैर्यावलम्बिनम् = प्रशान्तमादम् अपि मां त्वरयति = चञ्चलीकरोति ॥ २२ ॥

**समासः**—मुरजवाद्यरागः = मुरज एव वाद्यं तस्य रागः । सिद्धिपथम् = सिद्धेः पन्थाः तम् = सिद्धिपथम् । धैर्यावलम्बिनम् = धैर्यमवलम्बते इति धैर्यावलम्बी तस्य ।

**अलंकारः**—अत्र उपमालंकारेण मालविका दर्शनरूपं वस्तु व्यज्यते ।

( इति सर्वे निर्गताः )

इति प्रथमोऽङ्कः ।

---

( तत्पश्चाद् प्रवेशं करोति संगीतरचनायाम्=गाननृत्यभूषायाम् । कृतायाम्=सम्पादितायाम् । आसनस्थः = स्वपदारूढः । राजा = अग्निमित्रः । सवयस्यः = विदूषक सहितः । धारिणी = राज्ञी । परिव्राजिका = पण्डितकौशिकी । विभवतः = ऐश्वर्यानुकूलः । परिवारः = परिजनः । )

**राजा**—देवि ! अत्रभवतोः = श्रीमतोः आचार्ययोः = हरदत्तगणदासयोः । प्रथमम् = पूर्वम् । कतरस्य = कस्य । उपदेशम् = नाट्यकौशलम् । द्रक्ष्यामः ।

**परिव्राजिका**—महाराज ! समानेऽपि = तुल्येऽपि ज्ञानवृद्धभावे = ज्ञानसम्पन्नतायाम् वयोवृद्धत्वात् = वयसा वृद्धतया गणदासः पुरस्कारम् = प्राथम्यम् अर्हति = अधिकरोति ।

**राजा**—तदा भो मौद्‌गल्य ! एवम् = अनेन प्रकारेण । अत्रभवतोः = शिक्षकयोः आवेद्य = सूचनां कथयित्वा नियोगमाज्ञाम् अशून्यम् = सफलम् कुरु = विधेहि ।

---

शीघ्रता से चला रहा है मानों मेरे ही मनोरथ का शब्द हो और वही मुझमें उतावली पैदा कर रहा है ॥ २२ ॥

**( सभी निकल जाते हैं )**

पहला अंक समाप्त हुआ ।

---

**( संगीतशाला में विदूषक के साथ राजा, परिव्राजिका, रानी धारिणी और सम्पूर्ण राजपरिवार उपस्थित है )**

**राजा**—देवी इन दोनों आचार्यों में से पहले किसका सिखाया हुआ नाटक देखा जाय ?

**परिव्राजिका**—यद्यपि दोनों का नाट्यज्ञान समान है फिर आचार्य गणदास अवस्था में बड़े हैं अतएव पहले इन्हीं को अवसर मिलना चाहिये ।

**राजा**—मौद्‌गल्य ! जाओ आचार्यों को यह बात कहकर आज्ञा पालन करो ।

**कञ्चुकी**—यदाज्ञापयति देवः। ( इति निष्क्रान्तः। )

( प्रविश्य। )

**गणदासः**—देव, शर्मिष्ठायाः कृतिर्लयमध्या चतुष्पदास्ति। तस्यास्तु छलिक-प्रयोगमेकमनाः श्रोतुमर्हति देवः।

**राजा**—आचार्य, बहुमानादवहितोऽस्मि। तत्प्रवेशय पात्रम्।

( निष्क्रान्तो गणदासः। )

**राजा**—( जनान्तिकम्। ) वयस्य,

**नेपथ्यपरिगतायाश्चक्षुर्दर्शनसमुत्सुकं तस्याः।**
**संहर्तुमधीरतया व्यवसितमिव मे तिरस्करिणीम्॥ १॥**

**विदूषकः**—( अपवार्य। ) उवट्ठिदं णअणमहु संणिहिदमक्खिअं च। ता

---

**कञ्चुकी**—देवस्य यादृशी आज्ञा ( निर्गच्छति )

( प्रवेशं कृत्वा )

**गणदासः**—महाराज! शर्मिष्ठायाः कृतिः = रचना। लयमध्या = मध्यमलययुक्तम् चतुष्पदं गानमस्ति। तस्याः छलिकप्रयोगम् = एतदभिनयम्। एकमनाः = सावधानो भूत्वा श्रोतुमर्हति = श्रवणयोग्योऽस्ति।

**राजा**—आचार्य! बहुमानाद = आदरात् अवहितः = सावधानोऽस्मि।

( गणदासो निर्गच्छति )

**राजा**—( प्रच्छन्नरूपेण ) वयस्य = मित्र!

**अन्वयः**—नेपथ्यगृहगतायाः तस्याः दर्शनसमुत्सुकं मे चक्षुः अधीरतया तिरस्करिणीम् संहर्तुं व्यवसितम् इव॥ १॥

**नेपथ्येति।** नेपथ्यगृहगतायाः = वेशरचनागृहस्थितायाः। तस्याः = मालविकायाः दर्शन-समुत्सुकम् = दर्शनोत्कण्ठितम्। मे = मम चक्षुः = नयनम् अधीरतया = व्याकुलत्वेन तिरस्करिणीम् = यवनिकां संहर्तुम् = निवारयितुम् व्यवसितम् = उद्यतमिव॥ १॥

**अलंकारः**—क्रियोत्प्रेक्षा।

**छन्दः**—आर्या वृत्तम्।

**विदूषकः**—( शनैः शनैः ) उपस्थितम् = आगतम्। नयनमधु = नेत्रानन्दकरम्।

---

**कञ्चुकी**—महाराज की जो आज्ञा। **( चला जाता है )**

**( गणदास का प्रवेश )**

**गणदास**—शर्मिष्ठा ने मध्यलय में एक चतुष्पद गान की रचना की है। उसके छलिक नामक वाले अभिनय को सावधान होकर सुनें।

**राजा**—आचार्य! मैं बड़े आदर से उधर ध्यान लगाये हूँ।

**( गणदास चला जाता है )**

**राजा—( अलग से )** मित्र! परदे के पीछे जो मेरी प्रियतमा उपस्थित है उसे देखने के लिए मेरी आँखें इतनी अधीर हैं मानों पर्दे को फाड़ डालना चाहती हैं॥ १॥

**विदूषक—( अलग से )** आपकी आँखों के लिए मधु तो उपस्थित है किन्तु मधुमक्खी भी समीप में ही है अतएव सावधानी से उधर देखियेगा।

अप्पमत्तो दाणिं पेक्ख । [ **उपस्थितं नयनमधु संनिहितमक्षिकं च । तदप्रमत्त इदानीं पश्य ।** ]

( ततः प्रविशत्याचार्यावेक्ष्यमाणाङ्गसौष्ठवा मालविका । )

**विदूषकः**—( जनान्तिकम् । ) पेक्खदु भवं । ण क्खु से पडिच्छन्दादो परिहीअदि महुरदा । [ **पश्यतु भवान् । न खल्वस्याः प्रतिच्छन्दात्परिहीयते मधुरता ।** ]

**राजा**—( अपवार्य ) वयस्य,

**चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशङ्कि मे हृदयम् ।**
**संप्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता ॥ २ ॥**

---

सन्निहितमक्षिकम् = मक्षिकासमन्वितम् । तद् = तदा । अप्रमत्तः = रसिकः । इदानीम् = अधुना । पश्य = अवलोकय ।

( ततः = तत्पश्चात् प्रवेशं करोति आचार्येण गणदासेन अवेक्ष्यमाणं निपुणं दृश्यमानं सौष्ठवम् अवस्थाविशेषो यस्या सा तादृशी गुरुनिरीक्ष्यमाणशरीरसौन्दर्या मालविका । )

**विदूषकः**—( पृथक् रूपेण ) पश्यतु = अवलोकयतु भवान् श्रीमान् । न खलु अस्याः = मालविकायाः पतिच्छन्दात् = आलेख्यपट्टकेऽङ्कितात् चित्रात् । मधुरता = माधुरी परिहीयते = न्यूना भवति ।

**राजा**—( पृथक् रूपेण ) वयस्य = मित्र !

**अन्वयः**—मे हृदयम् चित्रगतायां अस्यां कान्तिविसंवादशङ्कि ( अभूत ) सम्प्रति येन इयम् = आलिखिता ( तं ) शिथिलसमाधिं मन्ये ॥ २ ॥

**चित्रगतेति ।** मे हृदयम् = मदीयं मनः चित्रगतायाम् = आलेख्याङ्कितायाम् । अस्याम् = मालविकायाम् । कान्तिविसंवादशङ्कि = सौन्दर्यवैषम्यसंशयान्वितम् । अभूत = आसीत् । सम्प्रति = इदानीम् । येन = चित्रकारेण । इयम् = मालविका । आलिखिता = चित्रिता । तं = चित्रकारम् । शिथिलसमाधिम् = खण्डितावधानम् । मन्ये = अवगच्छामि ॥ २ ॥

**समासः**—चित्रगतायाम् = चित्रे गता चित्रगता तस्यां चित्रगतायाम् । कान्तिविसंवादशङ्कि = कान्तेः विसंवादः कान्तिविसंवादः तं शङ्कते इति कान्तिविसंवादशङ्कि । शिथिलसमाधिम् = शिथिलः समाधिः यस्य स तम् शिथिलसमाधिम् ।

**भावार्थः**—साक्षादागता मालविका चित्रगतमालविकाऽपेक्षया समधिकलावण्यसमन्विता भूत्वा लोचनं शिशिरयन्ती वर्तते इति व्यज्यते ।

---

**विशेष**—रानी धारिणी का प्रतीक मधुमक्खी और मालविका का प्रतीक मधु है ।

**( आचार्य गणदास से निरीक्षित हावभाव वाली मालविका प्रवेश करती है )**

**विदूषक—( अलग )** श्रीमान् देखिए । वह जिस प्रकार चित्र में सुन्दर थी उससे किसी प्रकार भी कम सुन्दर नहीं है ।

**राजा—( अलग )** मित्र ! चित्र में इसकी सुन्दरता देखकर मेरा हृदय शंकित था कि वह वास्तव में इतनी सुन्दरी नहीं होगी । परन्तु साक्षात् रूप में इसे देखकर मैं समझता हूँ कि चित्रकार ने सावधानी से इसका चित्र नहीं बनाया ॥ २ ॥

**अलंकार**—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है । **छन्द**—आर्या छन्द है ।

**गणदासः**—वत्से, मुक्तसाध्वसा सत्त्वस्था भव।

**राजा**—( आत्मगतम्। ) अहो सर्वस्थानानवद्यता रूपविशेषस्य।

तथा हि—

**दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहू नतावंसयोः**
**संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।**
**मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली**
**छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः॥ ३॥**

---

**गणदासः**—वत्से ! = पुत्रि ! मुक्तसाध्वसा = मुक्तं त्यक्तं साध्वसं कम्पनादिकं यया सा व्यक्तकम्पना। सत्त्वस्था = प्रकृतिस्था। भव = एधि।

**राजा**—( स्वगतम् ) अहो = आश्चर्यम्। रूपविशेषस्य = आकृतिलावण्यस्य सर्वस्थानानवद्यता = सर्वेषु स्थानेषु = सकलेषु अङ्गेषु अनवद्यता = पवित्रता सौन्दर्ययुक्तांगेषु यद् रामणीयकम् तदाश्चर्यकरम्।

**अन्वयः**—वदनं दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति च बाहू अंसयोः नतौ, उरः निविडोन्नतस्तनं संक्षिप्तं च, पार्श्वे प्रमृष्टे इव, मध्यः पाणिमितः जघनं च अमितम् पादौ अरालांगुली नर्तयितुः मनसि यथा छन्दः तथा एव अस्याः वपुः श्लिष्टम्॥ ३॥

**दीर्घेति**। वदनम् = मुखम्। दीर्घाक्षम् = दीर्घे अक्षिणी यत्र तत् दीर्घाक्षम् विशाललोचनम्। शरदिन्दुकान्ति = शारदचन्द्रतुल्यम्। च = तथा बाहू भुजौ। अंसयोः = स्कन्धद्वये। नतौ = नम्रौ। उरः = वक्षस्थलम्। निविडोन्नतस्तनम् = पीनोन्नतस्तनमण्डलम्। संक्षिप्तम् = संकोचशालि। च। पार्श्वे = उदरपार्श्वभागौ। प्रमृष्टे इव = पाणिना परिमार्जिते इव। मध्यः = कटिदेशः। पाणिमितः = मुष्टिमात्रमेयः। जघनम् = ऊरुदेशः। अमितम् = विशालम्। पादौ = चरणौ। अरालाङ्गुली = वक्राङ्गुली। नर्तयितुः = नृत्याचार्यस्य गणदासस्य। मनसि = हृदये। यथा छन्दः = यादृशोऽभिप्रायः। तथैव = तेनैव प्रकारेण। अस्याः = मालविकायाः। वपुः = शरीरम्। श्लिष्टम् = शिक्षाभ्यासादिना योजितम्। प्रकृतिसुन्दर्या अस्या मालविकायाः नाट्यचार्योपदेशकारणात् भावसमावेशात् समेधितं रूपमिति भावः॥३॥

**अलंकारः**– काव्यलिंग उपमा उत्प्रेक्षा द्वारा संकरोऽलंकारः।

**छन्दः** - शार्दूलविक्रीडितम्।

---

**गणदास**—पुत्रि ! कम्पनविहीन होकर प्रकृतिस्थ हो जाओ।

**राजा**—( **मन ही मन** ) इसके सम्पूण अङ्गों की पवित्रता आश्चर्यजनक है। क्योंकि—

इसका बड़ी बड़ी आँखों वाला, शरद्काल के चन्द्रमा की शोभा से सम्पन्न मुख, कन्धों पर कुछ झुकी हुई भुजायें, उन्नत एवं कठोर स्तनों से जकड़ी हुई छाती, पार्श्व परिमार्जित तुल्य, मुट्ठी भर की कटि, मोटी-मोटी जाँघें, झुकी हुई अंगुलियों वाले चरण हैं। ज्ञात होता है कि मानों इसका सम्पूर्ण शरीर इसके नाट्यगुरु गणदास जी के कहने पर ही गढ़ा गया होगा॥ ३॥

**अलंकार**—काव्यलिङ्ग, उपमा एवं उत्प्रेक्षा के कारण संकर अलंकार है।

**छन्द**—शार्दूलविक्रीडित।

**विशेष**—कालिदास की नायिकाओं के शब्दचित्र अत्यन्त सुन्दर हुए हैं। कुमारसम्भव में पार्वती का, विक्रमोर्वशीय में उर्वशी का, अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला का तथा मेघदूत में यक्षिणी का चित्र अत्यन्त रमणीक हैं।

मालविका—( उपगानं कृत्वा चतुष्पदवस्तु गायति । )

दुल्लहो पिओ मे तस्सि भव हिअअ णिणसं
अम्हो अपङ्गवो मे परिष्फुरइ किं वि वामओ ।
सो सो चिरदिट्ठो कहं उण उवणइदव्वो
णाह मं पराहीणं तुइ परिगणअ सतिण्हम् ।। ४ ।।

[ दुर्लभः प्रियो मे तस्मिन् भव हृदय निराश-
महो अपाङ्गो मे परिस्फुरति किमपि वामः ।
एष स चिरदृष्टः कथं पुनरुपनेतव्यो
नाथ मां पराधीनां त्वयि परिगणय सतृष्णाम् ।। ]

( ततो यथारसमभिनयति )

विदूषकः—( जनान्तिकम् । ) भो वअस्स, चउप्पवत्थुअं दुवारीकरिअ तुइ उवट्ठाविदो अप्पा तत्तहोदीए । [ भो वयस्य, चतुष्पदवस्तुकं द्वारीकृत्य त्वय्युपस्थापित. आत्मा तत्रभवत्या । ]

---

मालविका—गानपूर्वकृतालापेन चतुष्पदं गायति ।

अन्वयः—हृदय ! प्रियः मे दुर्लभः, तस्मिन् निराशं भव, अहो मे वामकः अपाङ्गकः किम् अपि प्रस्फुरति, एषः चिरदृष्टः सः कथमनुनेतव्यः नाथ । पराधीनां मां त्वयि सतृष्णां गणय ।। ४ ।।

दुर्लभेति । भो हृदय ! हे मनः । प्रियः = प्राणबन्धुर्जनः । मे = मम । दुर्लभः = दुष्प्राप्यः । तस्मिन् = एतादृशि प्रियतमे । निराशं भव = आशाशून्यं जायस्व । अहो = आश्चर्यम् । मे = मदीयः । वामक = दक्षिणेतरः । अपाङ्गकः = नेत्रप्रान्तभागः : किमपि = किञ्चिदपि । प्रस्फुरति = स्पन्दते । एषः = अयम् । चिरदृष्टः = पूर्वकालावलोकितः । सः = प्रियतमः । कथम् = केन प्रकारेण । उपनेतव्यः = प्राप्तव्यः । नाथ ! = प्रियतम ! पराधीनाम् = परतन्त्राम् । माम् त्वयि = भवतो मनसि । सतृष्णां = प्रबलाभिलाषाम् । गणय = अवधारय ।

**अलंकारः**—अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः ।

अत्र विप्रलम्भश्रृङ्गारः रसः ।

**विदूषकः**—( शनैः शनैः ) भो वयस्य ! = भो मित्र ! । चतुष्पदवस्तुकं द्वारीकृत्य-

---

**मालविका—( पहले आलाप भर कर चार पदों वाला गाना गाती है )।**

दुर्लभ है वह मेरा प्रियतम हृदय छोड़ उसकी आशा ।
वामापाङ्ग फड़कता मेरा अतः बंध रही कुल आशा ।
बहुत काल का देखा प्रियतम कैसे उसको अपनाऊँ ?
पराधीन अपने को प्रियतम ! तुझमें तृषित गिना पाऊँ ।। ४ ।।

**( गीत के भाव के अनुसार नाट्य करती है )**

**विदूषक—( अलग )** भो वयस्य ! इन्होंने तो इस चार चरण वाले गीत के बहाने आप पर अपने को न्यौछावर कर डाला ।

राजा—सखे, एवमेव ममापि हृदयम् । अनया खलु—

जनमिममनुरक्तं विद्धि नाथेति गेये
वचनमभिनयन्त्याः स्वाङ्गनिर्देशपूर्वम् ।
प्रणयगतिमदृष्ट्वा धारिणीसंनिकर्षा-
दहमिव सुकुमारप्रार्थनाव्याजमुक्तः ॥ ५ ॥

( मालविका गीतान्ते निष्क्रमितुमारब्धा । )

---

चतुष्पदगानव्याजेन । त्वयि = भवति । उपस्थापितः = तुभ्यमर्पयितुमुपनीतः । आत्मा = स्वकीयात्मा । तत्र भवत्या = श्रीमत्या मालविकया ।

**राजा**—सखे ! भो मित्र ! एवमेव = अनेन प्रकारेण । ममापि 'हृदयम् = मदीयं मनोऽपि कथयति । अनया = मालविकया । खलु = निश्चयेन ।

**अन्वयः**—हे नाथ ! इमं जनं अनुरक्तं विद्धि-इति गेये वचनं स्वांगनिर्देशपूर्वम् अभिनयन्त्या ( तया ) धारिणीसन्निकर्षात् प्रणयगतिम् अदृष्ट्वा सुकुमार प्रार्थना व्याजम् अहम् उक्तः इव ॥ ५ ॥

**जनेति** । हे नाथ = भो प्रियतम ! इमं जनम् = मल्लक्षणां व्यक्तिम् मालविकाम् । अनुरक्तम् = भवति रागासक्तम् । विद्धि = जानीहि । इति गेये = अनेन प्रकारेण गातव्ये । वचनम् ( मां पराधीनां त्वयि गणय सतृष्णाम् ) स्वांगनिर्देशपूर्वम् = स्वशरीरमुद्दिश्येङ्गितेन अभिनयन्त्या । अनया = मालविकया । धारिणीसन्निकर्षात् = राजमहिषीसमीपस्थितात् । प्रणयगतिम् = स्वस्यां ममानुरागप्रकारम् । अदृष्ट्वा = अननुमाय ( मदीय चेष्टादिना मद्भावम् अविज्ञाय ) सुकुमारप्रार्थनाव्याजम् = रसनीयानुरागयाचनाच्छलेन अहम् = राजा अग्निमित्रः उक्तः = इव = अभिहित इव ॥ ५ ॥

**अलंकारः**—अत्र भावाभिमाना वाक्या क्रियोत्प्रेक्षाऽलंकारः ।

**छन्दः**—मालिनी वृत्तम्-तल्लक्षणम्—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।"

**समासः**—स्वांगनिर्देशपूर्वम् = स्वस्य अंगस्य निर्देशः पूर्वः यस्मिन् कर्मणि तत् = स्वांगनिर्देशपूर्वम् । धारिणीसन्निकर्षात् = धारिण्याः सन्निकर्षः = धारिणीसन्निकर्षः तस्मात् । प्रणयगतिम् = प्रणयस्य गतिः ताम् । सुकुमारप्रार्थनाव्याजम् = सुकुमारा प्रार्थना एव व्याजः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा ।

( मालविका संगीतावसाने निर्गन्तुमभिलषति )

---

**राजा**—मित्र ! मेरा भी हृदय यही समझ रहा है कि इसने—

"हे नाथ ! इस स्नेहासक्त व्यक्ति को अपनी ही समझो" गीत गाते हुए अपनी ओर संकेत करके जो अभिनय किया है; वह इसीलिए कि महारानी धारिणी को पास देखकर इसने समझ लिया कि प्रेम दिखाने का कोई दूसरा उपाय तो है नहीं, अतएव एक सुकुमार युवक से प्रेमभिक्षा माँगने के भाव वाला यह गीत गाकर इसने सचमुच मुझसे ही सब कुछ कहा है ॥ ५ ॥

**( गा चुकने पर मालविका चली जाना चाहती है )**

विदूषकः— भोदि, चिट्ठ । किवि वो विसुमरिदो कम्मभेदो । तं दाव पुच्छिस्सम् । [ भवति, तिष्ठ । किमपि वो विस्मृतः कर्मभेदः । तं तावत्प्रक्ष्यामि । ]

गणदासः—वत्से, क्षणमात्रं स्थित्वोपदेशविशुद्धा यास्यसि ।

( मालविका निवृत्य स्थिता । )

राजा—( आत्मगतम् । ) अहो, सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्यति । तथा हि—

**वामं संधिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे**
**कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम् ।**
**पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं**
**नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम् ॥ ६ ॥**

---

**विदूषकः**—भवति, तिष्ठ = स्थीयताम् तावत् । किमपि = किञ्चिदपि वः = युष्माकम् । कर्मभेदः = कार्यविशेषः । विस्मृतः । तं तावत्प्रक्ष्यामि = तदा प्रष्टुमिच्छामि ।

**गणदासः**— वत्से ! = पुत्रि ! क्षणमात्रं = स्वल्पसमयम् । स्थित्वा = व्यतीतं कृत्वा उपदेशविशुद्धा = शिक्षानिर्दोषा । यास्यसि = गमिष्यसि । शङ्काविषये सन्तोषजनकमुत्तरं प्रदाय तव शिक्षा न सदोषा इति प्रमाणीकृत्य यास्यसि ।

( मालविका परावृत्य गमनान्निवृत्ता )

**राजा**—(आत्मगतम्) आश्चर्यम् सर्वास्ववस्थासु=सम्पूर्णासु दशासु चारुता=रमणीयता । शोभान्तरम् = अन्यां शोभां पुष्यति = वर्द्धयति ।

**अन्वयः**—सन्धिस्तिमितवलयं वामं हस्तं नितम्बे न्यस्य, द्वितीयं ( हस्तं ) श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं कृत्वा पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षम् ऋज्वायतार्धम् अस्याः स्थितं नृत्तात् अतितरां कान्तम् ॥ ६ ॥

**वामेति**—सन्धौ = सन्धिस्थाने हस्तप्रकोष्ठयो संयोगस्थाने मणिबन्धे । स्तिमितम् = निश्चलम् वलयं = कटकम् यत्र तादृशम् निश्चलकटकम् । वामम् = दक्षिणेतरम् करम् = हस्तम् नितम्बे = कटिप्रदेशे । न्यस्य = स्थापयित्वा । श्यामाविटपसदृशम् = प्रियंगुलतातुल्यम् द्वितीयम् = दक्षिणं हस्तम् । स्रस्तमुक्तम् = शिथिललम्बमानम् कृत्वा = विधाय, पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे = चरणाङ्गुष्ठमर्दितपुज्यम् । कुट्टिमे = निबद्धभूमौ । पातिताक्षम् = निहितनेत्रम् ।

---

**विदूषकः**—ठहरिये देवी ! आप बीच में कुछ भूल गई हैं, वही मैं पूछना चाहता हूँ ।

**गणदास**—वत्से ! थोड़ी देर रुक जाओ और जब यहाँ सब लोग पूर्ण रूप से जान लें कि तुमने ठीक से नाट्य सीख लिया है । तभी जाना ।

**( मालविका लौटकर खड़ी हो जाती है )**

**राजा—( मन ही मन )** सम्पूर्ण दशाओं में रमणीयता दूसरी ही शोभा का पोषण करती है । इसने अपना बायाँ हाथ अपने नितम्ब पर रख लिया है अतएव हाथ का कड़ा पहुँचे पर रुक कर चुप हो गया है । दूसरा हाथ श्यामा की डाली के समान ढीला लटका हुआ है । आँखें नीची करके पैर के अंगूठे से धरती पर बिखरे हुए फूलों को सरका रही है । इस प्रकार खड़ी होने से ऊपर का शरीर लम्बा और सीधा हो गया है । नाचने के समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी जैसी अब लग रही है ॥ ६ ॥

**देवी**—णं गोदमवअणं वि अज्जो हिअए करेदि । [ **ननु गौतमवचनमप्यार्यो हृदये करोति ।** ]

**गणदासः**—देवि, मा मैवम् । देवप्रत्ययात्संभाव्यते सूक्ष्मदर्शिता गौतमस्य । पश्य—

---

ऋज्वायतार्द्धम् = सरल विस्तृतशरीरार्द्धम् । अस्याः = मालविकायाः । स्थितम् = दण्डवदवस्थानम् । नृत्तात् = नाट्यात् । अतितराम् = अत्यर्थम् । कान्तम् = रमणीयमस्तीति भावः ।। ६ ।।

**समासः**—स्तिमितवलयम् = स्तिमितं वलयं यत्र तत् स्तिमितवलयम् । श्यामाविटपसदृशम् = श्यामायाः विटपम् श्यामाबिटपम् तेन सदृशम् श्यामाबिटपसदृशम् । स्रस्तमुक्तम् = स्रस्तम् यथा स्यात्तथा मुक्तम् स्रस्तमुक्तम् । पादाङ्गुष्ठालुलिकुसुमे = पादस्य अङ्गुष्ठेन पादाङ्गुष्ठेन आलुलितानि कुसुमानि यत्र तादृशे पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे । पातिताक्षम् = पातिते अक्षिणी यत्र तत् पातिताक्षम् । ऋज्वायतार्द्धम् = ऋजु आयतं अर्द्धं यत्र तादृशम् ऋज्वायतार्द्धम् ।। ६ ।।

**अलंकारः**—परिकरः काव्यलिङ्गश्च सङ्करोऽलंकारः ।

**छन्दः** – मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । तल्लक्षणम्—

"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्"

**देवी**—ननु = प्रश्ने गौतमवचनमपि = गौतमाख्यस्य वार्तामपि आर्यो = गणदासः हृदये करोति = विचारयत्यपि ।

**गणदासः**—देवि ! मा मैवम् = नहि नहि । देवप्रत्ययात् = महाराजसाहचर्यात् संभाव्यते = ज्ञायते सूक्ष्मदर्शिता = तीक्ष्णबुद्धिता गौतमस्य = विदूषकस्य । पश्य—

---

**श्यामालता** = मालविका की तुलना श्यामा से और उसके हाथ की तुलना श्यामा की शाखा से की गई है । "मेघदूत" में कालिदास ने लिखा है :—

"श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्"

**नारी मनोविज्ञान**—युवती रमणियों के स्वभाव में प्रायः देखा जाता है कि जब उन्हें अपने भावी प्रियतमों के सामने आना पड़ता है अथवा अपने श्रेष्ठ जनों में उनके विवाह की बातचीत छिड़ रही हो, तो वे लज्जा से मुख नीचा कर लेती हैं और अपने पैरों से फूल मसलने लगती हैं अथवा भूमि को कुरेदने लगती हैं । स्त्री मनोविज्ञान की इन चेष्टाओं को शास्त्रीय भाषा में "अवहित्था" कहते हैं । कुमारसम्भव में लिखा है :—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।।

**अलंकार**—परिकर और काव्यलिंग से संकर अलङ्कार ।

**देवी**—क्या आर्य गणदास भी गौतम की बात सच मान रहे हैं ।

**गणदास**—देवि ! ऐसा मत समझिए । राजा के साथ रहने से गौतम भी सूक्ष्मदर्शी हो गया है । देखिए :—

मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥ ७॥

( विदूषकं विलोक्य । ) तच्छृणुमो वयं विवक्षितमार्यस्य ।

विदूषकः—( गणदासं विलोक्य । ) कोसिइ दाव पुच्छ। पच्छा जो मए कम्मभेदो दिट्ठो त भणिरसं। [ कौशिकीं तावत्पृच्छ । पश्चाद्यो मया कर्मभेदो दृष्टस्तं भणिष्यामि । ]

गणदासः—भगवति, यथादृष्टमभिधीयतां गुणो वा दोषो वेति ।

परिव्राजिका—यथादृष्टं सर्वमनवद्यम् । कुतः—

---

अन्वयः—पङ्कच्छिदः फलस्य निकषेण आविलं पय इव विपश्चितः संसर्गेण मन्दः अपि अमन्दताम् एति ॥ ७॥

मन्देति । पङ्कच्छिदः = कर्दमनाशकस्य जलप्रसादनोपयोगिनः कतकनाम्नो ( नर्मलीति भाषायाम् ) प्रख्यातस्य फलस्य निकषेण = संयोगेन आविलम् = कलुषमपि पय इव = जलसदृशः विपश्चितः = विशेषज्ञस्य पण्डितस्य संसर्गेण = निरन्तरसहवासेन मन्दः = मूर्खः अपि जनः = लोकः अमताम् = नैपुण्यम् एति = प्राप्नोति ॥ ७॥

समासः – पङ्कच्छिदः = पङ्कं छिनत्ति इति पङ्कच्छिद् तस्य पङ्कच्छिदः । अमन्दताम् = न मन्दः अमन्दः तस्य भावः अमन्दता ताम् अमन्दताम् ।

अलंकारः—अप्रस्तुतप्रशंसा, उपमाचेति अतः सङ्करोऽलंकारः ।

छन्दः—पथ्यावक्त्रं वृत्तम् । तल्लक्षणम्—

"युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं निगद्यते"

( विदूषकमवलोक्य ) आर्यस्य = श्रीमतः । विवक्षितम् = कथनम् । वयं शृणुमः = आकर्णयामः ।

विदूषकः—( गणदासं दृष्ट्वा ) पृच्छतु भवान् कौशिकीम् । तत्पश्चात् यो दोषो मया दृष्टस्तं कथयिष्यामि ।

गणदासः—भगवति ! = श्रीमति ! यथादृष्टम् = यत् भवत्या अवलोकितम् । तदभिधीयताम् तत् कथ्यताम् । गुणो वा दोषो वा = गुणः अथवा दोषः ।

परिव्राजिका—यन्मया दृष्टम् तत्सर्वम् अनवद्यम् = अनिन्द्यम् । कुतः—

---

चतुर मनुष्यों के सहवास से मूर्ख मनुष्य भी चतुर हो जाते हैं। यथा निर्मली के संसर्ग से दूषित जल भी स्वच्छ हो जाता है ॥ ७॥

**अलंकार**—अप्रस्तुतप्रशंसा तथा उपमा के योग से संकर अलंकार ।

**विदूषक—( गणदास को देखकर )** आप पहिले कौशिकी जी से पूछ लीजिये मैं पीछे बतलाऊँगा कि भूल कहाँ हुई है ?

**गणदास**—भगवती ! आपने जहाँ जैसा गुण या दोष देखा हो सब कुछ बतला दीजिये ।

**परिव्राजिका**—मैंने तो जो कुछ देखा सभी निर्दोष एवं पवित्र पाया क्योंकि—

अङ्गैरन्तर्निहितवचनः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबन्धः स एव ॥ ८ ॥

**गणदासः**—देवः कथं वा मन्यते ।

**राजा**—वयं स्वपक्षशिथिलाभिमानाः संवृत्ताः ।

---

**अन्वयः**—अन्तर्निहितवचनैः अङ्गैः अर्थः सम्यक् सूचितः पादन्यासः लयम् अनुगतः रसेषु तन्मयत्वम् शाखायोनिः अभिनयः मृदुः तद्विकल्पानुवृत्तौ भावः भावं विषयात् नुदति रागबन्धः सः एव ॥ ८ ॥

**अङ्गैरिति** । अन्तर्निहितवचनैः = अभ्यन्तरस्थापितवाक्यैः । अङ्गैः = शरीरावयवैः अर्थः = अभिनेतव्यं वस्तु । सम्यक् = स्पष्टरूपेण सूचितः = प्रकटीकृतः । पादन्यासः = चरणविन्यासः । लयम् = तालमानम् । अनुगतः = अनुसृतः । रसेषु = शृङ्गारादिषु । तन्मयत्वम् = तदात्मकत्वम् शाखायोनिः = अङ्गचालनक्रियोत्पन्नः । अभिनयः = नाट्यप्रयोगः । मृदुः = सुकुमारः । तद्विकल्पानुवृत्तौ = अभिनयभेदानुसरणे भावः = चेष्टा । भावम् = अभिप्रायविशेषम् = नुदति = प्रेरयति । रागबन्धः = अनुरागसम्बन्धः । स एव = समानरूपेण अवस्थित एव ॥ ८ ॥

**समासः**—अन्तर्निहितवचनैः—अन्तः निहितानि वचनानि येषान्तैः अन्तर्निहितवचनैः । पादन्यासः = पादयोः न्यासः पादन्यासः । शाखायोनिः = शाखा योनिः यस्य सः शाखायोनिः । तद्विकल्पानुवृत्तौ—तस्य विकल्पः तद्विकल्पः तस्य अनुवृत्तिः तस्याम् तद्विकल्पानुवृत्तौ । रागबन्धः = रागस्य बन्धः रागबन्धः ।

**अलंकारः**—समुच्चयः अतिशयोक्तिः दोनों के अङ्गांगिभाव से सङ्करः ।

**छन्दः**—मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

**गणदासः**—महाराजस्य का धारण वर्ततेऽस्मिन् विषये ? ।

**राजा**—मया स्वपक्षस्य अभिमानः व्यक्तः एव ।

---

गीत की सभी बातों का ठीक-ठीक अर्थ अंगों के अभिनय से पूर्णरूप से दिखा दिया गया । इनके पैर भी लय के साथ साथ चल रहे थे । फिर गीत के रस में भी वे तन्मय हो गई थीं । हस्त सञ्चालन द्वारा किया गया अभिनय सुकुमार था । उसके अनेक प्रकार एक दूसरे की सहायता करते रहे, सर्वत्र समान राग का दृश्य बना रहा ॥ ८ ॥

**अभिनय** = नाट्यशास्त्र में अभिनय के दो भेद बताये गये हैं । १—सुकुमार ( मृदु ), २—अविद्ध ( उद्धत ) मालविका का अभिनय सुकुमार था क्योंकि कोमल रस होने से शृङ्गार में मृदु अभिनय का ही विधान है ।

**भाव** = नाट्यशास्त्र में भाव संचारी भावों को कहते हैं, जो स्थायी भावों के मध्य उठते-बैठते जाते हैं जैसे समुद्र में तरंगें ।

**अलङ्कार**—समुच्चय और अतिशयोक्ति दोनों के मिलन से सङ्कर ।

**गणदास**—देव ! आप इसे कैसा समझते हैं ?

**राजा**—मैंने अपने पक्ष का अभिमान छोड़ दिया ।

गणदासः—अद्य नर्तयितास्मि। कुतः—

**उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।**
**श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु॥९॥**

देवी—दिट्ठिआ अपरिक्खाराहणेण अज्जो बड्ढइ। [**दिष्ट्याऽपरीक्षकाराधनेनार्यो वर्धते।**]

गणदासः—देवि परिग्रहोऽपि मे वृद्धिहेतुः। (विदूषकं विलोक्य।) गौतम, वदेदानीं यत्ते मनसि वर्तते।

विदूषकः—पढमोवदेसदंसणे पढमं बम्हणस्स पूजा कादव्वा। सा णं वो विसुमरिदा। [**प्रथमोपदेशदर्शने प्रथमं ब्राह्मणस्य पूजा कर्तव्या। सा ननु वो विस्मृता**]।

परिव्राजिका—अहो प्रयोगाभ्यन्तरः प्रश्नः।

---

**गणदासः**—अद्याहं नर्तकः संवृत्तः। कुतः—

**अन्वयः**—सन्तः उपदेशिनः तम् उपदेशं शुद्धं विदुः यः अग्निषु काञ्चनमिव विद्वत्सु न श्यामायते॥ ९॥

**उपदेशमिति।** सन्तः = निर्मलहृदया जनाः। उपदेशिनः = शिक्षकस्य तम् = उपदेशं शिक्षाम्। शुद्धम् = दोषरहितम्। विदुः = जानन्ति। यः = उपदेशः। अग्निषु = अनलेषु। काञ्चनमिव = स्वर्णमिव। विद्वत्सु = पण्डितेषु न श्यामायते = न कलुषीभवति॥ ९॥

**अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसा, उपमा च। तयोः सङ्करोऽलंकारः।

**देवी**—भाग्येन परीक्षकाय सन्तोषप्रदानेन वर्द्धते = उत्कर्षमासादयति।

**गणदासः**—देवी परिग्रहः = महाराज्ञ्याः धारिण्याः अनुकम्पा। एव। मे = **मम** वृद्धिहेतुः = उत्कर्षकारणाम्। (विदूषकं दृष्ट्वा) गौतम = भो गौतम! वद = **कथय**। इदानीम् = अधुना। यत् = यद् किञ्चित्। ते = तव। मनसि = हृदये। वर्तते = **विद्यते**।

**विदूषकः**—प्रथमोपदेशदर्शने = प्रथमतः शिक्षाभ्यासादेः परीक्षारूपेण **उपस्थापने**। प्रथमम् = पूर्वमेव। ब्राह्मणस्य = विप्रस्य। पूजा = सत्कारः, **यो दानादिना सम्पाद्यते**। कर्तव्या = विधेया। सा = ब्राह्मणपूजा दानादिक्रिया। ननु = प्रश्ने। वो = **युष्माकम्**। विस्मृता = विस्मरणं गता।

**परिव्राजिका**—अहो = आश्चर्यम्। प्रयोगाभ्यन्तरः = **अभिनयसम्बद्धः**। **प्रश्नः** कृतोऽस्ति?

---

**गणदास**—आज मैं वस्तुतः नृत्यकला का पण्डित हुआ हूँ। क्योंकि—

जिस प्रकार आग में डालने से सोना काला नहीं पड़ता, वैसे ही जिस शिक्षक के सिखाने में किसी प्रकार की त्रुटि न हो, उसे ही सच्ची शिक्षा कहते हैं॥ ९॥

**देवी**—सौभाग्य से परीक्षा द्वारा सभा को प्रसन्न करने के कारण आपको बधाई है।

**गणदास**—देवि! आपकी कृपा ही मेरे श्रेय का कारण है। (**विदूषक को देखकर**) गौतम! इस समय जो आपके मन में हो, उसे बताइए।

**विदूषक**—सर्वप्रथम परीक्षा देने के समय ब्राह्मण की पूजा की जाती है, वह आप लोगों के द्वारा भूल गई।

**परिव्राजिका**—आश्चर्य है, क्या नाट्यकला के भीतर की बात पूछी है?

( सर्वे प्रहसिताः । मालविका स्मितं करोति । )

राजा—( आत्मगतम् । ) उपात्तसारश्चक्षुषा मे स्वविषयः । यदनेन—

**स्मयमानमायताक्ष्याः किंचिदभिव्यक्तदशनशोभिमुखम् ।**
**असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ॥ १० ॥**

---

( सर्वे = सम्पूर्णा दर्शकाः । प्रहसिताः = प्रकर्षेण हसिताः हसितवन्तः । ) अत्र अयमाशयः—पूर्वं विदूषकेण "कर्मभेदो विस्मृतः" इत्यभिहिते सर्वैः संगीतसम्बद्धं किमपि कर्मात्र विवक्षितम् अधुना स्वकीयपूजायाचनयाऽन्यार्थं तत्कृतमिति तस्य स्वानभिज्ञता सूचनया सर्वैरुपहसितमिति । मालविकास्मितम् = ईषद्हसितम्, लज्जाविनयशालिता द्योतनार्थम् स्मितं करोति ।

राजा—( स्वकीय मनसि ) उपात्तसारः = गृहीततत्त्वः । चक्षुषा = नेत्रेण । मे = मम स्वविषयः = स्वकीयरूपम् । इदानीं मालविकायाः स्मयमानस्य मुखस्य विलोकनेन मदीयनेत्रेण रूपसारो गृहीत इति भावः ।

अन्वयः— स्मयमानम् किञ्चिदभिव्यक्त दशनशोभि आयताक्ष्याः मुखम् उच्छ्वसत् असमग्रलक्ष्यकेसरं पङ्कजमिव दृष्टम् ॥ १० ॥

स्मयमानमिति । स्मयमानम् = मालविकायाः स्मितहासयुक्तम् । किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभि = ईषत्प्रकाशितदन्तशोभितमुखम् । आयताक्ष्याः = विशाललोचनायाः । मुखम् = आननम् । उच्छ्वसत् = विकसत् । असमग्रलक्ष्यकेसरम् = असम्पूर्णदृश्यकिञ्जल्कम् । पङ्कजम् इव = कमलम् इव । दृष्टम् = अवलोकितम् ॥ १० ॥

अलङ्कारः—काव्यलिङ्गम् उपमा चेति ।

छन्दः—आर्या जातिः ।

समासः—किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभि = किञ्चित् यथा स्यात्तथा अभिव्यक्ताः ये दशनाः तैः शोभते इति शोभि । आयताक्ष्याः = आयते अक्षिणी यस्याः सा तस्याः आयताक्ष्याः । असमग्रलक्ष्यकेसरम् = असमग्रं लक्ष्याणि केसराणि यस्य तत् असमग्रलक्ष्यकेसरम् ।

---

**( सब हँसते हैं, मालविका मुस्कराती है )**

**राजा—( मन ही मन )** मेरे नेत्रों को इच्छित वस्तु देखने को प्राप्त हो गई ? क्योंकि आज मेरी आँखों को विशाल नेत्रोंवाली के मुस्कराते हुए उस मुख का दर्शन मिल गया है जिसमें कुछ कुछ दांत दिखलाई पड़ रहे थे और जो उस खिलते हुए कमल के समान जान पड़ता है, जिसके केसर पूर्णरूप से न दिखाई दे रहे हों ॥ १० ॥

**विशेष**—स्मित और हसित का लक्षण—

किञ्चिद् विकासिनयनं स्मितं स्याद् स्पन्दिताधरम् ।
ईषल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः ॥

विकसित नेत्र और स्पन्दित अधर स्मित में होते हैं तथा हसित में कुछ कुछ दाँत भी दिखलाई देने लगते हैं ।

**गणदासः**—महाब्राह्मण, न खलु प्रथमं नेपथ्यदर्शनमिदम् । अन्यथा कथं त्वां दक्षिणीयं नार्चयिष्यामः ।

**विदूषकः**— मए णाम, सुक्खघणगज्जिदे अन्तरिक्खे जलपाणं इच्छदा चाद-आइदम् । अहवा पण्डितसंतोसपच्चआ णं मूढा जादी । जदि अत्तहोदिए सोहणं भणिदं तदा इमं से पारितोसिअं पअच्छामि । ( इति राज्ञो हस्तात्कटकमाकर्षति । ) [ मया नाम शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिच्छता चातकायितम् । अथवा पण्डित-संतोषप्रत्यया ननु मूढजातिः । यतोऽत्रभवत्या शोभनं भणितं तत इदं ते पारितोषिकं प्रयच्छामि । ] ( इति राज्ञो हस्तात्कटकमाकर्षति । )

**देवी**—चिट्ठ दाव । गुणन्तरं अजाणन्ती किंणिमित्तं तुमं आहरणं देसि । [ तिष्ठ तावत् । गुणान्तरमजानन् किन्निमित्तं त्वमाभरणं ददासि ]

---

**गणदासः**—महाब्राह्मण ! विप्राधम ! इदं मम प्रथमं प्रदर्शनं नास्ति । अन्यथा दक्षिणार्हस्य तव पूजा अवश्यं कर्तव्या भवेत् ।

**विदूषकः**—मया नाम = मूर्खेण विदूषकेण । शुष्कघनगर्जिते = शुष्कानाम् = वारि-शून्यानाम् घनानां = मेघानां गर्जितम् = स्तनितं यस्मिन् तादृशे = निर्जलमेघशब्दपूर्णे । अन्तरिक्षे = आकाशे । जलपानम् = पिपासाशान्तिम् । इच्छता = अभिलषता । चातका-यितम् = चातक इवाचरितम् । यथा चातकः खगः निर्जलमेघपूर्णे गगने जलेच्छया पश्यन् जलमनवाप्य विषदति तथैव अहमपि नितान्तकृपणं गणदासम् धनमर्थयमानः किञ्चिदपि अप्राप्य खिद्ये । अत्रोपमालङ्कारः । अथवा पण्डितानां = विदुषां परितोषेण = सन्तोषलाभेन प्रत्ययः = विश्वासः यस्या सा तथोक्ता मूढा = मूर्खा जातिः गुणागुणविवेकसामर्थ्यशून्या भवति यतोऽत्रभवत्या = ततोऽत्रश्रीमत्या कौशिक्यां शोभनम् = उचितम् भणितम् = कथितम् ततः = तस्मात् = इदम् = एतत् । ते तुभ्यम् । पारितोषिकम् = पुरस्कारम् । प्रयच्छामि = ददामि । ( राज्ञः = अग्निमित्रस्य हस्तात् = करात् कटकम् = वलयम् आकर्षति ) ।

**देवी**—तिष्ठ तावत् = विरम तावत् । गुणान्तरम् = गुणभेदम् । अजानन् = अनवगच्छन् किन्निमित्तम् = किमर्थम् त्वम् आभरणम् = भूषणम् । प्रयच्छसि = ददासि ।

---

**गणदास**—अरे ब्राह्मणाधम ! हम लोग पहली बार तो नाटक दिखा नहीं रहे हैं । ऐसा होता तो तुम्हारे जैसे पेटपूजा पर जीने वाले की हम अच्छी पूजा करते ।

**विदूषकः**—तो क्या मैं कोरे गर्जनशील बादलों से प्यास मिटाने की आशा करने वाला पपीहा ही बना रह गया ? परन्तु मेरे समान मूर्खों की तो ऐसी बात है कि यदि पण्डितों को सन्तोष हुआ तो मानों हमें भी सन्तोष हो गया । जब भगवती कौशिकी में इसे सुन्दर बता दिया है तो मैं भी तुम्हें यह पारितोषिक दे डालता हूँ । **( राजा के हाथ से कंगन खींचता है )**

**विशेष**—चातक के सम्बन्ध में यह विख्यात है कि वह पृथ्वी के ऊपर जल नहीं पीता है। ऊपर के बादलों से गिरते हुए जल की बूँदों को पीकर ही अपनी प्यास शान्त करता है । गौतम अपनी मूर्खता को मान लेता है । उसकी भेंट पूजा उसी प्रकार है जिस प्रकार चातक निर्जल गर्जन-शील बादलों से प्यास बुझाने की आशा करता है ।

**देवी**—ठहरो । अन्य अभिनय देखे बिना अभी इसे आभूषण क्यों दे रहे हो ?

**विदूषकः**—परकेरअंति करिअ। [ परिकीयमिति कृत्वा। ]

**देवी**—( आचार्यं विलोक्य। ) अज्ज गणदास, णं दंसिदोवदेसा दे सिस्सा। [ आर्य गणदास, ननु दर्शितोपदेशा ते शिष्या। ]

**गणदासः**—वत्से, एहि गच्छाव इदानीम्।

( सहाचार्येण निष्क्रान्ता मालविका। )

**विदूषकः**—( जनान्तिकम्। ) एत्तिओ मे मदिविहवो भवन्तं सेविदुं। [ एतावन्मे मतिविभवो भवन्तं सेवितुम्। ]

**राजा**—अलमलं परिच्छेदेन। अहं हि—

**भाग्यास्तमयमिवाक्ष्णोर्हृदयस्य महोत्सवावसानमिव।**
**द्वारपिधानमिव धृतेर्मन्ये तस्यास्तिरकरणम्॥ ११॥**

---

**विदूषकः**—परकीयम् = अन्यदीयम्। इति कृत्वा = ईदृश कथयित्वा।

**देवी**—( शिक्षकं गणदासं दृष्ट्वा ) आर्य गणदास ! = श्रीमन् गुरुदेव ! ते शिष्या = तवान्तेवासिनी मालविका। दर्शितोपदेशा = दर्शितः उपदेशः यस्या सा दर्शितोपदेशा = प्रमाणित शिक्षा। ) शिक्षा प्रदर्शिता चेत् सा गन्तुमर्हतीति भावः।

**गणदासः**—वत्से ! = पुत्रि ! एहि = आगच्छ। गच्छावः = व्रजावः। इदानीम् = अधुना।

( गुरुणा सह मालविका निर्गच्छति )

**विदूषकः**—( नृपं प्रति शनैः शनैः ) एतावत् = एतत्पर्यन्तम्। मे मतिविभवः = मम बुद्धिकौशलम्। भवन्तम् = श्रीमन्तम्। सेवितुम् = प्रसादयितुम्।

**राजा**—परिच्छेदेन = बुद्धिकौशलेयत्ताकरणेन। अलमलम् = व्यर्थमेवेति।

**अन्वयः**—तस्याः तिरस्करणम् अक्ष्णोः भाग्यास्तमयम् इव, हृदयस्य महोत्सवावसानम् इव, धृतेः द्वारपिधानम् इव मन्ये॥ ११॥

**भाग्येति**। तस्याः = मालविकायाः। तिरस्करणम् = अन्तर्धानम्। अक्ष्णोः = नेत्रयोः। भाग्यास्तमयम् = भाग्यस्य = सौभाग्यशालितायाः। अस्तमयम् = अवसानमिव। हृदयस्य = मनसः। महोत्सवावसानमिव = महदानन्दसमाप्तिः। इव। धृतेः = धैर्यस्य। द्वारपिधानम् = प्रवेशमार्गमुद्रणामिव मन्ये = प्रत्येमि॥ ११॥

---

**विदूषक**—दूसरे का है, यह समझ कर दे रहा हूँ।

**देवी**—( **आचार्य को देखकर** ) कहिये आपकी शिष्या अपना अभिनय दिखा चुकी !

**गणदास**—आओ पुत्रि ! हम लोग चलें।

**( आचार्य के साथ मालविका चली जाती है )**

**विदूषकः**—( **अलग राजा से** ) जहाँ तक मेरी बुद्धि की पहुँच थी वहाँ तक तो मैंने आपका काम कर दिया।

**राजा**—रहने दो, अपनी बुद्धि की सीमा बताने की आवश्यकता नहीं।

मैं मालविका के प्रस्थान को अपने नेत्रों के सौभाग्य सूर्य का अस्तमय, हृदय के महोत्सव की समाप्ति और धैर्य के मार्ग का बन्द हो जाना समझता हूँ॥ ११॥

**अलंकार**—उल्लेख अलंकार।

**विदूषकः**—( जनान्तिकम् ) दलिद्दो विअ आदुरो वेज्जेण ओसदं दीअमाणं इच्छसि । [ दरिद्र इवातुरो वैद्येनौषधं दीयमानमिच्छसि । ]

( प्रविश्य । )

**हरदत्तः**– देव, मदीयमिदानीं प्रयोगमवलोकयितुं क्रियतां प्रसादः ।

**राजा**—( आत्मगतम् । ) अवसितो दर्शनार्थः । ( दाक्षिण्यमवलम्ब्य प्रकाशम् । ) ननु पर्युत्सुका एव वयम् ।

**हरदत्तः**—अनुगृहीतोऽस्मि ।

( नेपथ्ये । )

**वैतालिकः**—जयतु जयतु देवः । उपारूढो मध्याह्नः । तथाहि—

**पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां**
**सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ।**
**बिन्दूत्क्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं**
**सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥ १२ ॥**

---

**समासः**— भाग्यास्तमयम् = भाग्यस्य अस्तमयम् भाग्यास्तमयम् । महोत्सवावसानम् = महान् चासौ उत्सवः महोत्सवः महोत्सवस्य अवसानम् = महोत्सवावसानम् । द्वारपिधानम् = द्वारस्य पिधानम् द्वारपिधानम् ।

**अलंकारः**—अस्मिन् पद्ये उल्लेखोऽलंकारः । छन्दः—आर्या जातिः ।

**विदूषकः**—( नृपं प्रति शनैः ) दरिद्रः = निर्धनः । आतुरः = रुग्णः इव । वैद्येन = चिकित्सकेन । दीयमानम् = समर्प्यमाणम् । औषधम् इच्छसि = अभिलषसि ।

**हरदत्तः**—देव = महाराज ! मदीयम् = मम । इदानीम् = अधुना । प्रयोगम् = अभिनयम् अवलोकयितुम् = द्रष्टुम् क्रियतां प्रसादः = करोतु अनुग्रहम् ।

**वैतालिकः**—महाराजस्य विजयो भवतु । मध्याह्नकालः समागतः । यतः =

**अन्वयः**— अत्यर्थतापात् हंसाः दीर्घिकापद्मिनीनां पत्रच्छायासु मुकुलितनयनाः ( वर्तन्ते ) सौधानि वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ( वर्तन्ते ) शिखी बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः ( सन् ) भ्रान्तिमत् वारियन्त्रं परिपतति । सर्वैः नृपगुणैः समग्रः त्वम् इव सर्वैः उस्रैः सप्तसप्तिः दीप्यते ॥ १२ ॥

**पत्रच्छायासु हंसा इति** । अत्यर्थतापात् = समधिकोष्णत्ववशात् । हंसाः = मरालाः ।

---

**विदूषकः**—( अलग ) वाह दरिद्र रोगी की भाँति वैद्य से विना मूल्य दवा चाहते हो !

**( हरदत्त का प्रवेश )**

**हरदत्त**—महाराज ! अब मेरे द्वारा शिक्षित अभिनय भी देखने की कृपा करें ।

**राजा**—( **मन ही मन** ) जो देखना था वह तो देख ही चुके ( **उदारता दिखाने के लिए प्रकट रूपसे** ) हम लोग तो देखने के लिए उत्सुक ही हैं ।

**हरदत्त**—मुझ पर आपकी महती कृपा है ।

**( नेपथ्य में )**

**वैतालिक**—जय हो देव की जय हो । दोपहर हो गया है क्योंकि—
बावलियों में कमल की पंखुड़ियों की छाया में हंस आंख मूँदकर विश्राम कर रहे हैं । धूप से

**विदूषकः**—अविहा अविहा । अम्हाणं उण भोअणवेला उवट्ठिदा । अत्तभवदो उइदवेलादिक्कमे चिइच्छआ दोसं उदाहरन्ति । ( हरदत्तं विलोक्य । ) हरदत्त, किं दाणिं भणसि । [ **अविध अविध । अस्माकं पुनर्भोजनवेलोपस्थिता । अत्रभवत उचितवेलातिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति । हरदत्त, किमिदानीं भणसि ।** ]

**हरदत्तः**—अस्ति वचनस्यान्यस्यावकाशोऽत्र ?

---

दीर्घिकापद्मिनीनाम् = वापीगतकमलिनीनाम् । पत्रच्छायासु = दलच्छाययानातपप्रदेशेषु । मुकुलितनयनाः = मुद्रितनेत्राः ( सन्ति ) सौधानि = सुधाधवलितराजप्रासादाः वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि = वलभिसमीपगमनशत्रुभूतकपोतानि । ( वर्तन्ते ) शिखी = मयूरः । विन्दूत्क्षेपान् = पयःपृषदुद्गतान् पिपासुः = जलाभिलाषी भ्रान्तिमत् = घूर्णमानम् । वारियन्त्रम् = जलयन्त्रम् परिपतति = सेवितुमागच्छति । सर्वैः = सम्पूर्णैः । नृपगुणैः = शौर्यदयादिभिः । समग्रः = परिपूर्णः त्वमिव = भवान् इव । सर्वैः उस्रैः = सम्पूर्णैः मयूखैः परिपूर्णः । सप्तसप्तिः=सप्ताश्वः सूर्यः दीप्यते = विराजते ॥ १२ ॥

**समासः**—अत्यर्थतापात् = अत्यर्थः तापः अत्यर्थतापः तस्मात् अत्यर्थतापात् । दीर्घिकापद्मिनीनाम् = दीर्घिकाणां पद्मिन्यः दीर्घिका पद्मिन्यः तासाम् । पत्रच्छायासु = पत्राणां छायासु = पत्रच्छायासु । मुकुलितनयना = मुकुलितानि नयनानि येषां ते मुकुलितनयनाः । वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि = वलभीनां परिचयं द्विषन्तीति द्वेषिणः तथाभूताः पारावताः यत्र तथाभूतानि वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि । विन्दूत्क्षेपान् = विन्दूनाम् उत्क्षेपान् विन्दूत्क्षेपान् । वारियन्त्रम् = वारिणः यन्त्रम् = वारियन्त्रम् । नृपगुणैः = नृपाणां गुणैः नृपगुणैः । सप्तसप्तिः = सप्तसप्तयः यस्य स सप्तसप्तिः ।

**छन्दः**—स्रग्धरावृत्तम् । तल्लक्षणम्—"म्रभ्नैर्यानां भयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ।

**विदूषकः**—अविहा अविहा = संभ्रमसूचकम् अव्ययम् द्विधाऽऽवर्त्तितम् तदतिशयद्योतनाय । अस्माकं पुनर्भोजनवेला = मध्याह्नकालः उपस्थिता = आगतः चिकित्सकाः = वैद्याः । अत्रभवतः = श्रीमतो राज्ञः । उचितवेलातिक्रमे = भोजननिश्चितसमयातिक्रमेण । दोषम् = अस्वास्थ्यम् । उदाहरन्ति = कथयन्ति । कथितम्—"याममध्ये न भोक्तव्यम् यामयुग्मं न लंघयेत् ।"

**हरदत्तः**—अत्र अन्यस्य = भिन्नस्य वचनस्य = कथनस्य अवकाशः = समयः अस्ति ?

---

भवन ऐसा तप गया है कि छज्जों पर कबूतर तक नहीं बैठ रहे हैं ; चलते हुए रहट से उछलती हुई पानी की बूँदें पीने के लिए मोर उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं और सूर्य अपनी सब किरणें लेकर उसी प्रकार चमक रहा है जैसे आप अपने सम्पूर्ण राजसी गुणों से चमकते हैं ॥ १२ ॥

**विशेष**—तेजस्वी राजा की तुलना सूर्य से संस्कृत साहित्य में अधिक मिलती है । इस पद्य में कवि ने दोपहर की प्रकृति का अपना गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है । तथा सूर्य से राजा की उपमा देकर नायक को उत्कृष्ट प्रतिपादित किया है ।

**विदूषक**—अरेरे ! अब तो हम लोगों के भोजन का समय हो गया है । वैद्यों का कथन है कि समय पर भोजन न करने से बड़ी हानि होती है । कहो हरदत्त ! क्या कहते हो ?

**हरदत्त**—अब कुछ कहने की बात ही कहाँ रह जाती है ।

राजा—तेन हि त्वदीयमुपदेशं श्वो वयं द्रक्ष्यामः । विरमतु भवान् ।

हरदत्तः—यदाज्ञापयति देवः । ( इति निष्क्रान्तः )

देवी—णिव्वट्टेदु अज्जउत्तो मज्जणविहिम् । [निर्वर्तयत्वार्यपुत्रो मज्जनविधिम्] ।

विदूषकः—भोदि, विसेसेण पाणभोअणं तुवरावेहि । [ भवति, विशेषेण पानभोजनं त्वरय । ]

परिव्राजिका—( उत्थाय ) स्वस्ति भवते । (इति सपरिजनदेव्या सह निष्क्रान्ता) ।

विदूषकः—भो वअस्स, ण केवलं रूवे, सिप्पे वि अदुदीआ मालविआ । [ भो वयस्य न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका । ]

राजा—वयस्य,

**अव्याजसुन्दरीं तां विधानेन ललितेन योजयता ।**
**परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदग्धः ॥ १३ ॥**

---

राजा—अतः भवतः प्रयोगं वयं श्वो द्रक्ष्यामः विश्राम्यतु भवान् ।

हरदत्तः—महाराजस्य यां आज्ञा ( इति कथयित्वा निर्गच्छति )

देवी—आर्यपुत्रः = श्रीमान् मज्जनविधिम् = स्नानक्रियाम् निर्वर्तयतु = सम्पादयतु ।

विदूषकः—भवति=श्रीमति । विशेषेण = अत्युत्तमप्रकारेण पानभोजनम् = पानेन सहितं भोजनम् पानं भोजनं चेत्यर्थः ।

परिव्राजिका—( उत्थिता भूत्वा ) स्वस्ति = कल्याणं भवते = श्रीमते महाराजाय अग्निमित्राय । ( इति सपरिजनया = परिवारसहितया देव्या धारिण्या सह निष्क्रान्ता निर्गच्छति । )

विदूषकः—भो वयस्य ! भो मित्र ! मालविका न केवलं रूपे = सौन्दर्ये एव अद्वितीया वर्तते अपितु शिल्पे = संगीतकलायामपि अद्वितीया वर्तते ।

अन्वयः—अव्याजसुन्दरीं तां ललितेन विधानेन योजयता विधात्रा कामस्य विषदिग्धः बाणः परिकल्पितः ॥ १३ ॥

अव्याजेति—अव्याजसुन्दरीम् = अकृत्रिममनोरमाम् । ताम्=मालविकाम् । ललितेन=

---

**राजा**—तो अब आपका प्रदर्शन हम लोग कल देखेंगे । आप जाकर विश्राम करें ।

**हरदत्त**—श्रीमान् की जैसी आज्ञा ।( **निकल जाता है** )

**देवी**—तो आर्यपुत्र ! तो अब चलकर आप स्नान करें ।

**विदूषक**—देवी ! अब शीघ्र भोजन पानी का कुछ उत्तम प्रबन्ध कराइये ।

**परिव्राजिका—( उठकर )** आपका कल्याण हो ।

**( सेविकाओं और रानी के साथ चली जाती है । )**

**विदूषक**—मित्र ! सुन्दरता में ही नहीं कला में भी मालविका अद्वितीय है ।

**राजा**—वयस्य ! अकृत्रिम सुन्दरी उस मालविका को विधाता ने ललितकलायें क्या दे दीं मानों काम के बाणों को विषाक्त बना दिया ॥ १३ ॥

**विशेष**—मालविका की उपमा कामदेव के बाण से दी गई है क्योंकि वह स्वभावतः सुन्दर है किन्तु रूप-सौन्दर्य के अतिरिक्त उसमें ललितकला ( नृत्य संगीतादि ) का कौशल भी है, जिसकी तुलना कवि ने विष से की है जिसमें वह बाण बुझाया गया है । मालविका की निर्व्याज सुन्दरता

किं बहुना । सखे, चिन्तयितव्योऽस्मि ।

विदूषकः—भवदा वि अहं । दिढं विपणिकन्दू विअ मे हिअअब्भन्तरं दज्झइ । [ भवताप्यहम् । दृढं विपणिकन्दुरिव मे हृदयाभ्यन्तरं दह्यते । ]

राजा—एवमेव भवान् सुहृदर्थेऽपि त्वरताम् ।

विदूषकः—गहीदक्खणोम्हि । किं तु मेहावलीणिरुद्धा जोण्हा विअ पराहीण-दंसणा तत्तहोदी मालविआ । भवं वि सूणापरिसरचरो विअ गिद्धो आमिसलोलुओ भीरुओ अ अच्चंतादुरो विअ कज्जसिद्धिं पत्थन्तो मे रोअसि । [ गृहीतक्षणोऽस्मि ।

---

मधुरेण, ललितकलापरिगणितेनेति वा । विधानेन = नृत्यगीतादिविद्यापरिचयेन : योजयता= भूषयया । विधात्रा = विधिना । कामस्य = मदनस्य । बाणः = शरः । परिकल्पितः = सज्जीकृतः ॥ १३ ॥

समासः—अव्याजसुन्दरीम् = न व्याजः अव्याजः अव्याजेन सुन्दरी ताम् अव्याज-सुन्दरीम् । विषदिग्धः = विषेण दिग्धः = विषदिग्धः ।

अलंकारः—असम्भवद् वस्तु सम्बन्धाभिधानात् निदर्शनाऽलङ्कारः । छन्दः—आर्या जातिः ।

किं बहुना = अधिकं वक्तुमशक्यम् नोचितं च । सखे ! मित्र ! चिन्तयितव्यः—अनु-ध्यातव्यः, मदीयमानसिकदशायाः विकृततया प्रतिकाराय भवता सयत्नेन भवितव्यमित्यर्थः ।

विदूषकः—भवताप्यहम् = भवानपि मदीयसहायतां कर्तुमर्हति । दृढम् = बलवत् । विपणिकन्दुः = विपणेः = आपणस्य, कन्दुः = स्वेदनी ( तावा इति भाषायाम् ) आपण-स्वेदनी । इव उदराभ्यन्तरम् = अन्तर्हृदयम् । दह्यते = ज्वलति ।

राजा—एवमेव = इत्थमेव । भवान् यथा भोजनरूपे निजस्वार्थे त्वरते तथैव सुहृदो= मम । अर्थे = प्रयोजने ( मालविकामिलनोपायचिन्तनरूपे ) त्वरताम् = शीघ्रतां करोतु ।

विदूषकः—गृहीतक्षणः = प्राप्तावसरः । अस्मि = भवामि । किन्तु मेघावली निरुद्धा = जलदमालावृता । ज्योत्स्ना = चन्द्रिका । इव । पराधीनदर्शना = पराधीनं दर्शनं यस्याः सा पराधीनदर्शना दुर्लभदर्शना । तत्रभवती = श्रीमती मालविका । भवानपि = श्रीमान् महा-राजोऽपि । सूनापरिसरचरः = सूनायाः = वधस्थानस्य, परिसरः = समीपदेश तत्र चरतीति तथोक्तः = वधशालासमीपदेशचरः । इव । आमिषलोलुपः = मांसलिप्सुः । भीरुकश्च =

---

और कलानैपुण्य दोनों मिलकर राजा पर जादू कर देते हैं । शस्त्रों को विष में डुबोकर अधिक मारक बनाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है । एक मनोरम नवयुवती का प्रेमास्त्र के रूप में वर्णन संस्कृत साहित्य में अधिक मिलता है । भवभूति ने लिखा है :—

"बाण : पञ्चशिलीमुखस्य ललना चूड़ामणिः सा प्रिया ।"

**अलंकार**—असम्भव वस्तु सम्बन्ध के अभिधान से निदर्शना अलङ्कार है ।

मित्र ! अब अधिक क्या कहूँ तुम जाकर मेरी कुछ चिन्ता करो ।

**विदूषक**—आप भी मेरी चिन्ता कीजिए । मेरा पेट इस समय हलवाई के तावे की भांति अत्यन्त सन्तप्त है ।

**राजा**—तुम भी अपने मित्र के लिए अब कोई उपाय शीघ्र ही सोच निकालो ।

**विदूषक**—मुझे अवसर प्राप्त हो गया । किन्तु मेघावृत चन्द्रिका के समान मालविका के दर्शन भी पराधीन ही है । आप भी मांस बेचने वाले व्याध के घर पर मँडराने वाले गिद्ध के समान उसपर

किं तु मेघावलीनिरुद्धा ज्योत्स्नेव पराधीनदर्शना तत्रभवती मालविका । भवानपि सूनापरिसरचर इव गृध्र आमिषलोलुपो भीरुकश्च । अत्यन्तातुर इव कार्यसिद्धिं प्रार्थयमानो मे रोचसे । ]

राजा—कथमनातुरो भविष्यामि ।

सर्वान्तः पुरवनिता व्यापारप्रतिनिवृत्तहृदयस्य ।
सा वामलोचना मे स्नेहस्यैकायनीभूता ॥ १४ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे । )

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

---

भयशीलश्च । गृध्र इव = पक्षिविशेष इव । गृध्रो यथा मांसलोभात् सूनासमीपे परिभ्रमति बाधाभीत्या च मांसं नादित्सति तथा भवानपि मालविकां कामयते धारिणीतो बिभेति चेति भावः । अत्यन्तातुर इव = नितरां पीडित इव । कार्यसिद्धिम्=मालविकायाः भूयः साक्षात्कार-रूपां प्रार्थयमानः = याचमानः । मे = मह्यम् रोचसे = प्रीतिप्रदो भवसि । प्रभुरपि त्वमार्त्त इव स्वाश्रितं ब्राह्मणमकिञ्चनं यत्स्वकार्यसिद्धिं याचसे तन्मे रोचत इति भावः ।

**राजा**—कथम् = केन प्रकारेण । अनातुरः = अव्यग्रः (मालविकालाभात्) भविष्यामि ।

**अन्वयः**—सर्वान्तःपुर वनिताव्यापारं प्रति निवृत्तहृदयस्य मे स्नेहस्य सा वामलोचना एकायनी भूता ॥ १४ ॥

**सर्वेति** । सर्वान्तःपुरवनिताव्यापारम् = अखिलान्तःपुरनारीव्यवहारम् । प्रतिनिवृत्त-हृदयस्य = पराङ्मुखमनसः । मे = मम । स्नेहस्य = प्रेम्णः । सा = प्रसिद्धा मदीयचेतो-हारिणी । वामलोचना = सुन्दराक्षी । मालविका एकायनीभूता = एकम् अयनं स्थानं आश्रयः तद्भूता तद्भावंगता । सर्वान्तःपुरवनिताविरक्तस्य मम अधुना मालविकैवानुरागस्य पात्रमिति भावः ॥ १४ ॥

**समासः**—सर्वान्तःपुरवनिताव्यापारम् = सर्वासाम् अन्तःपुरस्य स्त्रीणां व्यापारम् = सर्वान्तःपुरवनिता व्यापारम् । निवृत्तहृदयस्य = निवृत्तं हृदयं यस्य सः तस्य निवृत्तहृदयस्य । वामलोचना = वामे लोचने यस्याः सा वामलोचना । एकायनीभूता = एकञ्च तद् अयनं एकायनम् तद्भूता = एकायनीभूता । अत्र विन्दुरिति अर्थप्रकृतिः । छन्दः आर्या वृत्तम् ।

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

---

ललचाये हुए भी हैं और साथ ही डरते हैं । इतनी व्यग्रता के साथ मुझे काम करने को कहते हुए आप बड़े अच्छे लगते हैं ।

**राजा**—मैं किस प्रकार शान्त हो सकूंगा ।

अन्तःपुर की सभी रमणियों के हावभाव से मेरा हृदय फिर गया है । अब तो सुलोचना मालविका ही मेरे स्नेह की एकमात्र अधिकारिणी रह गई है ॥ १४ ॥

**( सम्पूर्ण पात्र निकल जाते हैं )**

**द्वितीय अङ्क समाप्त ।**

# तृतीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति परिव्राजिकायाः परिचारिका समाहितिका । )

**समाहितिका**—आणत्तम्हि भअवदीए—समाहिदिए देवस्स उववणत्थं बीअऊरअं गेण्हिअ आअच्छत्ति । ता जाव पमदवणपालिअं महुअरिअं अण्णेसामि । ( परिक्रम्यावलोक्य । ) एसा तवणीआसोअं ओलोअन्ती महुरिआ चिट्ठदि । ता जावणं उवसप्पामि । [ **आज्ञप्तास्मि भगवत्या—समाहितिके, देवस्योपवनस्थं बीजपूरकं गृहीत्वागच्छेति । तद्यावत्प्रमदवनपालिकां मधुकरिकामन्विष्यामि । एषा तपनीयाशोकमवलोकयन्ती मधुकरिका तिष्ठति । तद्यावदेनामुपसर्पामि ।** ]

( ततः प्रविशत्युद्यानपालिका । )

**समाहितिका**—( उपसृत्य । ) आलि, अवि सुहो दे उज्जाणवणव्ववारो । [ **आलि, अपि सुखस्त उद्यानवनव्यापारः ।** ]

**मधुकरिका**—अम्हो समाहिदिआ । सहि, सागदं दे । [ **अहो समाहितिका । सखि, स्वागतं ते ।** ]

---

( ततः = तत्पचात् । प्रविशति=प्रवेशं करोति । परिव्राजिकायाः = पण्डितकौशिक्याः । परिचारिका = दासी । समाहितिका । )

**समाहितिका**—आज्ञप्तास्मि = आदिष्टास्मि । भगवत्या = धारिणी देव्या आश्रये निवसन्त्या परिव्राजिकया । देवस्य = राज्ञोऽग्निमित्रस्य । उपवनस्थम् = उद्यानभूमिगतम् । बीजपूरकम् = निम्बूफलविशेषम् । गृहीत्वा = आदाय । आगच्छ = एहि । तद्यावत् = तद्यावत्कालपर्यन्तम् प्रमदवनपालिकाम् = प्रमदवनम् = राज्ञामन्तःपुरसंलग्नमुद्यानम् तस्य पालिकां रक्षिणीम् । मधुकरिकाम् = एतां नाम्नीं परिचारिकाम् ! अन्विष्यामि=अन्वेषणं करिष्यामि । एषा = इयम् परिचारिका मधुकरिका । तपनीयाशोकम् = स्वर्णाशोकवृक्षम् । अवलोकयन्ती= प्रेक्षमाणा । तिष्ठति = वर्तते । ततः तस्याः समीपमुपगच्छामि ।

( तत्पश्चात् उद्यानपालिका प्रवेशं करोति )

**समाहितिका** ( उपगम्य ) मधुकरिके ! अपि = अस्ति । सुखः = सुखजनकः । उद्यानवनव्यापारः = उपवनारण्यकार्यम् ।

**मधुकरिका**—अहो समाहितिका । सखि ! = आलि ! ते = तव । स्वागतम् = शुभागमनम् ।

---

**( परिव्राजिका की दासी समाहितिका प्रवेश करती है )**

**समाहितिका**—भगवती कौशिकी ने मुझे आज्ञा दी है कि समाहितिका जाओ महाराज के उपवन से एक विजौरिआ नीबू तो ले आओ । तो चलूँ प्रमदवन की मालिन मधुकरिका का पता लगाऊँ **( घूमकर देखकर )** अरे ! सुनहले अशोक की ओर टकटकी लगाए यह क्या खड़ी है । तो चलूँ, इसके पास ।

**( मालिन मधुकरिका आती है )**

**समाहितिका—( पास जाकर )** कहो मधुकरिका ! तुम्हारे उपवन का काम तो ठीक-ठीक चल रहा है न ?

**मधुकरिका**—अरे ! तुम हो समाहितिका ! आओ सखी आओ तुम्हारा स्वागत है ।

**समाहितिका**—हला, भगवदि आणवेदि–अरित्तपाणिणा अम्हारिसजणेण तत्तहोदी देवी देक्खिदव्वा । ता बीअपूरएण सुस्सूसिदुं इच्छामिति । [ हला, भगवत्याज्ञापयति—अरिक्तपाणिनाऽस्मादृशजनेन तत्रभवती देवी द्रष्टव्या । तद्बीजपूरकेण शुश्रूषितुमिच्छामीति । ]

**मधुकरिका**—णं संणिहिदं बीजपूरअं । कहेहि दाव अण्णोण्णसंघरिसिदाणं णट्टाअरिआणं उवदेसं देक्खिअ कदरो भअवदीए पसंसिदो । [ ननु संनिहितं बीजपूरकम् । कथय तावदन्योन्यसंघर्षितयोर्नाट्याचार्ययोरुपदेशं दृष्ट्वा कतरो भगवत्या प्रशंसितः । ]

**समाहितिका**—दुवे वि किल आगमिणा पओअणिउणा अ । किंतु सिस्साए मालविआए गुणविसेसेण गणदासस्स उपदेसो पसंसिदो । [ द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च । किन्तु शिष्याया मालविकाया गुणविशेषेण गणदासस्योपदेशः प्रशंसितः] ।

---

**समाहितिका**—हलेति सखीसम्बोधनमिदम् । भगवती = पण्डिता कौशिकी । आज्ञापयति = आदेशं करोति । अरिक्तपाणिना = पूर्णकरेण ( न शून्यहस्तेन ) लिखितमस्ति—"रिक्तपाणिर्न पश्येत् राजानम् देवतां गुरुम् । नैमित्तिकं च वैद्यञ्च फलेन फलमादिशेत्" । अस्मादृशजनेन = अस्मादृशश्चासौ जनः अस्मादृशजनस्तेन = मत्तुल्यलोकेन । तत्र भवती = श्रीमती । देवी = महाराज्ञी । द्रष्टव्या = अवलोकनीया । तद् = तस्मात् । बीजपूरकेण = मातुलुङ्गोपहार प्रदानपूर्वकम् । शुश्रूषितुम् = सेवितुम् । इच्छामि = अभिलषामि ।

**मधुकरिका**—ननु = प्रश्ने । संन्निहितम् = आसन्नवर्ति । बीजपूरकम् = एतन्नामकम् फलम् । कथय = वद । तावत् = तावत्कालपर्यन्तम् । अन्योन्यसंघर्षितयोः = परस्परोपजातविवादयोः । आचार्ययोः शिक्षकयोः । उपदेशम् = नाट्यप्रयोगमभिनयम् । दृष्ट्वा = अवलोक्य । कतरः = द्वयोर्मध्ये कः । भगवत्या = कौशिक्या । प्रशंसितः = श्लाघितः ।

**समाहितिका**—द्वावपि = उभौ अपि । किल = निश्चये । आगमिनौ = नाट्यवेदवेत्तारौ । प्रयोगनिपुणौ च = अभिनयात्मकनृत्यकलादक्षौ च । किन्तु शिष्यायाः = अन्तेवासिन्याः उपदिश्यमानायाः । मालविकायाः गुणविशेषेण = सौन्दर्यसंगीतादिकर्मसु कौशलातिशयेन । गणदासस्य = संगीताचार्यस्य । उपदेशः = अभिनयशिक्षा । प्रशंसितः = आदृतः । (शिष्यायाः गुणाधिक्यं हि शिक्षकगुणवत्तातिशयम् आवेदयति इति भावः ।)

---

**समाहितिका**—सखी ! भगवती कौशिकी ने कहा है कि हमें रिक्तहस्त महारानी से मिलने नहीं जाना चाहिए अतः एक नीबू ही उपहार के रूप में लेकर उनसे मिल लूँगी ।

**मधुकरिका**—लो, नीबू तो पास ही है । हाँ यह तो बताओ कि वह जो दोनों नाट्याचार्यों का विवाद चल रहा था, उनमें से भगवती ने किस आचार्य की प्रशंसा की ?

**समाहितिका**—यों तो दोनों ही नाट्यशास्त्र के पण्डित और अभिनय कला में चतुर हैं पर गणदास ने अपनी शिष्या मालविका को इतनी उत्तम शिक्षा दी है कि उसे देख लेने पर गणदास ही दोनों में प्रशंसित हुए । ( शिष्य के गुण-विशेष को देखकर शिक्षक की गुणवत्ता स्वतः प्रमाणित हो जाती है )

**मधुकरिका**—अह मालविआगदं कौलीणं कीरिसं सुणिअदि । [ अथ मालविकागतं कौलीनं कीदृशं श्रूयते । ]

**समाहितिका**—बाढं किल तस्सिं साहिलासो भट्टा । किंतु केवलं देवीए धारिणीए चित्तं रक्खन्तो अत्तणो पहुत्तं णं दसेदि । मालविआ वि इमेसु दिअसेसु अणुहूदमुत्ता विअ मालदीमाला मिलाणा लक्खीअदि । अदो अवरं ण जाणे । विसज्जेहि मं । [ बाढं किल तस्यां साभिलाषो भर्ता । किंतु केवलं देव्या धारिण्याश्चित्तं रक्षन्नात्मनः प्रभुत्वं न दर्शयति । मालविकाप्येषु दिवसेष्वनुभूतमुक्तेव मालतीमाला म्लाना लक्ष्यते । अतः परं न जाने । विसृज माम । ]

**मधुकरिका**—एदं साहावलम्बि बीअपूरअं गेण्ह । [ एतच्छाखावलम्बि बीजपूरकं गृहाण । ]

**समाहितिका**—तह । ( इति नाट्येन बीजपूरकं गृहीत्वा । ) हला, तुम वि अदो

---

**मधुकरिका**—अथ = ततः । मालविकागतम् = मालविकासम्बद्धम् । कौलीनम् = लोकापवादः अन्तःपुरचारिणीषु । ( मालविका जन्मकथामाश्रित्य देवस्य तस्यामनुरागं वाश्रित्य कथोपकथनरूपोऽनुसन्धेयः )

**समाहितिका**—बाढम् = अत्यर्थम् । किल = निश्चये । तस्याम् = मालविकायाम् । साभिलाषः = सञ्जातानुरागोदयः । भर्त्ता = महाराजोऽग्निमित्रः । किन्तु = परन्तु केवलम् देव्याः = महाराज्ञ्याः । धारिण्याः = एतन्नाम्न्याः राजमहिष्याः । चित्तम् रक्षन् = तदीयं मनः क्षोभमुत्पादयितुमनिच्छन् । ( मया मालविकाविषये स्वानुरागे प्रकटिते सपत्नीसम्भवेन खेदेन राजमहिषी धारिणी पीड्येत इति मत्वा राजा ) । प्रभुत्वम् = मालविकापरिणयापरतन्त्रभावम् = न दर्शयति = न प्रकटयति । मालविका अपि एषु दिवसेषु = अभिनयप्रदर्शनदिवसाद् आरभ्य अद्यावधि । अनुभूतयुक्ता = भुक्तोज्झिता । मालतीमाला = मालतीपुष्पग्रथिता स्रक् इव म्लाना = सन्तप्ता । लक्ष्यते = दृश्यते । अतः = एतस्मात् वृत्तान्तात् । परम् = अधिकम् । न जाने = न जानामि । विसृज = त्यज । माम् = कथयन्तीं माम् । गन्तुमादिशतु भवती ।

**मधुकरिका**—एतत् = इदम् । शाखावलम्बि = शाखातः प्रलम्बमानम् । बीजपूरकम् = एतन्नामकम् फलम् । गृहाण = आदेहि ।

**समाहितिका**—इति नाट्येन=अतः स्नाङ्गिकाभिनयेन सह । बीजपूरकम् = तन्नामकं

---

**मधुकरिका**—मालविका के सम्बन्ध में ये कैसी-कैसी बातें सुनने में आ रही हैं ?

**समाहितिका**—हाँ, इधर महाराज मालविका के विषय में अत्यधिक अनुरक्त हो गए हैं किन्तु केवल महारानी धारिणी का मन रखने के लिए स्पष्ट रूप से प्रेम नहीं दिखलाते। इधर इन दिनों मालविका भी पहनकर उतारी गई मालतीमाला के समान म्लान होती जा रही है । इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती । अब मुझे छुट्टी दो ।

**मधुकरिका**—इस डाल पर लटकते हुए बीजपूरक फल को ले लो ।

**समाहितिका**—अच्छा ( **नीबू तोड़ने का अभिनय करके** ) सखी ! तुम्हें सज्जन लोगों की सेवा करने का फल इससे भी उत्तम मिले । ( **इतना कहकर चली जाती है** )

पेसलदरं साहुजणसुस्सूसाए फलं पाविहि । ( इति प्रस्थिता । ) [ तथा । सखि त्वमप्यतः पेशलतरं साधुजनसुश्रूषायाः फलं प्राप्नुहि । ]

मधुकरिका—हला, समं जेव्व गच्छम्ह । अहं वि इमस्स चिराअमाणकुसुमोग्गमस्स तवणीआसोअस्स दोहलणिमित्तं देवीए णिवेदेमि । [ सखि, सममेव गच्छावः । अहमप्यस्य चिरायमाणकुसुमोद्‌गमस्य तपनीयाशोकस्य दोहदनिमित्तं देव्यै निवेदयामि । ]

समाहितिका—जुज्जइ । अहिआरो क्खु तुह । [ युज्यते अधिकारः खलु तव । ]

( इति निष्क्रान्ते । )

इति प्रवेशकः ।

( ततः प्रविशतिः कामयमानावस्थो राजा विदूषकश्च । )

---

फलम् । गृहीत्वा = आदाय । सखि = हले ! त्वमपि = भवानपि । अतः पेशलतरम् = अस्मात् फलात् विशेष सुकुमारम् । साधुजनशुश्रूषायाः = सज्जनलोकसेवास्वरूपायाः । फलम् = परिणामम् । प्राप्नुहि = प्राप्तं कुरु । ( इति प्रस्थिता ) = ( चलितुम् आरब्धा ) ।

मधुकरिका—सखि ! = हले ! । सममेव = सहैव । गच्छावः = व्रजावः । अहमपि अस्य = काञ्चनाशोकस्य । चिरायमाणाकुसुमोद्‌गमस्य = विलम्बमानपुष्पप्रभवस्य । तपनीयाशोकस्य = स्वर्णाशोकस्य । दोहदनिमित्तम् = गर्भधारणार्थम् । देव्यै = महाराज्ञ्यै धारिण्यै । निवेदयामि = कथयामि ) अर्थात् देवी स्वयमागत्य काञ्चिदन्तः पुरिकां वा प्रेष्य स्वाभाविकीं पुष्पसमृद्धिम् अस्य उत्पादयतु येनायं सार्थकः स्यादशोकतरुः ।

समाहितिका—युज्यते = उपपद्यते ( निवेदनमुचितमस्ति ) इदन्तु तव = भवत्याः । अधिकारः खलु = कर्तव्यमस्ति ।

( इति निष्क्रान्ते = मधुकरिका समाहितिका चेति निष्क्रान्ते = निर्गच्छतः )

( प्रवेशकः )

प्रवेशकस्य लक्षणम्—तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
प्रदेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ॥

( ततः = तत्पश्चात् । प्रवेशं करोति । कामयमानावस्थः = कामवाणपराहतावस्थः राजा = महाराजोऽग्निमित्रो विदूषकः = गौतमश्च )

---

मधुकरिका—सखो ! दोनों साथ ही चलें । मुझे भी चलकर महारानी जी से निवेदन करना है कि स्वर्णाशोक अभी तक फूल नहीं रहा है । इसके फूलने का उपाय किया जाना चाहिये ।

समाहितिका—ठीक, यह तो तुम्हारा कर्तव्य ही है ।

**( दोनों चली जाती हैं )**

**प्रवेशक ।**

**प्रवेशक** = प्रवेशक भी ( विष्कम्भक की तरह ) अतीत और भावी कथांशों का सूचक है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं होती ( इसकी भाषा सदा प्राकृत होगी, वह प्राकृत भी शौरसेनी प्राकृत न होकर मागधी, शकारी आदि अशिष्ट प्राकृत होगी ) इसमें नीच पात्रों का प्रयोग होता है । प्रवेशक की योजना दो अंकों के बीच ही की जाती है तथा यह भी शेष अर्थों ( कथांशों ) का सूचक है ।

**( विदूषक के साथ कामपीडित अवस्था में राजा प्रवेश करते हैं )**

**राजा**—( आत्मानं विलोक्य । )

**शरीरं क्षामं स्यादसति दयितालिङ्गनसुखे**
**भवेत्सास्रं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति ।**
**तया सारङ्गाक्ष्या त्वमसि न कदाचिद्विरहितं**
**प्रसक्ते निर्वाणे हृदय परितापं व्रजसि किम् ? ॥ १ ॥**

**विदूषकः**—अलं भवदो धीरं उज्झिअ परिदेविदेण । दिट्ठा मए तत्तहोदीए मालविआए पिअसही बउलावलिआ । सुणाविदा अ अत्थं जो भवदा संदिट्ठो । [ अलं भवतो धीरतामुज्झित्वा परिदेवितेन । दृष्टा मया तत्रभवत्याः मालविकायाः प्रियसखी बकुलावलिका । श्राविता चार्थं यो भवता संदिष्टः । ]

---

**राजा**—( आत्मानम् = स्वशरीरं मनश्च । विलोक्य = दृष्ट्वा )

**अन्वयः**—दयितालिङ्गनसुखे असति शरीरं क्षामं स्यात्, सा क्षणमपि न दृश्यते इति चक्षुः सास्रं भवेत् ( किन्तु ) हृदय ! त्वं तया सारङ्गाक्ष्या कदाचित् विरहितं न असि, निर्वाणे प्रसक्ते परितापं किं वहसि ? ॥ १ ॥

**शरीरमिति** । दयितालिङ्गनसुखे = प्रियाङ्गसङ्गप्रमोदावस्थाविशेषे । असति = अजायमाने । शरीरम् = वपुः । क्षामम् = क्षीणं । स्यात् = सम्भवेत् । सा = मालविका । क्षणमपि ईषत्समयमपि । न दृश्यते = लोचनगोचरतां न अवतरति । इति = अनेन कारणेन । चक्षुः = नेत्रम् । सास्रम् = अश्रुजलाविलम् । भवेत् = स्यात् । ( किन्तु ) हृदय ! चेतः ! त्वम् तया सारङ्गाक्ष्या = मृगलोचनया तया मालविकया । कदाचित् = कदापि । विरहितम् । नासि ( सततं हृदये वर्तमानया तया तव वियोगो नाल्पस्यापि कालस्य कृते जायते इति ) निर्वाणे = निवृत्तौ सुखे । प्रसक्ते = प्राप्ते । किम् = किमर्थम् । परितापम् = सन्तापम् । वहसि नयसि ॥ १ ॥

**समासः**—दयितालिङ्गनसुखे = दयितायाः आलिङ्गनम् दयितालिङ्गनम् तेन सुखम् दयितालिङ्गनसुखम् तस्मिन् ।

**अलंकारः**—विभावना विशेषोक्तिः । अनयोः संदेहसंकरः ।

**छन्दः**—शिखरिणी वृत्तम्-तल्लक्षणम्-

"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।"

**विदूषकः**—अलम् = व्यर्थम् । भवतः = श्रीमतो महाराजस्य । धीरताम् = आकार-

---

**राजा—( अपनी ओर देखकर )**

प्रियतमा को हृदय से न लगा सकने के कारण मेरे शरीर का सूखते जाना सम्भव है । उसे क्षणभर के लिये भी देख न सकने के कारण आँखों का अश्रुपूर्ण भी होना सम्भव है । परन्तु मेरे हृदय ! तुम तो कभी भी उस मृगाक्षी प्रियतमा से अलग नहीं हुए, हृदय को शीतल करनेवाली वह प्रियतमा तो साथ ही रही, फिर तुम क्यों सन्तप्त हो रहे हो ? ॥ १ ॥

**निर्वाण** = बौद्धसिद्धान्तानुसार निर्वाण मुक्ति को कहते हैं, जो परम शान्ति अथवा परम आनन्द की अवस्था होती है । मालविका जब हृदय के अन्दर विद्यमान है तो वह उसके लिए परमानन्द है ही । कालिदास ने भी "अभिज्ञान शाकुन्तल" में लिखा है—'अहो ! लब्धं नेत्रनिर्वाणम् ।"

**अलंकार**—विभावना, विशेषोक्ति । दोनों के योग से सन्देह संकर ।

**विदूषक**—आप धैर्य का परित्याग करके विलाप न करें । सौभाग्य से मुझे मालविका की प्रिय सखी बकुलावलिका मिल गई मैंने उससे आपका सन्देश कह दिया ।

राजा—ततः किमुक्तवती ।

विदूषकः—विण्णावेहि भट्टारअम् । अणुगहीदम्हि इमिणा णिओएण । किंदु सा तवस्सिणी देवीए अहिअं रक्खन्तीए णाअरक्खिदो विअ णिही ण सुहं समासादइदव्वा । तह वि जइस्सम् । [विज्ञापय भट्टारकम् । अनुगृहीतास्म्यनेन नियोगेन । किंतु सा तपस्विनी देव्याधिकं रक्षन्त्या नागरक्षित इव निधनं सुख समासादयितव्या । तथापि यतिष्ये ]

राजा—भगवन् संकल्पयोने, प्रतिबन्धवत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेश्य किं तथा प्रहरसि यथा जनोऽयं न कालान्तरक्षमो भवति । ( सविस्मयम् )

---

गोपनप्रभुताम् । उज्झित्वा = त्यक्त्वा । परिदेवितेन = विलापेन, मालविकासम्बद्धेन शोकप्रकाशनेन । दृष्टा मया = अहमपश्यम् । तत्रभवत्याः = श्रीमत्याः मालविकायाः । प्रियसखी = प्रियसहचरी । वकुलावलिका = एतन्नाम्नी दासी । श्राविता = उक्ता च मया । च अर्थम् = प्रयोजनम् । यो = योऽर्थः ( प्रयोजनम् ) भवता = श्रीमता । संदिष्टः = कथितः सन्देशरूपेण ।

राजा—तत्पश्चात् । सा = दासी । किमुक्तवती = मत्सन्देशश्रवणानन्तरम् किमुत्तरं कथितवती बकुलावलिका ।

विदूषकः—विज्ञापय = कथय । भट्टारकम् = राजानमग्निमित्रम् । अनुगृहीता = अनुकम्पिता । अस्मि = भवामि । अनेन = एतेन । नियोगेन = आदेशेन । किन्तु सा तपस्विनी= मालविका । देव्या = धारिण्या । अधिकम् = सविशेषम् अतिसावधानम् । नागरक्षितः= सर्पपालतः । निधिः = कोषः इव । न सुखम् = अनायासेन । समासादयितव्या=प्राप्तव्या । तथापि = दुर्लभायां तस्याम् । यतिष्ये = प्रयत्नं करिष्ये । यथा हि सर्परक्षिता निधयः सत्यप्यभिलाषविषयत्वे दुर्लभास्तथैव धारिणीसविशेषावधानपालिता मालविका कष्टलभ्येति भावः । अत्र अनया प्रत्याशया विन्दोः सम्बन्धात् गर्भसन्धिः भविष्यति ।

राजा—भगवन् = निरंकुश प्रभावपूरित ! संकल्पयोने ! = संकल्पः एव योनिः यस्य सः तत्सम्बुद्धौ भो कल्पनाकारण ! कामदेव ! प्रतिबन्धवत्सु अपि = विघ्नपूर्णेषु विषयेषु कार्येषु वा । अभिनिवेश्य = साग्रहेच्छामुत्पाद्य । किन्तया प्रहरसि = किमिति तथा पीडयसि । यथा जनोऽयम् = यथा एवोऽहं लोकः । न कालान्तरक्षमः = न विलम्बसहिष्णुः भवति = वर्तते । सविस्मयम् = आश्चर्येण सह ।

---

**राजा**—इस पर उसने क्या कहा ?

**विदूषक**—उसने कहा—स्वामी से निवेदन कर देना कि मुझ पर यह काम सौंपकर स्वामी ने मुझपर बड़ी कृपा की है पर वह बेचारी महारानी की वैसी ही कड़ी देखरेख में है, जैसे साँप की देखरेख में कोई निधि हो । यद्यपि वह सहज ही प्राप्य नहीं है फिर भी मैं यत्न करूँगी ।

**राजा**—हे भगवन् कामदेव ! विघ्नपूर्ण विषय में अनुराग उत्पन्न करके तुमने इस प्रकार प्रहार करना आरम्भ कर दिया कि मैं अति व्यग्र हूँ । **( आश्चर्य के साथ )**

क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ २ ॥

विदूषकः—णं भणामि तस्सि साहणिज्जे कज्जे किदो मए उवाओवक्खेओ । तापज्जवत्थावेदु भवं अप्पाणं । [ ननु भणामि कस्मिन्साधनीये कार्ये कृतो मयोपायोपक्षेपः । तत्पर्यवस्थापयतु भवानात्मानम् । ]

राजा—अथेमं दिवसशेषमनुचितव्यापारविमुखेन चेतसा क्व नु खलु यापयामि ।

---

अन्वयः—मन्मथ ! हृदयप्रमाथिनी रुजा क्व, ते विश्वसनीयम् आयुधम् क्व, मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तद् इदं त्वयि दृश्यते ॥ २ ॥

क्वेति । हे मन्मथ ! मनः मथ्नाति इति मन्मथः तत्सम्बुद्धौ हे मन्मथ !=भो कामदेव ! हृदयप्रमाथिनी = मनःपीडाप्रदायिनी । रुजा = परितापः । क्व = कुत्र । ते = तव । विश्वसनीयम् = पुरुषरूपतयाऽसन्तापप्रदत्वेन प्रतीतम् । आयुधम् = बाणरूपमस्त्रञ्च क्व । नोभयोः साम्यं दृश्यते । पुष्पनिर्मितेन तवास्त्रेण ईदृशस्य सन्तापस्योत्पादनम् आश्चर्यकरम् वर्तते । मृदु = कोमलम् तीक्ष्णतरम् = अतिप्रखरं च यत्कथ्यते । तद् इदम् = एतद् वैषम्यम् । त्वयि = भवति । दृश्यते = प्राप्यते ॥ २ ॥

समासः—मन्मथः = मनः मथ्नातीति मन्मथः । हृदयं प्रमथ्नातीति (स्त्रीलिंग) हृदयप्रमाथिनी ।

अलंकारः—विरूपयोः संघटनाद् विषमालंकारः ।

छन्दः—सुन्दरी—लक्षणम्—''अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः समरा लगौ यदि सुन्दरी तदा'' ।

विदूषकः—ननु = प्रश्ने । भणामि = कथयामि । कस्मिन् साधनीये = करणीये । कार्ये = व्यापारे । कृतः = विहितः । मयोपायोपक्षेपः = मया उपायस्य उपक्षेपः = मया साधनसमुपन्यासः । तद् पर्यवस्थापयतु = प्रकृतौ दशायां स्थापयतु । भवान् = श्रीमान् । आत्मानम् = स्वकीयहृदयम् ।

राजा—अथ ततः । इमम् = एतम् । दिवसशेषम् = सन्ध्यासमयम् । उचितव्यापारविमुखेन = करणीयकार्यकलापप्रतिकूलेन । चेतसा = हृदयेन । क्व नु खलु = कस्मिन् निरापदस्थले । यापयामि = विनोदयामि ।

---

हे कामदेव ! कहाँ तो हृदय को मसल देने वाला यह काम सन्ताप और कहाँ तुम्हारे विश्वसनीय फूलों के बाण । यह कहावत तो तुम पर पूर्णरूप से घटित होती है कि जो जितने कोमल दिखाई पड़ते हैं, वे उतने ही कठोर होते हैं ॥ २ ॥

अलंकार—विभिन्न वस्तुओं की संघटना से विषम अलंकार है ।

विदूषक—महाराज ! मैंने आपका मनोरथ पूर्ण करने के लिए सभी उपाय कर दिये हैं अतएव आप धैर्य रखें ।

राजा—अब इस शेष दिन को करणीय कार्यकलाप से विमुख चित्त से मैं कहाँ बिताऊँ ? ।

विदूषकः—अज्ज एव्व पढमावदारसुहआणि रत्तकुरवआणि उवाअणं पेसिअ णववसन्तावदारव्ववदेसेण इरावदीए णिउणिआमुहेण पत्थिदो भवं इच्छामि अज्जउत्तेण सह दोलाहिरोहणं अणुहविदुं'त्ति । भवदा वि से पडिण्णादं । ता पमदवणं एव्व गच्छम्ह । [ अद्यैव प्रथमावतारसुभगानि रक्तकुरबकाण्युपायनं प्रेष्य नववसन्तावतारव्यपदेशेनेरावत्या निपुणिकामुखेन प्रार्थितो भवान् 'इच्छाम्यार्यपुत्रेण सह दोलाधिरोहणमनुभवितुमिति । भवताप्यस्यै प्रतिज्ञातम् । तत्प्रमदवनमेव गच्छावः । ]

राजा—न क्षममिदम् ।

विदूषकः – कहं विअ । [ कथमिव । ]

राजा –वयस्य, निसर्गनिपुणाः स्त्रियः कथमन्यसंक्रान्तहृदयमुपलालयन्तमपि ते सखी न मां लक्षयिष्यति । अतः पश्यामि ।

**उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः ।**
**उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥ ३ ॥**

---

विदूषकः—अद्यैव = अस्मिन् दिवसे । प्रथमावतारसुभगानि = आदिविकासमनोहराणि । रक्तकुरबकाणि = नवकुरबकपुष्पाणि । उपायनम् = उपहारम् । प्रेष्य = दत्वा । नववसन्तावतारव्यपदेशेन = अभिनववसन्तागमनव्याजेन । इरावत्या = अन्यया राज्ञ्या । निपुणिकामुखेन = तदाख्यपरिजनद्वारा । प्रार्थितः = निवेदितः । भवान् = श्रीमान् महाराजः । इच्छामि = अभिलषामि । आर्यपुत्रेण सह = श्रीमता राज्ञा सह । दोलाधिरोहणम् = दोलायामुपविश्य तज्जन्यानन्दमुपभोक्तुम् । भवतापि = श्रीमतापि अस्यै = इरावत्यै राज्ञ्यै । प्रतिज्ञातम् = कथितम् । तत् = अतः । प्रमदवनमेव = प्रमदाख्यवनमेव । गच्छावः = व्रजावः ।

राजा—इदं = कार्यम् । न क्षमम् = न योग्यम् ।

विदूषकः—किमर्थम् ।

राजा—वयस्य ! मित्र ! । स्त्रियः = योषितः । निसर्गनिपुणाः = स्वभावदक्षाः परभावाभिज्ञा इत्यर्थः । अन्यसंक्रान्तहृदयम् = परवनितानुरक्तमनसम् । उपलालयन्तम् = सादरमनुरोधं कुर्वन्तम् । ते सखी = तव सहचरी ( इरावती ) कथम् = किम् । न लक्षयिष्यति = न ज्ञास्यति अर्थात् अवश्यमेव ज्ञास्यति । अतः पश्यामि = अवलोकयामि ।

अन्वयः—उचितः प्रणयः विहन्तु वरम् । हि बहवः खण्डनहेतवः दृष्टाः, पूर्वाभ्यधिकः अपि भावशून्यः उपचारविधिः मनस्विनीनां तु न ( वरम् ) ॥ ३ ॥

---

**विदूषक**—आज तो सर्वप्रथम कुसुमित अभिनव कुरवक कुसुम भेजकर नवीन वसन्तागमन की सूचना के व्याज से रानी इरावती ने निपुणिका द्वारा कहलवाया है कि मैं आर्यपुत्र के साथ झूला झूलने का आनन्द लेना चाहती हूँ। आपने भी स्वीकार किया है अतः प्रमदवन चलना चाहिए।

**राजा**—नहीं, ऐसा करना उचित नहीं होगा ।

**विदूषक**—क्यों ?

**राजा**—मित्र ! स्त्रियाँ स्वभाव से ही चतुर हुआ करती हैं । मेरा हृदय अन्य रमणी में अनुरक्त है । मेरे अनुराग प्रदर्शित करने पर भी वह क्या यह ताड़ न लेगी ? देखो—

प्रणय का परित्याग उचित है, उसके अनेक कारण हो सकते हैं । किन्तु चतुर रमणियों के निकट पहले की अपेक्षा अधिक होने पर भी प्रेमविहीन व्यवहार भला नहीं लगता है ॥ ३ ॥

विदूषकः—णरिहदि भवं अन्तेउरट्ठिदं दक्खिण्णं एक्कपदे पिट्ठदो कादुम्। [ नार्हति भवानन्तःपुरस्थितं दाक्षिण्यमेकपदे पृष्ठतः कर्तुम्। ]

राजा—( विचिन्त्य। ) तेन हि प्रमदवनमार्गमादेशय।

विदूषकः—इदो इदो भवं। [ इत इतो भवान्। ]

( उभौ परिक्रामतः। )

विदूषकः—णं एदं पमदवणं पवणबलचलाहिं पल्लवङ्गुलीहिं तुवरेदि विअ भवन्तं पवेसिदुं। [ नन्वेतत्प्रमदवनं पवनबलचलाभिः पल्यवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव भवन्तं प्रवेष्टुम्। ]

---

उचित इति। उचितः = उपयुक्तः। प्रणयः = दोलधिरोहणाय इरावत्याः प्रार्थना। विहन्तुम् = खण्डयितुम्। वरम् = श्रेष्ठम्। हि = यतः। बहवः = अनेके। खण्डनहेतवः = प्रार्थनोल्लंघनस्य कारणानि। दृष्टाः = विचारेणोन्नेयाः। पूर्वाभ्यधिकः = पूर्वापेक्षया समधिकोऽपि। भावशून्यः = स्वामाविकस्नेहरहितः। उपचारविधिः = प्रेमप्रकाशनप्रकारः। तु न, उचितः॥ ३॥

समासः—खण्डनहेतवः = खण्डनस्य हेतवः खण्डनहेतवः। पूर्वाभ्यधिकः = पूर्वस्मात् अभ्यधिकः पूर्वाभ्यधिकः। भावशून्यः = भावेन शून्यः भावशून्यः। उपचारविधिः = उपचारस्य विधिः उपचारविधिः।

अलंकारः—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः।

छन्दः—मालभारिणी छन्दः। तल्लक्षणम्—

"विषमे ससजा यदा गुरू चेत् समरा येन तु मालभारिणीयम्"

विदूषकः—नार्हति = न योग्योऽस्ति। भवान् = श्रीमान्। अन्तःपुरस्थितम् = स्वकीयावरोधविख्यातम्। दाक्षिण्यम् = दक्षिणनायकभावम्। एकपदे = अकस्मात् पृष्ठतः कर्तुम् = त्यक्तुम्।

राजा—( चिन्तयित्वा ) तेन हि = अत एव। प्रमदवनमार्गम् = प्रमदवनपन्थानम् आदेशय = कथय।

विदूषकः—भवान् = श्रीमान्। इत इतो = अनेन मार्गेण आगच्छतु।

( द्वावपि परिभ्रमतः )

विदूषकः—ननु = प्रश्ने। एतत्प्रमदवनम् = इदं प्रमदनामकमुपवनम्। पवनवलचलाभिः = वातशक्तिकम्पिताभिः। पल्लवाङ्गुलीभिः = पत्राङ्गुलीभिः। त्वरयति = त्वरां कर्तुं सूचयति इव। भवन्तम् = महाराजम्। प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम्।

---

**विदूषक**—पर इस प्रकार अन्तःपुर की रानियों के प्रेम का एकाएक अनादर कर देना भी उचित नहीं होगा।

**राजा—( चिन्ता करके )** तब प्रमद-वन क मार्ग बतलाओ।

**विदूषक**—आप इधर से आइए इधर से। **( दोनों घूमते हैं )**

**विदूषक**—महाराज! यह प्रमद वन वायुवेग से प्रकम्पित पल्लवस्वरूप अपनी अंगुलियों से शीघ्र प्रवेश करने के लिये मानों बुला रहा है।

राजा—( स्पर्शं रूपयित्वा। ) अभिजातः खलु वसन्तः। सखे, पश्य—

उन्मत्तानां श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलानां
सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव।
अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन॥ ४॥

विदूषकः—पविस णिव्वुदिलाहाअ। [ प्रविश निर्वृत्तिलाभाय। ]

---

राजा—( स्पर्शं रूपयित्वा ) प्रमदवनवायुसुखमभिनीय अभिजातः = प्रकामरमणीयः। खलु = निश्चये। वसन्तः = ऋतुराजः समागतः। मित्र ! अवलोकय—

अन्वयः—उन्मत्तानां कोकिलानां श्रवणसुभगैः कूजितैः मनसिजरुजः सह्यतां सानुक्रोशं पृच्छता इव माधवेन आम्रप्रसवसुरभिः दक्षिणः मारुतः सान्द्रस्पर्शः करतलः इव मे अङ्गे व्यापृतः॥ ४॥

**उन्मत्तानामिति।** उन्मत्तानाम् = चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठानाम् माद्यताम्। कोकिलानाम् = पिकानाम्। कूजितैः = कलरवैः। मनसिजरुजः = कामोत्पन्नसन्तापस्य। सह्यताम् = सहनयोग्यताम्। सानुक्रोशम् = सानुकम्पम्। पृच्छता = ज्ञातुमिच्छता इव। माधवेन = वसन्तसमयेन। आम्रप्रसवसुरभिः = चूताङ्कुरसुगन्धिः। दक्षिणः = दक्षिणदिशातः आगतः। मारुतः = वायुः। सान्द्रस्पर्शः = कोमलस्पर्शः। करतल इव = करपल्लव इव। मे = मम। शरीरे = देहे। व्यापृतः = आसञ्जितः॥ ४॥

**समासः**—श्रवणसुभगैः = श्रवणेभ्यः सुभगैः। मनसिजरुजः = मनसि जातः इति मनसिजः तस्य रुजः मनसिजरुजः। आम्रप्रसवसुरभिः = आम्राणां प्रसवाः आम्रप्रसवाः तैः सुरभिः।

**अलंकारः**—समासोक्तिरलङ्कारः।

**छन्दः**—मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

**विदूषकः**—प्रविश = प्रवेशं कुरु। निर्वृत्तिलाभाय = निर्वृत्तेः लाभः निर्वृत्तिलाभः तस्मै निर्वृत्तिलाभाय = सुखप्राप्तये।

---

**राजा—( वायु स्पर्श के सुख का अभिनय करते हुए )** सचमुच वसन्त आ पहुँचा है। देखो मित्र !

मतवाले कोकिलों की, कानों को सुहानेवाली कूकों में मानों वसन्तऋतु मुझपर दया दिखाते हुए पूछ रहा हो—क्यों प्रेम की पीड़ा सही जा रही है ? इधर खिली हुई आम्रमंजरियों के गन्ध में बसा हुआ दक्षिण पवन मेरे शरीर को स्पर्श करता हुआ ऐसा ज्ञात होता है मानों वसन्त ने अपना सुखद हाथ मेरे ऊपर रख दिया हो॥ ४॥

**विशेष**—इस पद्य में कवि ने वसन्तऋतु का मानवीकरण किया है। वसन्त को कवि ने ऐसा कुलीन व्यक्ति माना है जो दुखियों के साथ प्रेम का भाव प्रदर्शित करता हुआ धैर्य दिखाता है। वह कोयल की कूक को अपनी बोली बनाता है तथा दुःखी मित्र राजा से पूछता है कि आपकी वेदना कैसी है ? इस ढाढस बँधाता हुआ राजा के शरीर पर दक्षिणी वायु के रूप में अपने शीतल करों से थपथपाता है।

**अलंकार**—समासोक्ति अलंकार।

**विदूषक**—शान्ति-लाभ के लिए प्रमद वन में चला जाय।

( उभौ प्रविशतः । )

**विदूषकः**—अवधाणेण दिट्ठिं देहि । एदं क्खु भवन्तं विअ विलोहइदुकामाए पमदवणलच्छीए जुवदीवेसलज्जावअत्तिअं वसन्तकुसुमणेवत्थं गहीदं [ अवधानेन दृष्टिं देहि । एतत्खलु भवन्तमिव विलोभयितुकामया प्रमदवनलक्ष्म्या युवतिवेषलज्जापयितृकं वसन्तकुसुमनेपथ्यं गृहीतम् । ]

**राजा**— ननु विस्मयादवलोकयामि ।

**रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तकः**
**प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् ।**
**आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः**
**सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥ ५ ॥**

---

( उभौ = द्वावपि । प्रविशतः = प्रवेशं कुरुतः )

**विदूषकः**—सावधानेन = मनोयोगपूर्वम् । दृष्टिं देहि = पश्य चक्षुषा तावत् । एतत्खलु = इदमेव । भवन्तमिव = श्रीमन्तमिव । विलोभयितुकामया = आकर्षयितुमभिलषन्त्या । प्रमदवनलक्ष्म्या = तन्नामकोपवनशोभया । युवतिवेषलज्जापयितृकम् = युवतीनां वेषः युवतिवेषः = शरीरनेपथ्यम्, तस्य लज्जापयितृकम् = हीनताप्रदर्शकम् = युवतिश्रृङ्गारलज्जाकरम् । वसन्तकुसुमनेपथ्यम् = ऋतुराजपुष्पश्रृङ्गारम् । गृहीतम् = धृतम् । हेतूत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

**राजा**—ननु विस्मयाद् = आश्चर्यसहितेन । अवलोकयामि = पश्यामि ।

**अन्वयः**—बिम्बाधरालक्तकः रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणः श्यामावदातारुणं कुरवकं प्रत्याख्यातविशेषकम् लग्नद्विरेफाञ्जनैः तिलकैः तिलकक्रिया च आक्रान्ता, माधवी श्रीः योषितां मुखप्रसाधनविधौ सावज्ञा इव ॥ ५ ॥

**रक्तेति** । बिम्बाधरालक्तकः = बिम्बफलोष्ठरञ्जनसाधनरसः । रक्ताशोकरुचा = लोहिताशोकप्रभया । विशेषितगुणः = अतिशायितरक्तवर्णः । श्यामावदातारुणम् = कृष्णसितरक्तवर्णम् । कुरवकम् = एतन्नामकं पुष्पम् । प्रत्याख्यातविशेषकम् = तिरस्कृतरमणीकपोलचित्रम् । लग्नद्विरेफाञ्जनैः = संसक्तमधुपकज्जलैः । तिलकैः = पुन्नागपुष्पैः । तिलकक्रिया = भालालंकारशोभा । च आक्रान्ता = पराभूता । माधवी = ऋतुराजकालिकी । श्रीः = शोभा । योषिताम् = प्रमदानाम् । मुखप्रसाधनविधौ = आननालङ्करणे । सावज्ञा इव = अपमानितेव दृश्यते ॥ ५ ॥

---

**( दोनों का प्रवेश )**

**विदूषक**—सावधान होकर देखें । यह प्रमदवनशोभा आपको लुभाने के लिए ही युवतियों के श्रृङ्गार को लजाने वाले वासन्ती पुष्पों से सजकर उपस्थित हैं ।

**राजा**—मैं आश्चर्यपूर्वक इस प्रमदवन को देख रहा हूँ ।

रक्ताशोक पुष्प की लालिमा से रमणियों के बिम्बसदृश अधर पर लगा हुआ अलक्तक तिरस्कृत हो रहा है । श्यामश्वेत अरुण रंग से युक्त कुरबक पुष्प के द्वारा कपोलस्थ चित्र पराजित हो रहा है । कज्जल सदृश संलग्न भ्रमरवाले पुन्नाग के पुष्प ललाटस्थतिलक को पराजित कर रहे हैं । ज्ञात होता है कि यह वसन्तशोभा स्त्रियों के प्रसाधन की अवज्ञा कर रही है ॥ ५ ॥

**विशेषक** = स्त्रियों द्वारा अपने कपोलों पर नाना रंगों से बनाई गई बेलों जैसी चित्रकारी को

( उभौ नाट्येनोद्यानशोभां निर्वर्णयतः। )

( ततः प्रविशति पर्युत्सुका मालविका। )

**मालविका**–अविण्णादहिअअं भट्टारअं अहिलसन्दी अप्पणो वि दाव लज्जेमि। कुदो विहवो सिणिद्धस्स सहीजणस्स इमं वुत्तन्तं आचक्खिदुं। जाणे अप्पडिआरगरुअं वेअणं केत्तिअं कालं मअणो मं णइस्सदित्ति ( इति कतिचित्पदानि गत्वा। )

---

**समासः**—बिम्बाधरालक्तकः = बिम्बम् इव अधरः तस्मिन् अलक्तकः बिम्बाधरालक्तकः। रक्ताशोकरुचा = रक्तः अशोकः तस्य रुचा = रक्ताशोकरुचा। विशेषितगुणः = विशेषितो गुणो यस्य सः विशेषितगुणः। श्यामावदातारुणम् = श्यामं अवदातं अरुणञ्च श्यामावदातारुणम्। प्रत्याख्यातविशेषकम् = प्रत्याख्यातं विशेषकं येन तद् प्रत्याख्यातविशेषकम्। लग्नद्विरेफाञ्जनैः = द्वौ रेफौ येषान्ते द्विरेफाः लग्नाः द्विरेफाः एवमञ्जनं येषु तैः = लग्नद्विरेफाञ्जनैः। तिलकक्रिया = तिलकस्य क्रिया इति तिलकक्रिया। मुखप्रसाधनविधौ = मुखस्य प्रसाधनम् मुखप्रसाधनम् तस्य विधिः तस्मिन् मुखप्रसाधनविधौ। अत्र अयमाशयः– रक्ताशोकपुष्पसमृद्धिः अधरालक्तककान्तिहरी, कुरुवकपुष्पम् कपोलचित्रातिशायि, पुष्पासवपानलोभाकृष्टभ्रमरशोभित-रक्ताभपुन्नागपुष्पाणि ललाटस्थसिन्दूरतिलकविजयीनि तदियं वसन्तलक्ष्मीः स्ववेशात् युवतिवेषानामपकर्षात् अवज्ञामिव करोति। ईदृशी प्रमदवनशोभा विस्मयमावहति।

**अलंकारः**—व्यतिरेकः, उपमा, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्गम् एषामङ्गाङ्गिभावात् सङ्करः।

**छन्दः**—शार्दूलविक्रीडितम्।

( उभौ = महाराजविदूषकौ। नाट्येन = अभिनय द्वारा। उद्यानशोभाम् = उपवनलक्ष्मीम्। निर्वर्णयतः = पश्यतः )

( ततः = तत्पश्चात्। प्रविशति = प्रवेशं करोति। पर्युत्सुका = उत्कण्ठिता। मालविका। )

**मालविका**—अविज्ञातहृदयम् = अपरिचितमनोदशम्। भर्तारम् = महाराजम्। अभिलषन्त्या = इच्छन्त्या। आत्मनोऽपि = स्वतोऽपि। तावल्लज्जे = तदा जिह्रेमि लज्जां करोमि। कुतो विभवः = नास्ति सामर्थ्यम्। स्निग्धस्य सखीजनस्य = स्नेहसिक्तस्य सहचरीजनस्य। इमं वृत्तान्तम् = इमां मनोदशाम्। आख्यातुम् = वक्तुम्। न जाने = न जानामि।

---

कहते हैं। प्राचीनकाल में चित्रकारी की यह प्रथा विद्यमान थी। विवाह आदि के अवसरों पर तो अब भी स्त्रियों द्वारा ऐसी चित्रकारी बनाई जाती है।

**प्रकृति-निरीक्षण**—यह पद्य कालिदास के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण तथा उसके मूल्यांकन पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है और इसका अपना नाटकीय महत्त्व भी है, जो आगे मालविका को रंगमंच पर लाने की पृष्ठभूमि बनाता है।

**अलंकार**—व्यतिरेक, उपमा, काव्यलिङ्ग, उत्प्रेक्षा के मिलन से सङ्कराऽलंकार है।

**( दोनों अभिनय द्वारा उद्यान को देखने लगते हैं )**

**( तत्पश्चात् उत्कण्ठिता मालविका का प्रवेश। )**

**मालविका**—महाराज की मनोदशा का मुझे बिल्कुल ज्ञान नहीं है। ऐसी दशा में उनके प्रति अभिलाषा करती हुई मुझे स्वयं लज्जा हो रही है। मुझ में इतनी शक्ति भी नहीं है कि मैं अपनी प्यारी सखियों से यह बात कह सकूँ। पता नहीं, कामदेव मुझे कबतक यह प्रेम की पीड़ा देता

आ, कहिं क्खु पत्थिदम्हि । ( इति स्मृतिमभिनीय । ) आदिट्ठम्हि देवीए—'मालविए, गोदमचापलादो दोलापरिब्भट्ठाए सरुजौ मह चलणौ । तुमं दाव गदुअ तवणीआसोअस्स दोहलं णिवट्टेहि त्ति । जइ सो पञ्चरत्तब्भन्तरे कुसुमं दंसेदि तदो ( इत्यन्तरा निःश्वस्य ) अहं अहिलासपूरइत्तअं पसादं दावइस्सं त्ति । ता जाव णिओअभूमि पढमं गदा होमि, दाव अणुपदं मह चलणालंकारहत्थाए बउलावलिआए आअन्दव्वं ता परिदेवइस्सं ताव वीसद्धं मुहुत्तअं । ( इति परिक्रामति । )
[ अविज्ञातहृदयं भर्तारमभिलषन्त्यात्मनोऽपि तावल्लज्जे । कुतो विभवः स्निग्धस्य सखीजनस्येमं वृत्तान्तमाख्यातुम् । न जानेऽप्रतिकारगुरुकां वेदनां कियन्तं कालं मदनो मां नेष्यतीति । आः, कुत्र खलु प्रस्थितास्मि । आदिष्टास्मि देव्या—'मालविके, गौतमचापलाद्दोलापरिभ्रष्टायाः सरुजौ मम चरणौ । त्वं तावद्गत्वा तपनीयाशोकस्य दोहदं निर्वर्तय' । यद्यसौ पञ्चरात्राभ्यन्तरे कुसुमं दर्शयति, ततोऽहमभिलाषपूरयितृकं प्रसादं दापयिष्यामीति । तद्यावन्नियोगभूमिं प्रथमं गता भवामि, तावदनुपदं मम चरणालंकारहस्तया बकुलावलिकयागन्तव्यम्, तत्परिदेवयिष्ये तावद्विस्रब्धं मुहूर्तकम् । ]

---

अप्रतिकारगुरुकाम् = अनुपायमहतीम् । वेदनाम् = कष्टम् । कियन्तं कालम्=कियन्तं समयम् । मदनः = कामदेवः । मां नेष्यति = मां प्रापयिष्यति । कुत्र = क्व । खलु = निश्चये । प्रस्थितास्मि=गच्छामि । आदिष्टास्मि देव्या=देवी मामकथयत् । मालविके ! गौतमचापलात्=विदूषकमौर्ख्यात् । दोलापरिभ्रष्टायाः = दोलातः पतितायाः । सरुजौ = रुग्णौ । मम चरणौ = मदीयपादौ । त्वम् = मालविका । तावद् गत्वा = तदा तत्रोपगम्य । तपनीयाशोकस्य = अस्याशोकवृक्षस्य । दोहदम् = पादाघातरूपमभिलाषम् । निर्वर्तय = निष्पादय । यदि असौ= सः तपनीयाशोकः । पञ्चरात्राभ्यन्तरे = पञ्चरात्रिषु । कुसुमम् = रक्तपुष्पम् = दर्शयति = उत्पादयति । ततः = तत्पश्चात् । अहम् । अभिलाषपूरयितृकम् = इच्छापूर्त्तिकरम् । प्रसादम् = पुरस्कारम् । दापयिष्यामि = दास्यामि । तद्यावन्नियोगभूमिम् = तदा आदिष्टकार्योचितप्रदेशम् । प्रथमं गताभवामि = तत्र पूर्वं गमिष्यामि । तावदनुपदम् = मम पृष्ठे । चरणालङ्कारहस्तया = नूपुरादिहस्तया । बकुलावलिकया = दास्या । आगन्तव्यम् = आगमनं कृतम् । तत् परिदेवयिष्ये = परिदेविष्यामि । तावद् विस्रब्धं मुहूर्तकम् = निरशङ्कम् किञ्चित्कालपर्यन्तम् ।

( अनेन प्रकारेण इतस्ततो गच्छति )

---

रहेगा ? जिसकी कोई ओषधि भी नहीं है । **( दो चार पैर चलकर )** अरे ! मैं किधर चली जा रही हूँ ? **( याद करने का अभिनय करके )** देवी ने मुझे आदेश दिया है कि मालविके ! गौतम की चञ्चलता के कारण झूले पर से गिरने से मेरे पैर में चोट आ गई है । अतः मैं चलने में असमर्थ हूँ । तुम जाकर तपनीयाशोक की दोहदपूर्त्ति कर दो । यदि पाँच रात्रियों में उसमें फूल लग आया तो मैं **( निःश्वास छोड़कर )** तुम्हें यथेच्छ पुरस्कार दूँगी । जब तक मैं उस स्थान पर जाऊँगी तब तक बकुलावलिका भी चरणालङ्कार ( नूपुरादि ) लिये हुए वहाँ पहुँच जायेगी । जब तक वह नहीं आई रहेगी तब तक मैं दिल खोलकर रो लूँगी । **( ऐसा कहकर घूमने लगती है )**

विदूषकः—( दृष्ट्वा । ) ही ही, वअस्स, एदं क्खु सीहुपाणुव्वेजिदस्स मच्छण्डिआ उवणदा । [ आश्चर्यमाश्चर्यम, वयस्य, एतत्खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिकोपनता । ]

राजा—अये किमेतत् ।

विदूषकः—एसा णादिपरिक्खिदवेसा उस्सुअवअणा एआइणी मालविआ अदूरे वट्टदि । [ एषा नातिपरिष्कृतवेषोत्सुकवदनैकाकिनी मालविकाऽदूरे वर्तते । ]

राजा—( सहर्षम् । ) कथं मालविका ।

विदूषकः—अह इं । [ अथ किम् । ]

राजा—शक्यमिदानीं जीवितमवलम्बयितुम् ।

**त्वदुपलभ्य समीपगतां प्रियां हृदयमुच्छ्वसितं मम विक्लवम् ।**
**तरुवृतां पथिकस्य जलार्थिनः सरितमारसितादिव सारसात् ॥ ६ ॥**

---

विदूषकः—( अवलोक्य ) आश्चर्यं वर्तते महद् । वयस्य != मित्र ! एतत् खलु = इदं निश्चितम् । सीधुपानोद्वेजितस्य = मद्यपानोन्मत्तस्य । मत्स्यण्डिका = सिताप्रभेदः । उपनता= प्राप्ता । यथा मधु पीत्वा मत्तो जनो मत्स्यण्डिकासेवनेन अधिकं मदवेगमुद्वहति तथैव मदनार्तस्य राज्ञो दृष्टिपथातिथीभूता सतीयं मालविका तदीयां व्यग्रतां वर्द्धयिष्यतीति भावः ।

राजा—अरे किमिदम् ?

विदूषकः—एषा = इयम् । नातिपरिष्कृतवेषोत्सुकवदना = नात्यलङ्कृतस्वरूपव्याकुलानना । एकाकिनी = सहायकान्तरशून्या । मालविका = एतन्नाम्नी प्रियतमा । अदूरे = सन्निकटे । वर्तते = विद्यते ।

राजा—( प्रसन्नाननो भूत्वा ) किं मालविकाऽत्र वर्तते ?

विदूषकः—अथ किम् = सत्यं भवता उक्तम् ।

राजा—इदानीम् = अधुना । जीवितम् = मदीयं जीवनम् । अवलम्बयितुम् = स्वाशयप्रकाशादिनाऽऽशाबन्धनेन रक्षितुं शक्नोति इयं मालविका ।

अन्वयः—आरसितात् सारसात् तरुवृतां सरितं उपलभ्य पिपासतः पथिकस्य विक्लवं हृदयम् इव त्वत् समीपगतां प्रियां उपलभ्य ( पिपासतः ) मम विक्लवं हृदयं उच्छ्वसितम् ॥ ६ ॥

त्वदुपलभ्येति । आरसितात्=अतिशब्दायितवतः । सारसात्=तदाख्यया प्रसिद्धात् पक्षिणः ।

---

**विदूषक—( देखकर )** आश्चर्य है महान् आश्चर्य है । यह तो मदमत्त व्यक्ति के समक्ष मानों मिश्री रखी हुई है ।

**राजा—**अरे ! यह क्या ?

**विदूषक—**साधारण वेश में तथा उत्कण्ठित मुख लिए हुए अकेली मालविका अत्यन्त निकट ही विद्यमान है ।

**राजा—( प्रसन्नतापूर्वक )** अरे ! क्या मालविका, यहाँ है ?

**विदूषक—**और क्या ।

**राजा—**अब जीवन धारण करने में समर्थ हो सकता हूँ । सारस पक्षी के कलरव से वृक्ष की झुरमुट में छिपी नदी धारा को प्यासे पथिक की भाँति तुम्हारे

अथ क्व तत्रभवती ।

**विदूषकः**—एसा तरुराइमज्झादो णिक्कन्ता इदो ज्जेव्व परिवट्टन्ती दीसइ ।
[ एषा तरुराजिमध्यान्निष्क्रान्तेत एव परिवर्तमाना दृश्यते । ]

**राजा**—( विलोक्य, सहर्षम् । ) वयस्य, पश्याम्येनाम् ।

**विपुलं नितम्बदेशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः ।**
**अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥ ७ ॥**

---

तरुवृताम् = वृक्षगणप्रच्छन्नाम् । सरितम् = नदीम् । उपलभ्य = प्राप्य । जलार्थिनः = पानीयाभिलाषिणः । पथिकस्य=यात्रिणः । इव त्वत् (सकाशात्) समीपगताम्=निकटवर्तिनीम् । प्रियाम् = वल्लभाम् । उपलभ्य = समासाद्य । मम = मदीयम् । विक्लवम् = कामपीडितम् । हृदयम् = मनः । उच्छ्वसितम् = आनन्दाप्लुतम् वर्तते ॥ ६ ॥

**समासः**—तरुवृताम् = तरुभिः वृताम् तरुवृताम् । समीपगताम् = समीपे गताम् समीपगताम् ।

**अलंकारः**—उपमाऽलङ्कारः । अन्ते वृत्यनुप्रासश्च । तयोः संसृष्टिः ।

**छन्दः**—द्रुतविलम्बितम् । तल्लक्षणम्—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" ।

अथ = ततः । क्व = कुत्र । तत्र भवती = श्रीमती मालविका कुत्र वर्तते ?

**विदूषकः**—एषा = मालविका । तरुराजिमध्यात्=वृक्षगुल्मात् । निष्क्रान्ता = निर्गता । इव एव = आवयोः समक्षे । परिवर्तमाना=आगच्छन्ती दृश्यते ।

**राजा**—( प्रसन्नतापूर्वकमवलोक्य ) मित्र ! एनाम् = मालविकां पश्यामि ।

**अन्वयः**—नितम्बदेशे विपुलम् मध्येक्षामम् कुचयोः समुन्नतम् नयनयोः अत्यायतम् एतत् मम जीवितमायाति ॥ ७ ॥

**विपुलमिति** । नितम्बदेशे = श्रोणिमण्डले । विपुलम् = पीवरम् । मध्ये = कटिप्रदेशे । क्षामम् = अतिकृशम् । कुचयोः = स्तनयोः । समुन्नतम् = अत्युच्छ्रितम् । नयनयोः = नेत्रयोः । अत्यायतम् = अतिविस्तृतम् । एतत् पुरःसरत् मालविकास्वरूपम् । मम जीवितम्= प्राणधारणकारणभूतम् । आयाति = मम समक्षमागच्छति ॥ ७ ॥

**समासः**—नितम्बदेशे=नितम्बयोः देशः नितम्बदेशः तस्मिन् नितम्बदेशे । अत्यायतम्= अतिशयेन आयतम् अत्यायतम् ।

**अलंकारः**— अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः ।

**छन्दः**—आर्याप्रभेदो वृत्तम् ।

---

आश्वासन पर अपनी प्रियतमा को समीप में प्राप्त कर मेरा यह उत्कण्ठित हृदय प्रफुल्लित हो उठा है ॥ ६ ॥

तो श्रीमती मालविका कहाँ है ?

**विदूषक**—वह वृक्षसमूहों के बीच से होती हुई इधर ही आती हुई दिखाई दे रही है ।

**राजा**—( **देखकर, प्रसन्नतापूर्वक** ) मित्र ! मैं इसको देखता हूँ ।

यह मालविका स्थूल नितम्बोंवाली, पतली कमरवाली, उन्नत कुचों वाली और बड़ी-बड़ी आँखों वाली ज्ञात होती है मानों मेरी जान ही चली आ रही है ॥ ७ ॥

सखे, पूर्वस्मादतिमनोहरावस्थान्तरमुपारूढा तत्रभवती । तथा हि—

**शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा ।**
**माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता ॥ ८ ॥**

विदूषकः—एसा वि भवं विअ मअणव्वाहिणा परिमिट्ठा भविस्सदि ।
[ एषापि भवानिव मदनव्याधिना परिमृष्टा भविष्यति । ]

राजा – सौहार्दमेवं पश्यति ।

---

सखे ! = मित्र ! पूर्वस्मात् = पूर्वापेक्षया । अतिमनोहरावस्थान्तरम् = अतिरमणीय अन्यामवस्थाम् । उपारूढा = उपगता ।

**अन्वयः**—शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थला परिमिताभरणा इयं माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमा कुन्दलता इव आभाति ॥ ८ ॥

**शरकाण्डेति** । शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थला = शरकाण्डपीतकपोलभागा । परिमिताभरणा= स्वल्पालङ्कारा । इयम् = मालविका । माधवपरिणतपत्रा = वसन्तपाण्डुच्छदा । कतिपय कुसुमा = स्वल्पपुष्पा । कुन्दलतेव = कुन्दनाम्नी लतातुल्या । आभाति = शोभते ॥ ८ ॥

**समासः**– शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थला = शरकाण्डवत् पाण्डु गण्डयोः स्थलं यस्या सा = शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थला । परिमिताभरणा = परिमितानि आभरणानि यस्याः सा=परिमिताभरणा । माधवपरिणतपत्रा = माधवेन परिणतानि पत्राणि यस्याः सा = माधवपरिणतपत्रा । माधवेन परिणतानि पत्राणि यस्याः सा माधवपरिणतपत्रा । कतिपयकुसुमा = कतिपयानि कुसुमानि यस्याः सा = कतिपयकुसुमा ।

**अलंकारः**—लुप्तोपमा, वृत्यनुप्रासश्च एतयोः सङ्करः । तस्य चोपमया संसृष्टिः ।

**छन्दः**—आर्याभेद एव वृत्तम् ।

**विदूषकः**—एषापि = मालविकापि । भवानिव = त्वमिव । मदनव्याधिना = कामसन्तापेन । परिमृष्टा = पीडिता भविष्यति ।

**राजा**—सौहार्दम् = प्रणयः । एवं पश्यति = इयं मालविकापि मदनव्याधिना पीड्यते इति सम्भावयति ।

---

मित्र ! इसने तो पहले की अपेक्षा अत्यन्त रमणीय एक दूसरी ही अवस्था प्राप्त कर ली है । क्योंकि—

इसका कपोल शरकण्डे के समान पीतवर्ण, शरीर स्वल्पालङ्कारों से विभूषित है ऐसा ज्ञात होता है मानों वसन्तऋतु में पीलेपत्तों वाली तथा कतिपय पुष्पों से युक्त कुन्दलता हो ॥ ८ ॥

**विशेष**—महाराज अग्निमित्र मालविकामुखपरिवर्तन की तुलना उस कुन्दलता से करता है, जिसमें वसन्त आ जाने के कारण पत्ते पककर पीले पड़ जाते हैं तथा फूल भी कुछ ही शेष रह जाते हैं । कुन्द का दूसरा नाम माघपुष्प भी है । वियोग के कारण मालविका का मुख भी पीला पड़ गया है तथा कतिपय आभूषण ही धारण किए है । कुन्दलता से उसका पूर्णतः साम्य है ।

**अलंकार**—लुप्तोपमा तथा वृत्त्यनुप्रास के योग से संकर तथा उपमा के योग से संसृष्टि है ।

**छन्द**—आर्या ।

**विदूषक**—यह मालविका भी आप ही के समान मदनताप से सन्तप्त होगी ।

**राजा**—प्रणय ऐसा ही सोचता है ।

**मालविका**—अअं सो ललिदसुउमालदोहलापेक्खी अगिहीदकुसुमणेवत्थो उक्कण्ठिदाए मइ अणुकरेदि असोओ। जाव एदस्स पच्छाअसोदले सिलापट्टए णिसण्णा अप्पाणं विणोदेमि। [ **अयं स ललितसुकुमारदोहदापेक्षी अगृहीतकुसुमनेपथ्य उत्कण्ठितायाः ममाऽनुकरोत्यशोकः। यावदस्य प्रच्छायशीतले शिलापट्टके निषण्णात्मानं विनोदयामि।** ]

**विदूषकः**—सुदं भवदा उक्कण्ठिदम्हि त्ति तत्तहोदी मन्तेदि। [ **श्रुतं भवता उत्कण्ठितास्मीति तत्रभवती मन्त्रयते।** ]

**राजा**—नैतावता भवन्तं प्रसन्नतर्कं मन्ये। कुतः—

**वोढा कुरबकरजसां किसलयपुटभेदशीकरानुगतः।**
**अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः॥ ९॥**

---

मालविका—अयं सः = एषोऽशोकतरुः। ललितसुकुमारदोहदापेक्षी = रमणीयकोमलरमणीचरणाघाताभिलाषी। अगृहीतकुसुमनेपथ्यः = अधृतपुष्पशोभः। उत्कण्ठितायाः = अभिलाषवत्या मम अनुकरोति = अनुकरणं करोति। यावत् = यावत्कालपर्यन्तम् अस्य = अशोकस्य प्रच्छायशीतले = छायारम्ये। शिलापट्टके = प्रस्तरखण्डे विषण्णात्मानम् = सन्तप्तात्मानम्। विनोदयामि = सुखयामि।

**विदूषकः**—श्रुतम् = आकर्णितम्। भवता = श्रीमता महाराजेन। उत्कण्ठितास्मि = प्रियमिलनाभिलाषिणी अस्मि। तत्र भवती = श्रीमती मालविका। मन्त्रयते = कथयति।

**राजा**—एतावता = एतेन वचनेन। भवन्तम् = विदूषकम्। प्रसन्नतर्कम् = प्रमाणितविचारः। न मन्ये = न स्वीकरोमि। यतः—

**अन्वयः**—कुरवकरजसां वोढा, किसलयपुटभेदशीकरानुगतः अयं मलयवातः अनिमित्ताम् अपि उत्कण्ठां जनयति॥ ९॥

**वोढेति**। कुरवकरजसाम् = कुरवकाख्यपुष्पपरागाणाम्। वोढा = वहनशीलः। किसलयपुटभेदशीकरानुगतः = मुद्रितपत्रविकासहिमबिन्दुपूरितः। अयम् = एषः। मलयवातः = मलयानिलः। अनिमित्तामपि = अकारणामपि। उत्कण्ठाम् = उत्सुकभावम्। जनयति = उत्पादयति॥ ९॥

**समासः**—कुरवकरजसाम् = कुरवकाणां रजांसि तेषाम् कुरवकरजसाम्। किसलयपुटभेदशीकरानुगतः = किसलयानां पुटानि किसलयपुटानि तेषां भेदः तेन शीकरैः अनुगतः = किसलयपुटभेदशीकरानुगतः। मलयवातः = मलयस्य वातः, मलयवातः। अनिमित्ताम् = न निमित्तं यस्यां सा अनिमित्ताम्। **अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः।

---

**मालविका**—मनोरम और कोमल दोहद की प्रतीक्षा करनेवाला यह पुष्पहीन अशोक मुझ उत्कण्ठिता की ही अनुकृति कर रहा है। तब तक इसी की शीतल छाया में प्रस्तरखण्ड पर बैठकर अपने मन को बहलाऊँ।

**विदूषक**—सुना आपने। श्रीमती मालविका कहती है कि मैं उत्कण्ठित हूँ।

**राजा**—इतने ही से आपको मैं प्रमाणित अनुमानवाला नहीं मानता। क्योंकि—

कुरवक के पराग में बसा हुआ तथा विकसित कोपलों से जलबिन्दुओं को उड़ा ले जाने वाला मलयपवन अकारण ही मन में इच्छा उत्पन्न कर देता है॥ ९॥

( मालविकोपविष्टा )

**राजा**—सखे, इतस्तावदावां लतान्तरितौ भवावः ।

**विदूषकः**—इरावदिं विअ अदूरे पेक्खामि । [ **इरावतीमिवादूरे प्रेक्षे ।** ]

**राजा**—नहि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः । ( इति विलोकयन् स्थितः । )

**मालविका**—हिअअ, णिरवलम्बणादो अदिभूमिलङ्घिणो ते मणोरहादो विरम । किं मं आआसिअ । [ **हृदय, निरवलम्बनादतिभूमिलङ्घिनो ते मनोरथाद्विरम । किं मामायास्य ।** ]

( विदूषको राजानं वीक्षते । )

**राजा**—प्रिये, पश्य महत्त्वं स्नेहस्य ।

---

( मालविका तत्र स्थिता भवति )

**राजा**—सखे ! = मित्र ! । इतस्तावद् = अस्मिन्नेव स्थाने तदा । आवाम् = नृपविदूषकौ आवाम् । लतान्तरितौ = लताप्रच्छन्नौ । भूत्वा मालविकायाः आशयमवधारयावः ।

**विदूषकः**—अदूरे = सन्निकटे । इरावतीमिव = कनिष्ठां राज्ञीमिव । प्रेक्षे = पश्यामि । एतेन तस्याः इरावत्याः शीघ्रमेव अत्रोपस्थितिसम्भावनया प्रच्छन्नस्थितेः प्रत्यूहपराहतत्वं सूचितम् ।

**राजा**—नहि = नैव । कमलिनीम्=प्रफुल्लपद्मिनीम् । अवलोक्य = दृष्ट्वा । ग्राहम् = कुम्भीलकं जलचारिणम् भयानकं जीवम् । अवेक्षते = भयभीतो भवति । मतङ्गजः = गजराजः । ( अनेन प्रकारेण पश्यन् तत्र स्थितः ) यथा नद्यां प्रफुल्लां पद्मिनीम् दृष्ट्वा तत्रस्थितस्य ग्राहस्योत्प्रेक्षया तदादानात् न विरमते गजस्तथैव इरावत्युपस्थिति-शङ्कया प्रियानिभृतावलोकनान्न न विरन्तुमिच्छामि ।

**मालविका**—हृदय ! मदीय मनः ! निरवलम्बनात् = आश्रयहीनात् । अतिभूमिलङ्घिनः = अतिदूरं प्रापितात् । मनोरथात् = अभिलाषात् । विरम = स्थिरं भव । किं माम् आयास्य = कथं त्वं माम् पीडयसि ?

( विदूषको महाराजं पश्यति )

**राजा**—प्रिये ! = प्रियतमे मालविके ! पश्य = अवलोकय । वामत्वम् = प्रतिकूलत्वम् । स्नेहस्य = प्रणयस्य ।

---

**( मालविका बैठ जाती है )**

**राजा**—मित्र ! हम दोनों इधर लताकुञ्ज में छिप जायँ ।

**विदूषक**—समीप में ही रानी इरावती के तुल्य ( किसी को आती हुई ) देख रहा हूँ ।

**राजा**—प्रफुल्ल पद्मिनी देखकर गजराज मगर से नहीं डरता । **( देखता हुआ स्थित हो जाता है )**

**मालविका**—हृदय ! तुम्हारी अभिलाषा व्यर्थ ही बहुत बढ़ गई है । तुम इसे छोड़ दो । मुझे व्यर्थ क्यों सताता है ?

**( विदूषक राजा की ओर देखता है )**

**राजा**—प्रिये ! प्रेम की विपरीत चाल तो देखो ।

औत्सुक्यहेतुं विवृणोषि न त्वं तत्त्वावबोधैकफलो न तर्कः ।
तथापि रम्भोरु करोमि लक्ष्यमात्मानमेषां परिदेवितानाम् ॥ १० ॥

विदूषकः—संपदं भवदो णिस्ससअं भाविस्सदि । एसा अप्पिदमअणसंदेसा विवित्ते णं वउलावलिआ उवट्ठिदा । [ सांप्रतं भवतो निःसंशयं भविष्यति । एषार्पितमदनसंदेशा विविक्ते ननु बकुलावलिकोपस्थिता । ]

राजा—अपि स्मरेदसावस्मदभ्यर्थनाम् ।

विदूषकः—किं दाणिं एसा दासीए दुहिता तुह गुरुअं संदेसं विसुमरेदि । अहं दाव ण विसुमरेमि । [ किमिदानीमेषा दास्या दुहिता तव गुरुकं संदेशं विस्मरति । अहं तावन्न विस्मरामि । ]

---

अन्वयः—त्वम् औत्सुक्यहेतुं न विवृणोषि, तर्कः तत्त्वावबोधैकरसः न, तथापि हे रम्भोरु ! ( अहम् ) आत्मानम् एषां परिदेवितानां लक्ष्यं करोमि ॥ १० ॥

औत्सुक्येति । त्वम् = मालविके ! । औत्सुक्यहेतुम् = उत्कण्ठाकारणभूतम् वस्तु । न विवृणोषि = न प्रकाशयसि । तर्कः = अनुमानमपि । तत्त्वावबोधैकरसः = सत्यज्ञानैकगुणः । न = नैव । तथापि हे रम्भोरु ! = कदलीस्तम्भोरु ! ( अहम् ) आत्मानम् = स्वकीयम् । एषाम् = एतेषाम् । परिदेवितानाम् = विलपितानाम् । लक्ष्यम् = विषयम् । करोमि = निर्धारयामि ॥ १० ॥

समासः—औत्सुक्यहेतुम् = औत्सुक्यस्य हेतुम् औत्सुक्यहेतुम् । तत्त्वावबोधैकरसः = तत्त्वस्य अवबोधः तत्त्वावबोधः । स एव एकः रसः यस्मिन् सः = तत्त्वावबोधैकरसः ।

अलंकारः—विभावनाऽलंकारः ।

छन्दः—उपजातिर्वृत्तम् ।

विदूषकः—साम्प्रतम् = इदानीम् । भवतः = श्रीमतो महाराजस्य । निःसंशयम् = एषा = वकुलावलिका । अर्पितमदनसंदेशा = प्राप्तकामसन्देशा । विविक्ते = निर्जनप्रदेशे । बकुलावलिका = दासी । उपस्थिता = आगता ।

राजा – अपि = किम् । स्मरेत् = स्मरणं कुर्यात् । असौ = बकुलावलिका । अस्मदभ्यर्थनाम् = मदीययाचनाम् ।

विदूषकः—किम् = कथम् । इदानीम् = साम्प्रतम् । एषा = इयम् । दास्या दुहिता = परिचारिकापुत्री ( निन्दार्थे ) तव = भवतः । सन्देशम् = आदेशम् । विस्मरति = विस्मरणं करोति । अहम् = विदूषकः । तावत् = तदापि । न विस्मरामि = न विस्मरणं करोमि ।

---

हे कदलीस्तम्भोरु ! तुम उत्कण्ठा का कारण प्रकाशित नहीं करती हो, अनुमान कभी ठीक-ठीक पता नहीं बता सकता है तथापि मैं तुम्हारे इन विलापों का लक्ष्य अपने को ही मानता हूँ ॥ १० ॥

**विदूषक**—आपका सन्देह अभी दूर हुआ जाता है । जिसके हाथ आपने सन्देश भेजा था वह बकुलावलिका भी यहाँ अकेले में मालविका के पास पहुँच गई है ।

**राजा**—परन्तु उसको क्या मेरी बात स्मरण होगी ।

**विदूषक**—जब तक मैं नहीं भूल पाया हूँ तब तक भला यह दासी पुत्री कहीं ऐसी आवश्यक बात भूल सकती है ?

( प्रविश्य चरणालंकारहस्ता बकुलावलिका )

बकुलावलिका—अवि सुहं सहीए । [ अपि सुखं सख्याः । ]

मालविका—अम्हो, वउलावलिआ उवट्ठिदा । सहि, साअदं दे । उवविस । [ अहो, बकुलावलिकोपस्थिता । सखी, स्वागतं ते । उपविश । ]

बकुलावलिका—( उपविश्य । ) हला, तुमं दाणिं जोग्गदाए णिउत्ता । ता एक्कं दे चलणं उवणेहि, जाव सालत्तअं सणूउरं अ करेमि । [ सखि, त्वमिदानीं योग्यतया नियुक्ता । तस्मादेकं ते चरणमुपनय यावत्सालक्तकं सनूपुरं च करोमि । ]

मालविका—( आत्मगतम् । ) हिअअ, अलं सुहिदाए, उवट्ठिदो अअं विहवो । कहं दाणिं अत्ताणं मोचेअं । अहवा एदं एव्व मे मित्तुमण्डणं भविस्सदि । [ हृदय, अलं सुखितया, उपस्थितोऽयं विभवः । कथं वेदानीमात्मानं मोचयेयम् । अथवा एतदेव मे मृत्युमण्डनं भविष्यति । ]

बकुलावलिका—किं विआरेसि । उस्सुआ क्खु इमस्स तवणीआसोअस्स

---

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा । चरणालंकारहस्ता = नूपुरकरा । बकुलावलिका = एतन्नाम्नी परिचारिका । )

बकुलावलिका—अपि = किम् । सुखम् = सुखसमन्विताऽसि प्रियसखी ।

मालविका—अहो = आश्चर्यम् । बकुलावलिका = मदीया प्रिया सहचरी । उपस्थिता = आगता वर्तते । हले ते स्वागतम् । उपविश = अत्र तिष्ठ ।

बकुलावलिका—( स्थित्वा ) सखि ! = हले । त्वम् इदानीम् = भवती अधुना । योग्यतया = उपयुक्तपात्रत्वेन । नियुक्ता = अशोकतरुदोहदपूरणे व्यापारिता । तस्मात = ततः । एकं ते चरणम् उपनय = एकं पादमानय । यावत् सालक्तकम् = अलक्तकसम्पन्नम् । सुनूपुरम् = नूपुरसहितं च करोमि = सम्पादयामि ।

मालविका—( स्वगतम् ) हृदय ! भो मनः ! अलं सुखितया = सुखानुभवेन व्यर्थम् । उपस्थितः = प्राप्तः । अयम् = राजावलोकनावसररूपः । विभवः = समृद्धिः । कथं वा = केन प्रकारेण । इदानीम् = सम्प्रति । आत्मानम् = स्वशरीरम् । मुञ्चयेयम् = त्यजेयम् अथवा एतदेव = इदमेव । मे = मम । मृत्युमण्डनम् = मरणालंकरणम् भविष्यति ।

बकुलावलिका—किं विचारयसि ? = त्वम् किं विचारं करोषि ? । उत्सुका = समु-

---

**( चरण का आभूषण हाथ में लेकर बकुलावलिका प्रवेश करती है )**

**बकुलावलिका**—कहो सखी ! आनन्द से तो हो ?

**मालविका**—अरे बकुलावलिका ! तुम आ गई । सखी तुम्हारा स्वागत है । आओ, बैठो ।

**बकुलावलिका**—( **बैठकर** ) सखी तुम्हें जो काम दिया गया है, उसके लिए तुम्हीं योग्य थी । अपना एक पैर इधर बढ़ाओ, मैं उसमें महावर लगाकर नूपुर पहना दूँ ।

**मालविका**—( **मन ही मन** ) मेरे हृदय ! यह सम्मान देखकर तुम अधिक प्रसन्न मत होओ । यही तो वैभव प्राप्त हुआ । मैं अपने को कैसे छुड़ाऊँ ? अथवा यही हमारे मरण का श्रृङ्गार होगा ।

**बकुलावलिका**—तुम क्या सोच रही हो ? इस सुनहले अशोक वृक्ष में फूलों के आने के लिए महारानी अत्यन्त उत्सुक हैं ।

कुसुमोग्गमे देवी। ] किं विचारयसि । उत्सुका खल्वस्य तपनीयाशोकस्य कुसुमो- द्गमे देवी। ]

राजा—कथमशोकदोहदनिमित्तोऽयमारम्भः।

विदूषकः—किणु क्खु जाणासि तुमं। मह कालणादो देवी मं अन्तेउरणे- वच्छेण योजइस्सदि ति। [ किं खलु जानासि त्वम्। मम कारणाद्देवीमामन्तःपुर- नेपथ्येन योजयिष्यतीति। ]

मालविका—हला, मरिसेहि दाव णं। ( इति पादमुपहरति। ) [ सखि, मर्षय तावदेनम्। ]

बकुलावलिका—अइ, सरीरअं सि मे। ( इति नाट्येन चरणसंस्कारमारभते। ) [ अयि, शरीरमसि मे। ]

राजा—

**चरणान्तनिवेशितां प्रियायाः सरसां पश्य वयस्य रागलेखाम्।**
**प्रथमामिव पल्लवप्रसूतिं हरदग्धस्य मनोभवद्रुमस्य ॥ ११ ॥**

---

त्सुका। खलु अस्य तपनीयाशोकस्य = निश्चयमेव अस्य तपनीयाशोकवृक्षस्य। कुसुमोद्गमे = पुष्पकोरकोद्भेदे।

**राजा**—कथम् = किम्। अशोकदोहनिमित्तः = अशोकतरुपुष्पोद्गमकारणः। अयम् = एषः। आरम्भः = चरणेऽलक्तकनूपुरादिकम्।

**विदूषकः**—किं नु खलु जानासि त्वम्=किं भवान् इदमवगच्छति ?। मम कारणात् = मदीय प्रयोजनाय। देवीम् = मालविकाम्। अन्तःपुरनेपथ्येन = अन्तःपुररमणीजनोचितेन वेशेन। योजयिष्यति = योजना करिष्यति।

**मालविका**—सखि = हले। मर्षय = क्षमस्व। तावदेनम् = ज्येष्ठायाः तव चरणसंस्करणे नियोजनरूपम्। इति = इत्युक्त्वा। पादम् = चरणम्। उपहरति = पुरः करोति।

**बकुलावलिका**—अयि ! = भोः। शरीरम् = देहम्। असि मे = ममासि। आत्मीयेषु जनेषु तवापराधक्षमायाचनव्यापारः वृथैव। ( इति = ततः। नाट्येन = अभिनयेन। चरण- संस्कारम् = पादालङ्करणम्। आरभते = आरम्भं करोति। )

**अन्वयः**—हे वयस्य ! हरदग्धस्य मनोभवद्रुमस्य प्रथमां पल्लवप्रसूतिम् इव प्रियायाः चरणान्तनिवेशितां सरसां रागलेखां पश्य ॥ ११ ॥

---

**राजा**—अच्छा, तो क्या यह सजावट अशोक के फूलने के लिए की जा रही है ?

**विदूषक**—तो क्या आप समझ बैठे थे कि महारानी ने मेरे लिए इसे रनिवास के सिंगारों से सजाया होगा।

**मालविका**—सखी। मुझे इसके लिए क्षमा करना। **( पैर आगे बढ़ाती है )**

**बकुलावलिका**—अरे ! तुम तो मेरा ही शरीर हो **( पैर रँगने का अभिनय करती है )**

**राजा**—मित्र। प्यारी मालविका के चरणों में महावर की जो गीली लकीर बनी है, वह ऐसी दिखाई पड़ रही है मानों महादेवजी के क्रोध से जले हुए कामदेव के वृक्ष में नई-नई कोपलें फूट आई हों ॥ ११ ॥

**विशेष**—इस पद्य में उपमा का सौन्दर्य विलक्षण है। मालविका के चरणों में लगी हुई महावर

विदूषकः—चलणाणुरूवो तत्तहोदीए अहिआरो उवक्खित्तो। [ चरणानुरूप-स्तत्रभवत्या अधिकारः उपक्षिप्तः। [

राजा—सम्यगाह भवान्।

**नवकिसलयरागेणाग्रपादेन बाला स्फुरितनखरुचा द्वौ हन्तुमर्हत्यनेन।**
**अकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा प्रणमितशिरसं वा कान्तमार्द्रापराधम्॥**

---

चरणेति। वयस्य !=भो मित्र !। हरदग्धस्य = शंकरेण कोपानले भस्मतां प्राप्तस्य। मनोभवद्रुमस्य = कामदेवरूपवृक्षस्य। प्रथमाम् = पूर्वाम् पल्लवप्रसूतिम् = पत्रोत्पत्तिम्। इव। प्रियायाः = मालविकायाः। चरणान्तनिवेशिताम्=पादप्रान्तनिहिताम्। सरसाम्=रसाप्लुताम्। रागलेखाम् = अलक्तकरचनाम्। पश्य = अवलोकय।

समासः—हरदग्धस्य = हरेण दग्धः हरदग्धस्तस्य हरदग्धस्य। मनोभवद्रुमस्य = मनोभवः एव द्रुमः मनोभवद्रुमस्तस्य मनोभवद्रुमस्य। पल्लवप्रसूतिम् = पल्लवानां प्रसूतिः पल्लवप्रसूतिः, ताम् पल्लवप्रसूतिम्। चरणान्तनिवेशिताम् = चरणस्य अन्ते निवेशिताम् चरणान्तनिवेशिताम्। रागलेखाम् = रागस्य लेखा रागलेखा ताम् रागलेखाम्।

अलंकारः—रूपकसंकीर्णोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

छन्दः—मालभारिणीवृत्तम्। लक्षणम्—"विषमे ससजा यदा गुरू चेत् सभरा येन तु मालभारिणीयन्।"

विदूषकः—चरणानुरूपः = पादयोरुपयुक्तः। तत्र भवत्या = श्रीमत्या देव्या। अधिकारः = कार्यम्। उपक्षिप्तः = दत्तः। सुकुमाररक्तचरणाघातेन मनोहररक्तकुसुमो-त्पादनार्थम् नियोगः उचितः इत्याशयः।

राजा—सम्यग् = उचितम्। आह = अकथयत्। भवान् = विदूषकः।

अन्वयः—बाला नवकिसलयरागेण स्फुरितनखरुचा अनेन अग्रपादेन दोहदापेक्षया अकुसुमितम् अशोकम् वा आर्द्रापराधम् प्रणमितशिरसम् कान्तं वा द्वौ हन्तुमर्हति॥ १२॥

नवेति। बाला = कुमारी मालविका। नवकिसलयरागेण = अभिनवपल्लववर्णेन। स्फुरितनखरुचा = प्रदीप्तनखरकान्त्या। अनेन = एतेन। अग्रपादेन = अलक्तकसिक्तचरणेन। दोहदापेक्षया = दोहदाकांक्षया। अकुसुमितम् = अपुष्पितम्। अशोकम्=एतन्नामकम् वृक्षम्। आर्द्रापराधम् = अभिनवकृतागस्कम्। प्रणमितशिरसम् = नतमस्तकम्। कान्तम् = दयितम्

---

को देखकर राजा कल्पना कर रहा है कि शंकर द्वारा कामरूपी वृक्ष भस्म कर दिये जाने के पश्चात् पहले पहल उसमें लाल-लाल कोंपलें फूट पड़ी हैं। वास्तव में यह कामवृक्ष बढ़ता हुआ मालविका मिलन के रूप में राजा को फल भी देगा।

**अलंकार**—रूपकसंकीर्णोत्प्रेक्षाऽलंकार।

**विदूषक**—जैसे इनके सुन्दर चरण हैं वैसा ही मधुर कार्य भी सौंपा गया है।

**राजा**—आपने यह बात अत्यन्त उचित कही।

चमकते हुए नखों वाले और नवीन कोंपलों के समान पंजों वाले इस सुन्दरी मालविका के चरण या तो फूलने की इच्छावाले इस अनफूले अशोक वृक्ष पर पड़ने योग्य हैं या प्रेम में अपराध करने वाले नतमस्तक प्रियतम के सिर पर पड़ने योग्य हैं॥ १२॥

**अलंकार**—लुप्तोपमा काव्यलिंग और दीपक के अनुप्रवेश से सङ्कर अलंकार है।

**विदूषकः**—पहरिस्सदि तत्तहोदी तुमं अवरद्धम् । [ प्रहरिष्यति तत्रभवती त्वामपराद्धम् । ]

**राजा**— मूर्ध्ना प्रतिगृहीतं वचः सिद्धिदर्शिनो ब्राह्मणस्य ।

( ततः प्रविशति युक्तमदा इरावती चेटी च )

**इरावती**—हञ्जे णिउणिए, सुणामि बहुसो मदो किल इत्थिआजणस्स विसेसमण्डणं त्ति । अवि सच्चो एसो लोअवाओ । [ चेटि निपुणिके, शृणोमि बहुशो मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनमिति । अपि सत्य एष लोकवादः । ]

**निपुणिका**—पढमं लोअवाओ एव्व अज्ज सच्चो संवुत्तो । [ प्रथमं लोकवाद एवाद्य सत्यः संवृत्तः । ]

---

वा । द्वौ एव = उभौ एतौ । हन्तुमर्हति=ताडयितुं योग्या भवति । अनया बालया नवकिसलयरागचरणाग्रेण अशोकस्य कृतापराधस्य कान्तस्य च प्रहारः सम्पादयितुं योग्य इत्याशयः ॥ १२ ॥

**समासः**—नवकिसलयरागेण = नवस्य किसलयस्य रागः इव रागो यस्य तेन नवकिसलयरागेण । स्फुरितनखरुचा = स्फुरिता नखानां रुक् यस्मिन् तेन स्फुरितनखरुचा । अग्रपादेन = अग्रश्च असौ पादः तेन अग्रपादेन । दोहदापेक्षया = दोहदस्य अपेक्षा दोहदापेक्षा तया दोहदापेक्षया । प्रणमितशिरसम् = प्रणमितं शिरः येन तथाभूतम् प्रणमितशिरसम् ।

**अलंकारः**—लुप्तोपमा, काव्यलिङ्गम् दीपकः । एतेषां सङ्करोऽलङ्कारः ।

**छन्दः**—मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणम् "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।"

**विदूषकः**—महाराज ! अपराद्धम् = कृतापराधम् । त्वाम् = भवन्तमपि । तत्रभवती = मालविका । प्रहरिष्यति = ताडयिष्यसि ।

**राजा**—सिद्धिदर्शिनः = भविष्यज्ञातुः । ब्राह्मणस्य = तव विदूषकस्य । वचः = वचनम् । मूर्ध्ना = शिरसा । प्रतिगृहीतम् = स्वीकृतम् ।

( तत्पश्चात् मदमत्त इरावती दासी च प्रवेशं करोति )

**इरावती**—सेविके निपुणिके ! शृणोमि = आकर्णयामि । बहुशः = अनेकशः । मदः = सुरापानजनितश्चित्तविकारः । किल = निश्चये । स्त्रीजनस्य = नारीणाम् विशेषमण्डनम् = असाधारणमलङ्करणम् । अपि सत्यः = किम् प्रमाणीकृतः । एष लोकवादः = एषा जनचर्चा ।

**निपुणिका**—प्रथमम् = पूर्वम् । लोकवाद एव = जनचर्चैव आसीत् । किन्तु अद्य = अधुना । सत्यः संवृत्तः = सत्योऽभवत् ।

---

**विदूषक**—अपराध करने पर तुम प्रहार सहोगे ।

**राजा**—सिद्ध ब्राह्मण का आदेश सिर आँखों पर है ।

**( तत्पश्चात् मदमत्त इरावती और चेटी का प्रवेश )**

**इरावती**—निपुणिके ! सुनती हूँ मद नारियों का अलंकार है । क्या यह सत्य है ?

**निपुणिका**—पहले यह कहावत थी पर आज तो यह बात सत्य हो गई है ।

इरावती—अलं मयि सिणेहेण । कहेहि कुदो दाणि ओगमिदव्वं दोलाघरं पढमं गदो भट्टा ण वेत्ति । [ अलं मयि स्नेहेन । कथय कुत इदानीमवगन्तव्यं दोलागृहं प्रथमं गतो भर्ता न वेति । ]

निपुणिका—भट्टिणीए अखण्डिदादो पणआदो । [ भट्टिन्या अखण्डितात् प्रणयात् । ]

इरावती—अलं सेवाए । मज्झत्थदं परिगहिअ भणाहि । [ अलं सेवया । मध्यस्थतां परिगृह्य भण । ]

निपुणिका—वसन्तोरसवुवाअणलोलुवेण अज्जगोदमेण कहिअं तुवरदु भट्टिणी त्ति । [ वसन्तोत्सवोपायन लोलुपेनार्यगौतमेन कथितं त्वरतां भट्टिनीति । ]

इरावती—( अवस्थासदृशं परिक्रम्य । ) हञ्जे मदेण किलाअमाणं अत्ताणं अज्जउत्तस्स दंसणे हिअअं तुवरेदि । चलणा उण ण मह पसरन्ति । [ चेटि, मदेन क्लाम्यमानमात्मानमार्यपुत्रस्य दर्शने हृदयं त्वरयति । चरणौ पुनर्न मम प्रसरतः । ]

---

इरावती—अलम् = व्यर्थम् । मयि = माम् प्रति । स्नेहेन = प्रेम्णा । कथय = वद । कुतः = कस्मात् कारणात् । इदानीम् = अधुना । अवगन्तव्यम् = ज्ञातव्यम् । दोलागृहम् = दोलाक्रीडास्थानम् । प्रथमम् = पूर्वम् । गतो भर्ता = अगच्छत् राजा । न वा ।

निपुणिका—भट्टिन्याः = अकृताभिषेकायाः राजपत्न्याः । अखण्डितात् = अव्याहतात् । प्रणयात् = अनुरागात् । प्रणय एव सूचयितुं अलम् ।

इरावती—अलं सेवया = व्यर्थं चाटुकारेण । मध्यस्थताम् परिगृह्य = निष्पक्षा भूत्वा । भण = कथय ।

निपुणिका—वसन्तोत्सवोपायनलोलुपेन = वसन्तोत्सवे यदुपायनं तण्डुलमोदकादिकम् तस्य लोलुपेन कामुकेन । आर्यगौतमेन = तदाख्येन विदूषकेण । कथितम् = उक्तम् । त्वरताम् = शीघ्रतां कुरु । भट्टिनीति = राज्ञीति ।

इरावती—( अवस्थासदृशम् = अवस्थानुकूलां शीघ्रतां कृत्वा ) चेटि = सेविके ! मदेन = मदपानेन । क्लायमानम् = सन्तप्यमानम् । आत्मानम् = स्वकीयम् । आर्यपुत्रस्य = महाराजस्य = दर्शने = प्रेक्षणे । हृदयम् = मनः । त्वरयति = शीघ्रतां करोति । चरणौ = पादौ । पुनर्न = भूयोऽपि न । मम = मे । प्रसरतः = अग्रेगच्छतः ।

---

**इरावती**—मुझपर स्नेह न दिखाओ कहो, यह कैसे ज्ञात होगा ? कि महाराज दोलागृह में पहले आ गए हैं या नहीं ।

**निपुणिका**—आपको अपने अखण्डित प्रणय से ।

**इरावती**—चाटुकारिता न कर । तटस्थ होकर बतलाओ ।

**निपुणिका**—वसन्तोत्सव के अवसर पर उपायन के लोभी विदूषक गौतम ने कहा है कि आप शीघ्रता कीजिए ।

**विशेष**—यहाँ पर निपुणिका मिथ्या भाषण कर रही है क्योंकि गौतम ने निपुणिका को राजा के पहले पहुँच जाने की बात नहीं कही थी । वह इससे मिला ही नहीं ।

**इरावती**—( **अवस्थानुकूल शीघ्रता करके** ) नशा से सन्तप्त मुझको आर्यपुत्र के दर्शन के लिए हृदय प्रेरित कर रहा है । किन्तु मेरे पैर उठते ही नहीं ।

निपुणिका—णं संपत्तं म्ह दोलाघरं। [ ननु संप्राप्ते स्वो दोलागृहम्। ]

इरावती—णिउणिए, अज्जउत्तो एत्थ ण दीसदि। [ निपुणिके, आर्यपुत्रोऽत्र न दृश्यते। ]

निपुणिका—णं भट्टिणीए ओलोअदु। परिहासणिमित्तं कहिं वि अदिट्टेण भत्तुणा होदव्वं। अम्हे वि पिअङ्गुलदापरिक्खित्तं असोअसिलापट्टअं पविसामो। [ ननु भट्टिन्यवलोकयतु। परिहासनिमित्तं कुत्राप्यदृष्टेन भर्त्रा भवितव्यम्। आवामपि प्रियङ्गुलतापरिक्षिप्तमशोकशिलापट्टकं प्रविशावः। ]

इरावती—तह [ तथा। ]

निपुणिका—( विलोक्य। ) आलोअदु भट्टिणी चूदङ्कुर विचिण्णन्तीणं पिपीलिजाहिं दंसिदं। [ अवलोकयतु भट्टिनी चूताङ्कुरं विचिन्वत्योः पिपीलिकाभिर्दष्टम्। ]

---

निपुणिका—ननु = प्रश्ने। संप्राप्ते = आगते। स्वः = भवावः। दोलागृहम् = दोलाक्रीडास्थानम्।

इरावती—निपुणिके ! = परिचारिके !। आर्यपुत्रः = महाराजोऽग्निमित्रः। अत्र = अस्मिन् दोलगृहे। न दृश्यते = न दृष्टः।

निपुणिका—ननु = प्रश्ने। भट्टिनी = कनिष्ठा भट्टिनी। अवलोकयतु = पश्यतु। परिहासनिमित्तम् = हास्यकारणात्। कुत्रापि = कस्मिंश्चिद् स्थानेऽपि। अदृष्टेन = लुप्तेन। भर्त्रा = महाराजेन। भवितव्यम् = भवनीयम्। आवामपि। आवाम् द्वावपि। प्रियङ्गुलतापरिक्षिप्तम = श्यामलतापरिवेष्टितम्। अशोकशिलापट्टकम् = अशोकतरुतलस्थ प्रस्तरखण्डम्। प्रविशावः = प्रवेशं कुर्वः।

इरावती—तादृग् एव कर्तव्यम्।

निपुणिका—(अवलोक्य) भट्टिनी = महाराज्ञी। अवलोकयतु = पश्यतु। चूताङ्कुरम् = च आम्रमुकुलम्। विचिन्वत्योः = चयनं कुर्वतोरावयोः। पिपीलिकाभिः = क्षुद्रजन्तुभिः = दष्टम्। तयानुमानं करोमि कयाचित् अत्र राजान्वेषणकर्मणि विघ्नः क्रियेत्।

---

**निपुणिका**—अरे ! हम लोग दोलाघर तो आ गये।

**इरावती**—निपुणिके ! यहाँ पर आर्यपुत्र तो दिखाई नहीं दे रहे हैं।

**विशेष**—मद्यपान के कारण इरावती को नशा हो गया है यही कारण है कि उसके पैर आगे बढ़ने के लिए तत्पर नहीं होते।

**निपुणिका**—श्रीमती जी आप देखें। सम्भव है परिहास करने के लिए राजा कहीं पर छिपकर बैठे हों। हम लोग भी श्यामलतावेष्टित अशोक के नीचे प्रस्तरखण्ड पर बैठें।

**इरावती**—वैसा ही किया जाय।

**निपुणिका ( देखकर )** महारानी जी देखिए। हम लोग तो आम्रकोरकों को चुनना चाहती थी और इधर चींटियाँ काटने लगीं।

**विशेष**—इस स्थान पर अन्योक्ति के द्वारा मालविका को चींटी और महाराज को चूतमुकुल माना गया है। राजा की खोज में मालविका को पाकर रानी को वेदना हुई। राजा मालविका से प्रेम करता है, यह बात सभी अन्तःपुर वालों को ज्ञात थी।

इरावती—कहं विअ एदं । [ कथमिवेदम् । ]

निपुणिका -एसा असोअपादवच्छाआए मालविआएवउलावलिआ चलणा-लंकारं णिव्वट्टेदि । [ एषाशोकपादपच्छायायां मालविकाया बकुलावलिका चरणालंकारं निर्वर्तयति ।

इरावती—( शङ्कां रूपयित्वा । ) अभूमी इअं मालविआए, कहं, एत्थ तक्केसि । [ अभूमिरियं मालविकायाः, कथमत्र तर्कयसि । [

निपुणिका—तक्केमि दोलापरिब्भंसिदाए सरुअचलणाए देवीए असोअदोहला-हिआरे मालविआ णिवुत्तेत्ति । अण्णहा कहं देवी सअं धारिअं णूउरजुअलं परिअणस्स अब्भणुजाणिस्सदि । [ तर्कयामि दोलापरिभ्रष्टया सरुजरणया देव्याऽशोक-दोहदाधिकारे मालविका नियुक्तेति । अन्यथा कथं देवी स्वयंधारितं नूपुरयुगलं परिजन-स्याभ्यानुज्ञास्यति । ]

इरावती—महदी वखु से संभावणा । [ महती खल्वस्याः संभावना । ]

निपुणिका—किं ण अण्णेसीअदि भट्टा । [ किं नान्विष्यते भर्ता । ]

---

इरावती—इदम् कथं सम्भवेत् ।

निपुणिका – एषा = इयम् । अशोकपादपच्छायायाम् = अशोकतरुनिम्नभूमौ । माल-विकायाः = एतस्याः परिचरिकायाः । बकुलावलिका = एतन्नाम्नी दासी । चरणालङ्कारम् = पादाभूषणम् । निर्वर्त्तयति = सम्पादयति । एतेन इरावत्याः हानिः कथिता ।

इरावती – ( शङ्कम् प्रकटयित्वा ) अभूमिः = अगन्तव्यस्थानम् । इयम् = इदम् स्थानम् । मालविकायाः = एतस्याः परिचारिकायाः । कथमत्र = कथमागता अस्मिन् स्थाने सा । तर्कयसि = अनुभवसि । प्रमदवनोद्देशस्य अस्य राजपरिवारम् अत्र गन्तव्यत्वात् ।

निपुणिका—तर्कयामि = अनुमानं करोमि । दोला परिभ्रष्टया = दोलपतितया । सरुज-चरणया = कष्टपूर्णपादया । देव्या = महाराज्ञ्या । अशोकदोहदाधिकारे = अशोकवृक्षे चरण-घातरूपकर्त्तव्ये । मालविका = एषा परिचारिका । नियुक्ता = आदिष्टा । अन्यथा कथं देवी= राज्ञी किमर्थं । स्वयं धारितनूपुरयुगलम् = स्वव्यवहार्यभूषणम् । परिजनस्य = परिवारस्य । अभ्यनुज्ञास्यति = धारणयानुमंस्यते ।

इरावती—महती = प्रभूता । खलु=निश्चये अस्याः संभावना = संशयः ।

निपुणिका—किं न = कथन्न । अन्विष्यते = अन्वेषणं क्रियते । भर्ता = महाराजः ।

---

**इरावती—**यह बात कैसे ?

**निपुणिका—**अशोकतरु की छाया से बकुलावलिका मालविका के चरणों को अलंकृत कर रही है ।

**इरावती—( शङ्का प्रकट कर )** यह तो मालविका के आने की जगह नहीं है । यहाँ वह क्यों आई ? क्या समझती हो ?

**निपुणिका—**मैं समझती हूँ । झूला पर से गिरने के कारण देवी के पैर में चोट है । अतः उन्होंने अशोक दोहद के लिए मालविका से कहा है । अन्यथा वह देवी के चरणों के नूपुर कैसे धारण करती ?

**इरावती—**इस बात की विशेष सम्भावना है ।

**निपुणिका—**महाराज ही को क्यों न ढूंढ़ा जाय ?

**इरावती**—हला, ण मे चल णा अण्णदोपवट्टन्ति । मदो मं विआरेदि । आसङ्किदस्स दाव अन्तं गमिस्सं । ( मालविकां निर्वर्ण्य । निरूप्यात्मगतम् । ) ठाणे क्खु कादरं मे हिअअं । [ सखी, न मे चरणावन्यतः प्रवर्तेते । मदो मां विकारयति । आशङ्कितस्य तावदन्तं गमिष्यामि । स्थाने खलु कातरं मे हृदयम् । ]

**बकुलावलिका**—( मालविकायै चरणं दर्शयन्ती । ) अवि रोअदि दे राअरेहा-विण्णासो । [ अपि रोचते ते रागरेखाविन्यासः । ]

**मालविका**—हला अत्तणो चलणं त्ति लज्जेमि णं पसंसिदुं । तेण पसाहणकलाए अहिविणीदासि । [ सखी, आत्मनश्चरण इति लज्जे एनं प्रशंसितुम् । तेन प्रसाधन-कलायामभिविनीतासि । ]

**बकुलावलिका**—एत्थ क्खु भत्तुणो सीसम्हि । [ अत्र खलु भर्तुः शिष्यास्मि । ]

**विदूषकः**—तुवरेहि दाव णं गुरुदक्खिणाए । [ त्वरय तावदेनां गुरुदक्षिणायै । ]

**मालविका**—दिट्ठिआ ण गव्विदासि । [ दिष्ट्या न गर्वितासि । ]

---

**इरावती**—( मालविकां निर्वर्ण्य = दृष्ट्वा निरूप्यात्मगतम् = दृष्ट्वा स्वगतम् ) सखी = हले ! न मे चरणौ = पादौ । अन्यतः प्रवर्तेते = अग्रे गच्छतः । मदः = मद्यपानमदः । मां विकारयति = मां विह्वलीकरोति । आशङ्कितस्य = शंकायाः । तावद् = तावत्कालपर्यन्तम् । सन्तं गमिष्यामि = निर्णयं करिष्यामि । स्थाने खलु = उचितमस्ति मे हृदयम् = मे मनः । कातरम् = शङ्काकुलम् अस्ति ।

**बकुलावलिका**—( मालविकायै = तस्यै दास्यै । चरणम् = पादम् । दर्शयन्ती = दर्शनं कारयन्ती ) अपि रोचते = सुशोभते । ते = तव । रागरेखाविन्यासः = अलक्तकरेखाकरणम् ।

**मालविका**—सखी = हले ! आत्मनश्चरण इति = स्वकीयपाद इति । लज्जे = लज्जां करोमि । एवम् प्रशंसितुम् = चरणस्य प्रशंसां कर्तुम् । केन = कलाकारेण प्रसाधनकलायाम् = प्रसाधनकर्मणि । अभिविनीतासि = शिक्षितासि ।

**बकुलावलिका**—अत्र = अस्यां प्रसाधनकलायाम् । भर्तुः = महाराजस्य । शिष्या = छात्री अस्मि ।

**विदूषकः**—त्वरय = शीघ्रतां कुरु । तावद् = तावत्कालपर्यन्तम् । एनाम् = दासीम् । दक्षिणायै = आचार्यदक्षिणायै ।

**मालविका**—दिष्ट्या = सौभाग्येन । गर्विता नासि = गर्वहीना भवसि ।

---

**इरावती**—मेरे चरण आगे नहीं बढ़ रहे हैं । नशा मुझे विकृत बना रहा है । पहले सन्देह दूर कर लूँगी । ( मालविका को देखकर स्वगत ) मेरा हृदय कातर हो रहा है ।

**बकुलावलिका**—( **मालविका को उसका पैर दिखाकर** ) राग लेखा अच्छी ज्ञात हो रही है ?

**मालविका**—अपने चरणों की प्रशंसा करने में लज्जा हो रही है । यह प्रसाधनकला तुम्हें किसने सिखाई है ?

**बकुलावलिका**—अरी ! यह कला तो मैंने स्वयं महाराज से सीखी है ।

**विदूषक**—गुरुदक्षिणा चुकाने में शीघ्रता करो ।

**मालविका**—भाग्यवश तुम अभिमान नहीं करती हो ।

बकुलावलिका—उवदेसाणुरूवा चलणा लम्भिअ अज्ज दाव गव्विदा भविस्सं। ( रागं विलोक्यात्मगतम् । ) हन्त, सिद्धो मे दप्पो। ( प्रकाशम् । ) सहि, एक्कस्स दे चलणस्स अवसिदो राअणिक्खेवो। केवलं मुहमारुदो लम्भइदव्वो। अहवा पवादं एद ठाणं। [ उपदेशानुरूपौ चरणौ लब्ध्वाद्य तावद्गर्विता भविष्यामि। हन्त, सिद्धो मे दर्पः। सखि, एकस्य ते चरणस्यावसितो रागनिक्षेपः। केवलं मुखमारुतो लम्भयितव्यः। अथवा प्रवातमेतास्थानम्। ]

राजा—सखे, पश्य—

आर्द्रालक्तकमस्याश्चरणं मुखमारुतेन शोषयितुम्।
प्रतिपन्नः प्रथमतरः संप्रति सेवावकाशो मे ॥ १३ ॥

विदूषकः—कुदो दे अणुसओ। एदं भवदा चिरक्कमेण अणुभविदव्वं। [ कुतस्तेऽनुशयः। एतावद्भवता चिरक्रमेणानुभवितव्यम्। ]

---

बकुलावलिका—उपदेशानुरूपौ = शिक्षासफलकारकौ। चरणौ = पादौ। लब्ध्वा = प्राप्य। अद्य = साम्प्रतम्। गर्विता = गर्वयुक्ता भविष्यामि। ( पादरागमवलोक्य स्वगतम् ) हन्त सिद्धः = प्रमाणितः। मे दर्पः = मदीयोऽभिमानः। सखि! हले! एकस्य ते चरणस्य = तव एकस्य पादस्य। अवसितः = समाप्तः। रागनिक्षेपः = रञ्जनकार्यम्। केवलं मुखमारुतः = केवलं फूत्कारः। लम्भयितव्यः = प्राप्तव्यः। अथवा एतत्स्थानम् = अयं प्रदेशः। प्रवातम् = पवनपूरितः।

राजा—सखे! = मित्र! पश्य = अवलोकय।

अन्वयः—अस्याः आर्द्रालक्तकं चरणं मुखमारुतेन वीजयितुं सम्प्रति मे प्रथमतरः सेवावकाशः प्रतिपन्नः ॥ १३ ॥

आर्द्रेति। अस्याः = मालविकायाः। आर्द्रालक्तम् = अशुष्कलाक्षारसम्। चरणम् = पादम्। मुखमारुतेन = फूत्कार द्वारा। बीजयितुम् = शोषयितुम्। सम्प्रति = अधुना। मे = मम। प्रथमतरः = पूर्वतरः। सेवावकाशः = परिचर्यावसरः। प्रतिपन्नः = प्राप्तः।

समासः—आर्द्रालक्तकम् = आर्द्रम् अलक्तकम् यस्मिन् तथाभूतम् आर्द्रालक्तकम्। मुखमारुतेन = मुखस्य मारुतः तेन मुखमारुतेन। सेवावकाशः = सेवायाः अवकाशः सेवावकाशः। अलंकारः—पर्यायोक्तम् अलंकारः। छन्दः—आर्या प्रभेदो वृत्तम्।

विदूषकः—कुतस्ते = कथन्तव। अनुशयः = खेद। एतावद् = इदमेव। भवता = श्रीमता। चिरक्रमेण = शनैः शनैः। अनुभवितव्यम् = अनुभवं कर्तव्यम्।

---

बकुलावलिका—शिक्षा को सफल करने योग्य चरणों के प्राप्त हो जाने से अब गर्व कर सकूँगी। ( राग को देखकर मन ही मन ) हमारा अभिमान सिद्ध हो गया। ( प्रकट ) एक चरण का रँगना समाप्त हो गया, केवल फूँक लगानी है। अथवा इस स्थान पर हवा तो चल ही रही है! अर्थात् बिना मुँह से फूँक मारे भी वह प्राकृतिक हवा से अपने आप सूख जायेगी।

राजा—मित्र! देखो—

आर्द्र अलक्तक से भीगे हुए इसके चरण को फूँक से शुष्क बनाने का यह प्रथम सुअवसर उपस्थित है ॥ १३ ॥

विदूषक—आपको इसका दुःख क्यों हो रहा है? यह तो आपको धीरे-धीरे बहुत दिनों तक भोगना होगा।

**बकुलावलिका**—सहि, अरुणासतपत्तं विअ सोहदि दे चलणं। सव्वहा भत्तुणो अङ्कपरिवट्टिणी होहि। [ सखि, अरुणशतपत्रमिव शोभते ते चरणम्। सर्वथा भर्तुरङ्कपरिवर्तिनी भव। ]

( इरावती निपुणिकामवेक्षते। )

**राजा**—ममेयमाशीः।

**मालविका**—हला, मा अवअणीअं मन्तेहि। [ सखी, मा अवचनीयं मन्त्रयस्व। ]

**बकुलावलिका**—मन्तइदव्वं एव्व मन्तिदं मए। [ मन्त्रयितव्यमेव मन्त्रितं मया। ]

**मालविका**—पिआ क्खु अहं तव। [ प्रिया खल्वहं तव। ]

**बकुलावलिका**—ण केवलं मह। [ न केवलं मम। ]

**मालविका**—कस्स वा अण्णस्स। [ कस्य वान्यस्य। ]

**बकुलावलिका**—गुणेसु अहिणिवेसिणो भत्तुणो वि। [ गुणेष्वभिनिवेशिनो भर्तुरपि। ]

---

**बकुलावलिका**—सखि = हले ! अरुणशतपत्रम् इव=रक्तकमलमिव शोभते ते चरणम्। सर्वथा=पूर्णरूपेण भर्तुः = राज्ञः। अङ्कपरिवर्तिनी = क्रोडगता भव।

( इरावती निपुणिकामवलोकयति )

**राजा**—मम=मदीया। इयम्=एषा। आशीः = आशीर्वादः।

**मालविका**—सखि = हले। मा=नहि। अवचनीयम्=अकथनीयम्। मन्त्रयस्व=कथय।

**बकुलावलिका**—मन्त्रयितव्यम्=कथनीयम्। एव मया मन्त्रितम्=कथितम्।

**मालविका**—प्रिया = प्रियतमा। खलु=निश्चये। अहम् तव = भवतः।

**बकुलावलिका**—न केवलं मम=मदीया प्रियतमाऽसि।

**मालविका**—कस्य=कस्य जनस्य। वा=अथवा। अन्यस्य=अपरस्य।

**बकुलावलिका**—गुणेषु=शिक्षा सौन्दर्यादिषु। अभिनिवेशिनः=आग्रहिणः भर्तुरपि= महाराजस्यापि।

---

**बकुलावलिका**—रक्तकमल सदृश तुम्हारे चरण सुशोभित हैं। तुम महाराज को अंकशायिनी बनो।

**( इरावती निपुणिका की ओर देखती है )**

**राजा**—यही तो मेरा आशीर्वाद है।

**मालविका**—सखि ! अनर्गल बातें न कहा करो।

**बकुलावलिका**—जो कहना चाहिए, वह तो मैं कह रही हूँ।

**मालविका**—मैं तुम्हारी प्रियतमा जो हूँ।

**बकुलावलिका**—तुम केवल मेरी ही प्रिया नहीं हो।

**मालविका**—और किस दूसरे की प्रिया हूँ।

**बकुलावलिका**—तेरे गुणों पर प्रसन्न महाराज की भी !

मालविका—अलीअं मन्तेसि । एदं एव्व मयि णत्थि । [ अलीकं मन्त्रयसे । एतदेव मयि नास्ति । ]

बकुलावलिका—सच्चं तुइ णत्थि । भत्तुणो किसेसु सुन्दरपाण्डुरेसु दीसइ अङ्गेसु । [ सत्यं त्वयि नास्ति । भर्तुः कृशेषु सुन्दरपाण्डुरेषु दृश्यतेऽङ्गेषु । ]

निपुणिका—पढमं गणिदं विअ हदासाए उत्तरं । [ प्रथमं गणितमिव हताशायाः उत्तरम् । ]

बकुलावलिका—अणुराओ अणुराएण परिक्खिदव्वोत्ति सुअणवअणं पमाणीकरेहि [ अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्य इति सुजनवचनं प्रमाणीकुरु । ]

मालविका—किं अत्तणो छन्देण मन्तेसि । [ किमात्मनश्छन्देन मन्त्रयसि । ]

बकुलावलिका—णहि णहि भत्तुणो क्खु एदाइं पण अमिदुलाइं अक्खराइं वत्तन्तरिदाइं । [ नहि नहि । भर्तुः खल्वेतानि प्रणयमृदुलान्यक्षराणि वक्त्रान्तरितानि । ]

---

मालविका—अलीकम् = असत्यम् । मन्त्रयसे = कथयसि । एतदेव = गुणवत्त्वमेव । मयि = मम शरीरे । नास्ति = न विद्यते ।

बकुलावलिका—सत्यम् = वस्तुतः । त्वयि = तव शरीरे । नास्ति=नैव वर्तते अनुरागः । भर्तुः = महाराजस्य । कृशेषु = दुर्बलेषु सुन्दरपाण्डुरेषु = सुन्दरेषु पाण्डुवर्णेषु । अङ्गेषु = अवयवेषु । दृश्यते = वर्तते । त्वयि यदि गुणा नाभविष्यन् किमिति त्वदनुरागजन्यचिन्तया स्वकीयं पीडयित्वा राजाकृशपाण्डुगात्रोऽजास्यत् ।

निपुणिका—हताशायाः = निराशायाः बकुलावलिकायाः । उत्तरम् । गणितमिव = तर्कसम्मतमिव दृश्यते ।

बकुलावलिका—अनुरागः = प्रणयः । अनुरागेण=प्रणयेन । परीक्षितव्य = अनुमातव्यः । इति सुजनवचनम् = इदं विदुषोवार्ताम् । प्रमाणीकुरु = प्रमाणितां विधेहि ।

मालविका – किम् = कथम् । आत्मनश्छन्देन = स्वेच्छया । मन्त्रयसि = कथयसि ।

बकुलावलिका – नहि नहि = नैव नैव । भर्तुः = महाराजस्य । खलु = निश्चये । एतानि= इमानि । प्रणयमृदुलानि = रागकोमलानि । अक्षराणि । वर्णाः । वक्त्रान्तरितानि = विदूषकमुखगतानि ।

---

मालविका—तू असत्य कहती है । मुझ पर उनका प्रेम नहीं है ।

बकुलावलिका—वस्तुतः तुममें नहीं है । वह तो महाराज के दुर्बल तथा विरह से पाण्डुवर्ण अंगों में है ।

निपुणिका—हताश बकुलावलिका का उत्तर गणित के समान ( तर्कसम्मत ) है ।

बकुलावलिका—अपने अनुराग से दूसरे के अनुराग को जानना चाहिए । विद्वानों के इस कथन को प्रमाण मानो ।

मालविका—यह सब अपने मन से गढ़कर कह रही हो ।

बकुलावलिका—नहीं नहीं । महाराज की यह प्रणय कोमल कथा दूसरे के मुँह से सुनी गई है ।

**मालविका**—हला, देवीं चिन्तिअ ण मे हिअअं विस्ससदि । [ सखि, देवीं चिन्तयित्वा न मे हृदयं विश्वसिति । ]

**बकुलावलिका**—मुद्धे, भमरसंपादो भविस्सदि त्ति वसन्तावदारसव्वस्सं किं ण चूदप्पसवो ओदंसिदव्वो । [ मुग्धे, भ्रमरसंपातो भविष्यतीति वसन्तावतारसर्वस्वं किं न चूतप्रसवोऽवतंसितव्यः । ]

**मालविका**—तुमं दाव दुज्जादे गच्छतस्स सहायिणी होहि । [ त्वं तावद्दुर्जाते गच्छतः सहायिनी भव । ]

**बकुलावलिका**—विमद्ददसुरही बउलावलिआ क्खु अहं । [ विमर्दसुरभिर्बकुलावलिका खल्वहम् । ]

**राजा**—साधु बकुलावलिके साधु ।

**भावज्ञानानन्तरं प्रस्तुतेन प्रत्याख्याने दत्तयुक्तोत्तरेण ।**
**वाक्येनेयं स्थापिता स्वे निदेशे स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः ।१४॥**

---

**मालविका**—सखि = हले । देवीम् = महाराज्ञीं धारिणीम् । चिन्तयित्वा = अन्तरायतया सम्भाव्य । न मे हृदयम् मदीयं मनो न । विश्वसिति = विश्वासं करोति ।

**बकुलावलिका**—मुग्धे ! = अप्रगल्भे लज्जाशीले ! । भ्रमरसंपात:=मधुकरनिपतनम् । भविष्यति = भ्रमराः आगमिष्यन्ति । इति = विचार्य । वसन्तावतारसर्वस्वम् = मधुमाससमागमप्रधानम् । चूतप्रसवः = आम्रमञ्जरी । न अवतंसयितव्यः = न आभूषणवत् धारणीयः । देव्याः । विरोधितासम्भवेऽपि राजप्रणयस्त्वया माननीयः ।

**मालविका**—त्वम् = बकुलावलिका । तावद् = तावत्कालपर्यन्तम् । दुर्जाते = विपदुपनिपाते । गच्छतः = सम्पततः । सहायिनी = सहायिका । भव = एधि ।

**बकुलावलिका**—विमर्द सुरभिः = विपत्तौ धीरा । अन्यत्र विमर्देन घर्षणेन सुरभिः विशेष सौरभशालिनी बकुलावलिका बकुलश्रेणी स्वभाव सुरभिरपि यथा विमर्दने अधिकं सौरभमावहति—तथाऽहमपि स्वभावचतुरा विपत्तौ धैर्यावलम्बनेन प्रभूतज्ञानप्रकाशिनी भविष्यामीति ते श्रेयः ।

**राजा**—साधु = धन्या असि । बकुलावलिके = एतदाख्ये परिचारिके ! साधु = धन्यासि ।

**अन्वयः**—भावज्ञानानन्तरं प्रस्तुतेन प्रत्याख्याने दत्तयुक्तोत्तरेण वाक्येन इयं स्वे विदेशे स्थापिताः कामिनां प्राणाः दूत्यधीनाः स्थाने ॥ १४ ॥

**भावेति ।** भावज्ञानानन्तम् = मालविकानुरागबोधपश्चात् । प्रस्तुतेन = आरब्धेन ।

---

**मालविका**—महारानी धारिणी के सम्बन्ध में सोचकर मेरा हृदय विश्वास नहीं करता है ।

**बकुलावलिका**—अरी पगली ! आम्रमंजरी पर अनेक भ्रमर टूटने लगेंगे यही सोचकर क्या लोग भौंरों के भय से वसन्तावतार सर्वस्व आम्रमंजरी को धारण नहीं करते ?

**मालविका**—इस विपत्ति के अवसर पर तुम्हारा ही सहारा है ।

**बकुलावलिका**—घर्षण से अधिक सुगन्ध देने वाली मैं बकुलावलिका हूँ । स्वभाव से चतुर मैं विपत्ति आने पर—अपने धैर्यबल से अधिक ज्ञानप्रकाशन कर सकती हूँ ।

**राजा**—धन्य हो बकुलावलिके धन्य हो ।

इस समय इसके हृदय की ठीक-ठीक स्थिति का अध्ययन करके, मेरे प्रेम का प्रतात करके तथ

इरावती—हञ्जे, पेक्ख कारिदं एव्व वउलावलिआए एदस्सिं पदं मालविआए । [ सखि, पश्य कारितमेव बकुलावलिकयैतस्मिन्पदं मालविकायाः । ]

निपुणिका—भट्टिणि, अहिआरस्स उइदो उवदेसो । [ भट्टिनि, अधिकारस्योचितः उपदेशः । ]

इरावती—ठाणे क्खु सङ्किदं मे हिअअं । गहीदत्था अणन्तरं चिन्तइस्सं । [ स्थाने खलु शङ्कितं मे हृदयम् । गृहीतार्थानन्तरं चिन्तयिष्यामि । ]

बकुलावलिका—एसो दुदीओ वि दे णिव्वुत्तपरिकम्मा चलणो । जाव णं सणूउरं करेमि । ( इति नाट्येन नूपुरयुगलमामुच्य । ) हला उट्ठेहि । असोअविआसइत्तअं देवीए णिओअं अणुचिट्ठ । [ एष द्वितीयोऽपि ते निवृत्तपरिकर्मा चरणः । यावदेनं सनूपुरं करोमि । हला, उत्तिष्ठ । अशोकविकासयितृकं देव्या नियोगमनुतिष्ठ । ]

---

प्रत्याख्याने = मालविकाकृतनिषेधे । प्रयुक्तसमुचितोत्तरेण । वाक्येन = वचनेन । इयम् = मालविका । स्वे = स्वकीये । निदेशे = निनादेशपालने । स्थापिताः = सम्पादिताः । कामिनाम् = कामविषयानुरागिणाम् = प्राणाः=असवः दूत्यधीनाः = वार्ताहराश्रिताः । इति वचनं स्थाने = युक्तमस्ति ।

समासः—भावज्ञानानन्तरम् = भावस्य ज्ञानम् भावज्ञानम् तस्मात् अनन्तरम् भावज्ञानानन्तरम् । दत्तयुक्तोत्तरेण = दत्तं युक्तं उत्तरम् यस्मिन् तत् तेन दत्तयुक्तोत्तरेण । दूत्यधीनाः = दूतीनां अधीनाः = दूत्यधीनाः ।

अलंकारः—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः । काव्यलिङ्गम् । अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

छन्दः—शालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणम्—"मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेद लोकैः ।"

इरावती—सखि ! पश्य=अवलोकय । कारितम् = सम्पादितम् एव । बकुलावलिकया= एतया दास्या । एतस्मिन् = अस्मिन् । पदं = स्थानम् । मालविकायाः ।

निपुणिका—भट्टिनि = श्रीमति ! अधिकारस्य = दूतीकर्मणः । उचितः = योग्यः । उपदेशः = पालनम् ।

इरावती—स्थाने खलु = उचितमेव । शङ्कितम् = आशङ्कायुक्तम् । मे = मदीयम् । हृदयम् = मनः । गृहीतार्थानन्तरम् = ज्ञातप्रणयविषयानन्तरम् । चिन्तयिष्यामि = तयोर्विघटनोपायम् अवधारयिष्यामि ।

बकुलावलिका—एष ! अयम् । द्वितीयोऽपि = अपरोऽपि । ते = तव । निवृत्तपरिकर्मा=

---

इसके निषेध करने पर, उसे समुचित उत्तर देकर जो तुमने इस मालविका को अपने अधिकार में कर लिया है, इससे मुझे विश्वास हो गया है कि प्रेमियों के प्राण दूतियों की ही मुट्ठी में रहते हैं ॥१४॥

**अलंकार**—अप्रस्तुत प्रशंसा तथा काव्यलिंग के योग से संकर अलंकार है ।

**इरावती**—सखी देख, बकुलावलिका ने मालविका को ठीक कर लिया ।

**निपुणिका**—महारानी ! जैसा आदेश मिला है उसका पालन कर रही है ।

**इरावती**—मेरा सन्देह ठीक ही है । पहिले भली-भाँति जान लूं तब बाद में प्रतिकार करूँगी ।

**बकुलावलिका**—तुम्हारा यह दूसरा चरण भी रँग दिया गया । अब इसमें नूपुर भी पहना दूँ । **( दोनों नूपुरों के पहनाने का अभिनय करके )** सखी ! उठो । अशोक को विकसित करनेवाले महारानी के आदेश का पालन करो ।

( उभे उत्तिष्ठतः । )

**इरावती**—सुदो देवीए णिओओ । होदु दाणिं । [ **श्रुतो देव्या नियोगः । भवत्विदानीम् ।** ]

**बकुलावलिका**—एसो उआरूढराओ उअभोअक्खमो पुरदो दे वट्टई । [ **एष उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरतस्ते वर्तते ।** ]

**मालविका**—( सहर्षम् । ) किं भट्टा । [ **किं भर्ता ।** ]

**बकुलावलिका**—( सस्मितम् । ) ण दाव भट्टा । एसो असोअसाहावलम्बी पल्लवगुच्छओ । ओदंसेहि णं । [ **न तावद्भर्ता । एषोऽशोकशाखावलम्बी पल्लवगुच्छः । अवतंसयैनम् ।**

( मालविका विषादं नाटयति । )

**विदूषकः**—सुदं भवदा । [ **श्रुतं भवता ।** ]

---

कृतप्रक्षालनालक्तकपरिष्कारः । चरणः = पादः । यावदेनम् = यावदेतं चरणम् । सनुपूरम् = नूपुरसहितम् । करोमि = सम्पादयामि । हला उत्तिष्ठ = सखि आगच्छ । अशोकविकासयितृकम् = अशोकपुष्पविकासजनकम् । नियोगम् = आदेशम् । अनुतिष्ठ = सम्पादय ।

( उभे = द्वावपि । उत्तिष्ठतः = उत्थिते भवतः )

**इरावती**—श्रुतः = आकर्णितः । देव्या = धारिण्याः । नियोगः = आदेशः । भवतु = इदं कार्यं भवतु । इदानीम् = अधुना ।

**बकुलावलिका**—एषः = अयम् । उपारूढरागः = उपारूढः रागः यत्र तादृशः सञ्जातरागः । उपभोगक्षमः = उपभोगस्य क्षमः = उपयोगयोग्यः । शिरसि निवेशादिना धारणम् । वृक्षपक्षे । उपारूढरागः = समुत्पन्नस्नेहः सुरताद्युपयोगी च राजपक्षे । अत्र पताकास्थानम् ।

**मालविका** – ( सहर्षम् = हर्षेण सह ) किं भर्ता = कथं महाराज !

**बकुलावलिका**—( सस्मितम् ) न तावद्भर्ता—न हि महाराजः । एषः = अयम् । अशोकशाखावलम्बी = अशोकतरुसंसक्तः । पल्लवगुच्छः = सुकुमारपत्रसमूहः । अवतंसय = कर्णे धारय । एनम् = पल्लवगुच्छम् ।

( मालविका विषादम् = दुःखाभिनयम् नाटयति = करोति । )

**विदूषकः**—श्रुतम् = आकर्णितम् । भवता = श्रीमता !

---

**( दोनों उठती हैं )**

**इरावती**—देवी की आज्ञा तो सुन ली । अच्छा अब यह हो जाये ।

**बकुलावलिका**—सुराग तथा तुम्हारे उपभोग योग्य यह तेरे आगे है ।

**मालविका**—**( हर्ष से )** क्या महाराज !

**बकुलावलिका**—**( मुस्कराकर )** महाराज नहीं, अशोक शाखावलम्बी पल्लवगुच्छ इसे कान में पहन ले ।

**( मालविका विषाद का अभिनय करती है । )**

**विदूषक**—आपने सुना ।

राजा—सखे, पर्याप्तमेतावत्कामिनाम् ।

**अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्ध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति ।**
**परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ॥ १५ ॥**

( मालविका रचितपल्लवावतंसा पादमशोकाय प्रहिणोति । )

राजा—वयस्य,

**आदाय कर्णकिसलयमस्मादियमत्र चरणमर्पयति ।**
**उभयोः सदृशविनिमयादात्मानं वञ्चितं मन्ये ॥ १६ ॥**

---

राजा—सखे = मित्र ! पर्याप्तम् = पूर्णम् । एतावता = यावन्मया श्रुतं तावत् । कामिनाम् = प्रणययुक्तानाम् ।

**अन्वयः**—अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्धयता समागमेन अपि मां प्रति रतिः न परस्पर प्राप्तिनिराशयोः समानुरागयोः शरीरनाशः अपि वरम् ॥ १५ ॥

अनातुरेति । अनातुरोत्कण्ठितयोः = अव्यग्रप्रबलेच्छुकयोः । प्रसिद्धयता = सम्पद्यमानेन । समागमेन = संयोगेन । अपि मां प्रति = अस्मद्सम्बन्धे । रतिः = अनुरागः । न = नहि । परस्परप्राप्तिनिराशयोः = अन्योन्यमिलनाशाशून्ययोः । समानुरागयोः = तुल्यप्रीत्योः । शरीरनाशोऽपि = देहत्यागोऽपि । वरम् = श्रेष्ठम् ॥ १५ ॥

**समासः**—अनातुरोत्कण्ठितयोः = अनातुरश्च उत्कण्ठितश्च तयोः अनातुरोत्कण्ठितयोः । परस्परप्राप्तिनिराशयोः = परस्परस्य प्राप्तिः परस्परप्राप्तिः तस्यां निराशयोः परस्परप्राप्तिनिराशयोः । समानुरागयोः = समः अनुरागः ययोः तयोः समानुरागयोः । शरीरनाशः = शरीरस्य नाशः शरीरनाशः । छन्दः—वंशस्थविलम् वृत्तम् ।

( इयं मालविका । रचितपल्लवावतंसा = निर्मित अशोकपत्रकर्णाभरणा ।
पादम् = चरणाम् । अशोकाय = अशोकवृक्षे । अर्पयति = ददाति )

**राजा**—मित्र,

**अन्वयः**—इयम् अस्मात् कर्णकिसलयम् आदाय अत्र चरणं अर्पयति । उभयोः सदृशविनिमयात् ( अहम् ) आत्मानं वञ्चितं मन्ये ॥ १६ ॥

आदायेति । इयम् = मालविका । अस्मात् = अशोकात् । कर्णकिसलयम् = कर्णाभरणार्थं

---

**राजा**—कामिजन के लिए इतना ही पर्याप्त है ।

पताकास्थानक—द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः ।
प्रधानार्थान्तरापेक्षी पताकास्थानकं परम् ॥ ( साहित्यदर्पण )

जहाँ एक मिलने के लिए व्याकुल हो और दूसरा मिलना ही न चाहता हो, वहाँ उनका मिलना न मिलना बराबर है । पर जहाँ दोनों मिलने के लिए अधीर हों और दोनों एक दूसरे के मिलने से हाथ धो बैठे हों, वहाँ प्राण भी दे देना पड़े तो बुरा नहीं है ।

**अलंकार**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कार ।

**( मालविका पत्तों का गुच्छा कान पर लटकाकर अशोक पर पाद-प्रहार करती है )**

**राजा**—मित्र !

इस मालविका ने अशोक से पल्लव लेकर उस पर चरणन्यास किया । दोनों में समान विनिमय हुआ । कोई घाटे में नहीं रहा ॥ १६ ॥

**अलंकार**—परिवृत्ति अलंकार ।

**मालविका**—वामो वखु, एसो असोओ जो वञ्जअं पमाणीकदुअ कुसुमुग्गमं ण दंसेदि। अवि णाम अह्माण सम्भावणा सफला हवे ?। [ वामः खलु, एषः अशोकः यः व्यञ्जकं प्रमाणीकृत्य कुसुमोद्गमं न दर्शयति। अपि नाम अस्माकं सम्भावना सफला भवेत् ]

**बकुलावलिका**—हला, णत्थि दे दोसो। णिग्गुणो अअं असोओ, जइ कुसुमोब्भेदमन्थरो भव जो दे चलणसक्कारं लम्भिअ। सखि, नास्ति ते दोषः। निपुणोऽयमशोको यदि कुसुमोद्भेदमन्थरो भवेत् यस्ते चरणसत्कारं लम्भितः ]

अनेन तनुमध्यया मुखरनूपुराराविणा
नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन संभावितः।
अशोक यदि सद्य एव मुकुलैर्न संपत्स्यसे
वृथा वहसि दोहदं ललितकामिसाधारणम् ॥ १७ ॥

---

पल्लवम्। आदाय = गृहीत्वा। अत्र = अस्मिन् अशोकवृक्षे। चरणम् = पादम्। अर्पयति = ददाति। उभयोः = अशोकमालविकयोः। सदृशविनिमयात् = समानपरिवर्तनात्। (अहम्) आत्मानम् = स्वकीयम्। वञ्चितम् = प्रतारितम्। मन्ये = जानामि ॥ १६ ॥

**समासः**—कर्णकिसलयम्—कर्णार्थं किसलयम् = कर्णकिसलयम्। सदृशविनिमयात् = सदृशः विनिमयः तस्मात् सदृशविनिमयात्। छन्दः—आर्या जातिः।

**मालविका**—वामः = विपरीतः ( अननुकूलः ) खलु = निश्चयेन, एषः = प्रस्तुतः, अशोकः = अशोकनामकः वृक्षः, यः=यो हि, व्यञ्जकं = पादप्रहारजनितं पुष्पोद्गमरूपं प्रमाणीकृत्य=प्राप्य कुसुमोद्गमं = पुष्पविकसनरूपं, न दर्शयति = न विकासयति, अपि नाम= भवेन्नाम, अस्माकं सम्भावना = अस्मत्कर्तृकविचारधारा, सफला = सफलीभूता भवेत् = पर्यवस्येन्नाम।

**बकुलावलिका**—सखि = हले ! नास्ति ते दोषः = अत्र त्वदीयो दोषो नास्ति। निर्गुणः = गुणशून्यः। अयमशोकः = एषः अशोक वृक्षः। यदि = चेत्। कुसुमोद्भेदमन्थरः = पुष्पविकासालसः। भवेत् = सम्भवेत्। यः ते = तव चरणसत्कारम् = पादप्रहारम्। लब्ध्वा = प्राप्य।

**अन्वयः**—तनुमध्यया मुखरनूपुराराविणा नवाम्बुरुहकोमलेन अनेन चरणेन सम्भावितः ( त्वं ) यदि सद्यः एव कुसुमैः न संपत्स्यते ( तर्हि ) अशोक ! ललितकामिसाधारणं दोहदं वृथा वहसि ॥ १७ ॥

**अनेनेति**। तनुमध्यया = कृशोदर्या मालविकया। मुखरनूपुरराविणा = सशब्दनूपुरशब्दा-

---

**मालविका**—यह अशोक वृक्ष कुछ विपरीत ( अन्यमनस्क ) ज्ञात हो रहा है, क्योंकि पादप्रहार किये जाने पर भी पुष्पोद्गम नहीं दिखाया। हो सकता है हम लोगों की यह कामना सफल हो।

**बकुलावलिका**—यह अशोक तुम्हारे द्वारा पाद-प्रहार से सम्मानित किया गया उस पर भी यदि पुष्पित नहीं होता तो वह उसकी ही अगुणज्ञता है, तुम्हारा कुछ दोष नहीं।

**राजा**—इस कृशोदरी मालविका ने कमल कोमल सनूपुर चरणों द्वारा तुम्हारा सम्मान किया, उस पर भी तुम तत्काल विकसित नहीं हुए। तब तो ललितकामियों के समान दोहद-धारण व्यर्थ ही करते हो ॥ १७ ॥

सखे, वचनानुसरणपूर्वकं प्रवेष्टुमिच्छामि।

विदूषकः—एहि। णं परिहासइस्सं। [ इहि, एनां परिहासयिष्यामि। ]

( उभौ प्रवेशं कुरुतः। )

निपुणिका—भट्टिटणि भट्टिटणि, भट्टा एत्थ पविसदि। [ भट्टिनि भट्टिनि, भर्ताऽत्र प्रविशति। ]

इरावती—एदं मम पढमं चिन्तिदं हिअएण। [ एतन्मम प्रथमं चिन्तितं हृदयेन। ]

विदूषकः—( उपेत्य। ) भोदि, जुत्तं णाम अत्तहोदि पिअवअस्सो अअं असोओ णं वामपादेण ताडिदुं। [ भवति, युक्तं नाम अत्र भवति प्रियवयस्येऽयमशोको ननु वामपादेन ताडयितुम्।

---

यमानेन। नवाम्बुरुहकोमलेन = अभिनवकमलसुकुमारेण। अनेन चरणेन = एतेन पादेन। सम्भावितः = सम्मानितः। ( त्वम् ) यदि सद्यः एव = यदि शीघ्रमेव। कुसुमैः = पुष्पैः। न संपत्स्यते = न समृद्धो भविष्यसि। तदा भो अशोक! ललितकामिसाधारणम् = सुन्दर कामुकजनसमानम्। दोहदम् = रमणीचरणाघातरूपम् अभिलाषम्। वृथा = निरर्थकम्। वहसि = धारयसि॥ १७॥

**समासः**—तनुमध्यया = तनुमध्यं यस्याः सा तया तनुमध्यया। मुखरनूपुराराविणा = मुखरं नूपुरं मुखरनूपुरम् तस्य आरावः अस्ति अत्र तेन मुखरनूपुराराविणा। नवाम्बुरुह कोमलेन = नवं अम्बुरुहम् तद्वत् कोमलेन नवाम्बुरुहकोमलेन। ललितकामिसाधारणम् = ललिताश्च ते कामिनः ललितकामिनः तेषां साधारणम् ललितकामिसाधारणम्।

**अलंकारः**—विषमोऽलङ्कारः लुप्तोपमा च तयोः सङ्करोऽलङ्कारः।

**छन्दः**—पृथ्वी वृत्तम्।

मित्र! वचनानुसरणपूर्वकम् = किमपि वचनं पुरस्कृत्य। प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम् इच्छामि = अभिलषामि।

**विदूषकः**—एहि = आगच्छ। एनाम् = मालविकाम्। परिहासयिष्यामि = परिहासेन विनोदयिष्यामि।

**निपुणिका**—भट्टिनि = राज्ञि! भर्ता = महाराजः। अत्र = अस्मिन् स्थाने। प्रविशति = प्रवेशं करोति। )

**इरावती**—एतत् = इदम्। मम = मया। प्रथमम् = पूर्वम्। चिन्तितम् = विचारितम्।

**विदूषकः**—( गत्वा पार्श्वम् ) भवति = मान्ये मालविके!। अत्रभवति = पूजनीये

---

मित्र कुछ कहने का अवसर पाकर प्रवेश करना चाहता हूँ।

**विदूषक**—आइये, इससे हँसी करता हूँ।

**( दोनों प्रवेश करते हैं )**

**निपुणिका**—स्वामिनी! स्वामिनी! महाराज आ रहे हैं।

**इरावती**—यह तो मैं पहले ही जान गई थी।

**विदूषक—( पास जाकर )** कहिये देवी! क्या हमारे प्रिय मित्र महाराज के उपस्थित रहने पर अशोक वृक्ष पर वामचरण से प्रहार करना क्या उचित होगा?

**उभे**—( ससंभ्रमम् । ) अहो, भट्टा । अहो, भर्ता । ]

**विदूषकः**—बउलावलिए, गहीदत्थाए तुए अत्तहोदी ईरिसं अविणअं करन्ती कीस ण णिवारिदा । [ बकुलावलिके गृहीतार्थया त्वयात्रभवतीदृशमविनयं कुर्वन्ती कस्मान्न निवारिता । ]

( मालविका भयं रूपयति । )

**निपुणिका**—भट्टिणि पेक्ख । किं पउत्तं अज्जगोदमेण । [ भट्टिनि, पश्य । किं प्रवृत्तमार्यगौतमेन । ]

**इरावती**—कहं क्खु बह्मबन्धू अण्णहा जीविस्सदि । [ कथं खलु ब्रह्मबन्धुरन्यथा जीविष्यति । ]

**बकुलावलिका**—अज्ज, एसा देवीए णिओअं अणुचिट्ठदि । एदस्सिं अदिक्कमे परवदी इअं । पसीददु भट्टा । ( इत्यात्मना सहैनां प्रणिपातयति । ) [ आर्य, एषा देव्या नियोगमनुतिष्ठति । एतस्मिन्नतिक्रमे परवतीयम् । प्रसीदतु भर्ता । ]

---

प्रियवयस्ये = मान्यमित्रे । अयमशोकः = एषोऽशोकवृक्षः । ननु = प्रश्ने । वामपादेन = दक्षिणेतरचरणेन । ताडयितुम् = प्रहारं कर्तुम् ।

**उभे**—( ससंभ्रमम् = चकितो भूत्वा ) अहो भर्ता = महाराजोऽत्रोपस्थितोऽस्ति ।

**विदूषकः**—बकुलावलिके ! भो परिचारिके ! गृहीतार्थया = अधिगतसकलरहस्यया । त्वया = बकुलावलिकया । अत्रभवती = श्रीमती मालविका ईदृशम् = अतिमहान्तम् । अविनयम् = नृपावमाननारूपकम् । कुर्वन्ती = सम्पादयन्तीम् । कस्मात् = कस्मात् कारणात् । न निवारिता = नावरुद्धा ।

( मालविका भयं नाटयति )

**निपुणिका**—भट्टिनि ! = महाराज्ञि ! । पश्य = अवलोकय । किं प्रवृत्तम् = किं प्रारब्धम् ? आर्य गौतमेन = आर्य विदूषकेण ।

**इरावती**—कथम् = केन प्रकारेण । खलु = निश्चये । ब्रह्मबन्धुः = ब्राह्मणधनः । अन्यथा जीविष्यति = जीवनं धारयिष्यति ।

**बकुलावलिका**—आर्य ! गौतम ! एषा = मालविका । देव्या = महाराज्ञ्या धारिण्या । नियोगम् = आदेशम् । अनुतिष्ठति = पालयति । एतस्मिन् = अस्मिन् । अतिक्रमे = उल्लंघने ।

---

**उभे—(घबराकर)** अरे महाराज !

**विदूषक**—क्यों बकुलावलिके ! तुम तो सब कुछ जानती थीं फिर भी ऐसे अनुचित आचरण से तुमने इसे रोका नहीं, क्यों ?

**विशेष**—मालविका बाहर से आई हुई नई कुमारी है, उसे इन बातों का ज्ञान नहीं। पर बकुलावलिका तो पुरानी है, सब कुछ जानती है, उसको चाहिये था कि मालविका को रोकती।

**( मालविका भय का अभिनय करती है। )**

**निपुणिका**—महारानी ! देखिए गौतम का अनर्थ।

**इरावती**—यह नीच ब्राह्मण भला कैसे जीएगा ?

**बकुलावलिका**—महाराज ! यह मालविका महारानी धारिणी की आज्ञा का पालन कर रही है। इस अपराध में यह पराधीन है। आप प्रसन्न हों। **(अपने साथ उसे भी प्रणत करती है)।**

राजा—यद्येवमनपराधासि । उत्तिष्ठ भद्रे । ( हस्तेन गृहीत्वैनामुत्थापयति । )

विदूषकः—जुज्जइ देवी एत्थ माणइदव्वा । [ युज्यते देव्यत्र मानयितव्या । ]

राजा—( विहस्य । )

किसलयमृदोर्विलासिनि कठिने निहतस्य पादपस्कन्धे ।

चरणस्य न ते बाधा संप्रति वामोरु वामस्य ॥ १८ ॥

( मालविका लज्जां नाटयति । )

इरावती—अहो, णवणीदकप्पहिअओ अज्जउत्तो । [ अहो, नवनीतकल्पहृदय आर्यपुत्रः । ]

---

परवती = पराधीना । इयम् = मालविका । प्रसीदतु = प्रसन्नो भव । भर्ता = महाराजः । (इति = अनेन प्रकारेण । आत्मना सह = स्वदेहेन साकम् । एनाम् = मालविकाम् । प्रणिपातयति = तथा कर्तुं प्रेरयति । )

राजा—यद्येवम् = यदि धारिणीवचनं पालयति तर्हि अनपराधासि = निर्दोषासि । उत्तिष्ठ भद्रे = उत्थिता भव भवती । करेण आदाय मालविकामुत्थापयति ।

विदूषकः—युज्यते = उचितमस्ति । देवी = धारिणी । अत्र = अस्मिन् विषये । मानयितव्या = माननीया ।

राजा—( हसित्वा )

अन्वयः—हे विलासिनि ! वामोरु ! कठिने पादपस्कन्धे निहितस्य किसलयमृदोः ते वामस्य चरणस्य सम्प्रति बाधा न ॥ १८ ॥

किसलयेति । हे विलासिनि = ललितगत्यादिविलासशीले ! वामोरु = वरजघने ! कठिने = कठोरस्पर्शे कर्कशे । पादपस्कन्धे = वृक्षप्रकाण्डे । निहितस्य स्थापितस्य । किसलयमृदोः = पल्लवकोमलस्य । वामस्य = दक्षिणेतरस्य । चरणस्य = पादस्य । सम्प्रति = इदानीम् । बाधा = पीडा । न विद्यते ॥ १८ ॥

समासः—वामोरु = वामौ ऊरू यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे वामोरु ! पादपस्कन्धे = पादपस्य स्कन्धे = पादपस्कन्धे । किसलयमृदोः = किसलयवत् मृदोः किसलयमृदोः ।

अलङ्कारः—लुप्तोपमा काव्यलिङ्गञ्च ।

छन्दः—आर्या वृत्तम् ।

( मालविका लज्जायाः अभिनयं करोति )

इरावती—अहो = आश्चर्यम् नवनीतकल्पहृदयः = नवनीतकोमलमानसः । आर्यपुत्रः = महाराजः ।

---

राजा—यदि ऐसी बात है, तब तुम निर्दोष हो, उठो । **( हाथ पकड़कर उसे उठाता है )** ।

विदूषक—यहाँ यह ठीक है । देवी की गौरव रक्षा करनी ही है ।

राजा—( हंसकर ) ओ विलासिनी ! ओ वामोरु ! तुमने अपने कोमल चरण से कठिन अशोक की जड़ में प्रहार किया है, उसमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? ॥ १८ ॥

अलंकार—लुप्तोपमा तथा काव्यलिङ्ग अलंकार ।

**( मालविका लज्जा का अभिनय करती है । )**

इरावती—अहा ! आर्यपुत्र का हृदय नवनीत के समान कोमल है ।

मालविका—बउलावलिए, एहि। अणुट्ठिदं अत्तणो णिओअं देवीए णिवेदेम्ह। [ बकुलावलिके, एहि। अनुष्ठितमात्मनो नियोगं देव्यै निवेदयावः ]

बकुलावलिका विण्णवेहि भट्टारं विसज्जेहि त्ति। [ विज्ञापय भर्तारं-विसर्जयेति। ]

राजा—भद्रे, यास्यसि। मम तावदुत्पन्नावसरमर्थित्वं श्रूयताम्।

बकुलावलिका—अवहिदा सुणाहि। आणवेदु भट्टा। [ अवहिता शृणु। आज्ञापयतु भर्ता। ]

राजा—

**धृतिपुष्पमयमपि जनो बध्नाति न तादृशं चिरात्प्रभृति।**
**स्पर्शामृतेन पूरय दोहदमस्याप्यनन्यरुचेः॥ १९॥**

---

**मालविका**—बकुलावलिके! एहि = आगच्छ। अनुष्ठितम् = पालितम्। आत्मनो नियोगम् = अशोकदोहदपूरणात्मकम् आदेशं। देव्यै = धारिण्यै। निवेदयावः = वदावः।

**बकुलावलिका**—( विज्ञापय = कथय। भर्तारम् = स्वामिनं महाराजम्। विसर्जय = गन्तुमनुमन्यस्व। राज्ञः समीपात् तदाज्ञां अनादाय गन्तुं नोचितम् इति नृपं गमनानुज्ञां याचस्व।

**राजा**—भद्रे! = कल्याणि! यास्यसि = गमिष्यसि। मम = मदीयम्। तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्। उत्पन्नावसरम् = प्राप्तकालम्। अर्थित्वम् = प्रार्थना। श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्।

**बकुलावलिका**—अवहिता = दत्तावधाना। शृणु = आकर्णय। आज्ञापयतु = आदिशतु। भर्त्ता = स्वामी।

**अन्वयः**—अयं जनः अपि चिरात् प्रभृति तादृशं धृतिपुष्पं न बध्नाति। अनन्यरुचेः। अस्य अपि दोहदं स्पर्शामृतेन पूरय॥ १९॥

**धृतीति**—अयम् = मल्लक्षणः। जनः अपि = नरोऽपि। चिरात् प्रभृति = बहुकालं व्याप्येत्यर्थः। तादृशम् = पूर्वतुल्यम्। धृतिपुष्पम् = धैर्यरूपम् कुसुमम्। न बध्नाति = नोद्भावयति। अनन्यरुचेः = त्वदेकाभिलापस्य। अस्य अपि=ममापि दोहदम् = अभिलाषम्। स्पर्शामृतेन = शरीरस्पर्शसुधया। पूरय = सम्पादय॥ १९॥

**समासः**—धृतिपुष्पम् = धृतिः एव पुष्पम् धृतिपुष्पम्। अनन्यरुचेः = न अन्यस्यां रुचिः यस्य स तस्य अनन्यरुचेः। स्पर्शामृतेन = स्पर्शः एव अमृतम् तेन स्पर्शामृतेन।

**अलंकारः**—रूपकम् काव्यलिङ्गञ्च अनयोरंगागिभावात् सङ्करः।

---

**मालविका**—बकुलावलिके आओ। देवी से कह दें कि आदेश पालन हो गया।

**बकुलावलिका**—महाराज से गमन करने की आज्ञा ले लें।

**राजा**—कल्याणि जाओ, केवल हमारी एक प्रार्थना सुन लो।

**बकुलावलिका**—सावधान होकर सुनें। महाराज! कहिए।

**राजा**—यह व्यक्ति भी चिरकाल से धैर्य सुमन को धारण नहीं कर सका है अतः अनन्यासक्त इस जन का मनोरथ भी चरणस्पर्श रूप अमृत से पूर्ण कर दो॥ १९॥

**अलंकार**—रूपक, काव्यलिंग दोनों के योग से सङ्कर अलंकार!

इरावती—( सहसोपसृत्य ) पूरेहि पूरेहि । असोओ कुसुमं ण दंसेदि । अअं उण पुप्फदि एव्व [ पूरय पूरय । अशोकः कुसुमं न दर्शयति । अयं पुनः पुष्प्यत्येव । ]

( सर्वे इरावतीं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः । )

राजा—( अपवार्य । ) वयस्य, का प्रतिपत्तिरत्र ।

विदूषकः—किं अण्ण । जङ्घाबलं एव्व । [ किमन्यत् । जङ्घाबलमेव । ]

इरावती—बउलावलिए तुए साहु उवक्कन्तं । दाणिं सफलब्भत्थणं करेहि अज्जउत्तं । [ बकुलावलिके, त्वया साधूपक्रान्तम । इदानीं सफलाभ्यर्थनं कुर्वार्यपुत्रम् । ]

उभे—पसीददु भट्टिणी । काओ अम्हे भत्तुणो पणअपरिग्गहस्स । ( इति निष्क्रान्ते । ) [ प्रसीदतु भट्टिनी । के आवां भर्तुः प्रणयपरिग्रहस्य । ]

इरावती—अविस्ससणीआ पुरिसा । अत्तणो वञ्चणवअणं पमाणीकरिअ आक्खित्ताए वाहजणगीदगहीदचित्ताए विअ हरिणीए एदं ण विण्णादं मए । [ अविश्वसनीयाः पुरुषाः । आत्मनो वञ्चनावचनं प्रमाणीकृत्याक्षिप्तया व्याधजनगीतगृहीतचित्तयेव हरिण्यैतन्न विज्ञातं मया । ]

---

इरावती—( सहसा = अतर्कितम् शीघ्रम् । उपसृत्य = मालविकापार्श्वमागत्य ) पूरय= मनोरथं सम्पादय । अशोकः=अयं वृक्षः । कुसुमं न दर्शयति = पुष्पं न उत्पादयति । अयम्= महाराजः । पुनः पुष्पत्येव = अवश्यं पुष्पं दर्शयति ।

( सर्वे जनाः इरावतीं = राज्ञीम् । दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः = व्यग्राः भवन्ति )

राजा—( शनैः शनैः ) वयस्य ! = मित्र ! का प्रतिपत्तिः = का युक्तिः । अत्र = इदानीम् ।

विदूषकः—किमन्यत = नास्ति कश्चिदुपायः । जङ्घाबलमेव = जङ्घाबलमाश्रित्य अस्मात स्थानात पलायनमेवात्र शरणाम् ।

इरावती—बकुलावलिके ! त्वया साधु = शोभनम् । उपक्रान्तम्=प्रारब्धम् । इदानीम्= अधुना । सफलाभ्यर्थनम् = पूर्णमनोरथम् । कुरु = सम्पादय । आर्यपुत्रम् = राजानम् ।

उभे—प्रसीदतु = प्रसन्ना भवतु । भट्टिनी = राज्ञी । के आवाम् = न स्वः आवाम् किञ्चिदपि भर्तुः = राज्ञः । प्रणयपरिग्रहस्य = स्नेहस्वीकारस्य । इति निष्क्रान्ते = इति पलायिते ।

इरावती—अविश्वसनीयाः = प्रत्ययशून्याः न विश्वासयोग्याः । पुरुषाः = नराः भवन्ति ।

---

**इरावती—( शीघ्र समीप आकर )** पूर्ण करो, पूर्ण करो । अशोक फूल नहीं देता है किन्तु महाराज तो अभी से फूलने जा रहे हैं ।

**( इरावती को देखकर सभी सकपका जाते हैं )**

**राजा—( अलग से )** मित्र ! क्या युक्ति है ? ।

**विदूषक**—और क्या युक्ति है ? केवल ( जाँघों का बल ) भागना ही एक उपाय है ।

**इरावती**—बकुलावलिके ! तुमने तो अच्छा काम किया । अब महाराज को पूर्णमनोरथ कर दो ।

**दोनों** ( मालविका बकुलावलिका )—महारानी प्रसन्न हों ! भला हम कौन होती हैं महाराज की साध पूर्ण करनेवाली ? **( दोनों निकल जाती हैं )** ।

**इरावती**—वस्तुतः पुरुष विश्वासपात्र नहीं होते । मैं क्या जानती थी कि जिस प्रकार व्याधों के मनोरम संगीत को सुनकर हरिणी सुधबुध खोकर जाल में फँस जाती है उसी प्रकार मैं भी इनकी चिकनी चुपड़ी बातों पर विश्वास करके इनके फन्दे में फँस जाऊँगी ।

विदूषकः—( जनान्तिकम् । ) भो, पडिपज्जेहि किंपि उत्तरम् । कम्मग्गहीदेण वि कुम्भीलएण संधिच्छेदे सिक्खिओम्मित्ति वत्तव्वं होदि । [ भो, प्रतिपद्यस्व किमप्युत्तरम् । कर्मगृहीतेनापि कुम्भीलकेन संधिच्छेदे शिक्षितोऽस्मीति वक्तव्यं भवति । ]

राजा—सुन्दरि, न मे मालविकया कश्चिदर्थः । मया त्वं चिरयसीति यथाकथंचिदात्मा विनोदितः ।

इरावती—विस्ससणीओसि । ण मए विण्णादं ईरिसं विणोदवुत्तन्तं अज्जउत्तेण उवलद्ध त्ति । अण्णहा दुक्खभाईणीए एव्व ण करीअदि । [ विश्वसनीयोऽसि । न मया विज्ञातमीदृशं विनोदवृत्तान्तमार्यपुत्रेणोपलब्धम् इति । अन्यथा दुःखभागिन्यैवं न क्रियते । ]

विदूषकः—मा दाव अत्तभवदो दक्खिण्णस्स उअरोहं करेहि । समीवदिट्ठ्ण देवीए परिचारिइत्थिआजणेन संकहावि जयि वारीअदि एत्थ तुमं एव्वं पमाणं ।

---

आत्मनः = स्वस्याः । वञ्चनावञ्चनम् = प्रतारणावाक्यम् । प्रमाणीकृत्य = प्रमाणितं कृत्वा । आक्षिप्ततया = आकृष्टया । व्याधजनस्य = लुब्धकनरस्य । गीतेन = आकर्षक संगीतेन गृहीतम् = आकृष्टम् । चित्तं यस्याः तया । लुब्धकसंगीताकृष्टहृदयया । हरिण्या—मृग्या इव मया एतद = दृश्यमानं कर्म न विज्ञातम् = न विचारितम् ।

विदूषकः—( राजानम् शनैः शनैः ) भो राजन् ! किमपि = किञ्चिदपि । उत्तरम् = प्रश्नोत्तरम् । प्रतिपद्यस्व = प्राप्नुहि । कर्मगृहीतेन = चौरकर्मणि समागतेन । कुम्भीलकेन = चौरेणा संधिच्छेदे = भित्तिकर्तने । शिक्षितः = प्रयोगकुशलः । अस्मीति वक्तव्यं भवति । अहमस्मि इति कथनीयं वर्तते ।

राजा—सुन्दरि ! महिषि ! न मे = नास्ति मदीयः । मालविकया=एतदाख्यया कन्यया । कश्चिदर्थः = किमपि प्रयोजनम् । मया = अग्निमित्रेण । त्वं चिरयसि = त्वमागमने विलम्बं करोषि । अतः यथाकथञ्चित् = येन केन प्रकारेण । आत्मा = स्वकीयं मनः । विनोदितः = प्रमोदमापादितः ।

इरावती—विश्वसनीयोऽसि = नास्ति विश्वासो भवच्चरित्रे । न मया विज्ञातम् = मया इरावत्या इदं न ज्ञातमासीत् । ईदृशं विनोदवृत्तान्तम् = अनया कुमार्या मालविकया सह मनोरञ्जनं कार्यम् । आर्यपुत्रेण = महाराजेन । उपलब्धम् = प्राप्तम् । अन्यथा=मनोरञ्जनज्ञाने सति । दुःखभागिन्या = प्रतिहतभाग्यया मया । एवम् = अत्रागमनं । न क्रियते = न विधीयते ।

विदूषकः—मा तावद् = नहि तावत्कालपर्यन्तम् । अत्रभवती = श्रीमतीमहाराज्ञी ।

---

**विदूषक—( राजा से धीरे-धीरे )** कुछ तो उत्तर दीजिए । चोरी में पकड़ा गया चोर कह देता है कि मैं सेंध नहीं लगा रहा था बल्कि सेंध की विद्या सीख रहा था ।

**राजा—**सुन्दरि ! मालविका से मुझे कोई प्रयोजन नहीं । तुम यहाँ आने में विलम्ब कर रही थी अतएव मैं किसी प्रकार अपना मन बहला रहा था अर्थात् मनोरञ्जन कर रहा था ।

**इरावती—**तुम पर विश्वास नहीं । मैं नहीं जानती थी कि आर्यपुत्र ने ऐसी विनोद की सामग्री पा ली है, अन्यथा मैं अभागिनी ऐसा नहीं करती ।

**विदूषक—**आप महाराज की समानानुरागता पर आक्षेप न करें । महारानी की परिचारिकाओं से जो पास में उपस्थित हो, बातचीत भी यदि निषिद्ध है, तो यह तो आप ही जानें ।

[ मा तावदत्रभवती दाक्षिण्यस्योपरोधं कुरु । समीपदृष्टेन देव्याः परिचारिस्त्रीजनेन संकथापि यदि वार्यते, अत्र त्वमेव प्रमाणम् । ]

इरावती—णं संकहा णाम होदु । किंति अत्ताणं आआसइस्सं । ( इति रुषा प्रस्थिता । ) [ ननु संकथा नाम भवतु । किमित्यात्मानमायासयिष्यामि । ]

राजा—( अनुसरन् । ) प्रसीदतु भवती ।

( इरावती रशनान्धारितचरणा व्रजत्येव । )

राजा—सुन्दरि, न शोभते प्रणयिनि जने निरपेक्षता ।

इरावती—सठ, अविस्ससणीअहिअओसि । ( शठ, अविश्वसनीयहृदयोऽसि । )

राजा—

**शठ इति मयि तावदस्तु ते परिचयवत्यवधीरणा प्रिये ।**
**चरणपतितया न चण्डि तां विसृजसि मेखलयापि याचिता ॥ २० ॥**

---

दाक्षिण्यस्य = दक्षिणनायकत्वस्य (सर्वासु भार्यासु तुल्यानुरागतया ख्यातेरित्यर्थः) उपरोधम् = बाधाम् । मा कुरु = न विधेहि । देव्याः = महिष्याः । समीपदृष्टेन = पार्श्वागतेन । परिचारि स्त्रीजनेन = केनापि दासीजनेन । संकथापि = वार्तालापोऽपि । वार्यते = प्रतिषिध्यते । अत्र त्वमेव प्रमाणम् = भवान् एव तदा जानातु ।

इरावती—ननु संकथा नाम भवतु = विदूषक ! भवतु मालविकया सह राज्ञः आलापः किम् आत्मानम् = किमर्थं स्वकीयाम् । आयासयिष्यामि = क्लेशयिष्यामि । इति रुषा = क्रोधेन सह प्रस्थिता = गता ।

राजा—(अनुसरन् = इरावतीमनुसरन्) प्रसीदतु = प्रसन्ना भवतु । भवती = श्रीमती ।

( इरावती रशनासंधारितचरणा = काञ्चीदामनिगडितपादा । व्रजत्येव = गच्छत्येव । )

राजा—सुन्दरि ! = प्रेयसि ! न शोभते = उचितवत् न प्रतीयते । प्रणयिनि = स्नेहाधीने । जने = लोके । निरपेक्षता = व्यवहाररूक्षता ।

इरावती - शठ ! = धूर्त ! अविश्वसनीयहृदयः = विश्वासायोग्यमना । असि = भवसि ।

अन्वयः—प्रिये ! मयि तावत् शठ इति ते परिचयवती अवधीरणा अस्तु । (हे) चण्डि ! चरणपतितया मेखलया अपि याचिता तां न विसृजसि ॥ २० ॥

शठ इति । प्रिये ! = प्रियतमे ! । मयि = अस्मद् सम्बन्धे । तावत् शठ इति = तावद् धूर्त इति । ते = तव । परिचयवती = सुज्ञाता । अवधीरणा = तिरस्क्रिया अस्तु = भवतु ।

---

**इरावती**—वार्तालाप होवे, मैं क्यों बीच में पड़ूँगी ? ( **क्रोध के साथ चली जाती है** )।

**राजा**—( **पीछे-पीछे जाते हुए** ) देवी प्रसन्न हो जाइए ।

( **इरावती पैर में फँसी हुई तगड़ी को घसीटती हुई चली जाती है ।** )

**राजा**—प्रेयसि ! अपने प्रियतम की उपेक्षा करना तुम्हें शोभा नहीं देता ।

**इरावती**—अरे शठ ! मुझे तुम्हारा तनिक भी विश्वास नहीं है ।

**राजा**—तुमने शठ कहकर जो मेरा अनादर किया है, वह तो कोई नयी बात नहीं है । परन्तु हे चण्डि ! जब तुम्हारी तगड़ी भी तुम्हारे चरणों पर गिरकर क्षमा माँग रही है तब भी तुम क्या अपना क्रोध न छोड़ोगी ? ॥ २० ॥

**इरावती**—इअं पि हदासा तुमं एव्व अणुसरदि। ( इति रशनामादाय राजानं ताडयितुमिच्छति। ) [ इयमपि हताशा त्वामेवानुसरति। ]

**राजा**—वयस्य, इयमिरावती।

**बाष्पासारा हेमकाञ्चीगुणेन श्रोणीबिम्बादप्युपेक्षा च्युतेन।**
**चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघराजीव-विन्ध्यम्॥ २१॥**

---

हे चण्डि ! हे कोपनशीले ! चरणपतितया = पादयोः प्रणतवत्या। मेखलया = काञ्चीदाम्ना। अपि याचिता = प्रार्थिता। ताम् = तिरस्क्रियाम्। न विसृजसि=न जहासि॥२०॥

**अलंकारः**—विशेषोक्तिरलङ्कारः।

**छन्दः**— अपरवक्त्रम्। "अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।" लक्षणम्।

**शठनायकलक्षणम्**—शठोऽयमेकत्र वद्धभावो यः।

दर्शितवहिरनुरागो विप्रियमन्यत्रगूढमाचरति।

**इरावती**—इयमपि = मेखलापि। हताशा = अति दुष्टस्वभावा। त्वामेव=राजानमेव। अनुसरति = अनुकरोति। त्वमिव मां अनुनेतुं चेष्टाकरोति। (एतत् कथयित्वा। रशनाम् = मेखलाम्। आदाय = नीत्वा। राजानम् = महाराजम्। ताडयितुम् = प्रहारं कर्तुम्। इच्छति = अभिलषति।

**राजा**—वयस्य = मित्र !। इयम् = एषा। इरावती राज्ञी।

**अन्वयः**—( वाष्पासारा ) मेघराजी विद्युद्दाम्ना विन्ध्यम् इव वाष्पसारा चण्डी श्रोणीबिम्बात् उपेक्षाच्युतेन हेमकाञ्चीगुणेन मां चण्डं हन्तुम् अभ्युद्यता॥ २१॥

**वाष्पसारेति**। ( वाष्पसारा = जलधारायुक्ता ) मेघराजी = घनपटली। विद्युद्दाम्ना = विद्युल्लतया। विन्ध्यम् = विन्ध्याचलम्। इव। वाष्पसारा = नेत्रजलाप्लुता। चण्डी = अतिशयकोपना। श्रोणीबिम्बात् = नितम्बप्रदेशात्। उपेक्षाच्युतेन = प्रमादपतितेन। हेमकाञ्चीगुणेन = सुवर्णरचितरशनादाम्ना। मां चण्डम् = मामतिकठोरम्। हन्तुम् = ताडयितुम्। अभ्युद्यता = प्रवृत्ता॥ २१॥

**समासः**—वाष्पासारा = वाष्पस्य आसारो यस्यां सा वाष्पासारा। मेघराजी = मेघानां राजी मेघराजी। श्रोणीबिम्बात् = श्रोण्योः बिम्बः तस्मात् श्रोणीबिम्बात्। हेमकाञ्चीगुणेन = हेम्नः काञ्ची हेमकाञ्ची सा एव गुणः तेन हेमकाञ्चीगुणेन।

**अलंकारः**—उपमा, छेकानुप्रासश्च तयोः संसृष्टिरलंकारः।

**छन्दः**—शालिनी वृत्तम्।

---

**इरावती**—यह अभागिनी भी तुम्हारे ही समान है। **( यह कहकर राजा पर मेखला प्रहार करना चाहती है )।**

**राजा**—मित्र ! यह इरावती। मेघमाला जिस प्रकार विद्युन्माला से विन्ध्यपर्वत को प्रताड़ित करती है उसी प्रकार सक्रोध एवं साश्रुनयना यह इरावती उपेक्षापूर्वक पतित मेखला से मेरे ऊपर प्रहार करना चाह रही है॥ २१॥

**अलंकार**—उपमा, छेकानुप्रास। दोनों के योग से संसृष्टि अलंकार।

इरावती—किं मे एव्व भूओ वि अवरद्धं करेसि । [ किं मामेव भूयोऽप्यपराद्धां करोषि । ]

राजा –( सरशनं हस्तमवलम्बयति । )

**अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि ।**
**वर्द्धयसि-विलसितं त्वं दासजनायाद्य कुप्यसि च ॥ २२ ॥**

नूनमिदमनुज्ञातम् । ( इति पादयोः पतति । )

इरावती—ण क्खु इमे मालविआचलणा, जा दे हरिसदोहलं पूरयिस्सन्ति । ( इति निष्क्रान्ता सह चेट्या । ) [ न खल्विमौ मालविकाचरणौ यौ ते हर्षदोहदं पूरयिष्यतः । ]

विदूषकः – उट्ठेहि । अकिदप्पसादोऽसि । [ उत्तिष्ठ । अकृतप्रसादोऽसि । ]

---

**इरावती**—किम् = कथम् । मामेव = इदं उक्त्वा माम् । भूयोऽपि अपराद्धाम् = सापराधां करोषि ।

**राजा**—( सरशनम् = मेखलायुक्तम् । हस्तम् = करम् । अवलम्बयति = गृह्णाति । )

**अन्वयः**—( हे ) कुटिलकेशि ! अपराधिनि मयि उद्यतं दण्डम् किं संहरसि ? त्वं विलसितं वर्धयसि, दासजनाय अत्र कुप्यसि च ॥ २२ ॥

**अपराधिनीति** । हे कुटिलकेशि ! = हे कुञ्चितकचकलापे ! अपराधिनि = सापराधे । मयि = महाराजे । उद्यतम् = तत्परम् । दण्डम् = मेखलाप्रहारम् । किं संहरसि = कथं संकोचयसि ? त्वम् = इरावती । विलसितम् = लीलाविशेषम् । वर्धयसि = विख्यापयसि दासजनाय = सेवकाय । अत्र = इदानीम् । कुप्यसि च = क्रोधं प्रकटयसि च ॥ २२ ॥

**समासः**—कुटिलकेशि ! = कुटिलाः केशा यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे कुटिलकेशि !

**छन्दः**—आर्या वृत्तम् ।

नूनम् = निश्चयम् । इदम् = मत्प्रार्थितम् अपराधपात्ररूपम् । अनुज्ञातम् = स्वीकृतम् ।

**इरावती**—न खलु इमौ = एतौ न स्तः । मालविका चरणौ = दासी पादौ । यौ = चरणौ । ते = तव । हर्षदोहदम् = हर्षात्मकं अभिलाषविशेषम् । पूरयिष्यतः = सम्पादयिष्यतः । ( इति निष्क्रान्ता = निर्गच्छति । सह चेट्या = परिचारिकया सह )

**विदूषकः**—उत्तिष्ठ = उत्थितो भव । अकृतप्रसादः = अविहितकृपः । असि ।

---

**इरावती**—आप पुनः मुझको क्रुद्ध बनाकर अपराध करवाना चाह रहे हैं क्यों ?

**राजा—( मेखला युक्त हाथ को पकड़ लेता है । )**

अरे कुञ्चित केशकलापवाली ! मुझ अपराधी के लिए प्रस्तुत दण्ड को क्यों रोक रही हो ? एक ओर तो तुम लीला विशेष को बढ़ा रही हो और इधर मुझ सेवक पर क्रोध भी कर रही हो ॥ २२ ॥

तो आपने मेरी बात मान ली है । **( ऐसा कहकर चरणों पर गिरता है )** ।

**इरावती**—ये मालविका के चरण नहीं है, जो तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करेंगे । **( ऐसा कहकर दासी के साथ निकल जाती है । )**

**विशेष**—इरावती का क्रोध शान्त होना कठिन था । वह राजा पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि ये मालविका के चरण नहीं, इरावती के हैं, जो तुम्हें आनन्द नहीं दे सकते ।

**विदूषक**—उठिए । रानी का अनुग्रह नहीं प्राप्त कर सके ।

**राजा**—( उत्थायेरावतीमपश्यन् । ) तत्कथं गतैव प्रिया ।

**विदूषकः**—वअस्स, दिट्ठिआ इमस्स अविणअस्स अप्पसण्णा गदा एसा । ता वअं सिग्घं अवक्कमाम । जाव अङ्गारओ रासि विअ अणुवङ्कं परिगमणं ण करेदि । [ **वयस्य, दिष्ट्या अनेनाविनयेनाप्रसन्ना गतैषा । तद्वयं शीघ्रमपक्रमामः । यावदङ्गारको राशिमिवानुवक्रं प्रतिगमनं न करोति ।** ]

राजा—अहो मदनस्य वैषम्यम् ।

**मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवाम् ।**
**एवं हि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितुं कुपिता ॥ २३ ॥**

( इति निष्क्रान्तः सह वयस्येन । )

इति तृतीयोऽङ्कः ।

---

**राजा**—( उत्थितो भूत्वा । इरावतीमपश्यन् = राज्ञीमनवलोकयन् । ) तत् = तदा । कथम् = किम् । प्रिया = इरावती । गतैव = अगच्छदेव ।

**विदूषकः**—वयस्य ! मित्र ! दिष्ट्या = सौभाग्येन । अनेन = एतेन । अविनयेन = अपराधेन । अप्रसन्ना = असन्तुष्टा । गता = अगच्छत् । एषा = इरावती । तद् = तदा । वयम् शीघ्रम् = त्वरितम् । अपक्रमामः = निर्गच्छामः । यावद् = यावत्कालपर्यन्तम् । अङ्गारकः = मंगलो ग्रहः । राशिम् = वक्रभावेन स्वभोग्यं राशिं सङ्क्रम्य जनस्यानिष्टं जनयति । अनुवक्रम् = पश्चात् वक्रगत्या । प्रतिगमनं न करोति = पुनः पृष्ठम् न आगच्छति ।

**राजा**—अहो = आश्चर्यम् ! मदनस्य = कामदेवस्य । वैषम्यम् = विपरीतकारित्वम् ।

**अन्वयः**—प्रियाहृतमनाः ( अहम् ) तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवां मन्ये मयि प्रणयवति सा कुपिता एवं उपेक्षितुं शक्यम् ॥ २३ ॥

**मन्य इति** । प्रियाहृतमनाः = मालविकाधिकृतहृदयः । तस्याः = इरावत्याः । प्रणिपात-

---

**राजा**—( **उठकर और इरावती को नहीं देखते हुए** ) क्या प्रियतमा चली ही गई ?

**विदूषक**—मित्र ! भाग्यवश इस अपराध से अप्रसन्न होकर चली गई है । जब तक जिस प्रकार मंगलग्रह वक्र भाव से दूसरी राशि में आता है, उसी प्रकार फिर वह रानी नहीं आ जाती, तभी तक हम लोग निकल चलें ।

**अंगारक**=अंगारक मंगलग्रह को कहते हैं, क्योंकि वह अंगारे के समान लाल होता है तथा युद्ध का देव माना गया है । मंगल ग्रह ७६० दिनों में सूर्य के चारों ओर अपने एक चक्कर में एक बार ६० दिनों के लिए वक्र होकर अपनी राशि में आ जाता है और अपनी इस वक्रगति में प्रजाओं में बुरा फल दिखाता है ।

**राजा**—आश्चर्य है, कामदेव की विपरीत कृति बड़ी ही विलक्षण है ।

प्रियतमा मालविका ने मेरे हृदय को आकृष्ट कर लिया है अतएव इरावती की अप्रसन्नता को मैं उपकार ही मान रहा हूँ । क्योंकि वह इरावती क्रुद्ध है उसकी उपेक्षा करके भी कुछ समय तक रहा जा सकता है ॥ २३ ॥

**अलंकार**—अनुकूल अलंकार ।

**( राजा मित्र विदूषक के साथ निकल जाता है )**

**॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥**

# चतुर्थोऽङ्कः

( ततः प्रविशति पर्युत्सुको राजा प्रतीहारी च )

राजा—( आत्मगतम् )

**तामाश्रित्य श्रुतिपथगतामाशया बद्धमूल**
**संप्राप्तायां नयनविषयं रूढरागप्रवालः ।**
**हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव व्यक्तरोमोद्गमत्वात्-**
**कुर्यात्कान्तं मनसिजतरुर्मां रसज्ञं फलस्य ॥ १ ॥**

---

लङ्घनम् = मदीयनमनातिक्रमम् । सेवाम् = उपकारम् । मन्ये = जानामि । मयि प्रणयवति= मत्सम्बन्धे रागासक्ते । सा = इरावती । कुपिता = क्रुद्धा । एवम् = अनेन प्रकारेण । उपेक्षितुम् = कियन्तं कालं उपेक्ष्य स्थातुम् । शक्यम् = योग्यम् ॥ २३ ॥

**समासः**—प्रियाहृतमनाः = प्रियया हृतं मनः यस्य सः प्रियाहृतमनाः । प्रणिपात लङ्घनम् = प्रणिपातस्य लङ्घनम् प्रणिपातलङ्घनम् ।

**अलंकारः**—अनुकूलम् अलङ्कारः ।

**छन्दः**—आर्या जातिः ।

( इति निष्क्रान्तः = निर्गतः । वयस्येन = मित्रेण विदूषकेण सह )

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—०—

( तत्पश्चात् पर्युत्सुकः = विरहाकुलः । राजा = अग्निमित्रः । प्रतीहारी = सन्देश-वाहिका च । प्रविशति = प्रवेशं करोति । )

राजा—( स्वमनसि )

**अन्वयः**—श्रुतिपथगताम् ताम् आश्रित्य आशया बद्धमूलः नयनविषयं सम्प्राप्तायां रूढ-रागप्रवालः हस्तस्पर्शैः व्यक्तरोमोद्गमत्वात् मुकुलित इव मनसिजतरुः क्लान्तं मां फलस्य रसज्ञं कुर्यात् ॥ १ ॥

**तामेति** । श्रुतिपथगताम् = श्रवणच्छिद्रप्राप्ताम् । ताम् = मालविकाम् । आश्रित्य = आश्रयं विधाय । आशया = तत्प्राप्त्यभिलाषया । बद्धमूलः = प्रौढाशः । नयनविषयम् = नेत्रगोचरताम् । सम्प्राप्तायाम् = प्रकाममालोकितायाम् । रूढरागप्रवालः = उत्पन्नानुराग-पल्लवः । हस्तस्पर्शैः = करस्पर्शैः । व्यक्तरोमोद्गमत्वात् = स्पष्टरोमाञ्चितत्वात् । मुकुलितः=

---

**( तदनन्तर उत्कण्ठित राजा और प्रतीहारी का प्रवेश । )**

**राजा—( मन ही मन )** अपनी प्रेयसी मालविका से सम्बद्ध बातों से बढ़ी हुई आशा ही जिसकी जड़ है । प्रियतमा के दर्शन से उत्पन्न अनुराग ही जिसके पल्लव हैं तथा उसके करकिसलयों के स्पर्श से उत्थित रोमाञ्च ही जिसके पुष्प है । वह प्रेम का वृक्ष ही मुझे उसका स्वामी बनाकर अपने फल के रसास्वादन का अवसर दे ॥ १ ॥

**अलंकार**—उत्प्रेक्षा, साङ्गरूपक ।

**विशेष**—मालविका के प्रति राजा के प्रेम को एक वृक्ष रूप में चित्रित किया गया है । आशा ही वृक्ष की जड़ है । नयनों से दर्शन ही कोंपल रूप में है । हस्त स्पर्श से उत्पन्न रोमाञ्च ही कलिका का उद्‌गम है । अब मिलन रूपी फल मिलने वाला है ।

( प्रकाशम् । ) सखे गौतम ।

प्रतीहारी—जेदु जेदु भट्टा । असंणिहिदो गोदमो । [ जयतु जयतु भर्ता । असंनिहितो गौतमः । ]

राजा—( आत्मगतम् । ) आः, मालविकावृत्तान्तज्ञानाय मया प्रेषितः ।

विदूषकः—( प्रविश्य । ) वड्ढदु भवं । [ वर्धतां भवान् । ]

राजा—जयसेने, जानीहि तावत्क देवी धारिणी सरुजचरणत्वाद्विनोद्यत इति ।

प्रतीहारी—जं देवी आणवेदि । ( इति निष्क्रान्ता । ) [ यद्देव आज्ञापयति । ]

---

उत्पन्नपुष्पः । इव = तुल्यः । मनसिजतरुः = मदनपादपः । क्लान्तम् = सन्तप्तम् । माम् = राजानम् । फलस्य = सम्भोगानन्दस्य । रसज्ञम् = सुखाभिज्ञम् । कुर्यात् = विदध्यात् ॥ १ ॥

समासः—श्रुतिपथगताम् = श्रुतेः पन्थाः श्रुतिपन्थाः तस्मिन् गता ताम् = श्रुतिपथगताम् । बद्धमूलः = बद्धं मूलं यस्य सः बद्धमूलः । नयनविषयम् = नयनयोः विषयम् नयनविषयम् । रूढरागप्रवालः = रूढानि राग एव प्रवालानि यस्मिन् सः रूढरागप्रवालः । हस्तस्पर्शैः = हस्तस्य स्पर्शैः हस्तस्पर्शैः । व्यक्तरोमोद्गमत्वात् = व्यक्ता रोम्णाम् उद्गमा यस्मिन् सः व्यक्तरोमोद्गमः तस्य भावः तस्मात् = व्यक्तरोमोद्गमत्वात् । मनसिजतरुः = मनसिजस्य-तरुः मनसिजतरुः ।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा, साङ्गरूपकम्, अलङ्कारः ।

छन्दः—मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

( प्रकाशम् = प्रकटरूपेण ) सखे ! = मित्र ! गौतम ! = विदूषक !

प्रतीहारी—( भर्तुः स्वामिनो विजयो भवतु । ) असंनिहितः = अनुपस्थितः । गौतमः = गौतमो नामा विदूषकः ।

राजा—( स्वकीये मनसि ) आः = आश्चर्यम् ! मालविकावृत्तान्तज्ञानाय = मालविका-समाचारानयनाय । प्रेषितः = गतो गौतमः ।

विदूषकः—( प्रवेशं कृत्वा ) वर्धताम् = सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । भवान् = महाराजोऽग्निमित्रः ।

राजा—जयसेने ! जानीहि = अवगच्छ । तावत् = तदा । क्व = कस्मिन् स्थाने देवी = महाराज्ञी । धारिणी = प्रधानमहिषी । सरुजचरणत्वात् = रुग्णपादत्वात् । विनोद्यते = प्रसाद्यते ।

प्रतीहारी—यद्देव आज्ञापयति = देवस्य याऽऽज्ञा ( इति निष्क्रान्ता = इति निर्गता । )

---

( प्रकट ) मित्र गौतम !

प्रतीहारी—जय हो, महाराज की जय हो । गौतम जी यहाँ नहीं हैं ।

राजा—( मन ही मन ) अरे ! मैंने ही तो उनको मालविका के समाचार को जानने के लिए भेजा है ।

विदूषक—( प्रवेशकर ) आपको बधाई है ।

राजा—जय सेना ! आओ देखो तो, देवी धारिणी अपना चोट लगा हुआ पैर लिए कहाँ जी बहला रही है ?

प्रतीहारी—जैसी महाराज की आज्ञा । ( निकल जाती है )

राजा—गौतम, को वृत्तान्तस्तत्रभवत्यास्ते सख्याः।

विदूषकः—जो बिडालगहीदाए परहुदिआए। [ यो बिडालगृहीतायाः परिभृतिकायाः ]

राजा—( सविषादम्। ) कथमिव।

विदूषकः—सा क्खु तवस्सिणी तए पिङ्गलच्छीए सारभण्डभूघरए गुहाए विअ णिक्खित्ता। [ सा खलु तपस्विनी तथा पिङ्गलाक्ष्या सारभण्डभूगृहे गुहायामिव निक्षिप्ता। ]

राजा—ननु मत्संपर्कमुपलभ्य ?।

विदूषकः—अह इं [ अथ किम्। ]

राजा—क एवं विमुखोऽस्माकम्। येन चण्डीकृता देवी।

विदूषकः—सुणादु भवं। परिव्वाजिआए मे कहिदं। हिओ किल तत्तहोदी इरावदी रुअवकन्तचलणं देविं सुहपुच्छिआ आअदा। [ शृणोतु भवान्। परिव्राजिकया मे कथितम्। ह्यः किल तत्रभवतीरावती रुजाक्रान्तचरणां देवीं सुखपृच्छिकाऽऽगता ]

---

राजा—गौतम ! = भो विदूषक ! को वृत्तान्तः = कः समाचारः। तत्रभवत्याः = आदरणीयायाः। ते सख्याः = मालविकायाः।

विदूषकः—यः = वृत्तान्तः दशा वा। विडालगृहीतायाः = मार्जारधृतायाः। परिभृतिकायाः = कोकिलायाः। मालविका जीवनविषये नैराश्यमस्ति।

राजा—( दुःखपूर्वकम् ) कथमिव = किमुक्तम् भवता।

विदूषकः—सा खलु तपस्विनी=एषा निरपराधविपन्ना मालविका। तया पिंगलाक्ष्या = क्रूरकर्मकारिण्या पिंगलाक्षी नाम्न्या दास्या। सारभाण्डभूगृहे = धनाभूषणपात्रभूतलान्तर्वर्तिनिगृहे। गुहायाम् = विशालगर्त्ते निक्षिप्ता = स्थापिता।

राजा—ननु = प्रश्ने। मत्सम्पर्कम् = ममगुप्तानुरागम् = उपलभ्य = विज्ञाय।

विदूषकः—अथ किम् = त्वदीयसम्बन्धेनैव सा दण्डिता।

राजा—क एवं = को नरः ईदृशः। विमुखः = प्रतिकूलः। अस्माकम् = मम। येन = यस्य प्रयत्नेन। चण्डीकृता = प्रकोपं गमिता। देवी = महाराज्ञी धारिणी।

विदूषकः—शृणोतु = आकर्णयतु। भवान् = श्रीमान्। परिव्राजिकया = कौशिकीति

---

राजा—गौतम ! तुम्हारी सखी मालविका के क्या समाचार हैं ?

विदूषक—वही जो बिल्ली के पंजे में पड़ी हुई कोयल के होते हैं।

राजा—( दुःखित होकर ) किस प्रकार ?

विदूषक—बेचारी तपस्विनी मालविका को क्रूरकर्मा पीली आँखों वाली दासी ने स्वर्णाभूषण पात्र रखे जाने वाले भूमिगृह की गुफा में बन्द कर दिया है।

राजा—मेरे प्रेम की बात जानने के कारण ही बन्द किया होगा।

विदूषक—और क्या ? यही कारण है।

राजा—ऐसा कौन हमारा शत्रु है ? जिसने देवी को इतना क्रुद्ध बना दिया।

विदूषक—आप सुनिए। मुझसे परिव्राजिका जी कह रही थीं कि कल पैर में चोट खाई हुई देवी धारिणी से कुशल मंगल पूछने इरावती वहाँ गई थीं।

राजा—ततस्ततः।

विदूषकः—तदो सा देवीए पुच्छिदा। किं णु ओलोइदो वल्लहजणोत्ति। ताए उत्तं—मन्दो वो उवआरो जं परिजणे सजन्तं वल्लहत्तणं ण जाणोअदि। [ ततः सा देव्या पृष्टा। किंत्वलोकितो वल्लभजन इति। तयोक्तम्। मन्दो व उपचारः यत्परिजने संक्रान्तं वल्लभत्वं ज्ञायते। ]

राजा—अहो, निर्भेदादृतेऽपि मालविकायामयमुपन्यासः शङ्कयति।

विदूषकः—तदो ताए अणुबन्धिज्जमाणाए सा भवदो अविणअं अन्तरेण परिगदत्था किदा देवी। [ ततस्तयानुबन्ध्यमानया सा भवतोऽविनयमन्तरेण परिगतार्था कृता देवी। ]

राजा—अहो दीर्घरोषता तत्रभवत्याः। अतः परं कथय।

---

विख्यातया सन्यासिन्या। मे कथितम् = मे निवेदितम्। ह्यः = विगतदिने। किल = निश्चये। तत्रभवती=श्रीमती आदरणीया। इरावती = तन्नाम्नी देवी। रुजाक्रान्तचरणाम् = व्यथापूर्णापादाम्। देवीम् = महाराज्ञीं धारिणीम्। सुखपृच्छिका = सुखं प्रष्टुम्। आगता = आगच्छत्।

राजा—ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवत्।

विदूषकः—ततः = तत्पश्चात्। सा = इरावती। देव्या=धारिण्या। पृष्टा = जिज्ञासिता। किन्ववलोकितः = किं भवत्या दृष्टः प्रमदवने। वल्लभजनः = प्रियो महाराज इति। तया = इरावत्या। उक्तम् = कथितम्। मन्दः = अप्रशस्तः। वः = युष्माकम्। उपचारः = राजनि वल्लभव्यवहारः। यत् = यस्मात्। परिजने = स्वकीयपरिचारकजने ( मालविकायाम् ) सङ्क्रान्तम् = गतम्। वल्लभत्वम् = प्रियत्वम्। न ज्ञायते = नावमन्यते। परिचारिकासक्तो महाराजो वल्लभः इति कथनं न शोभते।

राजा—अहो = आश्चर्यम्। निर्भेदात् = प्रेमबन्धस्य प्रकाशीभावात्। ऋते = विनाऽपि मालविकायाम् = तस्यां दास्याम्। अयमुपन्यासः = कलङ्ककथनम्। शङ्कयति = कोपभयं जनयति।

विदूषकः—ततः = तत्पश्चात्। तया राज्या धारिण्या। अनुबन्ध्यमानया = सविशेषमनुरुध्यमानया। सा = इरावती। भवतः = श्रीमतः। अविनयम् = अशिष्टमाचरणाम्। अन्तरेण = विना। परिगतार्था = विज्ञातविषया। कृता = विहिता। देवी धारिणी।

राजा—अहो = आश्चर्यम्। तत्रभवत्या = श्रीमत्या इरावत्या। दीर्घरोषता = चिरकाल कोपता। अतः = एतस्मात्। परम् = अपरम्। कथय = वद।

---

राजा—तब क्या हुआ ?

विदूषक—तब उनसे महारानी ने पूछा—कहो, प्रियतम से इधर भेंट हुई थी ? इस पर उन्होंने कहा—अब उन्हे प्रियतम न कहिए। क्या आप नहीं जानतीं कि वे अब दासियों से प्रेम करने लगे हैं ?

राजा—यद्यपि बात स्पष्ट नहीं कही गई फिर ज्ञात होता है कि मालविका को लक्ष्य करके कहा है।

विदूषक—इसके पश्चात् महारानी धारिणी के आग्रह करने पर इरावती ने आपको बचाते हुए सारी कथा उनसे कह दी।

राजा—( साश्चर्य ) उसका क्रोध इतने दिनों तक रहा। आगे बताओ।

विदूषकः—किं अवरं । मालविआ बउलावलिआ अ पादालवासं णिगलपदीओ अदिट्ठसुज्जपादं णागकण्णआओ विअ अणुहोन्ति । [ किमपरम् । मालविका बकुलावलिका च पातालवासं निगलपद्यावदृष्टसूर्यपादं नागकन्यके इवानुभवतः । ]

राजा—कष्टं कष्टम् ।

मधुरस्वरा पराभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसङ्गिन्यौ ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते ॥ २ ॥

अप्यत्र कस्यचिदुपक्रमस्य गतिः स्यात् ।

---

**विदूषकः**—किम् अपरम् = अतः परं किं वक्तव्यम् । मालविका बकुलावलिका च । निगलपद्यौ = शृङ्खलाबद्धचरणे । अदृष्टसूर्यपादम् = अनवलोकितरविकिरणम् । नागकन्यके= सर्पबाले । इव अनुभवतः = अनुभवं कुरुतः ।

**राजा**—कष्टं कष्टम् = हा अतिकष्टम् वर्तते ।

**अन्वयः**—विबुद्धचूतसङ्गिन्यौ मधुररवा परभृतिका भ्रमरी च प्रबलपुरोवातया अकाल-वृष्ट्या कोटरं गमिते ॥ २ ॥

**मधुरेति** । विबुद्धचूतसङ्गिन्यौ = प्रस्फुटाम्रमञ्जरीविहारिण्यौ । मधुररवा = मृदुस्वरा । परभृतिका = कोकिला । भ्रमरी च = मधुकरी च । प्रबलपुरोवातया = प्रचण्डपौरस्त्यपव-नया । अकालवृष्ट्या = असामयिक वर्षाभिः । कोटरं = गर्भगृहम् । गमिते = प्रापिते ॥ २ ॥

**समासः**—विबुद्धचूतसंगिन्यौ = विबुद्धः चूतः विबुद्धचूतः तस्मिन् संगिन्यौ = विबुद्धचूत-संगिन्यौ । मधुररवा = मधुरो रवो यस्या सा मधुररवा । प्रबलपुरोवातया = प्रबलश्चासौ पुरोवातः यस्यां सा तया प्रबलपुरोवातया । अकालवृष्ट्या = अकाला वृष्टिः अकालवृष्टिः तया अकालवृष्ट्या ।

**अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः ।

**छन्दः**—आर्या वृत्तम् ।

**अप्यत्र** = प्रश्नवचनम् । कस्यचिदुपक्रमस्य = कस्याप्युपायस्य । गतिः स्यात् = सम्भावना अस्ति ।

---

**विदूषक**—और क्या कहूँ ? मालविका और बकुलावलिका के चरणों में बेड़ियाँ डाल दी गई और सूर्य किरण दर्शन से वञ्चित वे दोनों नागकन्या के समान पातालवास का अनुभव कर रही हैं ।

**राजा**—अत्यन्त कष्ट है ।

बौरे हुए आम के साथ रहनेवाली मधुर भाषिणी कोयल और भ्रमरी दोनों को प्रचण्ड पुरवाई और असमय की वर्षा ने पेड़ के कोटर में बन्द कर दिया ॥ २ ॥

**अलंकार**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः ।

**विशेष**—राजा के साथ विकसित होता हुआ मालविका का प्रेम विकसित आम का वृक्ष है । मधुरभाषिणी मालविका कोयल है । उसकी संरक्षा में तल्लीन बकुलावलिका भ्रमरी है । कुपिता इरावती झंझापूर्ण अकाल वृष्टि है, जिसके परिणामस्वरूप कोयल और भ्रमरी को भूगर्भगृह रूपी वृक्ष कोटर में बन्द होना पड़ा । उक्त अन्योक्ति अत्यन्त मार्मिक है ।

अब उन्हें छुड़ाने का कोई उपाय हो सकता है या नहीं ।

विदूषकः—कहं भविस्सदि। जं सारभाण्डघरव्वापारिदा माहविआ देवीए संदिट्ठा। मह अङ्गुलीअमुद्दिअं अदेक्खिअ ण मोत्तव्वा तुए हदासा मालविआ बउलावलिआ अत्ति [ कथं भविष्यति। यत्सारभाण्डगृहव्यापारिता माधविका देव्या संदिष्टा। ममाङ्गुलीयकमुद्रिकामदृष्ट्वा न मोक्तव्या त्वया हताशा मालविका बकुलावलिका चेति। ]

राजा—( निःश्वस्य सपरामर्शम्। ) सखे, किमत्र कर्तव्यम्।

विदूषकः—( विचिन्त्य। ) अत्थि एत्थ उवाओ। [ अस्त्यत्रोपायः। ]

राजा—क इव।

विदूषकः—( सदृष्टिक्षेपम्। ) को वि अदिट्ठो सुणिस्सदि। कण्णे दे कहेमि ( इत्युपश्लिष्य कर्णे। ) एव्वं विअ। ( इत्यावेदयति। ) [ कोऽप्यदृष्टः श्रोष्यति। कर्णे ते कथयामि। एवमिव। ]

राजा—( सहर्षम्। ) सुष्ठु। प्रयुज्यतां सिद्धये।

प्रतीहारी—( प्रविश्य ) देव, पवादसयणीए देवी णिसण्णा रत्तचन्दणधारिणा परिअणहत्थगदेण चलणेण भअवदीए कहाहिं विणोदिज्जमाणा चिट्ठदि। [ देव,

---

विदूषकः—कथं भविष्यति = नास्त्युपायः। यत्सारभाण्डगृहव्यापारिता = स्वर्णकोशभवननियुक्ता। माधविका = एतन्नाम्नी दासी। देव्या = धारिण्या। संदिष्टा = आज्ञप्ता। मम = मदीयाम्। अंगुलीयकमुद्रिकाम् = अंगुलिमुद्राम्। अदृष्ट्वा = अनवलोक्य। न मोक्तव्या = न त्याज्या। त्वया = दास्या। हताशा = भाग्यहीना। मालविका बकुलावलिका चेति।

राजा—निःश्वस्य = श्वासक्रियामायम्य। मित्र ! इदानीं किं कार्यम् ?

विदूषकः—( चिन्तयित्वा ) अस्त्यत्रोपायः = अस्मिन् विषये उपायो वर्तते।

राजा—क इव = क उपायोऽत्र वर्तते ?

विदूषकः—( सदृष्टिक्षेपम् = परितोऽवलोकयन् ) कोऽपि = कश्चिदपि। अदृष्टः = गुप्तः पुरुषः। श्रोष्यति = आकर्णयिष्यति। कर्णे ते कथयामि = तव श्रवणे गुप्तरूपेण वदामि। ( एवमिव = ईदृशः ) इत्यावेदयति = एवं कथयति।

राजा—( सहर्षम् = सोल्लासम् ) सुष्ठु = साधु। प्रयुज्यताम् = उपक्रम्यताम्। सिद्धये = इष्टार्थप्रतिपादये।

प्रतीहारी—( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा ) देव ! = महाराज ! प्रवातशयने = पवन-

---

विदूषक—उपाय क्या होगा ? निचले भाण्डारगृह की रक्षिका माधविका को देवी ने यह कह दिया है कि मालविका और बकुलावलिका को बिना मेरी अंगूठी देखे कभी न छोड़ना।

राजा—( लम्बी साँस लेकर और कुछ सोचकर ) मित्र ! अब क्या किया जाय ?

विदूषक—( सोचकर ) एक उपाय है।

राजा—क्या उपाय ?

विदूषक—( इधर उधर देखकर ) कोई छिपकर न सुन रहा हो ? आइए कान में कहूँ ( कान के पास लगकर ) यह हो सकता है। ( कान में कह देता है। )

राजा—( प्रसन्न होकर ) ठीक है। प्रयोजन सिद्धि के लिए काम में लग जाओ।

प्रतीहारी—( प्रवेश कर ) महाराज ! इस समय महारानी पवनपूर्ण भवन में पलंग पर बैठी

प्रवातशयने देवी निषण्णा रक्तचन्दनधारिणा परिजनहस्तगतेन चरणेन भगवत्या कथाभि-र्विनोद्यमाना तिष्ठति । ]

राजा – तस्मादस्मत्प्रवेशयोग्योऽयमवसरः ।

विदूषकः—भो गच्छदु भवं । अहं वि देविं पेक्खिदुं अरित्तपाणी भविस्सं । [ भो गच्छतु भवान् । अहमपि देवीं द्रष्टुमरिक्तपाणिर्भविष्यामि । ]

राजा—जयसेनायास्तावदस्मद्रहस्यं विदितं कुरु ।

विदूषकः—तह । ( इति कर्णे । ) एव्वं दिअ होदि । ( इत्यावेद्य निष्क्रान्तः । ) [ तथा । एवमिव भवति । ]

राजा—जयसेने, प्रवातशयनमार्गमादेशय ।

प्रतिहारी—इदो इदो देवो । [ इत इतो देवः । ]

( ततः प्रविशति शयनस्था देवी परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः । )

---

पूर्णशय्यायाम् । देवी=धारिणी । निषण्णा = सुखासीना । रक्तचन्दनधारिणा = अरुणचन्दन-लिप्तेन । परिजनहस्तगतेन = दासीकरलालितेन । चरणेन = पादेन । भगवत्या = कौसिक्या परिव्राजिकया । कथाभिः = उपाख्यानैः । विनोद्यमाना = प्रमोद्यमाना । तिष्ठति = विद्यते ।

राजा – तस्मात् = तदा । अस्मत्प्रवेशयोग्यः = मदीयगमनानुकूलः । अयमवसरः = अयं समयः ।

विदूषकः—भो गच्छतु भवान् = श्रीमान् व्रजतु । अहमपि देवीम् = धारिणीं महाराज्ञीम् । द्रष्टुम् = अवलोकितुम् । अरिक्तपाणिः = उपहारसहितकरः । भविष्यामि ।

राजा—जयसेनायाः = प्रतीहार्याः । तावद् । अस्मद्रहस्यम् = अस्माकं गोपनीयं वृत्तान्तम् । विदितं कुरु = ज्ञापय ।

विदूषकः—एवमिव = इत्थम् । भवति = भविष्यति । इत्यावेद्य = इत्थं कथयित्वा निष्क्रान्तः = निर्गतः ।

राजा—जयसेने ! = तदाख्ये परिचारिके ! प्रवातशयनमार्गम् = पवनपूर्णशय्यापन्थानम् । आदेशय = निवेदय ।

प्रतीहारी—( इत इतः = अनेन मार्गेण आगच्छतु । देवः = महाराजः ।

( तदनन्तरम् प्रविशति = प्रवेशं करोति । शयनस्था = शय्यासीना । देवी = धारिणी, परिव्राजिका = सन्यासिनी । विभवतः = यथास्थानस्थितः । परिवारः = परिजनः ।)

---

हुई हैं, उनके पैर में लाल चन्दन लगा हुआ है । दासियाँ पैर सँभाले हैं । और परिव्राजिका जी कथा सुनाकर उनका मनोरंजन कर रही है ।

राजा—तो मुझे वहाँ जाने का अच्छा अवसर है ।

विदूषक—आप चलिए । मैं भी हाथ में कुछ उपहार लेकर महारानी को देखने आ रहा हूँ ।

राजा—जयसेना को भी अपनी सब बातें समझा दो ।

विदूषक—अच्छा । ( जयसेना के कान से लगकर ) देखो, ऐसा करना होगा । ( सब कुछ बताकर चला जाता है । )

राजा—जयसेना ! प्रवातशयन कक्ष का मार्ग दिखाओ ।

प्रतीहारी—इधर से आइए महाराज ! इधर से ।

( पलँग पर बैठी हुई देवी का प्रवेश पास में परिव्राजिका और बहुत सी दासियाँ हैं )

**देवी**—भअवदि, रमणिज्जं कहावत्थु । तदो तदो । [ भगवति, रमणीयं कथावस्तु । ततस्ततः । ]

**परिव्राजिका**—( सदृष्टिक्षेपम् । ) देवि, अतः परं पुनः कथयिष्यामि, अत्र भगवान्विदिशेश्वरः संप्राप्तः ।

**देवी**—अम्हो भट्टा । ( इत्युत्थातुमिच्छति । ) [ अहो भर्ता । ]

**राजा**—अलमलमुपचारयन्त्रणया ।

**अनुचितनूपुरविरहं नार्हसि तपनीयपीठिकालम्बि ।**
**चरणं रुजापरीतं कलभाषिणि मां च पीडयितुम् ॥ ३ ॥**

---

**देवी**—भगवति ! = श्रीमति परिव्राजिके ! रमणीयम् = मनोरमम् । कथावस्तु = कथानकवृत्तम् । ततस्ततः = तत्पश्चात् कथय किमभवत् ?

**परिव्राजिका**—( सदृष्टिक्षेपम् ) इतस्ततो दृष्टिं प्रक्षिपन्ती ) देवि ! = महाराज्ञि ! अतः परम् = अवशिष्टं कथानकम् । पुनः कथयिष्यामि = समयान्तरे श्रावयिष्यामि । अत्र = अस्मिन् स्थले । भगवान् = महाराजः । विदिशेश्वरः = दशार्णदेशराजधानीपतिः । सम्प्राप्तः = आगतः ।

**देवी**—अहो = आश्चर्यम् । भर्ता = आर्यपुत्रः । ( इति उत्थातुम् इच्छति = अतः शिष्टाचारं दर्शयितु उत्थातुमभिलषति । )

**राजा**—अलम् अलम् = व्यर्थम् । उपचारयन्त्रणया = शिष्टाचारप्रदर्शनेन ।

**अन्वयः**—कलभाषिणि ! अनुचितनूपुरविरहं तपनीयपीठिकालम्बं रुजापरीतं चरणं मां च पीडयितुं न अर्हसि ॥ ३ ॥

**अनुचितेति** । कलभाषिणि ! मधुरवचने ! अनुचितनूपुरविरहम् = अयोग्यनूपुरवियोगम् । तपनीयपीठिकालम्बम् = सुवर्णनिर्मितक्षुद्रपीठाश्रितम् । रुजापरीतम् = उत्पन्नोपतापम् । चरणम् = पादम् । मां च पीडयितुम् = व्यथयितुम् । नार्हसि = न युज्यते ॥ ३ ॥

**समासः**—कलभाषिणि = कलं भाषणमस्या अस्ति इति तत्सम्बुद्धौ हे कलभाषिणि ! अनुचितनूपुरविरहम् = अनुचितो नूपुरस्य विरहो यस्मात् तथाभूतम् अनुचितनूपुरविरहम् । तपनीयपीठिकालम्बम् = तपनीयस्य पीठिका तपनीयपीठिका सा अवलम्बो यस्य तम् = तपनीय पीठिकालम्बम् । रुजा परीतम् = रुजया परीतः तम् रुजापरीतम् ।

**अलंकारः**—तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । **छन्दः**—आर्यावृत्तम् ।

---

**देवी**—श्री मती जी ! कथा अत्यन्त मनोरम है । इसके आगे ?

**परिव्राजिका**—(चारों ओर देखकर) शेष दूसरे समय में कहूँगी । विदिशानाथ आ रहे हैं ।

**देवी**—क्या ! महाराज ( इतना कहकर उठना चाहती है । )

**राजा**—स्वागत करने के लिए उठकर कष्ट करने की क्या आवश्यकता है ?

हे मधुरभाषिणि ! देवि ! यहाँ तो अनुचित हो रहा है कि तुम्हारे ये चरण नूपुर से रहित होकर इस क्षुद्र स्वर्ण पीठ पर पड़े हैं । अब इस समय उठने की चेष्टा द्वारा इन चरणों के साथ मुझे भी मत सताओ ॥ ३ ॥

**अलंकार**—तुल्ययोगिताऽलङ्कार ।

**धारिणी**—जेदु जेदु अज्जउत्तो । [ जयतु जयत्वार्यपुत्रः । ]

**परिव्राजिका**—विजयतां देवः ।

**राजा**—( परिव्राजिकां प्रणम्योपविश्य । ) देवि, अपि सह्या वेदना ।

**धारिणी**—अज्ज अत्थि मे विसेसो । [ अद्यास्ति मे विशेषः । ]

( ततः प्रविशति यज्ञोपवीतबद्धाङ्गुष्ठः संभ्रान्तो विदूषकः । )

**विदूषकः**—परित्ताअदु परित्ताअदु भवं । सप्पेणम्हि दिट्ठो । [ परित्रायतां परित्रायतां भवान् । सर्पेणास्मि दष्टः । ]

( सर्वे विषण्णाः । )

**राजा** कष्टं कष्टम् । क्व भवान्परिभ्रान्तः ।

**विदूषकः**—देविं देक्खिस्सं त्ति आआरपुप्फग्गहणकारणादो पमदवणं गदोम्हि । [ देवीं द्रक्ष्यामीत्याचारपुष्पग्रहणकारणात्प्रमदवनं गतोऽस्मि । ]

---

**धारिणी**—जयतु जयतु आर्यपुत्र := आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु ।

**परिव्राजिका**—विजयतां देवः = देवस्य विजयो भवतु ।

**राजा**—( परिव्राजिकाम् = सन्यासिनीम् । प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा । उपविश्य = स्थित्वा ।) देवि ! = महाराज्ञि ! वेदना = पीडा । सह्या = सोढुं योग्या । अपि = वर्तते न वा ।

**धारिणी**—अद्य = अधुना । अस्ति = वर्तते । मे विशेषः = अन्तरः ।

( ततः = तत्पश्चात् । यज्ञोपवीतबद्धांगुष्ठः = यज्ञसूत्रावेष्टितप्रमुखांगुलिः । सम्भ्रान्तो = भयभीतः । विदूषकः = गौतमः । प्रविशति = आगच्छति । )

**विदूषकः**—परित्रायताम् = रक्ष्यताम् । भवान् = महाराजः । सर्पेण = अहिना । दष्टः = दंशितः अस्मि ।

( सर्वे विषण्णा = सर्वे दुःखिनो भवन्ति )

**राजा**—कष्टं कष्टम् = दुःखं दुःखम् । क्व = कुत्र । भवान् = श्रीमान् । परिभ्रान्तः = परिभ्रमतिस्म ।

**विदूषकः**—देवीम् = धारिणीम् । द्रक्ष्यामि = अवलोकयिष्यामि । इति आचारपुष्पग्रहण-कारणात् = देव्युपायनरूपकुसुमानयनार्थम् । प्रमदवनम् = एतदाख्यमुपवनम् । गतोऽस्मि = अगच्छम् ।

---

**धारिणी**—जय हो, आर्यपुत्र की जय हो ।

**परिव्राजिका**—आपकी विजय हो देव !

**राजा**—( **परिव्राजिका को प्रणाम करके बैठते हुए** ) कहो देवी ! कुछ पीडा कम हुई ?

**धारिणी**—हाँ, आज तो बहुत कम है ।

**( अपने हाथ के अँगूठे को जनेऊ से बाँधे हुए व्याकुल विदूषक आता है । )**

**विदूषक**—बचाइए महाराज ! बचाइए । मुझे साँप ने काट लिया है ।

**( सभी लोग दुःखित हो जाते हैं । )**

**राजा**—कष्ट है । आप कहाँ घूम रहे थे ?

**विदूषक**—महारानी का दर्शन करूँगा । ऐसा सोचकर कुछ उपहार स्वरूप फूल लेने के लिए प्रमदवन चला गया था ।

धारिणी—हद्धी हद्धी । अहं एव्व बह्मणस्स जीविदसंसअणिमित्तं जादम्हि। [ हा धिक् हा धिक् । अहमेव ब्राह्मणस्य जीवितसंशयनिमित्तं जातास्मि ]।

विदूषकः—तहिं असोअत्थवअ अकालणादो पसारिदो दक्खिणहत्थो । तदो कोडरणिग्गदेण सप्परूवेण कालेण दट्ठोम्हि । णं एदाणि दुवे दंसणपदाणि । ( इति दंशं दर्शयति । ) [ तस्मिन्नशोकस्तवककारणात्प्रसारितो दक्षिणहस्तः । ततः कोटरनिर्गतेन सर्परूपेण कालेन दष्टोऽस्मि । नन्वेते द्वे दंशनपदे । ]

परिव्राजिका—तेन हि दंशच्छेदः पूर्वकर्मेति श्रूयते । स तावदस्य क्रियताम् ।

**छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम् ।**
**एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥ ४ ॥**

राजा—संप्रति विषवैद्यानां कर्म । जयसेने, ध्रुवसिद्धिः क्षिप्रमानीयताम् ।

---

धारिणी—हा धिक् हा धिक् = मामधन्यां धिक् । अहमेव = धारिणीयम् । ब्राह्मणस्य = अस्य गौतमस्य । जीवितसंशयनिमित्तम् = जीवनसंदेहकारणम् । जातास्मि = भूतास्मि । मत्कारणात्गतोऽयमहिना दष्टो म्रियते चेदेतत्पापं मयैव स्यादिति राज्ञ्याः खेदाधिक्ये कारणम् ।

विदूषकः—तस्मिन् = प्रमदवने । अशोकस्तवककारणात् = अशोककुसुमगुच्छानयनाय । प्रसारितः = पुरस्कृतः । दक्षिणहस्तः = वामेतरः करः । ततः = तत्पश्चात् । कोटरनिर्गतेन = कोटरादागत्य । सर्परूपेण = अहिस्वरूपेण । कालेन = मृत्युना । दष्टोऽस्मि = दंशितोऽस्मि । एते = इमे । द्वे दंशनपदे = दंशनस्थाने । ( इति दंशम् = दंशनस्थानं दर्शयति )

परिव्राजिका—तेन = तस्मात् कारणात् । दंशच्छेदः = दष्टांगकर्त्तनम् । पूर्वकर्मा = प्रथमं कर्म । श्रूयते = आकर्ण्यते । सः=छेदः । तावद्=तदा । अस्य = दंशस्थानस्य । क्रियताम् ।

अन्वयः—दंशस्य छेदः दाहः वा, क्षतेः रक्तमोक्षणं वा, एतानि दष्टमात्राणाम् आयुष्याः प्रतिपत्तयः ॥ ४ ॥

छेद इति । दंशस्य = दंशनांगस्य । छेदः = कर्तनम् । वा = अथवा । दाहः = प्रज्वालनम् । क्षतेः = क्षतस्थानात् । रक्तमोक्षणम् = शोणितस्रावणम् । एतानि = इमानि कर्माणि । दष्टमात्राणाम् = सर्पदष्टानाम् । आयुष्याः=आयुर्रक्षणाय । प्रतिपत्तयः = उपायाः सन्ति ॥४॥

समासः—रक्तमोक्षणम् = रक्तस्य मोक्षणम् रक्तमोक्षणम् । दष्टमात्राणाम् = दष्टाः एव दष्टमात्राः तेषां दष्टमात्राणाम् । छन्दः—पथ्या वक्त्रम् ।

राजा—सम्प्रति = गौतमे विपद्यमाने । विषवैद्यानां कर्म=विषचिकित्सकानां प्रयोजनम् । ( जयसेने ! ध्रुवसिद्धिः = विषवैद्यः । क्षिप्रमानीयताम् = शीघ्रं नेतव्यः । )

---

**धारिणी**—हाय मुझे धिक्कार है । मैं ही इस ब्राह्मण की मृत्यु का कारण हूँ ।

**विदूषक**—वहाँ अशोक के गुच्छे को तोड़ने के लिए दाहिना हाथ फैलाया, तब बिल से निकलकर कालरूप साँप ने मुझे काट लिया । ये दोनों दंशन चिह्न हैं । **( दंशन दिखाता है । )**

**परिव्राजिका**—दंश वाले स्थान का छेदन पहला काम कहा गया है । यही इसके लिए भी करना चाहिए ।

**दंश स्थान का छेदन दाह और रक्तमोक्षण, यह सभी उपचार सर्पदष्ट लोगों के जीवन के उपाय माने गये हैं ॥ ४ ॥**

**राजा**—इस समय विष वैद्य की आवश्यकता है । जयसेने ! ध्रुवसिद्धि को बुलाओ ।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि । ( इति निष्क्रान्ता । ) [ यद्देव आज्ञापयति । ]

विदूषकः—अहो, पावेण मिच्चुणा गहीदोम्हि । [ अहो, पापेन मृत्युना गृहीतोऽस्मि । ]

राजा – मा कातरो भूः । अविषोऽपि कदाचिद्दंशो भवेत् ।

विदूषकः—कह ण भाइस्सं । सिमसिमाअन्ति मे अङ्गाइं । ( इति विषवेगं रूपयति । ) [ कथं न भेष्यामि । सिमसिमायन्ति मेऽङ्गानि । ]

धारिणी—हा, दंसिदं असुहं विआरेण । अवलम्बथ बम्हणं । [ हा, दर्शितमशुभं विकारेण । अवलम्बध्वं ब्राह्मणम् । ]

( परिव्राजिका ससंभ्रममवलम्बते । )

विदूषकः—( राजानं विलोक्य । ) भोः, भवदो बाल्लादो वि पिअवअस्सोम्हि । तं विआरिअ अपुत्ताए मे जणणीए जोगक्खेमं वहेहि । [ भोः, भवतो बाल्यादपि प्रियवयस्योऽस्मि । तं विचार्यापुत्राया मे जनन्या योगक्षेमं वह । ]

---

प्रतीहारी—( देवस्य या आज्ञाः ) ( इति निर्गता । )

विदूषकः—आश्चर्यम् पापेन = अधमेन । मृत्युना = कालेन । गृहीतः = धृतः ।

राजा—मा कातरो भूः = व्यग्रो न भव । अविषोऽपि = विषशून्योऽपि । कदाचित् दंशः = दंशस्थानम् । भवेत् = स्यात् ।

विदूषकः—कथं न भेष्यामि = अवश्यमेव भयभीतो भविष्यामि । सिमसिमाअन्ति = जडीभवन्ति । मेऽङ्गानि = ममावयवानि । ( इति विषवेगं रूपयति = अनेन प्रकारेण विषवेगस्याभिनयं करोति । )

धारिणी—हा ! दर्शितम् = प्रत्यक्षीकृतम् । अशुभम् = अमंगलम् । विकारेण = विकृत्या । अवलम्बध्वम् = अवलम्बनं कुरु । ब्राह्मणम् = अस्य ब्राह्मणस्य ।
( पारिव्राजिका = सन्यासिनी । ससम्भ्रमम् = भ्रमेण सह । अवलम्बते = अवलम्बनं करोति )

विदूषकः – ( नृपमवलोक्य ) भो राजन् ! भवतो = महाराजस्य । बाल्यादपि = बाल्यकालादपि । प्रियवयस्योऽस्मि = प्रियसखास्मि । तं विचार्य = तस्य विचारं कृत्वा । अपुत्रायाः = पुत्रहीनायाः । मे = मम । जनन्याः = मातुः । योगक्षेमं = कल्याणम् । वह=कुरु ।

---

**प्रतीहारी**—जो आज्ञा । **( ऐसा कहकर जाती है । )**

**विदूषक**—हाय पापी मृत्यु ने मुझे पकड़ लिया ।

**राजा**—घबराओ मत । कौन जाने साँप विषैला न भी हो ।

**विदूषक**—क्यों न डरूँगा ? मेरे अंग-अंग जकड़े जा रहे हैं । **( विष चढ़ने का अभिनय करता है । )**

**धारिणी**—हाय हाय ! इसकी दशा तो बिगड़ती जा रही है । इस ब्राह्मण को कोई सँभाले ।

**( परिव्राजिका भ्रम के साथ पकड़ लेती है । )**

**विदूषक—( राजा की ओर देखकर )** महाराज ! मैं बाल्यकाल से ही आपका प्रिय मित्र हूँ इसका विचार कर मेरी पुत्रहीना माता की देखभाल कीजिएगा ।

**राजा**—मा भैषीर्गौतम, स्थिरो भव। अचिरात्त्वां वैद्यश्चिकित्सिष्यति।

( प्रविश्य। )

**जयसेना**—देव, आणाविदो ध्रुवसिद्धी विण्णावेदि इह एव्व आणीअदु सो गोदमो त्ति। [ **देव, आज्ञापितो ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति इहैवानीयतां स गौतम इति।** ]

**राजा**—तेन हि प्रतिगृहीतमेनं तत्रभवतः सकाशं प्रापय।

**जयसेना**—तहा। [ **तथा।** ]

**विदूषकः**—( देवीं विलोक्य। ) भोदि, जीवेअं वा ण वा। जं मए अत्तभवन्तं सेवमाणेण ते अवरद्धं तं मरिसेहि। [ **भवति, जीवेयं वा न वा। यन्मयात्रभवन्तं सेवमानेन तेऽपराद्धं तन्मृष्यस्व।** ]

**धारिणी**—दीहाऊ होहि। [ **दीर्घायुर्भव।** ]

( निष्क्रान्तो विदूषकः प्रतिहारी च। )

---

**राजा**—मा भैषीर्गौतम = गौतम ! त्वं भीतो न भव। स्थिरो भव = निश्चिन्तो भव। अचिरात् = शीघ्रमेव। वैद्यः = चिकित्सकः। चिकित्सिष्यति = चिकित्सां करिष्यति।

( प्रवेशं कृत्वा )

**जयसेना**—देव ! = महाराज !। आज्ञापितः = आदिष्टः। ध्रुवसिद्धिः = एतन्नामको वैद्यः। विज्ञापयति = सन्देशयति। इहैव = अत्रैव। आनीयताम् = स्थाप्यताम्। स गौतमः = गौतमो विदूषकः।

**राजा**—तेन हि = एतस्मात् कारणात्। प्रतिगृहीतम् = अवलम्ब्यमानम्। एनम् = विदूषकम्। तत्रभवतः = श्रीमतो वैद्यराजस्य। सकाशम् = समीपम्। प्रापय = नय।

**जयसेना**—तथा = शोभनमस्ति।

**विदूषकः**—( महाराज्ञीमवलोक्य ) भवति ! = श्रीमति !। जीवेयं वा न वा = जीवनं धारयिष्यामि अथवा न। यन्मया = यत् किञ्चित् मया। अत्रभवन्तम् = श्रीमन्तम् राजानम्। सेवमानेन = शुश्रूषमाणेन। तेऽपराद्धम् = तवानिष्टमाचरितम्। तन्मृषस्व = तदनिष्टकरणं सहस्व।

**धारिणी**—दीर्घायुर्भव = चिरञ्जीवी भव।

( निष्क्रान्तः = निर्गतः। विदूषकः = गौतमः। प्रतीहारी = जयसेना च। )

---

**राजा**—गौतम ! भयभीत न होओ। शीघ्र ही वैद्य महाराज आकर तुम्हारी चिकित्सा प्रारम्भ कर देंगे।

**( प्रवेश करके )**

**जयसेना**—आपका आदेश प्राप्त करके ध्रुवसिद्धि वैद्यराज ने कहा कि गौतम को यहीं लाया जाय।

**राजा**—तब गौतम को अवलम्ब देकर ध्रुवसिद्धि के पास ले जाओ।

**जयसेना**—ठीक है।

**विदूषक**—**( देवी की ओर देखकर )** श्रीमति ! मैं जीवित रहूँगा या नहीं, कोई निश्चय नहीं। यदि राजा की सेवा करने का कारण आपके प्रति मुझसे कुछ अपराध हो गया हो, तो क्षमा कीजिएगा।

**धारिणी**—चिरंजीवी हो।

**( विदूषक और प्रतीहारी निकल जाते हैं। )**

**राजा**—प्रकृतिभीरुस्तपस्वी ध्रुवसिद्धिमपि यथार्थनामानं सिद्धिमन्तं न मन्यते ।

( प्रविश्य । )

**जयसेना**—जेदु जेदु भट्टा । ध्रुवसिद्धी विण्णावेदि उदकुम्भविहाणेण सप्पमुद्दिअं किंपि कप्पिदव्वं । तं अण्णेसीअदु त्ति । [ **जयतु जयतु भर्ता । ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति उदकुम्भविधानेन सर्पमुद्रितं किमपि कल्पयितव्यम् । तदन्विष्यतामिति ।** ]

**धारिणी**—इदं सप्पमुद्दिअं अङ्गुलीअअं । पच्छा मम हत्थे देहि णं । (इत्यङ्गुलीयकं ददाति । ) [ **इदं सर्पमुद्रितमङ्गुलीयकम् । पश्चान्मम । हस्ते देह्येतत् ।** ]

( प्रतिहारी गृहीत्वा स्थिता । )

**राजा**—जयसेने, कर्मसिद्धावाशु प्रतिपत्तिमानय ।

**प्रतीहारी**—जं देवो आणवेदि । ( इति निष्क्रान्ता ) [ **यद्देव आज्ञापयति ।** ]

**परिव्राजिका**—यथा मे हृदयमाचष्टे तथा निर्विषो गौतमः ।

---

**राजा**—प्रकृतिभीरुः = स्वभावेन भयभीतः । तपस्वी = दयनीयो गौतमः । ध्रुवसिद्धिमपि = एतन्नामानं वैद्यम् अपि । यथार्थनामानम् = वास्तविकाभिधानम् । सिद्धिमन्तम् = सिद्धिशालिनम् । न मन्यते = निष्फलवैद्यम् जानाति ।

**जयसेना**—जयतु जयतु भर्ता = महाराजस्य विजयो भवतु । ध्रुवसिद्धिः = अयं वैद्यः । विज्ञापयति = कथयति । उदकुम्भविधानेन=विषवेगशान्त्यर्थं क्रियमाणप्रकारेण । सर्पमुद्रितम्= सर्पचिह्नयुक्तम् । किमपि = किञ्चिदपि । कल्पयितव्यम् = आवश्यकम् । तद् = तद्वस्तु । अन्विष्यताम् = अन्वेषणं कर्त्तव्यम् ।

**धारिणी**—इदम् = एतत् । सर्पमुद्रितम् = नागचिह्नयुक्तम् । अंगुलीयकम् = मुद्रिका । पश्चात् = ततः । मम हस्ते = मदीये करे । देहि = यच्छ । एतत् = इदम् । ( इति मुद्रिकां प्रयच्छति । )

**राजा**—जयसेने ! कर्मसिद्धौ = सफले कार्ये । आशु = शीघ्रम् । प्रतिपत्तिम् = समाचारम् । आनय = प्रापय ।

**प्रतीहारी**—यद् देवः = यत्किञ्चित् महाराजः । आज्ञापयति = कथयति ।

**परिव्राजिका**—यथा = यादृक् । मे = मम । हृदयम् = मनः । आचष्टे = कथयति । तथा निर्विषः = विषशून्यः । गौतमः=विदूषकोऽभवत् ।

---

**राजा**—भयशील, अकिञ्चन ब्राह्मण, ध्रुवसिद्धि की चिकित्सा में भी अविश्वास करता है ।

**जयसेना**—महाराज की जय हो । ध्रुवसिद्धि ने कहा है कि उदकुम्भविधान के अनुसार नागमुद्रा की आवश्यकता होगी अतः नागमुद्रा का अन्वेषण कराया जाय ।

**धारिणी**—यह नागमुद्रायुक्त अंगूठी है । पश्चात् मुझे लौटा देना ।

**( ऐसा कहकर अँगूठी दे देती है । )**

**( प्रतीहारी अँगूठी लेकर जाती है । )**

**राजा**—जयसेना ! कार्य सिद्ध हो जाने पर शीघ्र सूचना देना ।

**प्रतीहारी**—महाराज की जो आज्ञा । **( जाती है )**

**परिव्राजिका**—मेरा हृदय तो कह रहा है कि गौतम का विष उतर गया ।

**राजा**—भूयादेवम् ।

( प्रविश्य । )

**जयसेना**—जेदु देवो भट्टा । णिवुत्तविसवेगो गोदमो मुहुत्तेण पकिदित्थो संवुत्तो । [ जयतु देवो भर्ता । निवृत्तविषवेगो गौतमो मुहूर्तेन प्रकृतिस्थः संवृत्तः । ]

**धारिणी**—दिट्ठिआ वअणीआदो मुत्तम्हि । [ दिष्ट्या वचनीयान्मुक्तास्मि । ]

**प्रतीहारी**—एसो उण वाहतओ अमच्चो विण्णवेदि । राअकज्जं बहु मन्तिदव्वं दंसणेण अणुग्गहं इच्छामि त्ति । [ एष पुनर्वाहतकोऽमात्यो विज्ञापयति । राजकार्यं बहुमन्त्रयितव्यं दर्शनेनानुग्रहमिच्छामीति । ]

**धारिणी**—गच्छदु अज्जउत्तो कज्जसिद्धीए । [ गच्छत्वार्यपुत्रः कार्यसिद्धये । ]

**राजा**—देवि, आतपाक्रान्तोऽयमुद्देशः । शीतक्रिया चास्या रुजः प्रशस्ता । तदन्यत्र नीयतां शयनम् ।

---

**राजा**—भूयात् = भवतु । एवम्=विषशून्यः ।

( प्रवेशं कृत्वा )

**जयसेना**—जयतु देवो भर्त्ता = विजयतां महाराजः । निवृत्तविषवेगः = शान्तविषप्रकोपः । गौतमः = विदूषकः । मुहूर्तेन = स्वल्पसमयेन । प्रकृतिस्थः = स्वस्थः । संवृत्तः = संजातः ।

**धारिणी**—दिष्ट्या = सौभाग्येन । वचनीयात् = लोकापवादात् । मुक्ता = व्यक्ताऽस्मि ।

**प्रतीहारी**—एषः = अयम् । पुनः = भूयः । वाहतकः = वाहतको नामा । अमात्यः = सचिवः । विज्ञापयति = निवेदयति । राजकार्यम् = नृपावेक्षणसम्बन्धिकार्यम् । बहुमन्त्रयितव्यम् = अधिकम् विचारणीयम् वर्तते । दर्शनेन = श्रीमत आगमनेन । अनुग्रहम् = प्रसादम् । इच्छामि = अभिलषामि ।

**धारिणी**—गच्छतु = व्रजतु । आर्यपुत्रः = महाराजः । कार्यसिद्धये = राजकार्यसम्पादनाय ।

**राजा**—देवि ! = महाराज्ञि ! । आतपाक्रान्तः = रविकिरणसन्तप्तः । अयम् उद्देशः = अयं अधिष्ठीयमानोऽयं भागः । शीतक्रिया = शिशिरोपचारः । अस्या रुजः = अस्याः पीडायाः । प्रशस्ता = उत्तमा । तदन्यत्र = तदा प्रच्छायशीतले । शयनम् = शयनीयम् । नीयताम् ।

---

**राजा**—ऐसा ही होवे ।

**( प्रवेश करके )**

**जयसेना**—महाराज की जय हो । गौतम का विष थोड़ी ही देर में उतर गया और वे शीघ्र ही स्वस्थ हो गए ।

**धारिणी**—भाग्यवश मैं लोकापवाद से मुक्त हो गई ।

**प्रतीहारी**—मन्त्री वाहतक ने कहलवाया है कि राज कार्य की बहुत सी बातों पर विचार करना है । अतः आपके दर्शन की कृपा चाहता हूँ ।

**धारिणी**—जाइए आर्यपुत्र ! राज्य कार्य सम्भालिए ।

**राजा**—देवी ! यह स्थान धूप से व्याप्त है । ऐसे रोग में शीतलता उचित होती है । अतः अपनी शय्या अन्यत्र उठवा ले जाइये ।

देवी—बालिगाओ, अज्जउत्तवअणं अणुचिट्ठह । [बालिकाः, आर्यपुत्रवचन-मनुतिष्ठत । ]

परिजनः—तह । [ तथा । ]

( निष्क्रान्ता देवी परिव्राजिका परिजनश्च । )

राजा—जयसेने, मां गूढेन पथा प्रमदवनं प्रापय ।

जयसेना—इदो इदो देवो । [इत इतो देवः । ]

राजा—जयसेने, ननु समाप्तकरणीयो गौतमः ।

जयसेना—अह इं [ अथ किम् । ]

राजा – इष्टाधिगमनिमित्तं प्रयोगमेकान्तसाध्यमपि मत्वा ।
संदिग्धमेव सिद्धयै कातरमाशङ्कते हृदयम् ॥ ५ ॥

---

देवी – बालिकाः = परिचारिकाः । आर्यपुत्रवचनम् = महाराजस्यादेशम् । अनुतिष्ठत = कुरुत ।

परिजनः—तथा = उचितमस्ति ।

( धारिणी परिव्राजिका परिजनानां प्रस्थानम् । )

राजा—जयसेने ! मां गूढेन पथा = गुप्तेन मार्गेण । प्रमदवनं प्रापय = नय ।

जयसेना —इत इतो देवः = महाराजोऽनेन मार्गेणागच्छतु ।

राजा—जयसेने ! ननु = प्रश्ने । समाप्तकाम्यः = पूर्णकार्यः । गौतमः = विदूषकः ।

जयसेना —अथ किम् = अवश्यमेव ।

अन्वयः—इष्टाधिगमनिमित्तं प्रयोगम् एकान्तसाध्यम् मत्वा अपि सिद्धयै संदिग्धं कातरं हृदयम् आशङ्कते एव ॥ ५ ॥

इष्टाधिगमेति । इष्टाधिगमनिमित्तम् = इष्टपदार्थप्राप्तिकारणम् । प्रयोगम् = उपायम् । एकान्तसाध्यम् = प्रभूतदृढम् । मत्वा = ज्ञात्वा अपि । सिद्धयै = प्राप्यार्थसाधने । कातरम् = निर्बलम् । हृदयम् = चेतः । आशङ्कते = शङ्काम् करोति ॥ ६ ॥

समासः—इष्टाधिगमनिमित्तम् = इष्टस्य अधिगमः तस्य निमित्तम् इष्टाधिगमनिमित्तम् । एकान्तसाध्यम् = एकान्तं यथा स्यात् तथा साध्यम् एकान्तसाध्यम् ।

अलंकारः—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः । छन्दः—आर्या जातिः ।

---

**देवी**—बालिकाओ ! आर्यपुत्र की आज्ञा का पालन करो ।

**परिजन**—अच्छा ।

**( महारानी, परिव्राजिका और दासियाँ चली जाती हैं । )**

**राजा**—जयसेने ! मुझे गुप्तमार्ग से प्रमद वन ले चलो ।

**जयसेना**—इधर से आइये देव ! इधर से ।

**राजा**—जयसेने ! क्या गौतम ने अपना कार्य पूर्ण कर लिया ।

**जयसेना**—और क्या ।

**राजा**—इच्छित वस्तु पाने के लिए अत्यन्त उपाय करके भी कार्य-सिद्धि के विषय में लोगों का हृदय शङ्कापूर्ण ही बना रहता है ॥ ५ ॥

**विशेष**—राजा स्वीकार करता है कि विदूषक का उपाय सर्वथा काम बना ही देगा तथापि उसे

( प्रविश्य । )

**विदूषकः**—वड्ढदु भवं । सिद्धाणि दे मङ्गलकम्माणि । [ **वर्धतां भवान् । सिद्धानि मङ्गलकर्माणि ।** ]

**राजा**—जयसेने, त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु ।

**जयसेना**—जंदेवो आणवेदि ( इति निष्क्रान्ता । ) [ **यद्देव आज्ञापयति ।** ]

**राजा**—गौतम, क्षुद्रा माधविका । न खलु किंचिद्विचारितमनया ।

**विदूषकः**—देवीए अङ्गुलीअअनुद्दिअं दक्खिअ कहं विआरेदि । [ **देव्या अङ्गुलीयकमुद्रां दृष्ट्वा कथं विचारयति** ] ।

**राजा**—न खलु मुद्रामधिकृत्य ब्रवीमि । एतयोर्द्वयोः किंनिमित्तो मोक्षः । किं वा देव्याः परिजनमतिक्रम्य भवान्संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम् ।

---

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा )

**विदूषकः**—वर्धतां भवान् = विजयतां श्रीमान् । सिद्धानि = पूर्णानि । ते = तव । मंगलकर्माणि = इच्छितकार्याणि ।

**राजा**—जयसेने ! त्वमपि स्वम् = स्वकीयम् । नियोगम् = कार्यम् । अशून्यम् = सार्थकम् । कुरु ।

**जयसेना**—यद्देव आज्ञापयति = देवस्य याज्ञा । ( ततः गता भवति )

**राजा**—गौतम ! =विदूषक ! । क्षुद्रा = मूर्खा माधविका । न खलु किञ्चित् विचारितम्= कृतम् । अनया = माधविकया ।

**विदूषकः**—देव्याः = धारिण्याः । अंगुलीयकमुद्राम् = अंगुलिमुद्रिकाम् । दृष्ट्वा = अवलोक्य । कथं विचारयति = विचारावसरस्यालाभात् केन प्रकारेण विचारयेत् ?

**राजा**— मुद्रामधिकृत्य = मुद्रिकासम्बन्धे । न खलु ब्रवीमि = नैव कथयामि । एतयोः= अनयोः । द्वयोः = मालविकाबकुलावलिकयोः । किं निमित्तो मोक्षः = केन कारणेन मुक्तिः । किं वा देव्याः = अथवा कथं धारिण्याः । परिजनमतिक्रम्य = दासीजनं परित्यज्य । भवान्= आदरणीयो विदूषकः । संदिष्टः = नियुक्तः । इत्येवम् = इत्थम् । अनया = माधविकया । प्रष्टव्यम् = प्रष्टुं प्राप्तकालमुचितमासीत् ।

---

शङ्का हो रही है कि अन्तिम क्षण में उसके बने-बनाए काम में कोई विघ्नबाधा न आ जाय। यह एक ऐसा मनोवैज्ञानिक तथ्य है, जो मानव-मात्र के हृदय से अनिवार्य सम्बन्ध रखता है ।

**( प्रवेश करके )**

**विदूषक**—महाराज ! आपकी वृद्धि हो । आपके मंगलकार्य सिद्ध हो गये ।

**राजा**—जयसेने ! तुम भी अपना कार्य पूर्ण करो ।

**जयसेना**—जो आज्ञा । **( ऐसा कहकर निकल जाती है । )**

**राजा**—गौतम ! मालविका मूर्ख है । उसने कुछ अनिष्ट के लिए तो नहीं सोचा ।

**विदूषक**—देवी की मुद्रिका देख लेने पर वह कर ही क्या सकती थी ?

**राजा**—मैं अँगूठी की बात नहीं पूछता हूँ । क्या कहकर तुमने उन दोनों को मुक्त कराया । तुमने पूछा होगा कि इतने सेवकों के रहते हुए देवी ने आप ही को क्यों भेजा ?

विदूषकः -णं पुच्छिदोम्हि । पुणो मन्दस्स मे तस्सि पच्चुप्पण्णा मदी । [ ननु पृष्टोऽस्मि । पुनर्मन्दस्य मे तस्मिन्प्रत्युत्पन्ना मतिः । ]

राजा--कथ्यताम् ।

विदूषकः—भणिदं मए । देवचिन्तएहिं विण्णाविदो राआ । सोवसग्गं वो णक्खत्तं । ता अवस्सं सव्वबन्धमोक्खो करीअदु त्ति । [ भणितं मया । दैवचिन्तकै-र्विज्ञापितो राजा । सोपसर्गं वो नक्षत्रम् । तदवश्यं सर्वबन्धनमोक्षः क्रियतामिति । ]

राजा—( सहर्षम् । ) ततस्ततः ।

विदूषकः—तं सुणिअ देवीए इरावदीए चित्तं रक्खन्तीए राआ। किल मोएदि त्ति अहं संदिट्ठो त्ति । तदो जुज्जदि त्ति ताए एव्वं संपादिदो अत्थो । [ तच्छ्रुत्वा देव्या इरावत्याश्चित्तं रक्षन्त्या राजा किल मोचयतीत्यहं संदिष्ट इति । ततो युज्यत इति तवैवं संपादितोऽर्थः । ]

राजा—( विदूषकं परिष्वज्य । ) सखे, प्रियोऽहं खलु तव ।

---

विदूषकः—ननु पृष्टोऽस्मि = मामपृच्छत्सा । पुनः = भूयः । मे मन्दस्य = मम मूर्खस्य । तस्मिन् समये । प्रत्युत्पन्ना = अवसरप्ररूढा । मतिः = बुद्धिः ।

राजा—कथ्यताम् = उच्यताम् ।

विदूषकः—भणितं मया = मया कथितम् । दैवचिन्तकैः = दैवज्ञैः । विज्ञापितो राजा = सन्दिष्टो नृपः । वः = युष्माकम् । नक्षत्रम् = जन्मकालिकतारा: । सोपसर्गम् = विघ्नपूर्णम् । तदवश्यम् = तदानिश्चितम् । सर्वबन्धनमोक्षः = बन्दीकृतजनमुक्तिः । क्रियताम्=विधीयताम् ।

राजा—( सहर्षम् = प्रसन्नतापूर्वकम् । ) ततस्ततः = ततः किमभवत् ।

विदूषकः—तच्छ्रुत्वा = तदाकर्ण्य । देव्या = धारिण्या । इरावत्याश्चित्तम् = इरावतीहृदयं रक्षन्त्या । राजा = महाराजः । मोचयति = मोक्षं करोति । इति = अनेन कारणेन अहं संदिष्टः = मह्यम् सन्देशं दत्तवान् । ततो युज्यते इति = तत्पश्चात् उचितमिदमस्ति । तवैयम् = भवदीयः एषः । अर्थः = कार्यम् । संपादितः = प्रतिपादितः ।

राजा—( विदूषकं परिष्वज्य = गौतमं आलिङ्ग्य । ) सखे != मित्र ! । प्रियोऽहम् = प्रियतमोऽहम् । खलु तव = भवत एव ।

---

**विदूषक**—यह तो पूछा ही था । किन्तु मुझ मूर्ख की उस समय प्रत्युत्पन्न बुद्धि हो गई ।

**राजा**—क्या ? कहो ।

**विदूषक**—मैंने कहा कि ज्योतिषियों ने महाराज से कहा है कि आपके ग्रह अनिष्टकारी हैं अतएव इस समय सभी बन्दियों को मुक्त करा दीजिए ।

**राजा—( प्रसन्नतापूर्वक )** तब क्या हुआ ?

**विदूषक**—ऐसा सुनकर देवी धारिणी ने इरावती का मन रखने के लिए अपने किसी परिजन को न भेजकर मुझे भेजा है जिससे इरावती यह समझे कि राजा ही मुक्त कर रहे हैं ।

**राजा—( गौतम का आलिंगन करके )** मित्र ! मैं निश्चय ही तुम्हारा प्रिय हूँ ।

नहि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।
कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ॥ ६ ॥

विदूषकः—तुवरदु भवं । समुद्दघरए सहीसहिदं मालविअं ठाविअ भवन्तं पच्चुग्गदोम्हि । [ त्वरतां भवान् । समुद्रगृहे सखीसहितां मालविकां स्थापयित्वा भवन्तं प्रत्युद्गतोऽस्मि । ]

राजा—अहमेनां संभावयामि । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एदु भवं ( परिक्रम्य ) एदं समुद्दघरं । [ एतु भवान् । इदं समुद्रगृहम् । ]

राजा—( साशङ्कम् ) वयस्य ! एषा कुसुमावचयव्यग्रहस्ता सख्यास्ते परिचारिका चन्द्रिका संनिकृष्टमागच्छति । इतस्तावदावां भित्तिगूढौ भवावः ।

---

अन्वयः—सुहृदाम् अर्थदर्शनम् बुद्धिगुणेन एव न हि सूक्ष्मः कार्यसिद्धिपथः स्नेहेन अपि उपलभ्यते ॥ ६ ॥

न हीति । सुहृदाम् = प्रियमित्राणाम् । अर्थदर्शनम् = कार्यसिद्धिरूपप्रयोजनसाक्षात्कारः । बुद्धिगुणेन = मतिकौशलेन । एव । न । सूक्ष्मः = दुर्बोधः । कार्यसिद्धिपथः = प्रयोजनसाधनोपायः । स्नेहेनापि = प्रेम्णापि । उपलभ्यते = दृश्यते ॥ ६ ॥

समासः— अर्थदर्शनम् = अर्थस्य दर्शनम् अर्थदर्शनम् । बुद्धिगुणेन = बुद्धेः गुणस्तेन बुद्धिगुणेन । कार्यसिद्धिपथः = कार्यस्य सिद्धिः तस्य पन्थाः तस्य कार्यसिद्धिपथः ।

अलंकारः—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः । छन्दः—पथ्यावक्त्रम् ।

विदूषकः—त्वरताम् भवान् = श्रीमान् शीघ्रतां कुरु । समुद्रगृहे = समुद्रनामके गृहविशेषे । सखीसहितां मालविकाम् = बकुलावलिकाद्वितीयां ताम् । स्थापयित्वा = स्थितां कृत्वा । प्रत्युद्गतोऽस्मि = समागतोऽस्मि ।

राजा—अहम् एनाम् = मालविकाम् । सम्भावयामि = दर्शनेन सम्मानयामि । गच्छाग्रतः = अग्रे अग्रे व्रज ।

विदूषकः— एतु = आगच्छतु । भवान् = श्रीमान् महाराजः । इदम् = एतत् । समुद्रगृहम् ।

राजा—( साशङ्कम् = शङ्कितो भूत्वा ) वयस्य ! = मित्र विदूषक ! । एषा = इयम् । कुसुमावचयव्यग्रहस्ता = पुष्पचयनव्याकुलकरा । ते = तव । सख्याः = इरावत्याः । परिचा-

---

केवल बुद्धि के बल से ही कोई अपने मित्रों का कार्य नहीं कर देता । अपने सिर कोई काम लेकर उसे अन्त तक निभा देना सचमुच ऐसा कठिन होता है कि वह तभी पूरा हो पाता है जब काम करने वाला अपने मित्र से पूर्ण स्नेह भी करता हो ॥ ६ ॥

**विदूषक**— आप शीघ्रता करें । मैं समुद्रगृह में मालविका और बकुलावलिका को बैठाकर आपके समीप आया हूँ ।

**राजा**—चलो मैं उसे अपना दर्शन देकर सम्मान करूँगा । चलो आगे-आगे ।

**विदूषक**—आप आइये । ( **घूमकर** ) यह है समुद्रगृह ।

**राजा**—( **शङ्का सहित** ) मित्र ! तुम्हारी सखी इरावती की दासी चन्द्रिका फूल चुनती हुई इधर ही चली आ रही है । चलो, इस दीवार के पीछे छिप जायें ।

**विदूषकः**—अहो, कुम्भीलएहिं कामुएहिं च परिहरणीआ क्खु चन्दिआ ! [ **अहो, कुम्भीलकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका ।** ]

( उभौ यथोक्तं कुरुतः )

**राजा**—गौतम, कथं नु ते सखी मां प्रतिपालयति । एहि । एनां गवाक्षमाश्रित्य विलोकयावः ।

**विदूषकः**—तह [ तथा । ]

( उभौ विलोकयन्तौ तिष्ठतः । )

( ततः प्रविशति मालविका बकुलावलिका च । )

**बकुलावलिका**—सहि, पणम भट्टारं । [ **सखि, प्रणम भर्तारम् ।** ]

**मालविका**—णमो दे जो पासदो पिट्ठदो पेक्खीअदि । [ **नमस्ते यः पार्श्वतः पृष्ठतश्च प्रेक्ष्यते ।** ]

---

रिका = दासी । चन्द्रिका = तदभिधाना । संनिकृष्टम् = समीपम् । आगच्छति = आव्रजति । इतः = अस्मिन् स्थाने । तावद् = तावत्कालपर्यन्तम् । आवाम् । भित्तिगूढौ = कुडयप्रच्छन्नौ । भवावः = स्वः ।

**विदूषकः**—अहो = आश्चर्यम् । कुम्भीरकैः = चौरैः । कामुकैश्च = परकलत्रासक्तैः । चन्द्रिका = दासी ज्योत्स्ना च । परिहरणीया = वर्जनीयाऽस्ति ।

( उभौ = द्वावपि । यथोक्तम् = स्वप्रच्छादनम् । कुरुतः = सम्पादयतः । )

**राजा**—गौतम !=विदूषक ! । कथम् = केन प्रकारेण । ते सखी=तव सखी मालविका । माम् = महाराजम् । प्रतिपालयति = प्रतीक्षते । एहि = आगच्छ । एनाम् = मालविकाम् । गवाक्षम् = वातायनम् । आश्रित्य = आलम्ब्य । विलोकयावः = पश्यावः ।

**विदूषकः**—तथा = यथोक्तमेव भवतु ।

( उभौ = विदूषकनृपौ । विलोकयन्तौ = पश्यन्तौ । तिष्ठतः = स्थितौ । )

( ततः = तत्पश्चात् । प्रविशति = प्रवेशं करोति । मालविका बकुलावलिका च । )

**बकुलावलिका**—सखि ! = हले ! । प्रणम = नम । भर्तारम् = राजानम् ।

**मालविका**—( नमस्ते = तुभ्यं नमः । यः = महाराजः । पार्श्वतः=वामदक्षिणभागयोः । पृष्ठतः = पश्चादभागे । प्रेक्ष्यते = अवलोक्यते )

---

**विदूषक**—हाँ, चोरों और जारों को चन्द्रिका से बचते ही रहना चाहिए ।

**( दोनों दीवार के पीछे छिप जाते हैं । )**

**राजा**—गौतम ! तुम्हारी सखी मालविका हमारी प्रतीक्षा किस प्रकार करती है ? आओ वातायन से उसे देखें ।

**विदूषक**—बहुत ठीक । **( दोनों देखते हुए बैठ जाते हैं । )**

**( तत्पश्चात् मालविका और बकुलावलिका दोनों प्रवेश करती हैं । )**

**बकुलावलिका**—सखी ! स्वामी को प्रणाम करो ।

**मालविका**—आपको प्रणाम है, जिसे अपने आगे एवं पीछे देखा करती हूँ ।

**राजा**—शङ्के मे प्रतिकृतिं निर्दिशति ।

**मालविका**—( सहर्षं द्वारमवलोक्य । ) सहि, मं विप्पलम्भेसि । [ **सखि, मां विप्रलम्भयसि ।** ]

**राजा**—हर्षविषादाभ्यामत्रभवत्याः प्रीतोऽस्मि ।

> **सूर्योदये भवति या सूर्यास्तसमये च पुण्डरीकस्य ।**
> **वदनेन सुवदनायास्ते समवस्थे क्षणादूढे ॥ ७ ॥**

**बकुलावलिका**—णं एसो चित्तगदा भट्टा । [ **नन्वेष चित्रगतो भर्ता ।** ]

**उभे**—( प्रणिपत्य । ) जेदु भट्टा । [ **जयतु भर्ता ।** ]

---

**राजा**—शङ्के = शङ्कां करोमि । मे = मम । प्रतिकृतिम् = चित्रम् । निर्दिशति = लक्ष्यीकृत्य प्रणमति ।

**मालविका**—( सहर्षम् = सानन्दम् । द्वारम् अवलोक्य = दृष्ट्वा । ) सखि ! = वकुलावलिके ! । मां विप्रलम्भयसि = प्रतारयसि ।

**राजा**—हर्षविषादाभ्याम् = आनन्दसन्तापाभ्याम् । अत्रभवत्याः = श्रीमत्याः । प्रीतोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि ।

**अन्वयः**—पुण्डरीकस्य सूर्योदये वा सूर्यास्तसमये च ( या समवस्था ) भवति, सुवदनायाः वदनेन ते समवस्थे क्षणात् ऊढे ॥ ७ ॥

**सूर्योदय इति ।** पुण्डरीकस्य = कमलस्य । सूर्योदये = प्रातःकाले । वा = अथवा । सूर्यास्तसमये = सायङ्काले ( या समवस्था = या समानावस्था ) भवति । सुवदनायाः = सुमुख्याः मालविकायाः । वदनेन = मुखेन । ते समवस्थे = तव समानदशे । क्षणात् = एकस्मादेव मुहूर्त्तात् । ऊढे = अधिगते ॥ ७ ॥

**अलङ्कारः**—निदर्शनाऽलङ्कारः । छन्दः—आर्यावृत्तम् ।

**बकुलावलिका**—ननु = प्रश्ने । एषः = अयम् । चित्रगतः = आलेख्यलिखितः । भर्ता = महाराजः ।

**उभे**—( प्रणिपत्य = प्रणामं कृत्वा ) जयतु भर्त्ता = भर्तुः विजयो भवतु ।

---

**राजा**—जान पड़ता है यह मेरा चित्र दिखा रही है ।

**मालविका**—( **प्रसन्नता के साथ द्वार को देखकर दुःख के साथ** ) सखि ! तुमने मुझे धोखा दिया ।

**राजा**—प्रियतमा मालविका के इस हर्ष और विषाद से बड़ी प्रसन्नता हुई । सूर्योदय और सूर्यास्त के समय में कमल की जो दो अवस्थायें होती है । इस सुमुखी मालविका के मुख ने एक ही क्षण में उन दोनों अवस्थाओं को धारण कर लिया ॥ ७ ॥

**अलंकार**—निदर्शनाऽलङ्कार ।

**बकुलावलिका**—पर चित्र में भी तो स्वामी ही हैं ।

**उभे**—( **प्रणाम करती हुई** ) स्वामी की जय हो ।

मालविका—हला, तदा संभमदिट्ठे भट्टिणो रूवे जहा ण वितिण्हम्हि, तहा अज्जवि मए भाविदो अवितिण्हदंसणो भट्टा। [ सखि, तदा संभ्रमदृष्टे भर्तू रूपे यथा न वितृष्णास्मि, तथाद्यापि मया भावितोऽवितृष्णदर्शनो भर्ता। ]

विदूषकः—सुदं भवदा। तत्तहोदी चित्ते जहा दिट्ठो तहा दिट्ठो भवं त्ति मन्तेदि! मुद्धा दाणिं मञ्जूसा विअ रअणभण्डअं जोव्वणगव्वं वहेसि। [ श्रुतं भवता। तत्रभवती चित्रे यथा दृष्टस्तथा दृष्टो भवानिति मन्त्रयति। मुधेदानीं मञ्जूषेव रत्नभाण्डं यौवनगर्वं वहसि। ]

राजा—सखे, कुतूहलवानपि निसर्गशालीनः स्त्रीजनः। पश्य—

**कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम्।**
**न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रवृत्तीनि विलोचनानि॥ ८॥**

---

मालविका—सखि=हले। तदा=प्रथमदर्शने। संभ्रमदृष्टे=त्वरया लोकिते। भर्तू रूपे=राज्ञः सौन्दर्ये। यथा न वितृष्णाऽस्मि=शान्ताकाङ्क्षा नास्मि यथा। तथाद्यापि=तथैव अधुनापि। मया भावितः=मया तर्कितः। अवितृष्णादर्शनः=अनिराकाङ्क्षदर्शनः। भर्ता=नृपः।

विदूषकः—श्रुतम्=आकर्णितम्। भवता=श्रीमता। तत्रभवती=श्रीमती मालविका। चित्रे=आलेख्ये। यथा दृष्टो=येन प्रकारेण (सस्नेहमनसा) अवलोकितः। न तथा दृष्टः=तेन प्रकारेण नावलोकितः। भवानिति=श्रीमानिति। मन्त्रयति=विचारयति। मुधा=व्यर्थम्। इदानीम्=अधुना। मञ्जूषा=पेटिका। इव रत्नभाण्डम्=रत्नसमूहम्। यौवनगर्वम्=युवभावाभिमानम्। वहसि=धारयसि।

राजा—सखे!=मित्र!। कुतूहलवानपि=उत्कण्ठापूर्णोऽपि। स्त्रीजनः=वनिताजातिः। निसर्गशालीनः=स्वभावतो लज्जाशीलः। पश्य—

अन्वयः—तत्पूर्वसमागमानां रूपं कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितुं इच्छन्ति च आयतलोचनानाम् विलोचनानि प्रियेषु समग्रपातीनि न च॥ ८॥

कार्त्स्न्येनेति। तत्पूर्वसमागमानाम्=प्रथममिलनानाम्। रूपम्=सौन्दर्यम्। कार्त्स्न्येन=

---

मालविका—सखि! उस समय शीघ्रतावश महाराज के सौन्दर्य को जी भर कर नहीं देख सकी। आज भी मुझे वैसा ही लग रहा है। महाराज के दर्शन की प्यास मिटती ही नहीं।

विदूषक—महाराज! सुना आपने? मालविका को आपने जिस दृष्टि से देखा क्या आपको उसने उसी दृष्टि से नहीं देखा? पिटारी जिस प्रकार रत्नगर्व धारण करती है, उसी प्रकार आप व्यर्थ ही युवावस्था का गर्व धारण करते हैं।

राजा—मित्र विदूषक! उत्कण्ठित होने पर भी वनिताएँ अत्यन्त लज्जाशील हुआ करती हैं। देखो—

स्त्रियाँ जिस पुरुष से पहले पहल मिलती हैं, उसे वे जी भर कर देख लेना तो चाहती हैं पर उन विशाल नेत्रों वाली सुन्दरियों के नेत्र अपने प्रियतम की ओर ठीक से उठ ही नहीं पातीं॥ ८॥

**अलंकार**—अप्रस्तुत प्रशंसाऽलङ्कार।

**विशेष**—महाकवि कालिदास का मन्तव्य है कि प्रथम समागम के अवसर पर स्त्रियाँ लज्जावश आँखें उठाकर प्रियतम के मुख को देख ही नहीं सकती हैं, केवल आँख के कोनों से झलक मात्र प्राप्त करती हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। शङ्कर के समक्ष पार्वती की दशा:—

**मालविका**—हला, का एसा पासपरिउत्तमुहेण भट्टिणा सिणिद्धाए दिट्ठीए णिज्झाईअदि। [ सखि, कैषा पार्श्वपरिवृत्तमुखेन भर्त्रा मे स्निग्धया दृष्ट्या निध्यायते। ]

**बकुलावलिका**– णं इअं पासगदा इरावदी। [ नन्वियं पार्श्वगतेरावती। ]

**मालविका**—सहि, अदक्खिणो विअ भट्टा मे पडिभादि। जो सव्वं देवीजणं उज्झिअ एक्काए मुहे बद्धलक्खो। [ सखि, अदक्षिण इव भर्ता मे प्रतिभाति। यः सर्वं देवीजनमुज्झित्वैकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः। ]

**बकुलावलिका**—( आत्मगतम्। ) चित्तगदं भट्टारअं परमत्थदो संकप्पिअ असूअदि। होदु। क्रीडिस्सं दाव एदाए। ( प्रकाशम्। ) हला भट्टिणो वल्लहा एसा। [ चित्रगतं भर्तारं परमार्थतः संकल्प्यासूयति। भवतु। क्रीडिष्यामि तावदेतया। सखि, भर्तुर्वल्लभैषा। ]

---

पूर्णरूपेण। निर्वर्णयितुम् = द्रष्टुम्। इच्छन्ति = अभिलषन्ति। किन्तु आयतलोचनानाम् = विशालनेत्राणाम् वनितानाम्। विलोचनानि = नेत्राणि। प्रियेषु = प्रियतमजनेषु। समग्रपातीनि = पूर्णरूपेण निपतनशीलानि न भवन्ति ॥ ८ ॥

**समासः**—तत्पूर्वसमागमानाम् = स एव पूर्वः समागमो येषां तथाभूतानाम् तत्पूर्वसमागमानाम्। आयतलोचनानाम् = आयते लोचने यासां ताः तासाम् आयतलोचनानाम्।

**अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः। छन्दः—उपजातिः।

**मालविका**—सखि = हले !। कैषा = का इयम्। पार्श्वपरिवृत्तमुखेन=पार्श्वदेशवक्रीकृतग्रीवतया। भर्त्रा = महाराजेन। मे = मम। स्निग्धया = अनुरागपूर्णया। दृष्ट्या = नेत्रेण। निध्यायते = आलोक्यते सानुरागम्।

**बकुलावलिका**—ननु इयम् = एषा। पार्श्वगता = एकभागावस्थिता। इरावती वर्तते।

**मालविका**—सखि != सहचरि !। अदक्षिण इव = शठो नायक इव। मे भर्ता = मदीयो राजा। प्रतिभाति = ज्ञायते। यः = महाराजः। सर्वम् = अखिलम्। देवीजनम् = वनितावर्गम्। उज्झित्वा = विहाय। एकस्या मुखे = एकस्या वनिताया आनने। बद्धलक्ष्यः = आसक्तिपूर्णः।

**बकुलावलिका**—( आत्मगतम् = स्वमनस्येव ) चित्रगतं भर्त्तारम् = आलेख्यलिखितम् महाराजम्। परमार्थतः = सत्यभावेन। संकल्प्य = उत्प्रेक्ष्य मत्वा। असूयति = असूयारूपम्

---

'विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥' कुमारसम्भव ३–६८

अभिज्ञान शाकुन्तल में—"अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणम्"

**मालविका**—इधर दृष्टि फेरकर महाराज प्रेमभरी चितवन से किसे निहार रहे हैं ?

**बकुलावलिका**—वह राजा की समीपवर्तिनी इरावती है।

**मालविका**—राजा मुझे दक्षिण नायक नहीं ज्ञात हो रहे हैं। क्योंकि वह सम्पूर्ण रानियों को छोड़ कर एक ही स्त्री पर ललचाई आँखों से देख रहे हैं।

**"शठ"** नायक का लक्षण—'शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः। दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति' ॥ इति ॥ साहित्यदर्पणे।

**बकुलावलिका—( स्वगत )** चित्रित महाराज को वास्तविक [illegible] कर यह ईर्ष्या कर रही है। अच्छा, तनिक इसे विनोद करूँ। **( प्रकाश )** अरे ! यही तो म[illegible] [illegible]यतमवल्लभा है।

मालविका—तदो किं दाणिं अत्ताण आआसइस्सं । ( इति सासूयं परावर्तते । ) [ ततः किमिदानीमात्मानमायासयिष्यामि । ]

राजा—सखे, पश्य ।

भ्रूभङ्गभिन्नतिलकं स्फुरिताधरोष्ठं
सासूयमाननमितः परिवर्तयन्त्याः ।
कान्तापराधकुपितेष्वनया विनेतुः
संदर्शितेव ललिताभिनयस्य शिक्षा ॥ ९ ॥

---

भावम् आविष्करोति । भवतु = उचितम् । क्रीडिष्यामि = विनोदमाचरिष्यामि । तावदेतया= मालविकया । सखि ! भर्तुः = महाराजस्य । वल्लभा एषा = इयं प्रिया ।

**मालविका** – ततः = तदा । किम् = किमर्थम् । इदानीम् = अधुना । आत्मानम् = स्वाम् । आयासयिष्यामि = महाराजाय स्वसमर्पणश्रमेण कदर्थयिष्यामि । इति सासूयम् = असूयाख्येन भावेन सह । परावर्तते = मुखं परावृत्य तिष्ठति ।

**राजा**—सखे ! = मित्र । पश्य = अवलोकय ।

**अन्वयः**—भ्रूभंगभिन्नतिलकं स्फुरिताधरोष्ठम् आननं सासूयम् इतः परिवर्तयन्त्याः अनया कान्तापराधकुपितेषु ललिताभिनयस्य विनेतुः शिक्षा संदर्शिता इव ॥ ९ ॥

भ्रूभंगेति । भ्रूभंगभिन्नतिलकम् = भ्रूवक्रमिलिततिलकम् । स्फुरिताधरोष्ठम् = स्पन्दित-निम्नाधरम् । आननम् = मुखम् । सासूयम् = सेर्ष्यम् । इतः परिवर्तयन्त्या = चित्रदेशाद् अपसारयन्त्याः । अनया = मालविकया । कान्तापराधकुपितेषु = पतिदोषक्रुद्धेषु । ललिता-भिनयस्य = मनोहरचेष्टायाः । शिक्षा = उपदेशः । संदर्शिता = प्रकटीकृता इव ॥ ९ ॥

**समासः**—भ्रूभङ्गभिन्नतिलकम् = भ्रुवोः भंगः तेन भिन्नः तिलको यस्मिन् तत् भ्रूभंग-भिन्नतिलकम् । स्फुरिताधरोष्ठम् = स्फुरितः अधरः ओष्ठो यस्मिन् तत् स्फुरिताधरोष्ठम् । कान्तापराधकुपितेषु = कान्तस्य अपराधः तेन कुपितेषु कान्तापराधकुपितेषु ।

**अलंकारः**—उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

**छन्द** – वसन्ततिलकं वृत्तम् । "उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौगः" लक्षणम् ।

---

**मालविका**—यदि यही बात है तो व्यर्थ क्यों चिन्तित बनूँ । ( **ऐसा कह कर मुँह घुमा कर बैठ जाती है । )**

**राजा**—सखे ! देखो, देखो ।

भौंहों के चढ़ाव से हटी हुई इसके मस्तक की बिन्दी और इसके फड़कते हुए निचले ओठ को देखने से ऐसा जान पड़ता है मानों इसने स्वामी के अपराध पर रूठने की जो शिक्षा प्राप्त की है, वही अभिनय द्वारा दिखला रही है ॥ ९ ॥

**अलंकार**—उत्प्रेक्षाऽलंकार ।

**विशेष**—मालविका के रूठने पर राजा सोचता है कि नाट्याचार्य गणदास ने अपनी शिष्या मालविका को अन्य शिक्षाओं के साथ-साथ प्रियतम से रूठने के अभिनय की भी शिक्षा दी होगी। मालविका की चेष्टाओं को देखकर राजा को ऐसा लग रहा है मानों वह अपने गुरु की दी गई रोषाभिनय की शिक्षा का अभिनय कर रही है ।

**विदूषकः**—अणुणअसज्जो दाणिं होहि । [ अनुनयसज्ज इदानीं भव । ]

**मालविका**—अज्जगोदमो एत्थ एव ससेवदि णं। (पुनः स्थानान्तराभिमुखी भवितुमिच्छति । ) [ आर्यगौतमोऽत्रैव संसेवत एनाम् । ]

**बकुलावलिका**—( मालविकां रुद्ध्वा । ) ण क्खु कुविदा दाणिं तुमं । [ न खलु कुपितेदानीं त्वम् । ]

**मालविका**—जइ चिरं कुविदं एव्व मं मण्णेसि, एसो पच्चाणीअदि कोवो । [ यदि चिरं कुपितामेव मां मन्यसे, एष प्रत्यानीयतां कोपः । ]

**राजा**—( उपेत्य । )

**कुप्यसि कुवलयनयने चित्रार्पितचेष्टया किमेतन्मे ।**
**ननु तव साक्षादयमहमनन्यसाधारणो दासः ॥ १० ॥**

---

**विदूषकः**—अनुनयसज्जः = विनयसन्नद्धः । इदानीम् = अधुना । भव = एधि ।

**मालविका**—आर्य गौतमः = आर्य विदूषकः । अत्रैव = अस्मिन् स्थाने । संसेवते = चाटुवचनैः प्रसादयति । एनाम् = इरावतीम् । पुनः = भूयः । स्थानान्तराभिमुखी = अन्यस्थानगमनाभिलाषिणी । भवितुमिच्छति = गन्तुमभिलषति ।

**बकुलावलिका**—( मालविकां रुद्ध्वा = मालविकां गृहीत्वा । ) न खलु = नास्ति किम् । कुपिता = क्रुद्धा । इदानीम् = सम्प्रति । त्वम् = भवती ।

**मालविका**—यदि चिरम् = चेत् बहुकालम् । कुपितामेव = क्रुद्धामेव । मां मन्यसे = मामनुभवसि । एषः = अयम् । कोपः = क्रोधः । प्रत्यानीयताम् = उपशम्यताम् ।

**राजा**—( उपेत्य = पार्श्वं गत्वा ) ।

**अन्वयः**—अयि कुवलयनयने ! चित्रार्पितचेष्टया किम् एवं कुप्यसि ? ननु तव अयं अहं साक्षात् अनन्यसाधारणः दासः ॥ १० ॥

**कुप्यसीति** । अयि कुवलयनयने ! = भो इन्दीवरलोचने ! चित्रार्पितचेष्टया = आलेख्यलिखितभावनया । किमेवम् = कथमेतत् । कुप्यसि = क्रोधं प्रकटयसि । ननु = प्रश्ने । तव = त्वदीयः । अयम् = एषः । अहम् = महाराजः । साक्षात् = वास्तविकः । अनन्यसाधारणः = अद्वितीयः । दासः = सेवकः ॥ १० ॥

**समासः**— कुवलयनयने != कुवलयवत् नयने यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ कुवलयनयने । चित्रार्पितचेष्टया–चित्रेऽर्पिता चेष्टा तया चित्रार्पितचेष्टया ।

**अलंकारः**—लुप्तोपमाऽलङ्कारः । छन्दः—आर्यावृत्तम् ।

---

**विदूषक**—अब अनुनय-विनय में तत्पर हो जाइए ।

**मालविका**—आर्य गौतम भी इन्हीं की सेवा में हैं । **( पुनः दूसरी दिशा में अपना मुख फेरना चाहती है । )**

**बकुलावलिका—( मालविका को पकड़कर )** अरी ! तुम रूठ तो नहीं गई हो ।

**मालविका**—यदि तुम मुझको अत्यन्त क्रुद्ध समझ रही हो, तो मेरे क्रोध को शान्त तो करो ।

**राजा—( समीप आकर )**

हे कमल नयने ! चित्र में बने हुए मेरे भाव को ही देखकर तुम मुझसे क्यों रूठी जा रही हो ? तुम्हारा यह अनन्य दास तो तुम्हारे समक्ष ही उपस्थित है ॥ १० ॥

**अलंकार**—लुप्तोपमाऽलङ्कार ।

बकुलावलिका—जेदु जेदु भट्टा। [ जयतु जयतु भर्ता। ]

मालविका—( आत्मगतम्। ) कहं चित्तगदो भट्टा मए असूइदो। ( प्रकाशं सव्रीडवदनमञ्जलिं करोति। ) [कथं चित्रगतो भर्त्ता मयासूयितः।]

( राजा मदनकातर्यं रूपयति। )

विदूषकः—किं भवं उदासीणो विअ दीसइ। [ किं भवानुदासीन इव दृश्यते। ]

राजा—अविश्वसनीयत्वात्सख्यास्तव।

विदूषकः—अत्तहोदीए अअं कहं तुह अविस्सासो। [ अत्र भवत्यामयं कथं तवाविश्वासः। ]

राजा—श्रूयताम्।

**पथि नयनयोः स्थित्वा स्थित्वा तिरोभवति क्षणा-**
**त्सरति सहसा बाह्वोर्मध्यं गतापि सखी तव।**

---

बकुलावलिका—जयतु जयतु भर्त्ता = भर्तुर्विजयो भवतु।

मालविका—( स्वमनस्येव। ) कथम् = किम्। चित्रगतो भर्ता = आलेख्याङ्कित-स्वामी। मयाऽसूयितः = मया निन्दितः। ) ( प्रकाशम् = प्रकटम्। सव्रीडवदनम् = सलज्ज-मुखम्। अञ्जलिम् = प्रणामार्थं करयुगलमेलनम्। करोति = प्रतिपादयति। )

( राजा = महाराजः। मदनकातर्यम् = कामोत्पन्नभङ्गीम्। रूपयति = अभिनयति। )

विदूषकः—किम् = कथम्। भवान् = श्रीमान् महाराजः। उदासीन इव = उद्योगशून्य इव दृश्यते।

राजा—तव = भवतः। सख्याः = सहचर्याः। अविश्वसनीयत्वात् = विश्वासहीनत्वात्।

विदूषकः—अत्रभवत्याम् = श्रीमत्यां मालविकायाम्। अयम् = एषः। कथम् = केन प्रकारेण। तव = भवतः। अविश्वासः = विश्वासहीनत्वम्।

राजा—श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्।

अन्वयः—हे सखे ! तव सखी नयनयोः पथि स्थित्वा स्थित्वा क्षणात् तिरोभवति। बाह्वोः मध्यं गता अपि सहसा सरति, एवं समागममायया मनसिजरुजा क्लिष्टस्य मे मनः इमां प्रति कथम् इव विस्रब्धं स्यात्॥ ११॥

पथीति। हे सखे !=हे वयस्य !। तव=भवतः। सखी=सहचरी मालविका। नयनयोः= नेत्रयोः। पथि = विषयदेशे। स्थित्वा स्थित्वा = अवस्थाय। क्षणात् = तत्क्षणात्। तिरो-

---

बकुलावलिका—जय हो स्वामी की जय हो।

मालविका—( स्वगत ) तो क्या मैं सचमुच चित्र में बने हुए स्वामी से रूठी हुई थी? ( लज्जाशील मुखी होकर अञ्जलि जोड़ती है। )

( महाराज काम कातरता का अभिनय करते हैं। )

विदूषक—आप उदासीन क्यों दिखलाई दे रहे हैं?

राजा—तुम्हारी सखी पर विश्वास नहीं हो रहा है, इसलिए।

विदूषक—उनपर आपको विश्वास क्यों नहीं हो रहा है?

राजा—सुनो-तुम्हारी सखी मालविका अभी सामने आती है और अभी छिप जाती है, भुजपाश

मनसिजरुजा क्लिष्टस्यैवं समागममायया
कथमिव सखे विस्रब्धं स्यादिमां प्रति मे मनः ॥ ११ ॥

**बकुलावलिका**—सहि, बहुसो क्खु भट्टा विप्पलद्धो । ता तुए अत्ता विस्ससणिज्जो करीअदु । [ सखि, बहुशः किल भर्ता विप्रलब्धः । तत्त्वयात्मा विश्वसनीयः क्रियताम् । ]

**मालविका**—सहि, मह उण मन्दभग्गाए सिविणसमाअमो वि भट्टिणो दुल्लहो आसि । [ सखि, मम पुनर्मन्दभाग्यायाः स्वप्नसमागमोऽपि भर्तुर्दुर्लभ आसीत् । ]

**बकुलावलिका**—भट्टा कहेदु से उत्तरं । [ भर्ता कथयत्वस्या उत्तरम् ]

---

मदति = निलीयते । बाह्वोः = भुजयोः । मध्यम्=अन्तरालम् । गता = मिलिताऽपि । सहसा= शीघ्रमेव । निस्सरति = बाहुपाशादपसरति । एवम् = अनेन प्रकारेण । समागममायया = सम्मिलनविषये शठतया । मनसिजरुजा = कालपीडया । क्लिष्टस्य = परितापितस्य । मे मनः = मदीयं हृदयम् । इमां प्रति = मालविकां प्रति । कथम् = केन प्रकारेण । विस्रब्धम् = विश्वस्तम् । स्यात् = जायेत ।। ११ ।।

**समासः**—समागममायया = समागमे माया तया समागममायया । मनसिजरुजा = मनसिजस्य रुक् तया मनसिजरुजा ।

**अलंकारः**—अर्थापत्तिरलङ्कारः ।

**छन्दः**—हरिणीवृत्तम् । "न समरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।" इति लक्षणम् ।

**बकुलावलिका**—सखि ! = हले ! । बहुशः=अनेकशः । भर्ता = स्वामी । विप्रलब्धः = प्रतारितः । तत्त्वया = भवत्या । आत्मा = स्वम् । विश्वसनीयः = विश्वासार्हः । क्रियताम्= विधीयताम् ।

**मालविका**—सखि !=सहचरि ! । मम पुनः=मम भूयः । मन्दभाग्यायाः=हतभाग्यायाः । स्वप्नसमागमः = स्वप्नदशासङ्गमः । अपि भर्तुः = अपि महाराजस्य । दुर्लभः = दुरापः । आसीत् = अभवत् ।

**बकुलावलिका**—भर्ता = महाराजः । कथयतु = वदतु । अस्याः = मालविकायाः । उत्तरम् = प्रतिवचनम् ।

---

से सहसा खिसक पड़ती है । मुझ कामपीडित प्रेमी के प्रति इस प्रकार की प्रवंचना के करते रहने पर भी उस पर विश्वास कैसे किया जाय ? ।। ११ ।।

**अलंकार**—अर्थापत्ति । **छन्द**—हरिणीवृत्त ।

**बकुलावलिका**—सखी ! तुमने महाराज को अनेक बार धोखा दिया अब भी अपने को महाराज का विश्वासपात्र बनाओ ।

**मालविका**—सखि ! मैं बहुत बड़ी भाग्यहीना हूँ । मेरे लिए स्वामी का स्वप्न संगम भी दुर्लभ हो रहा है ।

**बकुलावलिका**—महाराज, इसका उत्तर दीजिये ।

राजा—उत्तरेण किमात्मैव पञ्चबाणाग्निसाक्षिकम् ।
तव सख्यै मया दत्तो न सेव्यः सेविता रहः ॥ १२ ॥

बकुलावलिका—अणुगहीदम्हि । [ अनुगृहीतास्मि । ]

विदूषकः—( परिक्रम्य ससंभ्रमम् । ) बउलावलिए, एसो बालासोअ रुक्खस्स पल्लवाइं लङ्घेदि हरिणो । एहि णिवारेम णं । [ बकुलावलिके, एष बालाशोक-वृक्षस्य पल्लवानि लङ्घयति हरिणः । एहि निवारयाम एनम् । ]

बकुलावलिका—तह । [ तथा । ] ( इति प्रस्थिता । )

राजा—वयस्य, एवमेवास्मिन्रक्षणेऽवहितेन त्वया भवितव्यम् ।

---

अन्वयः—उत्तरेण किम् ? मया तव सख्यै पञ्चबाणाग्निसाक्षिकम् आत्मा एव दत्तः अहं रहः सेविता, सेव्यः न ॥ १२ ॥

उत्तरेणेति । उत्तरेण = प्रतिवचनेन । किम् = न किमपि प्रयोजनम् । मया = महाराजेन । तव सख्यै = समप्राणायै मालविकायै । पञ्चबाणाग्निसाक्षिकम् = कामानलकर्मदर्शकम् । आत्मा एव = स्वदेह एव । दत्तः = समर्पितः । अहम् = महाराजः । रहः = एकान्ते । सेविता = परिचरणशीलः गुप्तप्रणयी । न सेव्यः = न सेवाभिः प्रसादनीयः ॥ १२ ॥

समासः—पञ्चबाणाग्निसाक्षिकम् = पञ्चबाण एव अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तद् पञ्चबाणाग्निसाक्षिकम् ।

अलंकारः—अत्र मानवीकरणमलङ्कारः । कामाग्निः साक्षी नरः प्रतिपादितः ।

छन्दः—पथ्यावक्त्रम् ।

बकुलावलिका—अनुगृहीता = अनुकम्पिता । अस्मि ।

विदूषकः—( परिक्रम्य = इतस्ततः पादप्रक्षेपं कृत्वा । ससंभ्रमम् = सत्वरम् । ) बकुलावलिके = भो परिचारिके ! । एषः = अयम् । हरिणः = मृगः । बालाशोकवृक्षस्य = अभिनवाशोकतरोः । पल्लवानि = पत्राणि । लङ्घयति = भक्षितुमुद्युङ्क्ते । एहि = आगच्छ । निवारयामः = प्रतिषेधामः । एनम् = एतम् मृगम् ।

बकुलावलिका—तथा = युक्तं त्वदुक्तम् । ( इति प्रस्थिता = गता । )

राजा—वयस्य ! = भो विदूषक ! । एवमेव = अनेन प्रकारेणैव । अस्मिन् = एतस्मिन् । रक्षणक्षणे = गुप्तव्यापाररक्षाकाले । अवहितेन = सावधानेन । त्वया = गौतमेन । भवितव्यम् = भवितुमुचितम् ।

---

**राजा**—उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं । मैंने कामाग्नि को साक्षी रखकर तुम्हारी सखी के लिए अपना शरीर ही सौंप दिया । जो गुप्त रूप से सेवा करता है, उसे सेव्य बनाना उचित नहीं ॥ १२ ॥

**अलंकार**—मानवीकरण ।

**बकुलावलिका**—मैं अनुगृहीत हूँ ।

**विदूषक**—( **आकर व्यग्रता से** ) बालाशोक के पल्लवों को मृगशावक चर रहा है । आओ, उसे बचावें ।

**बकुलावलिका**—ठीक है । ( **चली जाती है ।** )

**राजा**—इस रहस्य को छिपाने में सावधान रहना ।

विदूषकः—एव्वं वि गोदमो सन्दिसे अदि। [ एवमपि गौतमः संदिश्यते। ]

बकुलावलिका—( परिक्रम्य। ) अज्ज गोदम, अहं अप्पआसे चिट्ठामि। तुमं दुवाररक्खओ होहि। [ आर्य गौतम, अहमप्रकाशे तिष्ठामि। त्वं द्वाररक्षको भव। ]

विदूषकः—जुज्जइ। [ युज्यते। ]

( निष्क्रान्ता बकुलावलिका। )

विदूषकः—इमं दाव फलिहक्खम्भं अस्सिदो होमि। ( इति तथा कृत्वा। ) अहो सुहप्परिसदा सिलाविसेसस्स। ( इति निद्रायते। ) [ इमं तावत्स्फटिकस्तम्भमाश्रितो भवामि। अहो सुखस्पर्शता शिलाविशेषस्य। ]

( मालविका ससाध्वसा तिष्ठति। )

राजा—विसृज सुन्दरि संगमसाध्वसं तव चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि ॥१३॥

---

विदूषकः—एवमपि = उक्तप्रकारमपि। गौतमः = अहम्। सन्दिश्यते = उपदिश्यते।

बकुलावलिका—( परिक्रम्य = इतस्ततो पादक्षेपं कृत्वा ) आर्य गौतम ! = पूज्य विदूषक ! अहम्। अप्रकाशे = अप्रकटितस्थाने। तिष्ठामि = स्थिता भविष्यामि। त्वम् द्वार-रक्षकः = द्वारपालः। भव = एधि।

विदूषकः—( युज्यते = उचितमस्ति। )

( निष्क्रान्ता = निर्गता बकुलावलिका )

विदूषकः—( इमम् = एतम्। तावत् = तदा। स्फटिकस्तम्भम् = स्फटिकप्रस्तर-निर्मितम् स्तम्भम्। आश्रितो भवामि = शयनार्थमाश्रितो भविष्यामि। अहो ! = आश्चर्यम्। सुखस्पर्शता = आनन्दात्मकस्पर्शशीलता। शिलाविशेषस्य = स्फटिकप्रस्तरस्य। ) ( इति निद्रायते = निद्रामाप्नोति। )

( मालविका ससाध्वसा = भयलज्जायुक्ता। तिष्ठति = स्थिता भवति )

अन्वयः—सुन्दरि ! सङ्गमसाध्वसं विसृज। चिरात्प्रभृति तव प्रणयोन्मुखे सहकारतां गते मयि त्वम् अतिमुक्तलताचरितं परिगृहाण ॥ १३ ॥

विसृजेति। सुन्दरि ! = रमणीयवदने !। सङ्गमसाध्वसम् = मिलनसम्बन्धिम् भयम्। विसृज = त्यज। चिरात्प्रभृति = बहुकालात् आरभ्य। तव प्रणयोन्मुखे = प्रीतिपरायणे।

---

विदूषक—क्या इस प्रकार गौतम को भी बताना होगा।

बकुलावलिका—( घूमकर ) आर्य गौतम ! मैं छिपी हूँ तुम द्वार पर प्रहरी बने रहो।

विदूषक—उचित है।

( बकुलावलिका निकल जाती है। )

विदूषक—इस स्फटिक पत्थर के स्तम्भ का आश्रय लूँ। अह ! इस शिलाखण्ड का स्पर्श कितना सुखद है ! ( ऐसा कहकर सो जाता है। )

( मालविका डरकर खड़ी रहती है। )

राजा—सुन्दरि ! तुम मिलन-भय को छोड़ दो। मैं बहुत दिनों से तुम्हारे लिए उत्कण्ठित हूँ। मुझ आम्रवृक्ष पर तुम माधवी लता बनकर लिपट जाओ ॥ १३ ॥

विशेष—[illegible] मधुर शब्दों में मालविका से हृदय की [illegible]

मालविका—देवी भएण अत्तणो वि पिअ कादुं ण पारेमि। [ देव्या भयेनात्मनोऽपि प्रियं कर्त्तुं न पारयामि। ]

राजा—अयि न भेतव्यम्।

मालविका—( सोपालम्भम्। ) जो ण भाअदि सो मए भट्टिणीदंसणे दिट्ठसामत्थो भट्टा। [ यो न बिभेति स मया भट्टिनीदर्शने दृष्टसामर्थ्यो भर्ता। ]

राजा—दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि नायकानां कुलव्रतम्।
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः॥ १४॥

---

सहकारतां = आम्रतरुतुल्यताम्। गते = प्राप्ते। मयि = अस्मिन् महाराजे। त्वम्। अतिमुक्तलताचरितम् = माधवीलताचरणम्। परिगृहाण = संधारय॥ १३॥

समासः—सङ्गमसाध्वसम् = सङ्गमस्य साध्वसम् सङ्गमसाध्वसम्। प्रणयोन्मुखे = प्रणाये उन्मुखे प्रणयोन्मुखे। अतिमुक्तलताचरितम् = अतिमुक्तलतायाः चरितम् अतिमुक्तलताचरितम्।

अलंकारः—निदर्शनाऽलङ्कारः। वृत्यनुप्रासश्च। अनयोः संसृष्टिः।

छन्दः—द्रुतविलम्बितं वृत्तम्। लक्षणम्—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।"

मालविका—देव्याः भयेन=धारिण्या इरावत्याश्च भयात्। आत्मनोऽपि प्रियम्=स्वप्रियमपि। कर्तुम् = विधातुम्। न पारयामि = न शक्नोमि।

राजा – अयि = मालविके! देव्या न भेतव्यम्।

मालविका—( सोपालम्भम् = सतिरस्कारम् ) यो = भवान्। न बिभेति = भयभीतो न भवति। सः = भवान्। मया भट्टिनीदर्शने = इरावत्याः प्रत्यक्षस्यावसरे। दृष्टसामर्थ्यः = परीक्षितशक्तिः। भर्ता = महाराजः।

अन्वयः – बिम्बोष्ठि! दाक्षिण्यं नाम नायकानां कुलव्रतम्। तद् हे दीर्घाक्षि! ये मे प्राणाः ते त्वदाशानिबन्धनाः॥ १४॥

दाक्षिण्यमिति। बिम्बोष्ठि = बिम्बफलोष्ठि!। दाक्षिण्यम् = अनेकभार्यासु तुल्यानुरागत्वं नाम प्रसिद्धि गतम्। नायकानाम् = धीरोदात्तललितादिनायकानाम्। कुलव्रतम् = वंशपरम्परागतो धर्मः। तद् हे दीर्घाक्षि!=हे विशाललोचने!। मे=मम। ये प्राणाः = असवः। ते = सर्वे प्राणाः। त्वदाशानिबन्धनाः = त्वत्प्राप्त्याशया रक्षिताः॥ १४॥

समासः—बिम्बोष्ठि=बिम्बम् इव ओष्ठौ यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे बिम्बोष्ठि!। दीर्घाक्षि=

---

को कहता है। वह उसे विश्वास दिलाता है कि वह उसके प्रेम में तड़प रहा है और चाहता है कि वह राजा के शरीर पर इस प्रकार से लिपट जाये जिस प्रकार माधवीलता आम के पेड़ से लिपट जाया करती है।

**मालविका**—देवी के भय से अपने मन का मनोरथ भी नहीं पूर्ण कर सकती हूँ।

**राजा**—अरे! डरना नहीं चाहिए।

**मालविका**—( **उलाहना सहित** ) आप नहीं डरते हैं यह मैं इरावती के समक्ष देख चुकी हूँ।

**राजा**—हे बिम्बोष्ठि! दाक्षिण्य उत्तमनायकों का कुलव्रत है। किन्तु हे विशाललोचने! हमारे ये प्राण तुम्हारी आशा पर ही निर्भर हैं॥ १४॥

तदनुगृह्यतां चिरानुरक्तोऽयं जनः । ( इति संश्लेषमुपजनयति । )

( मालविका नाट्येन परिहरति । )

राजा—( आत्मगतम् । ) रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतारः । एषा हि इयम्—

**हस्तं कम्पयते रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः**
**स्वहस्तौ नयति स्तनावरणतामालिङ्ग्यमाना बलात् ।**
**पातुं पक्ष्मलनेत्रमुन्नमयतः साचीकरोत्याननम्**
**व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं निर्वर्तयत्येव मे ॥ १५ ॥**

---

दीर्घेऽक्षिणी यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे दीर्घाक्ष ! । त्वदाशानिबन्धनाः = ते तव आशा एव निबन्धनं येषान्ते त्वदाशानिबन्धनाः ।

**अलंकारः**—लुप्तोपमा छेकानुप्रासश्च तयोः संसृष्टिः । छन्दः—पथ्यावक्त्रम् ।

तदनुगृह्यताम् = अनुकम्पयताम् । चिरानुरक्तः = बहुकालोपरूढप्रेमा । अयं जनः । ( संश्लेषमुपजनयति = आलिगनं प्रारमते । ) ( नाट्येन परिहरति = अभिनयेन पृथक् करोति । )

**राजा**—(आत्मगतम् = स्वमनस्येव) रमणीयः = मनोहरः । खलु = निश्चयेन । नवाङ्गनानाम् = प्रथमसमागतानां रमणीनाम् । मदनविषयावतारः = कामलीलोदयः । यतः इयम् = एषा ।

**अन्वयः**—हस्तं कम्पयते रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः रुणद्धि । बलात् आलिग्यमाना स्वहस्तौ स्तनावरणतां नयति, पक्ष्मलनेत्रम्ः आननं पातुं उन्नमयतः आननं साची करोति । व्याजेन अपि मे अभिलाषपूरणसुखं निर्वर्तयति एव ॥ १५ ॥

**हस्तमिति** । मालविका हस्तम् = करम् । कम्पयते = चालयति । रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः = काञ्चीमोचनादिकर्मणि चपलाङ्गुलीः । रुणद्धि = निवारयति । बलात् = सरभसम् । आलिग्यमाना = आश्लिष्यमाणा सती । स्वहस्तौ = निजौ करौ । स्तनावरणताम् = कुचयुगलाच्छादनभावम् । नयति = प्रापयति । पक्ष्मलनेत्रं = प्रशस्तपक्ष्मनेत्रम् । आननम् = मुखम् । पातुम् = चुम्बितुम् । उन्नमयतः = ऊर्ध्वमुखं कुर्वतः । आननम् = मुखम् । साचीकरोति = तिर्यक्करोति । व्याजेन = छलेन निरोधमिषेणापि । मे = मम । अभिलाषपूरणसुखम् = मनोरथसिद्धिप्रभवानन्दम् । निर्वर्तयत्येव = समुपनयत्येव ॥ १५ ॥

**समासः**—रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः = रशनायां यः व्यापारः तस्मिन् लोलाः अङ्गु-

---

अतएव इस चिरप्रणयी पर दया करो । **( ऐसा कहकर राजा आलिंगन करता है । )**

**( मालविका भंगी विशेष से पृथक् हो जाती है । )**

**राजा—( मन ही मन )** नवाङ्गनाओं का कामविषयोद्रेक वास्तव में अत्यन्त मनोहर होता है । यह मालविका—

हाथ कँपाती है, करधनी खोलने के लिए तत्पर अँगुलिओं को रोकती है । बलपूर्वक आलिंगन किए जाने पर अपने दोनों हाथों से स्तनमण्डल को ढँक लेती है । घनी बरौनी वाले नयनों से युक्त सुन्दर मुख को चूमने के लिए ऊपर उठाने पर मुँह घुमा लेती है । परिणामस्वरूप वह अपने निरोध के बहाने हमारी अभिलाषा को पूर्ण कर रही है ॥ १५ ॥

**अलंकार**—काव्यलिंग, अनुकूल और दीपक के आश्रय से संकर अलंकार ।

( ततः प्रविशतीरावती निपुणिका च । )

इरावती—हञ्जे णिउणिए, सच्चं तुमं परिगदत्था चन्दिआए। समुद्दघर-अलिन्दसइदो एआई अज्जगोदमो दिट्ठो त्ति । [ हञ्जे निपुणिके, सत्यं त्वं परिगतार्था चन्द्रिकया । समुद्रगृहालिन्दशयित एकाकी आर्यगौतमो दृष्ट इति । ]

निपुणिका—अण्णहा कहं भट्टिणीए विण्णावेमि। [ अन्यथा कथं भट्टिन्यै विज्ञापयामि । ]

इरावती—तेण हि तहिं एव्व गच्छम्ह संसआदो मुत्तं पिअवअस्सं पुच्छिदुं अ । [ तेन हि तत्रैव गच्छामः संशयान्मुक्तं प्रियवयस्यं प्रष्टुं च । ]

निपुणिका—सावसेसं विअ भट्टिणीए वअणं [ सावशेषमिव भट्टिन्या वचनम् । ]

इरावती—अण्णं च चित्तगदं अज्जउत्तं पसादइदुं । [ अन्यच्च चित्रगतमार्यपुत्रं प्रसादयितुम् । ]

---

लयः ताः रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः । स्तनावरणताम् = स्तनयोः आवरणम् तस्य भावः ताम् स्तनावरणताम् । पक्ष्मलनेत्रः = प्रशस्तानि पक्ष्माणि सन्ति यत्र इति पक्ष्मले नेत्रे यस्मिन् तत् पक्ष्मलनेत्रम् । अभिलाषपूरणसुखम् = अभिलाषस्य पूरणं तेन यत्सुखं तत् अभिलाषपूरणसुखम् ।

अलंकारः—काव्यलिंगम्, अनुकूलम् दीपकम् एषामेकाश्रयानुप्रवेशात् सङ्करः ।

छन्दः—शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ।

इरावती—हञ्जे = चेटीसम्बोधने । निपुणिके = दासीविशेषे । सत्यम् = वास्तविकम् । त्वम् परिगतार्था = ज्ञातविषया । चन्द्रिकया = तदभिधानया परिचारिकया । समुद्रगृहालिन्द-शयितः = समुद्रगृहाख्योद्यानभवनस्य बहिर्भागे निद्राणः । एकाकी = एकल एव । आर्यगौतमः = आर्यविदूषकः । दृष्टः = अवलोकितः ।

निपुणिका—अन्यथा = अपरिगतार्थत्वे । कथम् = केन प्रकारेण । भट्टिन्यै = स्वामिन्यै । विज्ञापयामि = सूचयामि ।

इरावती—तेन हि = अत एव । तत्रैव = तस्मिन्नेव स्थाने । गच्छामः = व्रजामः । संशयान्मुक्तम् = सन्देहोत्तीर्णम् । प्रियवयस्यम् = प्रियगौतमम् । प्रष्टुं च = जिज्ञासितुम् ।

निपुणिका—सावशेषमिव = अपूर्णमिव । भट्टिन्याः = श्रीमत्याः । वचनम् = वाक्यम् ।

इरावती—अन्यच्च = अपरमिदमस्ति । चित्रगतम् = आलेख्यलिखितम् । आर्यपुत्रम् = महाराजम् । प्रसादयितुम् = अनुनेतुम् ।

---

( तब इरावती और निपुणिका प्रवेश करती हैं। )

**इरावती**—अरी निपुणिके ! चन्द्रिका ने तुमको सत्य ही सूचना दी। समुद्रगृह के द्वार पर बाह्यप्रदेश में सोए हुए आर्य गौतम दिखलाई दे रहे हैं।

**निपुणिका**—यदि ऐसी बात न होती तो आपसे मैं क्यों कहती ?

**इरावती**—अतएव मैं वहीं पर जा रही हूँ। सर्पदष्ट गौतम मरा या जीवित है, इसका पता भी चल जाएगा तथा उससे कुछ बातें भी करूँगी।

**निपुणिका**—आपका वचन अपूर्ण सा है। ज्ञात होता है कि आप कुछ और कहना चाहती हैं।

**इरावती**—हाँ और भी कुछ है। चित्रगत महाराज को प्रसन्न भी करना है।

**निपुणिका**—अह दाणिं कहं णु भट्टा एव्वं अणुणाआदि। [ अथेदानीं कथं नु भर्तैवमनुनीयते। ]

**इरावती**—मुद्धे, जारिसो चित्तगदो णं तारिसो एव्व अण्णसंकन्तहिअओ अज्जउत्तो। केवलं उवआरादिक्कमं पमज्जिदुं अअं आरम्भो। [ मुग्धे, यादृशश्चित्रगतो ननु तादृश एवान्यसंक्रान्तहृदय आर्यपुत्रः। केवलमुपचारातिक्रमं प्रमार्जितुमयमारम्भः। ]

**निपुणिका**—इदो इदो भट्टिणी। [ इत इतो भट्टिनी। ]

( उभे परिक्रामतः। )

( प्रविश्य। )

**चेटी**—जेदु जेदु भट्टिणी। भट्टिणि, देवी भणादि। ण मे मच्छरस्स एसो कालो। तेण क्खु बहुमाणं वड्ढेदुं वअस्साए सह णिअलबन्धणे किदा मालविआ। जइ अणुमण्णसि अज्जउत्तस्स पिअं कादुं तहा करेमि जं तुह इच्छिअं तं मे भणाहि त्ति। [ जयतु जयतु भट्टिनी। भट्टिनि, देवी भणति। न मे मत्सरस्यैष कालः। तेन खलु बहुमानं वर्धयितुं वयस्यया सह निगडबन्धने कृता मालविका। यद्यनुमन्यसे आर्यपुत्रस्य प्रियं कर्तुं तथा करोमि। यत्तवेष्टं तन्मे भणेति। ]

---

**निपुणिका**—अथ = ततः। इदानीम् = अस्मिन् समये। कथं नु = किम्। भर्तैव = महाराज एव। अनुनीयते = प्रसाद्यते।

**इरावती**—मुग्धे = अतत्त्वज्ञे !। यादृशः = यथा। चित्रगतः = चित्रितः आलिखितः। तादृशः = तद्वदेव। अन्यसंक्रान्तहृदयः = अपराकृष्टमनाः। आर्यपुत्रः = महाराजः। केवलम् = एकमेव। उपचारातिक्रमम् = व्यवहारस्य अवधीरणारूपमुल्लंघनम्। प्रमार्जितुम् = क्षालयितुम्। अयम् = उपक्रम्यमाणः उद्यमः। आरम्भः = कार्यम्।

**निपुणिका**—इत इतो भट्टिनी = अनेन मार्गेण महाराज्ञी।

( इरावतीनिपुणिके गच्छतः )

( प्रवेशं कृत्वा )

**चेटी**—जयतु जयतु भट्टिनी = राज्ञ्यो विजयो भवतु। भट्टिनि ! = श्रीमति !। देवी = महाराज्ञी धारिणी। भणति = कथयति। न मे = न मम। मत्सरस्य = द्वेषस्य। एष कालः = अयं समयः। तेन खलु = अस्मात् कारणात्। बहुमानम् = आदरातिशयम्।

---

**निपुणिका**—तो आप चलकर महाराज ही को क्यों नहीं मना लेतीं ?

**इरावती**—अरी पगली ! दूसरों से प्रेम करने वाले आर्यपुत्र हमारे लिए वैसे ही हैं जैसे उनका चित्र। उस दिन मैंने उनके मनाने पर भी जो उनकी बात न मानने की धृष्टता की उसी के परिमार्जन के लिए प्रयत्नशील हूँ।

**निपुणिका**—देवी जी ! इधर से इधर से।

**( दोनों घूमती हैं। )**

**( प्रवेश करके। )**

**चेटी**—महारानी की जय हो। देवी ने कहा है—मेरे लिए विद्वेष का समय नहीं है। तुम्हारी

इरावती—णाअरिए, विण्णावेहि देवीं । का वअं भट्टिणीं णिअजेदुं । परिअणणिग्गहेण दंसिदो मइ अणुग्गहो । कस्स वा पसादेण अअं जणो वड्ढदि त्ति । [ नागरिके, विज्ञापय देवीम् । का वयं भट्टिनीं नियोजयितुम् । परिजननिग्रहेण दर्शितो मय्यनुग्रहः । कस्य वा प्रसादेनायं जनो वर्धत इति । ]

चेटी—तह । [ तथा । ] ( इति निष्क्रान्ता । )

निपुणिका—( परिक्रम्यावलोक्य च । ) भट्टिणि, एसो दुवारुद्देसे समुद्दघरअस्स विपणिगदो विअ बलीवद्दो अज्जगोदमो आसीणो एव्व णिद्दाअदि । [ भट्टिनि, एष द्वारोद्देशे समुद्रगृहस्य विपणिगत इव बलीवर्द आर्यगौतम आसीन एव निद्रायते । ]

इरावती —अच्चाहिदं । ण क्खु सावसेसो विसविआरो भवे । [ अत्याहितम् । न खलु सावशेषो विषविकारो भवेत् । ]

---

वर्धयितुम् = समेधयितुम् । वयस्यया = प्रियसख्या सह । निगडबन्धने = शृङ्खलाबन्धने । कृता मालविका = स्थापिता मालविका । यदि अनुमन्यसे = यदि त्वं कथयसि । आर्यपुत्रस्य= महाराजस्य । प्रियं कर्तुम् = शमं विधातुम् । तथा करोमि = तथैव करिष्यामि । यद् = यत्किञ्चित । तवेष्टम् = तव प्रयोजनम् । तन्मे भण = तत् मह्यम् निवेदय ।

इरावती—नागरिके != परिचारिके ! । विज्ञापय = कथय । देवीम् = धारिणीम् । का वयम् = वयं न किञ्चित् । भट्टिनीम् = राज्ञीम् । नियोजयितुम् = प्रवर्त्तयितुम् । परिजन-निग्रहेण = मालविकाबन्धनेन । दर्शितः = प्रकटितः । मयि । अनुग्रहः = दयातिशयः । कस्य = देव्यतिरिक्तस्य जनस्य । प्रसादेन = अनुग्रहेण । अयम् = मल्लक्षण एषः । जनो वर्द्धते = जनो बहुमानमेति ।

चेटी—तथा = यथा भवदुक्तं विज्ञापयामि देव्यै । ( इति निर्गता )

निपुणिका—( गत्वा दृष्ट्वा च ) भट्टिनि = महाराज्ञि ! । एषः = अयम् । द्वारोद्देशे = द्वारप्रदेशे । समुद्रगृहस्य = एतद्भवनस्य । विपणिगतः=आपणस्थ इव । बलीवर्दः = वृषभः । आर्यगौतमः = विदूषकः । आसीन एव = उपविष्ट एव । निद्रायते = स्वप्नायते ।

इरावती —अत्याहितम् = महदनिष्टम् । न खलु = न भवेत् । सावशेषः = कियानंशः । विषविकारः = सर्पविषस्य विकृतिः । भवेत् = सम्भवेद् । चिकित्सया शान्तविषवेगः पुनरपि प्रकटितो भवेत् ।

---

की इच्छा को देखकर मैंने सखी सहित मालविका को बन्दीगृह में रखवा दिया है । यदि तुम कहो तो आर्यपुत्र का प्रिय कार्य करूँ । तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे कहो ।

**इरावती**—नागरिका तुम देवी से कहना, देवी को आदेश देनेवाली मैं कौन होती हूँ ? अपने जन को बन्दी बनाकर मुझपर कृपा की गई और किसके द्वारा मैं अनुगृहीत हूँगी ?

**चेटी**—जो आज्ञा । **( जाती है । )**

**निपुणिका**—**( देखकर )** यह समुद्रगृह के द्वार पर गौतम बाजारू बैल की तरह बैठे-बैठे सो गया है ।

**इरावती**—यह तो बड़ा बुरा हुआ । कहीं सर्पदंशोत्पन्न विष का विकार शेष न रह गया हो ।

**निपुणिका**—पसण्णमुहवण्णो दीसइ । अवि अ धुवसिद्धिणा चिइच्छिदो । ता से असङ्कणिज्जं पावं । [ प्रसन्नमुखवर्णो दृश्यते । अपि च ध्रुवसिद्धिना चिकित्सितः । तदस्याशङ्कनीयं पापम् । ]

**विदूषकः**—( उत्स्वप्नायते । ) भोदि मालविए । [ भवति मालविके । ]

**निपुणिका**—सुदं भट्टिणीए, कस्स ऐसो अत्तणिओअसंपादणे विस्ससणिज्जो हदासो । सव्वकालं इदो एव्व सोत्थिवाअणमोदएहिं कुक्खि पूरिअ संपदं मालविअं सिविणावेदि । [ श्रुतं भट्टिन्या, कस्यैष आत्मनियोगसंपादने विश्वसनीयो हताशः । सर्वकालमित एव स्वस्तिवाचनमोदकैः कुक्षिं पूरयित्वा सांप्रतं मालविकां स्वप्नायते । ]

**विदूषकः**—इरावदीं अदिक्कमन्ती होहि [ इरावतीमतिक्रामन्ती भव । ]

**निपुणिका**—एदं अच्चाहिदं । इमं भुअङ्गभीरुअं ब्रह्मबन्धुं इमिणा भुअङ्गकुडिलेण दण्डकट्ठेण तम्भन्तरिदा भाअइस्सं । [एतदत्याहितम् । इमं भुजङ्गभीरुं ब्रह्मबन्धुमनेन भुजङ्गकुटिलेन दण्डकाष्ठेन स्तम्भान्तरिता भाययिष्यामि ।

---

**निपुणिका**—प्रसन्नमुखवर्णः = उल्लसिताननशोभः । दृश्यते = अवलोक्यते । अपि च यतः ध्रुवसिद्धिना=वैद्यराजेन । चिकित्सितः = कृतभैषज्यः । तत् अस्य = तदास्य विदूषकस्य । पापम् = अमंगलम् मरणलक्षणम् । अशङ्कनीयम् = असम्भावनीयम् ।

**विदूषकः**—( उत्स्वप्नायते = स्वप्नप्रलापमाचरति । ) ( भवति मालविके = श्रीमति मालविके । )

**निपुणिका**—श्रुतम् = आकर्णितम् । भट्टिन्या=श्रीमत्या । कस्य = कस्य जनस्य । एषः = विदूषकः । आत्मनियोगसम्पादने = स्वकर्त्तव्यनिर्वाहे । विश्वसनीयः = विश्वासपात्रम् । हताशः = भाग्यहीनः । सर्वकालम् = सर्वदा । इत एव = भवत्याः सकाशात् । स्वस्तिवाचनमोदकैः = आशीःप्रदानसमये लब्धमधुरैः । कुक्षिम् = स्वोदरम् । पूरयित्वा = पूरितं कृत्वा । साम्प्रतम् = अधुना । मालविकाम् = एतां परिचारिकाम् । स्वप्नायते = स्वप्ने प्रलपति ।

**विदूषकः**—इरावतीम् = कनिष्ठां राज्ञीम् । अतिक्रामन्ती = पराभवन्ती । भव ।

**निपुणिका**—एतद् = इदम् । अत्याहितम् = महाभयम् । इमम् = विदूषकम् । भुजंगभीरुम् = अहिभीतम् । ब्रह्मबन्धुम् = ब्राह्मणाधमम् । अनेन भुजंगकुटिलेन = एतेन सर्पवद् वक्रेण । दण्डकाष्ठेन = काष्ठयष्ट्या । स्तम्भान्तरिता = स्तम्भपृष्ठवर्तिनी भूत्वा । भाययिष्यामि = भयमुत्पादयिष्यामि ।

---

**निपुणिका**—पर इसका मुखवर्ण तो प्रसन्न है । और जब ध्रुवसिद्धि ने इसके विष की दवा की है तो कोई घबड़ाने की बात नहीं है ।

**विदूषक**—( स्वप्न में प्रलाप करता हुआ ) हे देवि मालविके !

**निपुणिका**—देवी ने सुना ? अपना कार्य सिद्ध कराने के लिए इस अभागे का कौन विश्वास करेगा ? सदा तो यह आपके दिए हुए पूजा के मोदकों से उदर पूर्ति करता है और आज स्वप्न में इसे मालविका सूझ रही है ।

**विदूषक**—इरावती को पराजित करनेवाली बनो ।

**निपुणिका**—यह तो बड़ा बुरा हुआ । खम्भे के पीछे खड़ी होकर सर्प से भयभीत इस ब्राह्मणाधम को सर्पतुल्य वक्र इस लाठी से उठाती हूँ ।

इरावती—अरुहदि एव्व किदग्घो उवद्दवस्स । [ अर्हत्येव कृतघ्नः उपद्रवस्य । ]

( निपुणिका विदूषकस्योपरि दण्डकाष्ठं पातयति । )

विदूषकः—( सहसा प्रबुध्य । ) अविहा अविहा । भो वअस्स, सप्पो मे उवरि पडिदो । [ अविधा अविधा । भो वयस्य, सर्पो मे उपरि पतितः । ]

राजा—( सहसोपसृत्य । ) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

मालविका—( अनुसृत्य । ) भट्टा, मा दाव सहसा णिक्कम । सप्पो त्ति भणीअदि । [ भर्तः, मा तावत्सहसा निष्क्राम । सर्प इति भण्यते । ]

इरावती—हद्धि हद्धि । भट्टा इदो एव्व धावदि । [ हा धिक् हा धिक् । भर्ता इतः एव धावति । ]

विदूषकः—( सप्रहासम् । ) कहं दण्डकट्ठं एदं । अहं उण जाणे जं मए केदईकण्टएहिं डंसं करिअ सप्पस्स उवरि अअसो किदं, तं मे फलिदं त्ति । [ कथं दण्डकाष्ठमेतत् । अहं पुनर्जाने यन्मया केतकीकण्टकैर्दंशं कृत्वा सर्पस्योपर्ययशः कृतम्, तन्मे फलितमिति । ]

---

इरावती—अर्हत्येव = योग्योऽस्ति । कृतघ्नः = अकृतज्ञः । उपद्रवस्य = विघ्नस्य । ( निपुणिका = दासी । विदूषकस्योपरि = गौतमस्य शरीरे । दण्डकाष्ठम् = यष्टिं पातयति । )

विदूषकः—( शीघ्रं प्रबुद्धो भूत्वा ) अविधा अविधा = हा ! हा ! । सर्पः = आहिः । मे उपरि = मम शरीरे । पतितः = सर्पाक्रान्तोऽहम् ।

राजा—( शीघ्रं गत्वा ) मित्र ! भयभीतो मा भव मा भव ।

मालविका—( अनुसृत्य = अनुगमनं कृत्वा ) भर्तः = स्वामिन् । मा तावत् = न तदा । निष्क्राम = बहिर्यातु । सर्प इति = सर्पस्य वार्ता । भण्यते = कथ्यते ।

इरावती—हा ! हा ! भर्ता = महाराजः । इत एव = अस्मात् स्थानात् । धावति = आगच्छति ।

विदूषकः—( सप्रहासम् = हासेन सह । ) कथम् = किम् । दण्डकाष्ठमेतत् = इयं काष्ठयष्टिः । अहं पुनर्जाने = मया तु ज्ञातम् । यत् मया केतकीकण्टकैः = केतकीसूचिकाभिः । दंशं कृत्वा = किञ्चिद् छिद्रं कृत्वा । सर्पस्योपरि = सर्पस्य सम्बन्धे । अयशः कृतम् = अकीर्तिः कृता । तन्मे फलितम् = तस्यैव फलं प्राप्तम् ।

---

**इरावती**—ऐसे कृतघ्न के साथ ऐसी ही कुचाल करनी चाहिए ।

**( निपुणिका विदूषक के ऊपर लाठी गिरा देती है । )**

**विदूषक—( शीघ्र जगकर )** हाय ! हाय ! मित्र ! मेरे ऊपर साँप गिर पड़ा है ।

**राजा—( शीघ्र समीप आकर )** डरो मत डरो मत ।

**मालविका—(पीछा करती हुई)** देव ! आप बाहर न जायँ, साँप की बात कही जा रही है ।

**इरावती**—हाय हाय ! महाराज यहीं से दौड़े चले आ रहे हैं ।

**विदूषक—( अत्यधिक हँसी के साथ )** यह तो लाठी है । मुझे ज्ञात हुआ कि मैंने केतकी-कण्टक से चिह्न बनाकर जो सर्प को मिथ्या अपवाद लगाया था, उसी का फल मुझे यहं मिल रहा है ।

( प्रविश्य पटाक्षेपेण )

**बकुलावलिका**—मा दाव भट्टा पविसदु । इह कुडिलगई सप्पो विअ दीसदि ।
[ **मा तावद्भर्ता प्रविशतु । इह कुटिलगतिः सर्प इव दृश्यते ।** ]

**इरावती**—( स्तम्भान्तरिता राजानं सहसोपेत्य । ) अवि णिव्विग्घमणोरहो दिवासंकेदो मिहुणस्स । [ **अपि निर्विघ्नमनोरथो दिवासंकेतो मिथुनस्य ।** ]

( सर्वे इरावतीं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः । )

**राजा**—प्रिये, अपूर्वोऽयमुपचारः ।

**इरावती**—बउलावलिए, दिट्ठिआ भटाहिआरविसआ संपुण्णा दे पइण्णा ।
[ **बकुलावलिके, दिष्टचा भर्त्राभिसारविषया संपूर्णा ते प्रतिज्ञा ।** ]

**बकुलावलिका**—पसीददु भट्टिणी । किं मए किदंत्ति देवो पुच्छिदव्वो । दद्दुरा वाहरन्तित्ति किं देवो पुहवीएं वरिसिदुं विरमदि । [ **प्रसीदतु भट्टिनी । किं मया कृतमिति देवः प्रष्टव्यः । दर्दुरा व्याहरन्तीति किं देवः पृथिव्यां वर्षितुं विरमति ।** ]

---

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा । पटाक्षेपेण = पटं निवारयित्वा )

**बकुलावलिका**—मा तावद् भर्ता = महाराजोऽधुना मा । प्रविशतु = आगच्छतु । इह = अस्मिन् स्थले । कुटिलगतिः = वक्रगतिः । सर्प इव = अहिरिव । दृश्यते=अवलोक्यते ।

**इरावती** –( स्तम्भान्तरिता = स्तम्भपृष्ठगता । राजानम् = महाराजम् । सहसा = शीघ्रम् । उपेत्य = आगत्य ) अपि = सम्पन्नोऽभवत् । निर्विघ्नमनोरथः = अनायाससम्पादिताभिलाषः । दिवासङ्केतः = दिवसाभिसारः । मिथुनस्य = नृपमालविकात्मकस्य ।

( सर्वे = जनाः इरावतीं दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः = भयचकिताः भवन्ति । )

**राजा**—प्रिये != प्रियतमे ! । अपूर्वः = विलक्षणः । अयम्=एषः । उपचारः=व्यवहारः ।

**इरावती**—बकुलावलिके != अन्यस्य परिचारिके ! । दिष्ट्या=सौभाग्येन । भर्त्राभिसारविषया = महाराजमालविकामिलनसम्बन्धिनी । ते = तव । प्रतिज्ञा = दृढविचारः । सम्पूर्णा = सार्थकाऽभवत् । एतेन इरावत्याः कोपो व्यक्तः ।

**बकुलावलिका**—प्रसीदतु भट्टिनी = प्रसन्ना भवतु महाराज्ञी । किं मया कृतमिति = मया किञ्चिदपि विपरीताचरणं न कृतम् । देवः प्रष्टव्यः = भवती महाराजं प्रष्टुं शक्नोति ।

---

**( पर्दा हटाकर प्रवेश करके )**

**बकुलावलिका**—महाराज ! आप मत आवें, यहाँ पर टेढ़ा साँप है ।

**इरावती—(खम्भे की आड़ से शीघ्र जाकर )** युगल दम्पति का यह दिवाभिसार तो निर्विघ्न समाप्त हुआ ?

**( सभी इरावती को देखकर भयचकित हो जाते हैं । )**

**राजा**—प्रिये ! तुम्हारा यह प्रीति व्यवहार तो बड़ा विचित्र है ।

**इरावती**—बकुलावलिके ! महाराज के अभिसार से सम्बद्ध तुम्हारी प्रतिज्ञा सौभाग्य से पूर्ण हो गई ।

**बकुलावलिका**—महारानी आप प्रसन्न हों, मैंने क्या किया है ? आप राजा से पूछ लीजिए मेढक टर्र-टर्र बोलते हैं क्या इसी के लिए मेघ पृथ्वी पर जलवृष्टि के लिए रुक जाते हैं ।

विदूषकः—मा दाव । भोदीए दंसणमत्तेण अत्तभवं पणिवादलङ्घणं विसुमरिदो । तुमं उण अज्जवि पसादं ण गेण्हसि । [ मा तावत् । भवत्या दर्शनमात्रेणात्रभवान्प्रणिपातलङ्घनं विस्मृतः । त्वं पुनरद्यापि प्रसादं न गृह्णासि । ]

इरावती—कुविदा दाणिं अहं किं करिस्सं । [ कुपितेदानीमहं किं करिष्यामि । ]

राजा—एवमेतदस्थाने कोप इत्यनुपपन्नं त्वयि । तथा हि—

**कदा मुखं वरतनु कारणादृते तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम् ।**
**अपर्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला विभावरी कथय कथं भविष्यति ॥१६॥**

---

दर्दुरा व्याहरन्ति = मण्डूका रटन्ति । अस्मात्=कारणात् । किम् देवः = मेघः । पृथिव्याम् = भूमौ । वर्षितुम् = वृष्टिं कर्तुम् । विरमति = प्रतीक्षते ।

विदूषकः—मा तावत् = अनुचितमिदम् वार्तालापम् । भवत्याः = श्रीमत्याः । दर्शनेन = शरीरावलोकनेन । अत्रभवान् = श्रीमान् महाराजः । प्रणिपातलङ्घनम् = पादपतलेऽपि अप्रसादरूपम् । विस्मृतः = हृदयात् अपानयत् । त्वम् = इरावती । अद्यापि = इदानीमपि । प्रसादम् = प्रसन्नताम् । न गृह्णासि = न धारयसि ।

इरावती—कुपिता = सक्रोधा । इदानीम् = अधुना । अहम् किं करिष्यामि = किञ्चिदपि कर्त्तुं न समर्थाऽस्मि सामर्थ्यहीनात् ।

राजा—एवम् = अनेन प्रकारेण । एतत् = इदम् कार्यम् । अनुपपन्नम् = अनुचितम् । अस्थाने = अनवसरे । कोपः = क्रोधः । तथा हि = यतः ।

अन्वयः—वरतनु ! तव मुखं कारणात् ऋते कदा क्षणमपि कोपपात्रताम् आगतम् ? विभावरी अपर्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला कथं भविष्यति ? कथय ॥ १६ ॥

कदेति । वरतनु ! = रमणीयगात्रि ! । तव मुखम् = भवत्या आननम् । कारणात् ऋते = हेतुं विना । कदा = कस्मिन् काले । ( क्षणमात्रस्यापि कृते ) कोपपात्रताम् = क्रोधभाजनत्वम् । आगतम् = प्राप्तम् ? । विभावरी = रात्रिः । अपर्वणि = पूर्णिमातिरिक्ते समये । ग्रहकलुषम् = राहुसम्पर्कमलिनम् । इन्दुमण्डलम् = चन्द्रमण्डलम् यस्यां तादृशी = राहुसम्पर्कमलिनचन्द्रमण्डला । कथम् = केन प्रकारेण । भविष्यति=न कथमपि । कथय = वद ॥१६॥

समासः—वरतनु=वरा तनुर्यस्या सा तत्सम्बुद्धौ हे वरतनु ! । कोपपात्रताम्=कोपस्य

---

विदूषक—ऐसा नहीं । तुम्हारे दर्शन से ही महाराज तुम्हारे द्वारा किए गए अपमान को भूल गए किन्तु तुम अभी भी प्रसन्न नहीं हो रही हो ।

इरावती—मैं महाराज पर क्रुद्ध होकर ही क्या कर सकती हूँ ?

राजा—इस प्रकार बिना अवसर के ही क्रोध कर बैठना आप को शोभा नहीं देता ।

अवसरशून्य अयोग्य स्थान में क्रोध करना तुम्हें शोभा नहीं देता । हे रमणीय गात्रि ! बिना कारण के तुमने कब क्रोध का प्रकाशन किया ? अर्थात् कदापि नहीं । पूर्णिमा के बिना ही राहु ग्रहण से चन्द्रमण्डल कलुषित हो जाय, ऐसी बात किस रात्रि में भला होती है ? ॥ १६ ॥

अलंकार—दृष्टान्त अलंकार ।

विशेष—ग्रहण के सम्बन्ध में जमदग्नि ने लिखा है—

'पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ छादयिष्यति ।
भूमिच्छायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन ॥'

**इरावती**—अट्ठाणे त्ति सुट्ठु वाहरिदं अज्जउत्तेण। अण्णसंक्कन्तेसु अम्हाणं भाअहेएसु जइ उण कुप्पेअं, तदो णं अहं हस्सा भवेअं। [ अस्थान इति सुष्ठु व्याहृतमार्यपुत्रेण। अन्यसंक्रान्तेष्वस्माकं भागधेयेषु यदि पुनः कुप्येयम्, ततो नन्वहं हास्या भवेयम् ]।

**राजा**—त्वमन्यथा कल्पयसि। अहं पुनः सत्यमेव कोपस्थानं न पश्यामि। कुतः—

**नार्हति कृतापराधोऽप्युत्सवदिवसेषु परिजनो बन्धम्।**
**इति मोचिते मयैते प्रणिपतितुं मामुपगते च॥ १७॥**

---

पात्रम् कोपपात्रम् तस्य भावः ताम् कोपपात्रताम्। कलुषेन्दुमण्डला = ग्रहेण कलुषम् इन्दोः मण्डलं यस्यां सा कलुषेन्दुमण्डला।

**अलंकारः**—दृष्टान्तालङ्कारः।

**छन्दः**—रुचिरावृत्तम्–लक्षणम् = "जभौ स जौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।"

**इरावती**—अस्थान इति = अनवसर इति। सुष्ठु = साधु। व्याहृतम् = कथितम्। आर्यपुत्रेण = महाराजेन। अन्यसंक्रान्तेषु = मालविकागतेषु। अस्माकम् = मदीयेषु। भागधेयेषु = भाग्येषु। यदि पुनः कुप्येयम् = यदि क्रुद्धा भवेयम्। ततः = तदा। अहम् हास्या= उपहासयोग्या। भवेयम्।

**राजा**—त्वम् = इरावती। अन्यथा = अन्यामेव। कल्पयसि = कल्पनां करोषि। अहम्= महाराजः। पुनः = भूयः। सत्यमेव=वस्तुतः। कोपस्थानम् = क्रोधावसरम्। न पश्यामि = नावलोकयामि।

**अन्वयः**—कृतापराधः अपि परिजनः उत्सवदिवसेषु बन्धं न अर्हति इति मया एते मोचिते मां प्रणिपतितुं उपगते च॥ १७॥

**नार्हतीति**। कृतापराधः = विहितागाः। अपि। परिजनः = परिचारकलोकः। उत्सवदिवसेषु = आनन्दसमयेषु। बन्धम् = कारावासादिरूपम् दमनम्। न अर्हति = न योग्योऽस्ति। इति = अस्माद्धेतोः। एते = मालविकाबकुलावलिके। मोचिते = मुक्तबन्धनतां नीते। माम्= महाराजम्। प्रणिपतितुम् = प्रणामं कर्त्तुम्। उपगते = अत्रागते॥ १७॥

**समासः**—कृतापराधः = कृतः अपराधः येन सः कृतापराधः। उत्सवदिवसेषु = उत्सवदिवसाः तेषु उत्सवदिवसेषु।

**अलङ्कारः**—व्याजोक्तिरलङ्कारः। **छन्दः**—आर्यावृत्तम्।

---

**इरावती**—मैं विना अवसर क्रोध करती हूँ यह आपका कहना ठीक है। हमारा सौभाग्य किसी अन्य को मिल रहा है, यदि इस पर क्रोध करूँगी तो हँसी होगी।

**राजा**—तुम तो अन्य ही कल्पना करती हो। मैं तो वास्तव में क्रोध का कारण नहीं देखता। क्योंकि—

उत्सव के दिनों में अपराधी परिजन को भी दण्ड देना उचित नहीं। अतएव इन दोनों ( मालविका और बकुलावलिका ) को छुड़वा दिया गया। वे दोनों कृतज्ञताज्ञापनार्थ प्रणाम करने आई हैं॥ १७॥

**अलंकार**—व्याजोक्ति अलङ्कार।

इरावती – णिउणिए, गच्छ। देवीं विण्णावेहि दिट्ठो भवदीए पक्खवादो णं अज्ज त्ति। [ निपुणिके, गच्छ। देवीं विज्ञापय। दृष्टो भवत्याः पक्षपातो नन्वद्येति। ]

निपुणिका—तह। [ तथा। ] ( इति निष्क्रान्ता। )

विदूषकः—( आत्मगतम्। ) अहो, अणत्थो संपडिदो। बन्धणब्भट्टो गिहकवोदो विडालिआए आलोए पडिदो। [अहो, अनर्थः संपतितः। बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतो बिडालिकाया आलोके पतितः। ]

निपुणिका –( प्रविश्यापवार्य ।) भट्टिणि, जदिच्छादिट्ठाए माहविआए आचक्खिदं। एव्वं क्खु पदं णिव्वुत्तं ( इति कर्णे कथयति। ) [ भट्टिनि, यदृच्छादृष्टया माधविकयाख्यातम्। एवं खल्वेतन्निर्वृत्तमिति। ]

इरावती –( आत्मगतम्। ) उववण्णं। सच्चं अअं एत्थ बह्मबन्धुणा किदो पओओ। ( विदूषकं विलोक्य प्रकाशम्। ) इअं इमस्स कामतन्तसचिवस्स णीदी। [ उपपन्नम्। सत्यमयमत्र ब्रह्मबन्धुना उद्भिन्नः कृतः प्रयोगः। इयमस्य कामतन्त्रसचिवस्य नीतिः। ]

---

इरावती—निपुणिके ! = परिचारिके। गच्छ = व्रज। देवीं विज्ञापय = धारिणीं कथय। दृष्टो भवत्याः पक्षपातः = अवगतम् देव्या एकपक्षपातित्वम्। नन्वद्येति = ननु अधुनेति।

निपुणिका—तथा = उचितम्। ( इति निक्रान्ता = निर्गता च। )

विदूषकः—अहो ! = आश्चर्यम्, अनर्थः = विपत्तिः। संपतितः = उपस्थिता। बन्धनभ्रष्टः = बन्धनान्मुक्तः। गृहकपोतः = गेहकपोतकः। बिडालिकायाः = मार्जारिकायाः। आलोके = दृष्टिपटो पतितः = आगतः।

निपुणिका—( आगत्य शनैः शनैः ) भट्टिनि ! = महाराज्ञि !। यदृच्छादृष्टया = अनायासेन प्राप्तया। माधविकया = परिचारिकया। आख्यातम् = कथितम्। एवं खलु = अनेन प्रकारेण। एतन्निवृत्तम् = इदं संजातम्। ( इति = इत्थम्। कर्णे कथयति = गुप्तरूपेण वदति। )

इरावती—( स्वमनस्येव ) उपपन्नम् = युक्तम्। सत्यमयम् = वस्तुत एषः। अत्र ब्रह्मबन्धुना = अनेन ब्राह्मणाधमेन। कृतः प्रयोगः = विहित उपायः। इयं नीतिः = न योग्यम्। कामतन्त्रसचिवस्य = कामविषये सहायकस्य नर्मसचिवस्य विदूषकस्य।

---

**इरावती**—निपुणिके ! जाकर देवी से कहो कि आज आपका भी पक्षपात देख लिया मैंने।

**निपुणिका**—ठीक है। **( निकल जाती है। )**

**विदूषक**—अरे ! अनर्थ हो गया। बन्धन से मुक्त गृहपालित कपोत विडाल के समक्ष पड़ गया।

**निपुणिका**—**( प्रवेश कर अलग से )** स्वामिनी ! अभी माधविका मुझे मिली थी। उसने बतलाया कि यह सब ऐसे हुआ है। **( कान में कहती है। )**

**इरावती**—**( मन ही मन )** मुझे ज्ञात हो गया। वस्तुतः इस विषय में इसी ब्राह्मणाधम द्वारा किया गया यह उपाय है। **( विदूषक को देख कर प्रकट में )** यह इसी कामविषय में सहायक नर्मसचिव विदूषक की नीति है।

**विदूषकः**—भोदि, जदि णीदीगतं एक्कं वि अक्खरं पढेअं णं भए अत्तभवं पेसिदो हवे । [ भवति, यदि नीतिगतमेकमप्यक्षरं पठेयम्, न मयात्र भवान् प्रेषितो भवेत् । ]

**राजा**—( आत्मगतम् । ) कथं नु खल्वस्मात्संकटादात्मानं मोचयिष्यामि ।

**जयसेना**—देव, कुमारी वसुलच्छी कन्दुअं अणुधावन्दी पिङ्गलवाणरेण बलीअं वित्तासिदा अङ्कणिसण्णा देवीए पवादकिसलअं विअ वेवमाणा ण किंवि पकिदिं पडिवज्जइ । [ देव, कुमारी वसुलक्ष्मीः कन्दुकमनुधावन्ती पिङ्गलवानरेण बलवत्त्रासिताङ्कनिषण्णा देव्याः प्रवातकिसलयमिव वेपमाना न किंचित्प्रकृतिं प्रतिपद्यते । ]

**राजा**—कष्टं कष्टम् । कातरो बालभावः ।

**इरावती**—( सावेगम् । ) तुवरदु अज्जउत्तो णं समासासिदुं । मा से संतासजणिदो विआरो वड्ढदु [ त्वरतामार्यपुत्र एनां समाश्वासयितुम् । माऽस्याः संत्रासजनितो विकारो वर्धताम् । ]

---

**विदूषकः**—भवति ! = श्रीमति ! । यदि नीतिगतम् = यदि नीतिशास्त्रगतम् । एकम् अपि अक्षरम् = एकं वर्णमपि । पठेयम् = अवगच्छेयम् । न मया अत्र = मया अस्मिन् स्थानेन । भवान् = महाराजः । प्रेषितो भवेत् = बन्धने आगच्छेत् ।

**राजा**—( स्वमनस्येव ) कथं नु खलु = केन प्रकारेण । अस्मात् सङ्कटात् = एतस्माद् विपदः । आत्मानम् = स्वम् । मोचयिष्यामि = मुक्तं कारयिष्यामि ।

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा )

**जयसेना**—देव != महाराज ! । कुमारी वसुलक्ष्मीः=धारिणीगर्भजा राजपुत्री । कन्दुकम् = 'गेंद' इति खेलनपदार्थम् । अनुधावन्ती = कन्दुकमनुसरती । पिङ्गलवानरेण = पीतवर्णेन मर्कटेन । बलवत्त्रासिता = अतिभयंगमिता । अङ्कविषण्णा = क्रोडस्था । देव्याः = धारिण्याः । प्रवातकिसलयमिव = वायुचालितपल्लववत् । वेपमाना = कम्पमाना । न किञ्चित्प्रकृतिम् = वास्तविकावस्थितिं न प्रतिपद्यते = प्राप्नोति ।

**राजा**—कष्टम् कष्टम् = दुःखम् दुःखम् । कातरो बालभावः = कातर्यं बालभावसिद्धम् ।

**इरावती**—( सावेगम् = सोद्वेगम् । ) त्वरताम् = शीघ्रताम् कुरु । आर्यपुत्रः = महा-

---

**विदूषक**—देवि ! यदि मैं नीतिशास्त्र का एक अक्षर भी पढ़ा होता तो क्या महाराज को मैं इस प्रकार कभी फँसने देता ।

**राजा—( मन ही मन )** अब इस अकस्मात् आए हुए संकट से अपने को किस प्रकार छुड़वाऊँगा ?

**( प्रवेश करके )**

**जयसेना**—महाराज ! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ रही थी । उसी समय पीले बन्दर ने भयभीत कर दिया । वह देवी के अंक में हवा में पत्ते के समान काँपती है, चेतना शून्य है ।

**राजा**—हाय ! बालक बड़े भयशील होते हैं ।

**इरावती—( आवेग पूर्वक )** आर्यपुत्र उसे आश्वस्त करने के लिए शीघ्रता करें, उसका भयकृतविकार न बढ़े ।

**राजा**—अयमेनामहं संज्ञापयामि । ( इति सत्वरं परिक्रामति । )

**विदूषकः**—साहु रे पिङ्गलवाणर, साहु । परित्तादो तुए सपक्खो । [ साधु रे पिङ्गलवानर, साधु । परित्रातस्त्वया स्वपक्षः । ]

( निष्क्रान्तो राजा विदूषकश्च । इरावती निपुणिका प्रतीहारी च । )

**मालविका**—हला, देविं चिन्तिअ वेवदि मे हिअअं । ण जाणे अदो वरं किं वा अणुहविदव्वं हविस्सदि त्ति । [ सखि, देवीं चिन्तयित्वा वेपते मे हृदयम् । न जानेऽतः परं किं वाऽनुभवितव्यं भविष्यतीति । ]

( नेपथ्ये )

अच्चरिअं अच्चरिअं । अपुण्णे एव्व पञ्चरत्ते दोहलस्स मुउलेहिं संणद्धो तवणीआसोओ । जाव देवीए णिवेदेमि । [ आश्चर्यमाश्चर्यम् । अपूर्ण एव पञ्चरात्रे दोहदस्य मुकुलैः संनद्धस्तपनीयाशोकः । यावद्देव्यै निवेदयामि । ]

---

राजः । एनाम् = राजपुत्रीम् । समाश्वसयितुम् = चैतन्यमानेतुम् । मा = न । अस्याः संत्रासजनितः = भयोत्पन्नः । विकारः = चैतन्यराहित्यम् । वर्धताम् = एधताम् ।

**राजा**—अयम् अहम् = एषोऽहम् । एनाम् = बालाम् । संज्ञापयामि = जातसंज्ञाम् करोमि । ( इति सत्वरम् = शीघ्रम् । परिक्रामति = परिभ्रमति ।

**विदूषकः**—साधु = शोभनम् । रे पिङ्गलवानर ! = पीतमर्कट ! । परित्रातः = रक्षितः । स्वपक्षः = मत्पक्षः त्वया !

( निष्क्रान्तः = निर्गतः । राजा = महाराजः, विदूषकः = गौतमः
इरावती निपुणिका प्रतीहारी च । )

**मालविका**—सखि ! = हले ! । देवीम् = महाराज्ञीम् धारिणीम् । चिन्तयित्वा = तदीयं कोपम् विचार्य । वेपते = कम्पते । मे हृदयम् = मदीयं मनः । न जाने = न जानामि । अतः परम् = अस्मादधिकम् । किम् वा = किं वस्तु अथवा । अनुभवितव्यम् = सोढव्यम् । भविष्यति ।

( नेपथ्ये )

आश्चर्यम् आश्चर्यम् = महदाश्चर्यं दृश्यते । अपूर्ण एव = अव्यतीते एव । पञ्चरात्रे = पञ्चसु रात्रिषु । दोहदस्य = अभिलाषस्य । मुकुलैः = मालविकाचरणाघातेन उत्पन्नैः अशोककोरकैः । सन्नद्धः = पूर्णः । तपनीयाशोकः = अशोकतरुः । यावत् = प्रथमम् । देव्यै = धारिण्यै । निवेदयामि = कथयामि ।

---

**राजा**—मैं इसे अभी चेतना दे रहा हूँ । **( शीघ्रता से जाता है । )**

**विदूषक**—धन्य हो पिङ्गलवानर धन्य । तुमने स्वपक्ष की रक्षा कर ली ।

**( राजा, विदूषक, इरावती, निपुणिका और प्रतीहारी निकल जाते हैं । )**

**मालविका**—सखी ! देवी के भय से मेरा हृदय काँप रहा है । मुझे नहीं ज्ञात है कि इसके आगे क्या-क्या भोगना है ?

**( नेपथ्य में )**

आश्चर्य, आश्चर्य, अशोक वृक्ष के पाँच दिन भी पूरे नहीं हुए, उसने अपने पुष्प विकसित कर दिए । चलो देवी को सूचना दे दूँ ।

( उभे श्रुत्वा प्रहृष्टे )

**बकुलावलिका**– आस्ससिदु सही। सच्चप्पइण्णा देवी। [ आश्वसितु सखी। सत्यप्रतिज्ञा देवी। ]

**मालविका**—तेण हि पमदवणपालिआए पिट्ठदो होमि। [ तेन हि प्रमदवनपालिकायाः पृष्ठतो भवामि। ]

**बकुलावलिका**—तह। [ तथा ]

( इति निष्क्रान्ते। )

इति चतुर्थोऽङ्कः।

—ꝏ—

## पञ्चमोऽङ्कः

( ततः प्रविशत्युद्यानपालिका। )

**उद्यानपालिका**—उवक्खित्तो मए किदसक्कारविहिणो तवणीआसोअस्स वेदिआबन्धो। जाव अणुट्ठिदणिओअं अत्ताणं देवीए णिवेदेमि। ( परिक्रम्य। ) अहो

---

( उभे = मालविका-बकुलावलिके। प्रहृष्टे = प्रसन्नवदने संजाते। )

**बकुलावलिका**—आश्वसितु = आश्वस्ता भव। सखी = मालविका। सत्यप्रतिज्ञा = सत्यवचना। देवी = धारिणी।

**मालविका**—तेन = अस्मात् कारणात्। प्रमदवनपालिकायाः = प्रमदवनरक्षिकायाः परिचारिकायाः। पृष्ठतः = पश्चाद्। भवामि = व्रजामि।

**बकुलावलिका**—तथा = उचितं त्वया चिन्तितम्।

( इति निष्क्रान्ते = द्वेऽपि निर्गते। )

चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः।

---

( ततः = तदनन्तरम्। प्रविशति = प्रवेशं करोति। उद्यानपालिका = उपवनरक्षिका। )

**उद्यानपालिका**—उपक्षिप्तः = कृतः। मया = उद्यानपालिकया। कृतसत्कारविधिः = जलसेकादिना विहितादरस्य। तपनीयाशोकस्य = अशोकतरुप्रभेदस्य। वेदिकाबन्धः =

---

**( दोनों सुनकर सन्तुष्ट होती हैं। )**

**बकुलावलिका**—सखी! धैर्य धारण करो। महारानी धारिणी सत्यवादिनी हैं।

**मालविका**—इसी कारण से मैं प्रमदवन की मालिन के पीछे हो लेती हूँ।

**बकुलावलिका**—उचित है।

**( दोनों का प्रस्थान। )**

चतुर्थ अंक समाप्त हुआ।

**( उद्यानपालिका का प्रवेश )**

**उद्यानपालिका**—मैंने सब घासपात निकालकर इस सुनहले अशोक की मेंड़ ठीक ढंग से बाँध दी है। अब यहाँ का काम सब सम्पन्न हो गया। चलूँ, देवी को बता दूँ। ( घूमकर ) भगवान्

दैवस्स अणुकम्पणीआ मालविआ। तस्सि तह चण्डिआ देवी इमिणा असोअकुसुमवुत्तन्तेग पसादसुमुही हविस्सदि। कहिं णु क्खु देवी हवे। (विलोक्य।) अम्हो एसो देवीए परिअणब्भन्तरो किंवि जदुमुद्दालञ्छिदं मञ्जूसं गेण्हिअ चदुस्सालादो कुज्जो सारसिओ णिक्कामदि। पुच्छिस्सं दाव णं। (ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टहस्तः कुब्जः।) सारसिअ कहिं पत्थिदोसि। [उपक्षिप्तो मया कृतसत्कारविधिस्तपनीयाशोकस्य वेदिकाबन्धः। यावदनुष्ठितनियोगमात्मानं देव्यै निवेदयामि। अहो दैवस्यानुकम्पनीया मालविका। तस्यां तथा चण्डी देव्यनेनाशोककुसुमवृत्तान्तेन प्रसादसुमुखी भविष्यति। कुत्र न खलु देवी भवेत्? । अहो, एष देव्याः परिजनाभ्यन्तरः किमपि जतुमुद्रालाञ्छितां मञ्जूषां गृहीत्वा चतुःशालातः कुब्जः सारसिको निष्क्रामति। प्रक्ष्यामि तावदेनम्। सारसिक, कुत्र प्रस्थितोऽसि। ]

सारसिकः—महुअरिए, विज्जाभरिआणं ब्रह्मणाणं णिच्चदक्खिणं मासिइं पुरोहिदस्स हत्थं पावइस्सं। [मधुकरिके, विद्याभरितानां ब्राह्मणानां नित्यदक्षिणां मासिकीं पुरोहितस्य हस्तं प्रापयिष्यामि। ]

---

आलवालबन्धः। यावत् अनुष्ठितनियोगम् = कृतादेशम्। आत्मानम् = स्वम्। देव्यै = धारिण्यैः। निवेदयामि = कथयामि। अहो = आश्चर्यम्। दैवस्य = भाग्यस्य। अनुकम्पनीया = कृपापात्रम् मालविका। तस्याम् = मालविकायाम्। तथा = तादृशी। चण्डी = अतिकोपना। देवी = धारिणी। अनेन = एतेन। अशोककुसुमवृत्तान्तेन = अशोकपुष्पोद्गमेन। प्रसादसुमुखी = प्रसन्नमुखी। भविष्यति। कुत्र न खलु देवी भवेत् = अधुना देवी कुत्र भविष्यति। अहो एषः = अयम्। देव्याः = धारिण्याः। परिजनाभ्यन्तरः = दासान्यतमः। जतुमुद्रालाञ्छितम् = लाक्षाचिह्निताम्। मञ्जूषाम् = पेटिकाम्। गृहीत्वा = आदाय। चतुःशालातः = चतुर्गृहभवनात्। कुब्जः सारसिकः = वक्रपृष्ठो दासः। निष्क्रामति = निर्गच्छति। प्रक्ष्यामि तावदेनम् = तदा एतम् कथयिष्यामि। सारसिक! कुत्र प्रस्थितोऽसि = सारसिक! कुत्र गच्छसि त्वम्।

सारसिकः—मधुकरिके! = एतन्नाम्नि परिचारिके!। विद्याभरितानाम् = विशिष्टज्ञानशालिनाम्। ब्राह्मणानाम् = विप्राणाम्। नित्यदक्षिणाम् = प्रतिदिनदेयदक्षिणाम्। मासिकीम् = मासव्यापिनीम्। पुरोहितस्य = पुरोधसः। हस्तम् = करम्। प्रापयिष्यामि = दातुं गमिष्यामि।

---

ने बेचारी मालविका की लाज रख ली। उस पर क्रुद्ध महारानी, जब अशोक के फूलने का समाचार पायेंगी तो प्रसन्न हो उठेंगी। पर इस समय महारानी होंगी कहाँ? (देखकर) अरे! यह महारानी के रनिवास का कुबड़ा सेवक सारसिक लाख की छाप लगी हुई पिटारी लिये हुए रनिवास से निकला चला आ रहा है। चलूँ इसी से पूछूँ। (हाथ में पिटारी लिए कुबड़ा दिखाई देता है।) कहो सारसिक! किधर चले?

सारसिक—मधुकरिके! विद्वानों को प्रतिदिन देने के लिए यह एक मास की दक्षिणा पुरोहित महाशय को देने जा रहा हूँ।

मधुकरिका—अह किंणिमित्तं। [ अथ किं निमित्तम् । ]

सारसिक:—जदप्पहुदि सेणवदिजण्णतुरंगरक्खणेणिउत्तो भट्टदारओ वसुमित्तो तदप्पहुदि तस्स आउसणिमित्तं णिक्कसदसुवण्णपरिमाणं दक्खिणं देवी दक्खिणीएहिं परिग्गाहेदि। [ यत: प्रभृति सेनापतियज्ञतुरंगरक्षणे नियुक्तो भर्तृदारको वसुमित्रस्तत:प्रभृति तस्यायुर्निमित्तं निष्कशत-सुवर्णपरिमाणां दक्षिणां देवी दक्षिणीयैः परिग्राहयति । ]

मधुकरिका—अह कहिं देवी। किं वा अणुचिट्ठदि। [ अथ कुत्र देवी। किं वानुतिष्ठति । ]

सारसिक:—मङ्गलघरे आसणत्था भविअ विदब्भविसआदो भादुणा वीरसेणेण पेसिदं लेहं लेहकरेहिं वाइअमाणं सुणादि। [ मङ्गलगृह आसनस्था भूत्वा विदर्भविषयाद्भ्रात्रा वीरसेनेन प्रेषितं लेखं लेखकरैर्वाच्यमानं शृणोति । ]

मधुकरिका—को उण विदब्भराअवुत्तन्तो सुणीअदि। [ क: पुनर्विदर्भराज वृत्तान्त: श्रूयते । ]

सारसिक:—वसीकिदो क्खु वीरसेणप्पमुहेहिं भत्तुओ विजअदण्डेहिं विदब्भ-

---

मधुकरिका—अथ = तदा। किं निमित्तम् = कस्मै फलाय दक्षिणा दातव्या।

सारसिक:—यत: प्रभृति = यस्मात् दिवसात्। सेनापतियज्ञतुरंगरक्षणे = पुष्पमित्रस्य अश्वमेधीयाश्वरक्षायाम्। नियुक्त: = अधिकृत:। भर्तृदारको वसुमित्र: = राजकुमारो वसुमित्र:। तत:प्रभृति = तस्माद्दिनात्। तस्यायुर्निमित्तम्=चिरञ्जीवनार्थम्। निष्कशतसुवर्णपरिमाणाम् = निष्कशतपरिमितस्वर्णपरिच्छिन्नाम्। दक्षिणाम् = दानम्। देवी= धारिणी। दक्षिणीयै: परिग्राहयति = दक्षिणापात्रब्राह्मणेभ्यो वितरति।

मधुकरिका—अथ कुत्र देवी ?=धारिणी क्वास्ति ?, किं वानुतिष्ठति ?= किं करोति ?।

सारसिक:—मंगलगृहे = एतन्नामके भवने। आसनस्था = सुखासीना भूत्वा। विदर्भविजयाद् = विदर्भदेशात्। भ्रात्रा वीरसेनेन = वीरसेननामकेन। भ्रात्रा = प्रेषितं लेखम् = समागतं पत्रम्। लेखकरै: = पत्रादिलेखनाय नियुक्तै: लिपिकै:। वाच्यमानम् = पठ्यमानम्। शृणोति = आकर्णयति।

मधुकरिका—क: पुन: = भूय: क:। विदर्भराजवृत्तान्त: = विदर्भदेशाधिपतिसमाचार:। श्रूयते = आकर्ण्यते।

सारसिक:—वशीकृत: = स्वाधीनीकृत:। किल = निश्चयेन। वीरसेनप्रमुखै: =

---

मधुकरिका—इसका प्रयोजन क्या है ?

सारसिक—जिस दिन से राजकुमार वसुमित्र यज्ञाश्व की रक्षा में नियुक्त किए गए तभी से महारानी उनके कल्याणार्थ सौ निष्क सोना प्रतिदिन योग्य पात्रों को दे रही हैं।

मधुकरिका—महारानी कहाँ हैं ? और क्या कर रही हैं ?

सारसिक—मंगलगृह में सुखासीन होकर विदर्भ से अपने भाई वीरसेन द्वारा प्रेषित पत्र पढ़वाकर सुन रही हैं।

मधुकरिका—विदर्भराज के विषय में क्या सुना जाता है ?

सारसिक—महाराज के वीरसेन प्रभृति सैनिकों ने विदर्भराज को बन्दी बना लिया और उसके

णाहो । मोइदो से दाआदो माहवसेणो । दूदो अ तेण महासाराणि रअणाणि वाहणाणि सिप्पआरिआभूइट्ठं परिअणं उवाअणीकरिअ भट्टिणो सआस पेसिदो त्ति [ वशीकृतः किल वीरसेनप्रमुखैर्भर्तुर्विजयदण्डैर्विदर्भनाथः । मोचितोऽस्य दायादो माधवसेनः । दूतश्च तेन महासाराणि रत्नानि वाहनानि शिल्पकारिकाभूयिष्ठं परिजनमुपायनीकृत्य भर्तुः सकाशं प्रेषित इति । ]

मधुकरिका—गच्छ, अणुचिट्ठ अत्तणो णिओअ । अहं वि देविं पेक्खिस्सं । [ गच्छानुतिष्ठात्मनो नियोगम् । अहमपि देवीं प्रेक्षिष्ये । ]

( इति निष्क्रान्तौ । )

इति प्रवेशकः ।

( ततः प्रविशति प्रतीहारी । )

प्रतीहारी—आणत्तम्हि असोअसक्कारवावुदाए देवीए विण्णावेहि अज्जउत्तम् । इच्छम्मि अज्जउत्तेण सह असोअरुक्खस्स पसूणलच्छि पच्चक्खीकादुं

---

वीरसेनप्रधानैः । भर्तुः = स्वामिनोऽग्निमित्रस्य । विजयदण्डैः = दमनार्थं नियुज्यमानैर्योधैः । विदर्भनाथ = विदर्भाधिपतिः । मोचितः = स्वतन्त्रः कृतः । अस्य = विदर्भनाथस्य । दायादः = सपिण्डः । माधवसेनः = एतन्नामकः पुरुषः । दूतश्च = वार्ताहरश्च । तेन = माधवसेनेन । महासाराणि = महार्हाणि । रत्नानि = वैदूर्यप्रभृतीनि । वाहनानि = हस्त्यश्वादीनि । शिल्पकारिकाभूयिष्ठम् = शिल्पिकन्याबहुलितम् । परिजनम् = दासम् । उपायनीकृत्य = उपहारस्वरूपेण । भर्तुः = महाराजस्य । सकाशम् = पार्श्वम् । प्रेषितः = समागतः ।

मधुकरिका—गच्छ = व्रज । अनुतिष्ठ = कुरु । आत्मनः = स्वस्य । नियोगम् = कार्यम् । अहमपि देवीम् = धारिणीम् । प्रेक्षिष्ये = द्रक्ष्यामि ।

( इति निष्क्रान्तौ = द्वावपि निर्गच्छतः )

इति प्रवेशकः ।

प्रवेशकस्य लक्षणम्

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः । अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥'

( ततः = तदनन्तरम् । प्रविशति = प्रवेशं करोति । प्रतीहारी । )

**प्रतीहारी** – आज्ञप्ता अस्मि = निर्दिष्टा अस्मि । अशोकसत्कारव्यापृतया = तपनीयाशोकसिञ्चनादिकार्यतत्परया । देव्या = धारिण्या । विज्ञापय = कथय । आर्यपुत्रम् = महा-

---

दामाद माधवसेन को मुक्त करवा दिया । माधवसेन ने अनेक बहुमूल्य रत्न, हाथी, घोड़े, शिल्पिकन्यायें, दास इत्यादि उपहार लेकर अपना दूत महाराज के पास भेजा है वह महाराज का दर्शन करेगा ।

**मधुकरिका**—जाओ, तुम अपना कार्य करो । मैं देवी के पास जाती हूँ ।

**( दोनों चले जाते हैं । )**

**प्रवेशक ।**

**( प्रतीहारी का प्रवेश )**

**प्रतीहारी**—अशोक के सिञ्चनादिकार्य में तत्पर देवी ने मुझसे कहा है कि जाकर महाराज से

त्ति । ता जाव धम्मासणगदं देवं पढिवालेमि ( इति परिक्रामति । ) [ आज्ञाशाम्य-शोकसत्कारव्यापृतया देव्या । विज्ञापयार्यपुत्रम् । इच्छाम्यार्यपुत्रेण सहाशोकवृक्षस्य प्रसूनलक्ष्मीं प्रत्यक्षीकर्तुमिति । तद्यावद्धर्मासनगतं देवं प्रतिपालयामि । ]

( नेपथ्ये वैतालिकौ )

**प्रथमः**—विजयतां विजयतां देवः । दिष्ट्या दण्डैरेव रिपुशिरःसु वर्तते देवः ।

परभृतकलव्याहारेषु त्वमात्तरतिर्मधुं
नयसि विदिशातीरोद्यानेष्वनङ्ग इवाङ्गवान् ।
विजयकरिणामालानत्वं गतैः प्रबलस्य ते
वरद वरदारोधोवृक्षैः सहावनतो रिपुः ।। १ ।।

---

राजम् । इच्छामि = अभिलषामि । आर्यपुत्रेण सह = महाराजेन साकम् । अशोकवृक्षस्य = तपनीयाशोकतरोः । प्रसूनलक्ष्मीम् = पुष्पशोभाम् । प्रत्यक्षीकर्तुम् । द्रष्टुम् । तद्यावत् = तदा यावत्कालपर्यन्तम् । धर्मासनगतम् = विचारासनस्थम् । देवम् = महाराजम् । प्रतिपालयामि = प्रतीक्षां करिष्ये ।

( इति परिक्रामति = तत इतस्ततो भ्रमति । )

( नेपथ्ये वैतालिकौ = मङ्गलपाठकौ । )

**प्रथमः**—विजयतां विजयतां देवः = देवस्य विजयो भवतु विजयो भवतु । दिष्ट्या = भाग्येन । दण्डैरेव = दण्डप्रदानेन एव । रिपुशिरःसु = अरिशिरस्सु । वर्ततेऽस्ति देवः = महाराजः ।

**अन्वयः**—आत्तरतिः त्वम् परभृतकलव्याहारेषु विदिशातीरोद्यानेषु अङ्गवान् अनङ्गः इव मधुं नयसि वरद ! प्रबलस्य ते रिपुः विजयकरिणाम् आलानत्वं गतैः वरदारोधोवृक्षैः सह अवनतः ।। १ ।।

**परभृतेति**—आत्तरतिः = प्राप्तानन्दः, प्राप्तरतिः । त्वम् = महाराजः । परभृतकल-व्याहारेषु = कोकिलमधुररवाह्लादितेषु । विदिशातीरोद्यानेषु = विदिशातटस्थोपवनेषु । अङ्गवान् = धृतशरीरः । अनङ्गः = कामदेवः । इव = तुल्यः । मधुम् = वसन्तम् । नयसि = गमयसि । वरद ! = हे अभिमतार्थप्रद ! । प्रबलस्य = बलशालिनः । ते = तव शत्रुः । विजयकरिणाम् = विजयसाधनानाम् गजानाम् । आलानत्वम् = बन्धनस्तम्भभावम् । गतैः = प्राप्तैः । वरदारोधोवृक्षैः = वरदाकूलवृक्षवर्त्तिवृक्षवद्धास्तव विजयकरिणः तान् वृक्षानाकृष्य नमयन्ति । शत्रवस्त्वदभयाच्च स्वयमुपगच्छन्त्यधीनत्वमिति भावः ।। १ ।।

**समासः**—परभृतकलव्याहारेषु = परभृतानां कलो व्याहारः तेषु परभृतकलव्याहारेषु ।

---

**कहो**—मैं महाराज के साथ ही अशोक वृक्ष की पुष्प शोभा देखना चाहती हूँ । अतः जब तक महाराज धर्मासन पर हैं, तब तक मैं प्रतीक्षा करती हूँ । **( इधर उधर घूमती है । )**

**( नेपथ्य में दो वैतालिक आते हैं । )**

**प्रथम**—जय हो देव की जय हो । बधाई है महाराज को कि आपने अपनी शक्ति से अपने शत्रुओं को पैरों तले रौंद दिया । हे मनोवाँछित वर देने वाले राजन् ! आप तो इधर साक्षात् कामदेव के समान, कोयल की सुन्दर कूक सुनते हुए विदिशा के तट पर विस्तृत उपवनों में आप्सर वसन्त

**द्वितीयः**—विरचितपदं वीरप्रीत्या सुरोपमसूरिभि-
श्चरितमुभयोर्मध्येकृत्य स्थितं क्रथकैसिकान् ।
तव हृतवतो दण्डानीकैर्विदर्भपतेः श्रियं
परिघगुरुभिर्दोर्भिर्विष्णोः प्रसह्य च रुक्मिणीम् ॥ २ ॥

**प्रतीहारी**—एसो जअसद्दसूइदप्पत्थाणो भट्टा इदो एव्व आअच्छदि । अहं वि दाव इमस्स पमुहादो लोआदो ओसरिअ खम्भन्तरिदा होमि । ( इत्येकान्ते स्थिता । ) [ एष जयशब्दसूचितप्रस्थानो भर्तेत एवागच्छति । अहमपि तावदस्य प्रमुखाल्लोकादपसृत्य स्तम्भान्तरिता भवामि । ]

---

विदिशातीरोद्यानेषु = विदिशायाः तीरेषु उद्यानानि तेषु विदिशातीरोद्यानेषु । वरदारोधवृक्षैः = वरदायाः रोधः तत्र वर्तमानैः वृक्षैः = वरदारोधवृक्षैः ।

**अलंकारः**—पूर्णोपमा, सहोक्ति, छेकानुप्रास तेषां च मिथो नैरपेक्ष्यात्संसृष्टिः ।

**छन्दः**—हरिणीवृत्तम्—"न समरसलागः षड्वेदैर्हयैः हरिणी मता ।"

**अन्वयः**—हे सुरोपम ! दण्डानीकैः विदर्भपतेः श्रियं हृतवतः तव परिघगुरुभिः दोर्भिः प्रसह्य रुक्मिणीं ( हृतवतः ) शौरेः च-उभयोः चरितं वीरप्रीत्या सूरिभिः विरचितपदं सत् क्रथकैशिकान् मध्येकृत्य स्थितम् ॥ २ ॥

**विरचितपदमिति** । हे सुरोपम ! = हे देवतुल्य ! । दण्डानीकैः = दमनाधिकृताभिः सेनाभिः । विदर्भपतेः = विदर्भदेशाधीश्वरस्य । श्रियम् = शोभाम् । हृतवतः = आनीतवतः । तव = भवतः । परिघगुरुभिः = लोहमयलगुडमहद्भिः । दोर्भिः = चतुर्भिर्भुजैः । प्रसह्य = बलात्कारेण । रुक्मिणीम् = भीष्मकपुत्रीम् । ( हृतवतः ) शौरेः च = श्रीकृष्णस्य च चरितम् = चरित्रम् । वीरप्रीत्या = वीरजनोचितया श्रद्धया । सूरिभिः = पण्डितैः । विरचितपदम् = निर्मितवाक्यम् । क्रथकैशिकान् = विदर्भान् । मध्येकृत्य = व्याप्य । स्थितमस्ति ॥ २ ॥

**समासः**—सुरोपमः = सुरैः उपमा यस्य सः तत्सम्बुद्धौ हे सुरोपम । दण्डानीकैः = दण्डे अधिकृतानि अनीकानि इति तैः दण्डानीकैः । परिघगुरुभिः = परिघवत् गुरुभिः परिघगुरुभिः । **अलंकारः**—दीपक, उपमा, छेकानुप्रासाऽलंकारः । **छन्दः**—हरिणीवृत्तम् ।

**प्रतीहारी**—एषः = अयम् । जयशब्दसूचितप्रस्थानः = जयनादद्योतितसमागृहान्निष्क्र-

---

बिता रहे हैं । उधर आपका बलवान् शत्रु वरदा के तीर पर स्थित उन वृक्षों के साथ-साथ झुका दिया गया है, जो अब आपकी सेना के विजयी हाथियों के बाँधने के खूँटे बने हुए हैं ॥ १ ॥

**अलंकार**—पूर्णोपमा, सहोक्ति, छेकानुप्रास । सबके योग से संसृष्टि ।

**द्वितीय**—हे देवताओं के समान राजन् ! विदर्भ में दो ही तो बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुई हैं । एक तो आपका अपनी सेना भेजकर विदर्भ के राजा को हराना । दूसरी भगवान् श्रीकृष्ण जी द्वारा उनकी अर्गला के समान बड़ी-बड़ी भुजाओं से रुक्मिणीजी का हरा जाना । वीरों से प्रेम रखने वाले कवि लोग अब इन दोनों घटनाओं के गीत बना-बना कर गा रहे हैं ॥ २ ॥

**अलंकार**—दीपक, उपमा, छेकानुप्रास ।

**विशेष**—**प्रथम वैतालिक**—वियोग में खिन्न राजा अग्निमित्र को, स्तुति द्वारा प्रसन्न कर रहा है । **द्वितीय वैतालिक**—रुक्मिणी के समान मालविका की प्राप्ति की सूचना देता है ।

**प्रतीहारी**—जय शब्द महाराज के प्रस्थान की सूचना देता है और वह इधर ही आ रहा है ।

( प्रविश्य सवयस्यः । )

**राजा—कान्तां विचिन्त्य सुलभेतरसंप्रयोगां**
**श्रुत्वा विदर्भपतिमानमितं बलैश्च ।**
**धाराभिरातप इवाभिहतं सरोजं**
**दुःखायते मम मनः सुखमश्नुते च ॥ ३ ॥**

विदूषकः—जह अहं पेक्खामि तह एक्कन्तसुहिदो भवं हविस्सदि । [यथाहं प्रेक्षे तथा एकान्तसुखितो भवान्भविष्यति । ]

राजा—कथमिव ।

---

मणः । भर्तेति एव = महाराज इत्येव । आगच्छति = आव्रजति । अहमपि तावद् अस्य प्रमुखात् = सम्मुखप्रदेशात् । अपसृत्य = अपक्रम्य । स्तम्भान्तरिता = स्तम्भपृष्ठगता । भवामि= वर्ते । ( इत्येकान्ते स्थिता = इति कथयित्वा एकस्मिन् भागे वर्तते । )

( सवयस्यः = सविदूषको महाराजः प्रवेशं कृत्वा )

**अन्वयः**—कान्तां सुलभेतरसम्प्रयोगां विचिन्त्य विदर्भपतिम् बलैः आनमितं श्रुत्वा च आतपे धाराभिः अभिहतं सरोजम् इव हृदयं दुःखायते च सुखमश्नुते ॥ ३ ॥

**कान्तमिति ।** कान्ताम् = मालविकाम् । सुलभेतरसम्प्रयोगाम् = दुर्लभसमागमाम् । विचिन्त्य = विभाव्य । विदर्भपतिम् = यज्ञसेनम् । बलैः=सेनाभिः । आनमितम् = नम्रीकृतम् । श्रुत्वा च = आकर्ण्य । आतपे = सूर्यरश्मिविषये ( स्थितम् ) धाराभिः = वर्षाभिः । अभि-हतश्च = ताडितश्च । सरोजम् = कमलमिव । दुःखायते = खेदमनुभवति । हृदयम् = मनः । सुखमश्नुते = आनन्दं चाधिगच्छति ॥ ३ ॥

**समासः**—सुलभेतरसम्प्रयोगाम् = सुलभात् इतरः सम्प्रयोगः यस्याः सा ताम् सुलभेतर-सम्प्रयोगाम् । विदर्भपतिम् = विदर्भस्य पतिम् विदर्भपतिम् ।

**अलंकारः**—विषमोऽलङ्कारः । **छन्दः**—वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

**विदूषकः**—यथाहं प्रेक्षे = यथा अहं पश्यामि । एकान्तसुखितः = नितान्तहृष्टो भवान् भविष्यति ।

**राजा—**कथमिव = भवतोऽनुमाने को हेतुरिति ।

---

मैं भी सामने से हटकर बाहर स्तम्भ की ओट में खड़ा होता हूं । **( ऐसा कहकर एक ओर खड़ा होता है । )**

**( विदूषक के साथ राजा का प्रवेश । )**

**राजा**—जिस प्रकार कमल धूप में आनन्दित और वर्षा में दुःखी हो जाता है उसी प्रकार मेरा हृदय प्रिया के दुर्लभ समागम से दुःखी और विदर्भराज के पराजय को सुनकर आनन्दित हो जाता है ॥ ३ ॥

**विशेष**—जब राजा मालविका को प्राप्त करने में कठिनाइयाँ और बाधाएँ देख रहा है, तब तो उसका दिल बैठ जाता है परन्तु जब विदर्भ-विजय का वृत्तान्त सुनता है, तब उसका हृदय खिल उठता है । यही दशा कमल की भी है । एक ओर धूप भी है, जिसमें वह खिला हुआ रहता है, तो दूसरी ओर तड़ातड़ वर्षा होती है, जिससे कुछ प्रताड़ित हो जाता है । **अलंकार**—विषम अलंकार ।

**विदूषक**—मैं देख रहा हूँ आपको केवल सुख ही होगा ।

**राजा—कैसे ?**

विदूषकः—अज्ज किल देवीए एव्वं पण्डितकोसिई भणिदा। भअवदि, जं तुमं पसाहणगव्वं वहसि, तं दसेहि मालविआए सरीरे विवाहणेवत्थं त्ति। ताए सविसेसालंकिदा मालविआ। तत्तहोदी कदाणि पूरए भवदोवि मणोरहं। [ अद्य किल देव्यैवं पण्डितकौशिकी भणिता। भगवति, यत्त्वं प्रसाधनगर्वं वहसि, तद्दर्शय मालविकायाः शरीरे विवाहनेपथ्यमिति। तया सविशेषालंकृता मालविका। तत्रभवती कदाचित्पूरयेद्भवतोऽपि मनोरथम्। ]

राजा—सखे, मदपेक्षामनुप्राप्य अनया धारिण्या पूर्वाचरितैः संभाव्यत एवैतत्।

प्रतीहारी—( उपगम्य ) जेदु जेदु भट्टा। देवी विण्णावेदि तवणीआसोअस्स कुसुमसहदंसणेण मह आरम्भो सफलो करीअदु त्ति। [ जयतु जयतु भर्ता। देवी विज्ञापयति तपनीयाशोकस्य कुसुमसहदर्शनेन ममारम्भः सफलः क्रियतामिति। ]

राजा—ननु तत्रैव देवी तिष्ठति।

---

**विदूषकः**—अद्य किल = इदानीम् किल। देव्या = धारिण्या। एवम् = इत्थम्। पण्डितकौशिकी = भगवती परिव्राजिका। भणिता = उक्ता। भगवति! यत्त्वम् प्रसाधनगर्वम् = शोभासमृद्धिसम्पादनविषयेऽभिमानम्। वहसि = धारयसि। तद्दर्शय = अवलोकय। मालविकायाः। शरीरे = देहे। विवाहनेपथ्यम् = विवाहोपयोगिनं वेशम्। तया = तत्रभवत्या कौशिक्या। सविशेषालंकृता = पूर्णरूपेण सुसज्जिता। मालविका। तत्रभवती = भगवती। कदाचित = कस्मिंश्चित् समये। पूरयेत् = सम्पादयेत्। भवतोऽपि = श्रीमतोऽपि। मनोरथम् = मालविकामिलनम्।

**राजा**—सखे! = मित्र! मदपेक्षामनुप्राप्य=मम सन्तोषसुखमादाय। अनया धारिण्या= महाराज्ञ्या देव्या। पूर्वाचरितैः = प्राक्तनव्यवहारैः। संभाव्यते = ज्ञायते। एष एतत् = इदम्।

**प्रतीहारी**—( जयतु जयतु भर्ता = स्वामिनो विजयो भवतु। ) देवी = धारिणी। विज्ञापयति = कथयति। तपनीयाशोकस्य = सुवर्णाशोकस्य। कुसुमसहदर्शनेन = पुष्पोद्गमस्य मया सह प्रत्यक्षीकरणेन। ममारम्भः=मदीयः प्रयोगः। सफलः = पूर्णमनोरथः। क्रियताम्।

**राजा**—नन्विति प्रश्ने। तत्रैव = तस्मिन् देशेऽपि। देवी = धारिणी। तिष्ठति = स्थिताऽस्ति।

---

**विदूषक**—आज धारिणी देवी पण्डित कौशिकी से कह रही थी—भगवती, यदि आपको वस्तुतः अलङ्कार पहनाने की कला में अभिमान है तो मालविका को विवाह वेश से अलंकृत करें। इस पर उन्होंने मालविका को विशेष रूप से अलंकृत किया है। हो सकता है, देवी आपकी इच्छा पूर्ण करें।

**राजा**—इससे पूर्व मेरे साथ किए गए उसके व्यवहारों से जाना जा सकता है कि मेरे लिए ही उसने यह किया है।

**प्रतीहारी**—( **प्रवेश करके** ) महाराज की जय हो। देवी ने कहा है—सुवर्णाशोक की पुष्पशोभा को आर्यपुत्र के साथ देखना चाहती हूँ।

**राजा**—क्या महारानी देवी धारिणी वहीं पर विद्यमान है?

प्रतीहारी—अह इं। जहारिहसंमाणसुहिअं अन्तेउरं विसज्जिअ मालविआ-पुरोएण अत्तणो परिअणेण सह देवं पडिवालेदि। [ अथ किम्। यथार्हसंमान-सुखितमन्तःपुरं विसृज्य मालविकापुरोगेणात्मनः परिजनेन सह देवं प्रतिपालयति। ]

राजा—( सहर्षं विदूषकं विलोक्य। ) जयसेने, गच्छाग्रतः।

प्रतीहारी—एदु एदु देवो। ( इति परिक्रामति। ) [ एत्वेतु देवः। ]

विदूषकः—( विलोक्य। ) भो वअस्स, किंवि परिवुत्तजोव्वणो विअ वसन्तो पमदवणे लक्खीअदि। [ भो वयस्य, किंचित्परिवृत्तयौवन इव वसन्तः प्रमदवने लक्ष्यते। ]

राजा—यथाह भवान्।

अग्रे विकीर्णकुरवकफलजालकभिद्यमानसहकारम्।
परिणामाभिमुखमृतोरुत्सुकयति यौवनं चेतः॥ ४॥

---

प्रतीहारी—अथ किम् = भवदनुमितं देव्यास्तत्रोपगमनम् सत्यमित्यर्थः। यथार्ह-सम्मानसुखितम् = यथोचितपुरस्कारप्रसन्नम्। अन्तःपुरम् = अवरोधजनम्। विसृज्य = विहाय। मालविकापुरोगेण = मालविकाप्रधानेन। आत्मनः = स्वस्य। परिजनेन = अनुचर-वर्गेण। देवम् = भवन्तम्। प्रतिपालयति = प्रतीक्षते।

राजा—( सहर्षं विदूषकं विलोक्य = प्रसन्नं गौतममवलोक्य ) जयसेने! गच्छ अग्रतः = व्रज अग्रे।

प्रतीहारी—(एत्वेतु देवः = आगच्छतु महाराजः) (इति परिक्रामति = परिभ्रमति।)

विदूषकः—(दृष्ट्वा) भो वयस्य! = भो मित्र! महाराज!। किञ्चित्परिवृत्तयौवनः = नवीभूतयौवनः। इव। वसन्तः = मधुमासः। प्रमदवने=प्रमदाख्योपवने। लक्ष्यते = दृश्यते।

राजा—यथाह भवान् = भवान् यथा कथयतिस्म।

अन्वयः—अग्रे विकीर्णकुरवकफलजालकविभुज्यमानसहकारम्। परिणामाभिमुखम् ऋतोः यौवनं चेतः उत्सुकयति॥ ४॥

अग्रे इति। अग्रे = पुरतः। विकीर्णकुरबकफलजालकभिद्यमानसहकारम् =

---

प्रतीहारी—और क्या? अपने-अपने पदानुसार ( किए गए ) आदर-सम्मान से प्रसन्न हुई अन्तःपुर निवासिनियों को विदा करके महारानी, मालविका को आगे किए हुए दास-दासियों सहित आपकी बाट जोह रही है।

राजा—( प्रसन्न होकर विदूषक को देखकर ) जयसेना आगे-आगे चलो।

प्रतीहारी—इधर से इधर से महाराज! ( चलती है। )

विदूषक—( देखकर ) मित्र! प्रमदवन में वसन्त ऐसा दिखाई दे रहा है कि जैसे प्रमदवन में उसका यौवन फूट सा पड़ा है।

विशेष—कुछ टीकाकार परिवृत्तम् का अर्थ "प्रौढतायां परिणतम्" ढला हुआ यौवन बताते हैं।

राजा—आपने जैसा कहा ठीक है—

आगे फैले हुए कुरवक के फूल फल आम्रमञ्जरियों से मिल रहे थे। इस समय परिणामाभिमुख वसन्तऋतु का यह यौवन चित्त को चञ्चल किए दे रहा है॥ ४॥

विशेष—राजा प्रौढ़ावस्था में पहुंचे हुए वसन्त का प्रभाव दिखा रहा है। कुरण्टे के फूल झड़कर

विदूषकः—( परिक्रम्य । ) अहो अअं सो दिण्णणेवत्थो विअ कुसुमत्थवएहिं तवणी आसोओ । ओलोअदु भवं । [ अहो, अयं स दत्तनेपथ्य इव कुसुमस्तबकैस्तपनीयाशोकः । अवलोकतां भवान् । ]

राजा – स्थाने खलु प्रसवमन्थरोऽयमभूत् । यदिदानीमनन्यसाधारणीं शोभामुद्वहति । पश्य—

**सर्वाशोकतरूणां प्रथमं सूचितवसन्तविभवानाम् ।**
**निर्वृत्तदोहदेऽस्मिन्संक्रान्तानीव कुसुमानि ॥ ५ ॥**

---

प्रसृतकुरवकफलसमूहसंगच्छमानाम्रतरुम् । परिणामाभिमुखम् = परिपाकोन्मुखम् । ऋतोः= वसन्तस्य । यौवनम् = बहुलश्रीकत्वम् । चेतः = मनः । उत्सुकयति = उत्कण्ठयति ॥ ४ ॥

**समासः**—विकीर्णकुरवकफलजालविभुज्यमानसहकारम् = विकीर्णानां कुरवकफलानां जालकेन भिद्यमानः सहकारः यत्र तादृशम् विकीर्णकुरवकफलजालकभिद्यमानसहकारम् । परिणामाभिमुखम् = परिणामस्य अभिमुखम् परिणामाभिमुखम् । **छन्दः**—आर्यावृत्तम् ।

**विदूषकः**—(परिक्रम्य = इतस्ततो परिभ्रम्य) अहो != आश्चर्यम् ! अयम् सः । एषः = तरुः । दत्तनेपथ्यः = अर्पितवेशः । इव । कुसुमस्तबकैः = पुष्पगुच्छकैः । तपनीयाशोकः = सुवर्णशोकः । अवलोकताम् = पश्यतु । भवान् = श्रीमान् ।

**राजा**—स्थाने खलु = अत्युचितमस्ति । अयम् = दृश्यमानसर्वशाखः तपनीयाशोकः । प्रसवमन्थरः = पुष्पोद्गममन्दप्रवृत्तिः । अभूत् = आसीत् । यद् इदानीम् = यदधुना । अनन्यसाधारणीम् = अपरवृक्षदुरापाम् । शोभाम् = पुष्पसमृद्धिजन्यश्रियम् । उद्वहति = धारयति । पश्य = अवलोकय ।

**अन्वयः**—प्रथमं सूचितवसन्तविभवानाम् सर्वाशोकतरूणाम् कुसुमानि निर्वृत्तदोहदे अस्मिन् संक्रान्तानि इव ॥ ५ ॥

**सर्वेति** । प्रथमम् = पूर्वम् । सूचितवसन्तविभवानाम् = ज्ञापितमधुमासपुष्पोदयानाम् ।

---

सामने बिखरे पड़े हैं और आम के वृक्ष फलों से लदकर झुक गए हैं । इस प्रकार वसन्त के यौवन में जो शोभासमृद्धि है, उसको देखकर चित्त में उत्कण्ठा सी हो रही है, चित्त अधीर सा बना हुआ है । प्रणयी जन के संगम के लिए मन को सतृष्ण बना रहा है । इस पद्य में केवल ऋतु शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु उसका तात्पर्य वसन्तपरक ही होगा ।

**छन्द**—आर्यावृत्त ।

**विदूषक—( घूमकर )** फूलों के गुच्छों से लदा हुआ यह सुनहला अशोक ऐसा जान पड़ता है मानों इसका भी किसी ने श्रृङ्गार कर दिया हो । श्रीमान् देखिए तो ।

( अन्य टीकाकार ) कुरण्टे के फूल झड़कर सामने बिखरे पड़े हैं और आम्रवृक्ष फलों से लदकर झुक गए हैं । इस प्रकार वसन्त के ढलने से चित्त में उत्कण्ठा सी हो रही है, चित्त अधीर सा बन रहा है कि वसन्त जा रहा है ।

**राजा**—इस तपनीयाशोक ने पुष्प विकसित करने में विलम्ब करके अच्छा ही किया । आज इसकी शोभा विलक्षण हो रही है ! देखो—

ज्ञात होता है कि जिन अशोक के वृक्षों ने पहले फूल कर वसन्तागमन की सूचना दी थी, उन

विदूषकः—तह । भो, वीसद्धो होहि । अम्हेसु सणिहिदेसु वि धारिणी पासपरिवट्टिणीं मालविअं अणुमण्णेदि । [ तथा भोः, विस्रब्धो भव । अस्मासु संनिहितेष्वपि धारिणी पार्श्वपरिवर्तिनीं मालविकामनुमन्यते । ]

राजा—( सहर्षम् । ) सखे, पश्य—

मामियमभ्युत्तिष्ठति देवी विनयादनूत्थिता प्रियया ।
विस्तृतहस्तकमलया नरेन्द्रलक्ष्म्या वसुमतीव ॥ ६ ॥

---

सर्वाशोकतरूणाम् = सम्पूर्णशोकवृक्षाणाम् । कुसुमानि = पुष्पाणि । निर्वृत्तदोहदे = सम्पन्नरमणीचरणाघाते । अस्मिन् = तपनीयाशोकवृक्षे । संक्रान्तानि इव = सञ्चरितानि इव ॥५॥

समासः—सूचितवसन्तविभवानाम् = सूचितः वसन्तस्य विभवः यैः तेषाम् सूचितवसन्तविभवानाम् । शर्वाशोकतरूणाम् = सर्वे च तेऽशोकतरवः तेषाम् सर्वाशोकतरूणाम् । निर्वृत्तदोहदे = निवृत्तं दोहदं यस्य तादृशे निर्वृत्तदोहदे ।

अलङ्कारः—क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । छन्दः—आर्या जातिः ।

विदूषकः—तथा = उचितम् । भो विस्रब्धो भव = विश्वस्तो भव । अस्मासु संनिहितेषु अपि = त्वदीयरहः साक्षिजनेषु समुपस्थितेषु । धारिणी = देवी । पार्श्ववर्तिनीम् = समीपस्थिताम् । मालविकाम् अनुमन्यते = तां प्रकटरूपेण स्थापयितुमनुजानाति ।

राजा—( सहर्षम् = प्रसन्नतापूर्वकम् ) सखे = वयस्य विदूषक ! पश्य = अवलोकय ।

अन्वयः—प्रियया अनूत्थिता इयं देवी विनयात् विस्मृतहस्तकमलया नरेन्द्रलक्ष्म्या ( अनूत्थिता ) वसुमती इव माम् अभ्युतिष्ठति ॥ ६ ॥

मामिति । प्रियया = मालविकया । अनुत्थिता = पश्चादनुगता । इयम् = एषा । देवी = महाराज्ञी धारिणी । नरेन्द्रलक्ष्म्या = राजश्रिया ( अनुत्थिता = पश्चादनुगता ) वसुमती = पृथिवी । माम् = मां प्रति । अभ्युत्तिष्ठति = सम्मानं प्रदर्शयितुम् उत्तिष्ठति । यथा नरेन्द्रलक्ष्म्या अनुगम्यमाना वसुमती मामभिमुखीभूय सेवते तथैव मालविकयाऽनुगतेयं देवी धारिणी माम् अभिवादयितुमुत्तिष्ठति इति भावः ॥ ६ ॥

समासः—विस्तृतहस्तकमलया = विस्तृतं हस्ते कमलं यया तथाभूतया = विस्तृतहस्तकमलया = प्रसृतकरपद्मया । नरेन्द्रलक्ष्म्या-नरेन्द्रस्य लक्ष्मीः तया नरेन्द्रलक्ष्म्या ।

अलंकारः—उपमाऽलङ्कारः । रूपकाऽलङ्कारः । तयोरंगागिभावेन सङ्करः ।

छन्दः—आर्या जातिः ।

---

सबने अपने-अपने फूल इस अशोक वृक्ष को दे दिए हैं, जिसके फूलने का उपाय कुछ दिन पहले किया गया था ॥ ५ ॥

अलंकार—क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार । छन्द—आर्या जाति ।

विदूषक—श्रीमान् महाराज ! अब आप विश्वस्त हो जाइए क्योंकि हम लोगों के आ पहुंचने पर भी महारानी धारिणी, मालविका को अपने पास ही बैठने के लिए कह रही है । अर्थात् उसको छिपाने का प्रयास नहीं कर रही हैं ।

राजा—( प्रसन्न होकर ) देखो मित्र ! मेरा आदर करने के लिए उठी हुई महारानी के पीछे अपने कमल तुल्य दोनों हाथ खोले खड़ी हुई मेरी प्यारी मालविका ऐसी लग रही है मानों पृथ्वी के पीछे राजलक्ष्मी खड़ी हुई हो ॥ ६ ॥

अलङ्कार—उपमा रूपक । दोनों के अंगांगि भाव से सङ्कर ।

( ततः प्रविशति धारिणी मालविका परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः । )

**मालविका**—( आत्मगतम् । ) जाणामि णिमित्तं कोदुआलंकारस्स । तह वि मे हिअअं विसिणीपत्तगदं विअ सलिलं वेवदि । अवि अ दक्खिणेदरं वि मे णअणं बहुसो फुरदि । [ जानामि निमित्तं कौतुकालंकारस्य । तथापि मे हृदयं बिसिनीपत्रगतमिव सलिलं वेपते । अपि च दक्षिणेतरमपि मे नयनं बहुशः स्फुरति । ]

**विदूषकः**—भो वअस्स, विवाहणेवत्थेण सविसेसं क्खु सोहदि मालविआ । [ भो वयस्य, विवाहनेपथ्येन सविशेषं खलु शोभते मालविका । ]

**राजा**—पश्याम्येनाम् ! यैषा—

**अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी बहुभिराभरणैः प्रतिभाति मे ।**
**उडुगणैरुदयोन्मुखचन्द्रिका हृतहिमैरिव चैत्रविभावरी ॥ ७ ॥**

---

( ततः = तत्पश्चात् । प्रविशति = प्रवेशं करोति । धारिणी, मालविका, परिव्राजिका, विभवतश्च परिवारः = परिजनाश्च )

मालविका—( आत्मगतम् = स्वमनसि । ) जानामि = अवगच्छामि । निमित्तम् = कारणम् । कौतुकालंकारस्य = देवीकृतमदीयवेशविन्यासस्य । तथापि मे हृदयम् = मदीयं मनः । विसिनीपत्रगतम् = कमलिनीदलस्थम् । सलिलमिव = जलमिव । वेपते = कम्पते । अपि च = तथा च । दक्षिणेतरम् = वामम् । मे नयनमपि = मम नेत्रमपि । बहुशः = अधिकम् । स्फुरति = स्पन्दनं करोति ।

**विदूषकः**—भो वयस्य ! = हे महाराज ! । विवाहनेपथ्येन = विवाहोचितेन परिधानेन । सविशेषम् = अतिमात्रम् । मालविका शोभते = मालविका राजते ।

**राजा**—पश्यामि = अवलोकयामि । एनाम् = मालविकाम् । या एषा = येयम्—

**अन्वयः**—अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी बहुभिः आभरणैः ( उपलक्षिता ) उदयोन्मुखचन्द्रिका हृतहिमैः उडुगणैः ( उपलक्षिता ) चैत्रविभावरी इव मे प्रतिभाति ॥ ७ ॥

**अनतीति ।** अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी = लघुक्षौमवस्त्रधारिणी । बहुभिः = प्रचुर-

---

**( धारिणी, मालविका, परिव्राजिका और परिजन प्रवेश करते हैं । )**

( उपमा का वैशिष्ट्य ) धारिणी प्रौढा, शान्त और क्षमाशील है अतः उसकी तुलना पृथ्वी से हुई है । मालविका यौवन से भरपूर और विलास-शील है अतः उसकी उपमा लक्ष्मी से दी गई है ।

**मालविका**—मन ही मन मेरे इस अनुपम रूप में अलंकृत किए जाने का कारण हमें ज्ञात है फिर भी कमल पत्र पर स्थित जल विन्दु के समान हमारा हृदय काँपता है । बाँईं आँख भी निरन्तर फड़क रही है ।

**विदूषक**—महाराज ! यह मालविका इस वैवाहिक वेश में अत्यन्त शोभा दे रही है ।

**राजा**—मैं इसको देख रहा हूँ । जो यह—

चुस्त रेशमी कपड़े पहने और आभूषणों से आभूषित मालविका मुझे ऐसी ज्ञात हो रही है जैसे पाले के अवसान में उज्ज्वल नक्षत्रों से युक्त उदीयमान ज्योत्स्नासे अलंकृत चैत्र की रात्रि हो ॥ ७ ॥

**विशेष**—इस पद्य में मालविका की उपमा चैत्रमास की उस रात्रि से दी गई है, जिसमें तारे विना धुंध के चमक रहे हों और श्वेत ज्योत्स्ना निकलने ही वाली हो । आभूषणों की तुलना तारों से की गई है ।

**अलंकार**—उपमा अलंकार ।

**धारिणी**— उपेत्य । ) जेदु जेदु अज्जउत्तो । [ जयतु जयत्वार्यपुत्रः । ]

विदूषकः—वड्ढदु भोदी । [ वर्धतां भवती । ]

परिव्राजिका—विजयतां देवः ।

राजा—भगवति, अभिवादये ।

परिव्राजिका—अभिप्रेतसिद्धिरस्तु ।

**धारिणी**—( सस्मितम् । ) अज्जउत्त, एस ते अम्हेहिं तरुणीजणसहाअस्स असोओ संकेदघरो कप्पिदो । [ **आर्यपुत्र, एष तेऽस्माभिस्तरुणीजनसहायस्याशोकः संकेतगृहं कल्पितः ।** ]

विदूषकः—भो, आराहिओसि । [ **भोः, आराधितोऽसि ।** ]

---

मात्रैः । आभरणैः = अलङ्कारैः । ( युक्ता ) उदयोन्मुखचन्द्रिका = उदीयमानज्योत्स्ना । हृतहिमैः = अपगतप्रालेमैः । उडुगणैः = नक्षत्रसमूहैः ( युक्ता ) चैत्रविभावरी = मधुमास-निशा । इव । मे प्रतिभाति = मया ज्ञायते ॥ ७ ॥

**समासः**—अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी = अनतिलम्बि दुकूलं निवस्ते इति अनतिलम्बि-दुकूलनिवासिनी । उदयोन्मुखचन्द्रिका = उदयोन्मुखीचन्द्रिका यस्यां सा उदयोन्मुखचन्द्रिका ।

**अलंकारः**—उपमाऽलंकारः । **छन्दः**—द्रुतविलम्बितम् वृत्तम् ।

**धारिणी**—( उपेत्य = समीपं गत्वा ) जयतु जयतु आर्यपुत्रः = आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु ।

**विदूषकः**—वर्धताम् = आनन्दैः समृध्यतु । भवती = श्रीमती ।

**परिव्राजिका**—विजयताम् देवः = महाराजस्य विजयो भवतु ।

**राजा**—भगवति ! = श्रीमति परिव्राजिके ! अभिवादये = प्रणमामि त्वाम् ।

**परिव्राजिका**—अभिप्रेतसिद्धिः = मनोरथपूर्त्तिः । अस्तु = भवतु । ( मालविकासमागम-सम्भवो ध्वनितः ) ।

**धारिणी**—( सस्मितम् = स्मितं कृत्वा ) आर्यपुत्र ! = महाराज ! एषः = अशोकः । ते = तव । अस्माभिः = तत्रस्थितैः जनैः । तरुणीजनसहायस्य = युवतियुतस्य । सङ्केत-गृहम् = समागमसंकेतगृहम् । कल्पितः = निर्वाचितः । अत्र यथेष्टं प्रियासमागमसुखमनु-भवितुमर्हसि इत्याशयः ।

**विदूषकः**—भो महाराज ! भवान् आराधितोऽसि = सम्भावितोऽस्तु ।

---

**धारिणी—( समीप जाकर )** आर्यपुत्र की जय हो ।

**विदूषक**—महारानी की जय हो ।

**परिव्राजिका**—महाराज की जय हो ।

**राजा**—भगवति ! आपका अभिवादन करता हूँ ।

**परिव्राजिका**—मनोरथ पूर्ण होवे ।

**धारिणी—( हँसकर )** आर्य पुत्र ! हम लोगों ने नई स्त्री से युक्त आपके संकेत गृह के रूप में इसी अशोक वृक्ष को चुना है ।

**विदूषक**—महाराज ! आपकी बड़ी आराधना हो रही है ।

राजा—( सव्रीडमशोकमभितः परिक्रामन। )

**नायं देव्या भाजनत्वं न नेयः सत्काराणामीदृशानामशोकः।**
**यः सावज्ञो माधवश्रीनियोगे पुष्पैः शंसत्यादरं त्वत्प्रयत्ने॥ ८॥**

विदूषकः—भो, वीसद्धो भविअ तुमं जोव्वणवदिं इमं पेक्ख। [ भोः, विस्रब्धो भूत्वा त्वं यौवनवतीमिमां पश्य। ]

धारिणी—कं। [ काम्। ]

विदूषकः—भोदि, तवणीआसोअस्स कुसुमसोहम्। [ भवति, तपनीयाशोकस्य कुसुमशोभाम्। ]

---

**राजा**—( सव्रीडम् = परिहासादुपजातलज्जम्। अशोकमभितः = अशोकतरोश्चतुर्दिक्षु। परिक्रामन् = परिक्रमां कुर्वन्। )

**अन्वयः**—देव्या अयम् अशोकः ईदृशानां सत्काराणाम् भाजनत्वं न नेयः ( इति ) न, यः माधवश्रीनियोगे सावज्ञः ( सन् ) त्वत्प्रयत्ने पुष्पैः आदरं शंसति॥ ८॥

**नायमिति।** देव्या = त्वया। अयम् = पुरो वर्तमानः। अशोकः = तपनीयाशोकतरुः। ईदृशानाम् = एवं विधानाम्। सत्काराणाम् = बहुमानानाम्। भाजनत्वम् = पात्रत्वम् अधिकारित्वम्। न नेयः = न प्रापणीयः इति न। यः = अयमशोकः। माधवश्रीनियोगे = वसन्तलक्ष्म्यादेशे। सावज्ञः = धृतावहेलः। इव। सन्। त्वत्प्रयत्ने = त्वदीयप्रयासे ( मालविकाकर्तृकचरणाघातप्रयोजके )। पुष्पैः = उद्गच्छद्भिः स्वीयकुसुमैः। आदरम् = सम्मानम्। शंसति = प्रकाशयति॥ ८॥

**समासः**—माधवश्रीनियोगे=माधवस्य श्रीः तस्या नियोगे माधवश्रीनियोगे। त्वत्प्रयत्ने= तव प्रयत्ने इति त्वत्प्रयत्ने।

**अलंकारः**—वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्। **छन्दः**—शालिनी वृत्तम्।

**विदूषकः**—भो विस्रब्धो भूत्वा = बद्धविश्वासो भूत्वा। त्वम् = महाराजः। यौवनवतीम् = प्रशस्तयौवनाम्। इमाम् = मालविकाम्। पश्य = अवलोकय।

**धारिणी**—काम् = काम् रमणीम्।

**विदूषकः**—भवति = श्रीमति धारिणि!। तपनीयाशोकस्य = सुवर्णाशोकवृक्षस्य। कुसुमशोभाम् = पुष्पसमृद्धिम्। इयम् व्याजोक्तिः।

---

**राजा—( लज्जासहित अशोक वृक्ष की परिक्रमा करता हुआ। )**
देवि! तुम्हें इस अशोक के प्रति सत्कार प्रदर्शित करना ही चाहिए क्योंकि यह अशोक वृक्ष वसन्त लक्ष्मी की आज्ञा का अनादर करके तुम्हारे प्रयत्न के लिए पुष्पों के द्वारा आदर प्रकट कर रहा है॥ ८॥

**अलंकार**—वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग।

**विदूषक**—विश्वास पूर्ण होकर इस रमणी को देखो।

**धारिणी**—किसको?

**विदूषक**—देवी! इस तपनीयाशोक की पुष्पसमृद्धि को।

( सर्वे उपविशन्ति । )

**राजा**—( मालविकां विलोक्य । आत्मगतम् । ) कष्टः खलु संनिधिवियोगः ।

**अहं रथाङ्गनामेव प्रिया सहचरीव मे ।**
**अननुज्ञातसंपर्का धारिणी रजनीव नौ ॥ ९ ॥**

( प्रविश्य । )

**कञ्चुकी**—विजयतां देवः । देव, अमात्यो विज्ञापयति । विदर्भविषयोपायने द्वे शिल्पकारिके मार्गपरिश्रमादलघुशरीरे इति पूर्वं न प्रवेशिते । संप्रति देवोपस्थानयोग्ये संवृत्ते । तदाज्ञां देवो दातुमर्हतीति ।

---

( सर्वे = सम्पूर्णा जनाः । उपविशन्ति = तिष्ठन्ति । )

**राजा**—( मालविकाम् = तां रमणीम् । विलोक्य = दृष्ट्वा । आत्मगतम् = स्वमनसि । ) कष्टः = कष्टकरो व्यथकः । खलु संनिधिवियोगः = समीपवर्तिन्यपि प्रियजने मिलनाभावः ।

**अन्वयः**—अहं रथाङ्गनामा इव मे प्रिया सहचरी इव, नौ अननुज्ञातसम्पर्का धारिणी रजनी इव ॥ ९ ॥

**अहमिति** । अहम् = महाराजोऽग्निमित्रः । रथाङ्गनामा इव = चक्रवाक इव । मे = मम । प्रिया = मालविका । सहचरी = चक्रवाकांगना इव । नौ = आवयोः । अननुज्ञातसम्पर्का = अनभीष्टसंसर्गा । धारिणी = महादेवी । रजनी इव = निशेव । रात्रेरिव धारिण्याः प्रतिबन्धकतया न आवां संयुज्यावहे इति ॥ ९ ॥

**समासः**—अननुज्ञातसम्पर्का = न अनुज्ञातः सम्पर्कः यया तथा भूता अननुज्ञातसम्पर्का । रथाङ्गनामा = रथाङ्गस्य नाम इव नाम यस्य सः रथाङ्गनामा ।

**अलङ्कारः**—अत्र उपमात्रयम् वर्तते । **छन्दः**—पथ्यावक्त्रम् ।

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा । )

**कञ्चुकी**—विजयताम् = विजयं लभताम् । देवः = महाराजः । देव ! = महाराज ! अमात्यो विज्ञापयति = मन्त्री कथयति । विदर्भविषयोपायने = विदर्भदेशोपहारस्वरूपे । द्वे शिल्पकारिके = शिल्पचतुरे बालिके । मार्गपरिश्रमात् = दूरचलनखेदात् । अलघुशरीरे = अस्वस्थदेहे । इति पूर्वं न प्रवेशिते = अतः प्रथमं नोपस्थापिते । सम्प्रति = अधुना । देवोपस्थानयोग्ये = भवदन्तिकानयनक्षमे । संवृत्ते = सम्पन्ने । देवो महाराज आज्ञाम् = अनुमतिम् । दातुमर्हति = दातुं योग्योऽसि ।

---

**( सभी लोग बैठते हैं । )**

**राजा—( मालविका को देखकर स्वगत )** समीप में रह कर वियोग सहना बड़ा कष्टकर होता है ।

मैं चक्रवाक के तुल्य हूँ, मेरी प्रिया चक्रवाकी के समान साथ ही है । हम दोनों को मिलन से रोकने वाली यह धारिणी रात्रि-सदृश है ॥ ९ ॥

**अलंकार**—इसमें तीन उपमायें हैं ।

**( प्रवेश करके )**

**कञ्चुकी**—महाराज की जय हो । मन्त्री जी ने कहलाया है कि विदर्भ से जो कलामर्मज्ञ दो रमणियाँ उपहारस्वरूप आई थीं वे उस समय थकी होने के कारण महाराज के पास नहीं लाई जा सकीं । अब वे आपके समक्ष लाई जा सकती हैं अतः देव की आज्ञा चाहिए ।

राजा—प्रवेशय ते ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । ( इति निष्क्रम्य ताभ्यां सह प्रविश्य । ) इत इतो भवत्यौ ।

प्रथमा—( जनान्तिकम् । ) हला मदणिए, अपुव्वं इमं राअउलं पविसन्तीए पसीददि मे हिअअं । [ सखि मदनिके, अपूर्वमिदं राजकुलं प्रविशन्त्याः प्रसीदति मे हृदयम् । ]

द्वितीया—जोसिणीए, अत्थि क्खु लोअप्पवादो आआमि सुहं दुक्खं वा हिअअसमवत्था कहेदि त्ति । [ ज्योत्स्निके, अस्ति खलु लोकप्रवादः आगामि सुखं दुःखं वा हृदयसमवस्था कथयतीति । ]

प्रथमा—सो सच्चो दाणिं होदु । [ स सत्य इदानीं भवतु । ]

कञ्चुकी—एष देव्या सह देवस्तिष्ठति । उपसर्पतां भवत्यौ ।

( उभे उपसर्पतः । )

---

राजा—ते = शिल्पदारिके । प्रवेशय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः = देवस्य च आदेशः । ( इति निर्गत्य बालाभ्यां सह आगत्य ) इत इतो भवत्यौ = अनेन मार्गेण श्रीमत्यौ आगच्छताम् ।

प्रथमा—सखि ! = हले ! मदनिके ! । अपूर्वमिदं राजकुलम् = अनुपमम् राजभवनम इदम् । प्रविशन्त्याः = प्रवेशं कुर्वन्त्याः । मे हृदयम् = मे मनः । प्रसीदति = प्रसन्नं भवति ।

द्वितीया—ज्योत्स्निके ! = सखि ! । अस्ति खलु लोकप्रवादः = इयमस्ति विश्व-विश्रुतिः । आगामि = भविष्यत । सुखं दुःखं वा । हृदयसमवस्था = मानसिकी स्थितिः । कथयति = सूचयति ।

प्रथमा—सः = लोकप्रवादः । सत्यः = वास्तविकः । इदानीम् = अधुना । भवतु = अस्तु ।

कञ्चुकी—एषो देवः = अयं महाराजः । देव्या सह तिष्ठति = धारिण्या साकं उप-विशति । उपसर्पताम् = गच्छताम् । भवत्यौ = श्रीमत्यौ ।

( उभे = द्वे बालिके । उपसर्पतः = समीपं गच्छतः । )

---

राजा—उन दोनों को प्रवेश कराओ ।

कञ्चुकी—देव की जैसी आज्ञा । ( बाहर जाकर उन दोनों के साथ प्रवेश करके ) इधर से आइए आप लोग इधर से ।

पहली—( अलग ) सखि मदनिके ! यह राजकुल अत्यन्त विलक्षण है । इसमें प्रवेश करते हुए मेरा हृदय आनन्दित हो रहा है ।

दूसरी—अरी ज्योत्स्निके ! यह विश्व श्रुति सत्य है कि हृदय की अवस्था आगामी सुख-दुःख की सूचना देती है ।

प्रथमा—ईश्वर करे यह जनश्रुति आज सत्य हो जाय ।

कञ्चुकी—ये महाराज महारानी के साथ बैठे हैं आप दोनों आगे बढ़ जाइए ।

**( दोनों समीप जाती हैं )**

( मालविका परिव्राजिका च चेट्यौ विलोक्य परस्परमवलोकयतः । )

**उभे**—( प्रणिपत्य । ) जेदु जेदु भट्टा । जेदु जेदु भट्टिणी । [ जयतु जयतु भर्ता । जयतु जयतु भट्टिनी । ]

( उभे राजाज्ञया उपविष्टे )

**राजा**—कस्यां कलायामभिविनीते भवत्यौ ।

**उभे**—भट्टा, संगीदए अब्भन्तरेम्ह । [ भर्तः, संगीतकेऽभ्यन्तरे स्वः । ]

**राजा**—देवि, गृह्यतामनयोरन्यतरा ।

**धारिणी**—मालविए, इदो पेक्ख। कदरा दे संगीदसहआरिषी रुच्चदि। [ मालविके, इतः पश्य । कतरा ते संगीतसहकारिणी रोचते । ]

**उभे**—( मालविकां दृष्ट्वा । ) अम्हो भट्टदारिआ । जेदु जेदु भट्टदारिआ ( इति प्रणम्य तया सह बाष्पं विसृजतः । ) [ अहो भर्तृदारिका । जयतु जयतु भर्तृदारिका । ]

---

( मालविका, परिव्राजिका च । चेट्यौ = परिचारिके । विलोक्य = दृष्ट्वा । परस्परम् = मिथः । अवलोकयतः = पश्यतः । )

**उभे**—( प्रणिपत्य = प्रणामं कृत्वा ) ( जयतु जयतु भर्ता = स्वामिनो विजयो भवतु । जयतु जयतु भट्टिनी = भट्टिन्या विजयो भवतु । )

( उभे = कलामर्मज्ञे । राजाज्ञया = नृपादेशेन । उपविष्टे = उपविशतः । )

**राजा**—कस्यां कलायाम् = नृत्यगीतादिषु कस्यां शिल्पकृत्याम् । अभिविनीते=शिक्षिते ।

**उभे**—भर्तः = स्वामिन् ! । संगीतके = संगीतविद्यायाम् । अभ्यन्तरे = अन्तर्निशिष्टे । स्वः = भवावः ।

**राजा**—देवि ! गृह्यताम् = चीयताम् । अनयोः = एतयोः । अन्यतरा = एकतरा ।

**धारिणी**—मालविके ! इतः पश्य = अत्र प्रेक्षस्व । कतरा = का । ते = तुभ्यम् । संगीतसहकारिणी = संगीतसहायिका । रोचते = इष्यते ।

**उभे** – ( मालविकां दृष्ट्वा = अवलोक्य ) अहो ! = आश्चर्यम् । भर्तृदारिका = राजकुमारी । जयतु जयतु भर्तृदारिका = राजकुमार्याः विजयो भवतु । प्रणामं कृत्वा मालविकया-सह बाष्पं विसृजतः = अश्रु मुञ्चतः ।

---

**( मालविका और परिव्राजिका इन दोनों दासियों को देखकर एक दूसरे की ओर देखती हैं । )**

**दोनों—( प्रणाम करके )** जय हो स्वामी की जय हो । जय हो स्वामिनी की जय हो ।

**( राजा की आज्ञा से दोनों बैठ जाती हैं । )**

**राजा**—आप लोग किस कला में निपुण हैं ?

**दोनों**—स्वामिन् ! हम लोगों ने संगीत सीखा है ।

**राजा**—देवि ! इनमें से जिसे चाहो, अपने लिए चुन लो ।

**धारिणी**—मालविके ! इधर देखो, इनमें कौन तुम्हारी संगीत सहायिका होने के योग्य है ?

**दोनों—( मालविका को देखकर )** अरे राजकुमारी ! जय हो राजकुमारी की **( प्रणाम करके उस मालविका के साथ दोनों रोने लगती हैं । )**

( सर्वे सविस्मयं विलोकयन्ति । )

राजा—के भवत्यौ । का वेयम् ।

उभे—भट्टा, एसा अम्हाणं भट्टदारिआ । भर्तः, एषास्माकं भर्तृदारिका । ]

राजा—कथमिव ।

उभे—सुणादु भट्टा । जो सो भट्टिणा विजअदण्डेहिं विदब्भणाहं वसीकरिअ बन्धणादो मोइओ कुमारो माहवसेणो णाम, तस्स इअं कणीअसी भइणी मालविआ णाम । [ श्रृणोतु भर्ता । यः स भर्त्रा विजयदण्डैर्विदर्भनाथं वशीकृत्य बन्धनान्मोचितः कुमारो माधवसेनो नाम, तस्येयं कनीयसी भगिनी मालविका नाम । ]

धारिणी—कहं । राअदारिआ इअं । चन्दणं क्खु मए पादुओवओएण दूसिदं । [ कथम् । राजदारिकेयम् । चन्दनं खलु मया पादुकोपयोगेन दूषितम् । ]

राजा—अथात्रभवती कथमित्थंभूता ।

---

( सर्वे = जनाः । सविस्मयम् = साश्चर्यम् । विलोकयन्ति = पश्यन्ति । )

राजा—के भवत्यौ = युवाम् के स्थः । का वा इयम् = एषा मालविका का ।

उभे—भर्तः = स्वामिन् ! । एषा = इयम् । अस्माकम् भर्तृदारिका = राजकुमारी मालविका ।

राजा—कथमिव = केन प्रकारेण ?

उभे—श्रृणोतु भर्ता = महाराज आकर्णयतु । यः सः भर्त्रा = स्वामिना । विजयदण्डैः = विजयजनकदण्डसाधनीभूतैः सैन्यैः । विदर्भनाथम् = यज्ञसेनम् । वशीकृत्य = अधीनीकृत्य । बन्धनात् = कारागारात् । मोचितः = आनीतः । कुमारो माधवसेनो नाम तस्य इयम् = एषा । कनीयसी = कनिष्ठा । स्वसा = मालविका ।

धारिणी—कथम् = किम् । राजदारिका = राजकुमारी । इयम् = मालविका । चन्दनं खलु = सुगन्धितकाष्ठम् । मया = देव्या । पादुकोपयोगेन = काष्ठपादुकाव्यवहारेण । दूषितम् = कलङ्कितम् ।

राजा—अथ = ततः । अत्रभवती = राजकन्यात्वेन माननीया । कथम् = केन प्रकारेण । इत्थम्भूता = इमां दशामनुप्रपन्ना ।

---

**( सभी आश्चर्य के साथ देखने लगते हैं । )**

**राजा**—आप दोनों कौन हैं ? और यह कौन है ?

**दोनों**—महाराज ! यह हम लोगों की राजकुमारी हैं ।

**राजा**—कैसे ?

**दोनों**—आप सुनिये । आपने अपने सैन्य द्वारा विदर्भराज को पराजित कर जिन्हें बन्दीगृह से मुक्त करवाया है, उन्हीं माधवसेन की छोटी बहन यह मालविका हैं ।

**धारिणी**—अरे ! तो क्या ये राजकुमारी हैं ? मैंने वस्तुतः पवित्र चन्दन से खड़ाऊँ का काम लेकर बड़ा पाप किया है ।

**राजा**—तो ये इस रूप में यहाँ कैसे आ गईं ?

मालविका -( निःश्वस्यात्मगतम् । ) विहिणिओएण । [ विधिनियोगेन । ]

द्वितीया—सुणादु भट्टा । दाआदवसंगदे । भट्टदारए माहवसेणे तस्स अमच्चेण अज्जसुमदिणा अम्हारिसं परिअणं उज्झिअ गूढं आणीदा एसा । [ श्रृणोतु भर्ता । दायादवशंगते भर्तृदारके माधवसेने तस्यामात्येनार्यसुमतिनास्मादृशं परिजनमुज्झित्वा गूढमानीतैषा । ]

राजा—श्रुतपूर्वं मयैतत् । ततस्ततः ।

द्वितीया—भट्टा, अदो वरं ण आणामि । [ भर्तः, अतः परं न जानामि । ]

परिव्राजिका—ततः परं मन्दभागिनी कथयिष्यामि ।

उभे—भट्टदारिए, अज्जकोसिईए विअ सरसंजोओ । णं सा एव्व । [ भर्तृदारिके, आर्यकौशिक्या इव स्वरसंयोगः । ननु सैव । ]

मालविका—अह इम् । [ अथ किम् । ]

---

मालविका –( निःश्वस्य = श्वासमाकृष्य । आत्मगतम् = स्वमनसि । ) विधिनियोगेन =भाग्यप्रेरणया ।

द्वितीया—श्रृणोतु भर्ता = आकर्णयतु महाराजः । दायादवशंगते = दायादबन्दीकृते । भर्तृदारके माधवसेने = राजकुमारे माधवसेने । तस्यामात्येन=तस्य मन्त्रिणा । आर्यसुमतिना= आर्यसुमतिनाम्ना । अस्मादृशं परिजनम् = मादृशमनुचरम् । उज्झित्वा = विहाय । गूढम् आनीता एषा = प्रच्छन्नरूपेण मालविका आनीता ।

राजा —श्रुतपूर्वम् = प्रथममाकर्णितम् । मया एतत् = इदम् । ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवत् ?

द्वितीया—भर्तः = महाराज ! । अतः परं = एतस्मादधिकम् । न जानामि = नावगच्छामि ।

परिव्राजिका—ततः = तस्मात् । परम् = कथानकात् अवशेषम् । मन्दभागिनी = हीनभाग्या ( अहं ) कथयिष्यामि = वदिष्यामि ।

उभे - भर्तृदारिके ! = राजकुमारि ! । आर्यकौशिक्याः = तन्नामधेयायाः । इव । स्वरसंयोगः = वर्णोच्चारणक्रमः । ननु = प्रश्ने । सा एव = आर्यकौशिकी एवास्ति ।

मालविका—अथ किम् = वस्तुतः सा एवास्ति ।

---

मालविका—( लम्बी साँस लेकर मन ही मन ) भाग्य की प्रेरणा से ।

द्वितीया—सुनिए महाराज ! जब राजकुमार माधवसेन को उनके चचेरे भाई ने पकड़ लिया था तब उनके मन्त्री आर्य सुमति इन्हें हम लोगों से हटाकर यहाँ गुप्त रूप से ले आए ।

राजा—यह तो मैं पहले सुन चुका हूँ । तत्पश्चात् क्या हुआ ?

द्वितीया—इसके बाद की बात मैं कुछ नहीं जानती ।

परिव्राजिका—इसके पश्चात् की कथा मैं अभागिनी बतलाऊँगी ।

दोनों—राजकुमारी ! यह बोली तो आर्य कौशिकी जैसी लग रही है, वे ही हैं क्या ?

मालविका—और क्या ?

उभे—जदिवेसधारिणी अज्जकोसिई दुक्खेण विभावीअदि । भअवदि, णमो । [ यतिवेषधारिण्यार्यकौशिकी दुःखेन विभाव्यते । भगवति नमस्ते । ]

परिव्राजिका—स्वस्ति भवतीभ्याम् ।

राजा—कथम् । आप्तवर्गोऽयं भगवत्याः ।

परिव्राजिका—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि कहेदु भअवदी अत्तहोदीएवुत्तन्तं दाव असेसं । [ तेन हि कथयतु भगवत्यत्रभवत्या वृत्तान्तं तावदशेषम् । ]

परिव्राजिका—( सवैक्लव्यम् । ) तावच्छ्रूयताम् । माधवसेनसचिवं ममाग्रजं सुमतिमवगच्छ ।

राजा—उपलक्षितः । ततस्ततः ।

परिव्राजिका—स इमां तथागतभ्रातृकां मया सार्द्धमपवाह्य भवत्संबन्धापेक्षया पथिकसार्थं विदिशागामिनमनुप्रविष्टः ।

---

उभे—यतिवेशधारिणी = परिव्राजकजनोपयुक्तकाषायाम्बरपरिधाना । आर्यकौशिकी= भगवती देवी । दुःखेन = आयासेन । विभाव्यते = प्रत्यभिज्ञायते । भगवति ! नमस्ते = तुभ्यं नमः ।

परिव्राजिका—स्वस्ति = क्षेमम् भवतु । भवतीभ्याम् = युवाभ्याम् शिल्पिदारिकाभ्याम् ।

राजा—कथम् = किम् । आप्तवर्गः = परिचितात्मीयजनः । अयम् । भगवत्याः = श्रीमत्याः ।

परिव्राजिका—एवमेतत् = परिचिता इमा ममेति ।

विदूषकः—तेन = तस्मात् कारणात् । कथयतु = वदतु । भगवती = भवती । अत्रभवत्याः = सम्मानितायाः मालविकायाः । वृत्तान्तम् = समाचारम् । तावदशेषम् = तदा समग्रम् ।

परिव्राजिका—(सवैक्लव्यम् = शोकविह्वलतया सह) । तावद् श्रूयताम् = तदा आकर्ण्यताम् । माधवसेनसचिवम् = माधवसेनमन्त्रिणम् । ममाग्रजम् = मम ज्येष्ठभ्राता । सुमतिम् अवगच्छ = जानीहि ।

राजा—उपलक्षितः = तर्कितः । ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवद् ।

परिव्राजिका—सः = सुमतिः । इमाम् = मालविकाम् । तथागतभ्रातृकाम् = बन्दीकृत-

---

दोनों—संन्यासिनी का वेश बना लेने के कारण कौशिकी जी बड़ी कठिनाई से पहचान में आती हैं । आपको प्रणाम है भगवती ।

परिव्राजिका—तुम दोनों का कल्याण हो ।

राजा—क्यों ? क्या ये भी आपकी ही शिष्या हैं ?

परिव्राजिका—जी हाँ, ये सभी परिचित हैं ।

विदूषक—तब आप ही इनकी पूरी कथा सुना डालिए ।

परिव्राजिका—( खेदपूर्वक ) तो सुनिए । माधवसेन के मन्त्री सुमति मेरे बड़े भाई थे ।

राजा—यह तो समझ गया था, आगे ।

परिव्राजिका—वे इसके भाई के बन्दी हो जाने पर मुझे और इसको लेकर आपसे सम्बन्ध की इच्छा से विदिशा आने वाले यात्री दल के साथ हो लिए ।

**राजा**—ततस्ततः ।

**परिव्राजिका**—स चाटव्यन्तरे निविष्टो गताध्वा वणिग्गणः ।

**राजा**—ततस्ततः ।

**परिव्राजिका**—ततः किं चान्यत् ।

**तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालमापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि ।**
**कोदण्डपाणि विनदत्प्रतिरोधकानामापातदुष्प्रसहमाविरभूदनीकम् ॥१०॥**

---

भ्रातृकाम् । मया सार्द्धम् = मया सह । अपवाह्य = प्रासादान्निष्कास्य । भवत्सम्बन्धापेक्षया = भवत्सम्बन्धेच्छया । पथिकसार्थम् = पान्थसमूहम् । विदिशागामिनम् = भवदीयराजधानीं प्रति गच्छन्तम् । अनुप्रविष्टः = सङ्गतः ।

**राजा**—ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवत् ।

**परिव्राजिका**—सः = पथिकसार्थः । अटव्यन्तरे = वनमध्ये । निविष्टः = उपविष्टः । गताध्वा = अतिवाहितमार्गः । वणिग्गणः = व्यापारिजनः ।

**राजा**—ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवत् ।

**परिव्राजिका**—ततः = तत्पश्चात् । किं च अन्यत् = अन्यं किम् ?

**अन्वयः**—तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालम् आपार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि कोदण्डपाणि विनदत् आपातदुष्प्रसहं प्रतिरोधकानाम् अनीकम् आविरभूत् ॥ १० ॥

**तूणीरेति** । तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालम् = पट्टसूत्रविशेषाबद्धबाहुमध्यभागम् । आपार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि = पादाग्रपर्यन्तपातिमयूरपिच्छसमूहम् । कोदण्डपाणि = धनुर्हस्तम् । विनदत् = शब्दायमानम् । आपातदुष्प्रसहम् = दुर्विरोधम् । प्रतिरोधकानाम् = दस्यूनाम् । अनीकम् = सैन्यम् । आविरभूत् = प्रकटयतिस्म ॥ १० ॥

**समासः**—तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालम् = तूणीराणाम् पट्टे परिणद्धानि भुजानां अन्तरालानि यस्य तत् तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालम् । आपार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि = पार्ष्णिं मर्यादीकृत्य लम्बन्ते इति लम्बिनः तेषां शिखिबर्हाणाम् कलापं धारयति तत् आपार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि । कोदण्डपाणि = कोदण्डानि पाणिषु यस्य तथाभूतम् कोदण्डपाणि । आपातदुष्प्रसहम् = आपाते दुःखेन प्रसोढुं योग्यम् आपातदुष्प्रसहम् ।

**अलंकारः**—पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः । **छन्दः**—वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

---

**राजा**—उसके पश्चात् ?

**परिव्राजिका**—वह वणिक् जनों का समुदाय मध्यवन में थककर ठहर गया ।

**राजा**—और क्या हुआ ?

**परिव्राजिका**—फिर क्या ?

तत्पश्चात् तूणीरपट्ट द्वारा दोनों बाहु मध्यों को कसे, पैर तक लटकते हुए मयूर पुच्छों से अलंकृत धनुर्धर, सामने आने वालों के लिए कालस्वरूप और गरजता हुआ दस्यु सैन्य प्रकट हुआ ।

**विशेष**—महाकवि कालिदास ने दस्युदल का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त सजीव एवं वास्तविक है । पढ़ते ही दस्युदल का दृश्य आँखों के समक्ष नाचने लगता है । अवश्य ही कवि ने उस समय में यह आक्रामक दृश्य अपनी आँखों से देखा होगा ।

**अलंकार**—पुनरुक्तवदाभास अलंकार ।

( मालविका भयं रूपयति । )

विदूषकः - भोदि, मा भआहि । अदिक्कन्तं क्खु तत्तहोदी कहेदि । [ **भवति, मा बिभेहि । अतिक्रान्तं खलु तत्रभवती कथयति ।** ]

राजा - ततस्ततः ।

परिव्राजिका—ततो मुहूर्तं बद्धायुधास्ते पराङ्मुखीभूताः सार्थवाहयोद्धारस्तस्करैः ।

राजा—हन्त, इतः परं कष्टतरं श्रोतव्यम् ।

परिव्राजिका—ततः स मत्सोदर्यः ।

**इमां परीप्सुर्दुर्जाते पराभिभवकातराम् ।**
**भर्तृप्रियः प्रियैर्भर्तुरानृण्यमसुभिर्गतः ॥ ११ ॥**

---

( मालविका भयं रूपयति = मालविका अभिनयेन भयं प्रकटयति )

**विदूषकः**—भवति = श्रीमति । मा बिभेहि = भयं मा कुरु । अतिक्रान्तं खलु = व्यतीतं खलु । तत्रभवती = भगवती । कथयति = वदति ।

**राजा**—ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवत् ।

**परिव्राजिका**—ततो मुहूर्तं = तत्पश्चात् कञ्चित्कालम् । बद्धायुधाः सार्थवाहयोद्धारः = गृहीतास्त्रा पथिकजनेषु युद्धक्षमाः । पराङ्मुखीभूताः = पराभूताः । तस्करैः = चौरैः ।

**राजा**—हन्त = खेदे । इतः परम् = एतस्मादधिकम् । कष्टतरम् = अतीवव्यथाकरम् = श्रोतव्यम् = श्रवणीयम् ।

**परिव्राजिका**—ततः = तत्पश्चात् । स मत्सोदर्यः = स मदीयः सहोदरः भ्राता ।

**अन्वयः**—दुर्जाते पराभिभवकातराम् इमाम् परीप्सुः भर्तृप्रियः प्रियैः असुभिः भर्तुः आनृण्यं गतः ॥ ११ ॥

**इमानिति ।** दुर्जाते = विपत्तौ । पराभिभवकातराम् = शत्रुकृताक्रमणभयव्याकुलाम् । इमाम् = मालविकाम् । परीप्सुः = परित्रातुमिच्छुकः । भर्तृप्रियः = स्वामिवल्लभः । प्रियैः = सर्वेषां जीवानां प्रेमभाजनैः । ( दुस्त्यजैः ) असुभिः = प्राणैः । भर्तुः = स्वामिनः । आनृण्यम् = अनृणत्वम् । गतः = प्राप्तः ॥ ११ ॥

**समासः**—पराभिभवकातराम् = परैः अभिभवः तेन कातराम् = पराभिभवकातराम् । भर्तृप्रियः = भर्तुः प्रियः इति भर्तृप्रियः ।

**अलङ्कारः**—पर्यायोक्तम् अलङ्कारः । **छन्दः**—पथ्यावक्त्रम् ।

---

**विदूषक**—भद्रे ! डरें नहीं, यह तो बीती बात सुना रही हैं ।

**राजा**—तब क्या हुआ ?

**परिव्राजिका**—थोड़ी देर तक यात्री-दल लड़ता रहा तब दस्युओं के दल ने उसे हरा दिया ।

**राजा**—हाय ! इसके पश्चात् अत्यन्त कष्टप्रद वृत्तान्त सुनना होगा ।

**परिव्राजिका**—इसके पश्चात् वे मेरे सहोदर भाई—

तब शत्रुकृत आक्रमण से कातर इस मालविका को उस आपत्ति-काल में बचाते हुए स्वामि प्रिय मेरे सहोदर भाई सुमति ने अपने प्रिय प्राणों को देकर स्वामिऋण चुकाया ॥ ११ ॥

**अलंकार**—पर्यायोक्त अलङ्कार ।

**प्रथमा**—हा, इदो सुमदी। [ अहो, हतः सुमतिः। ]

**द्वितीया**—तदो क्खु इअं भट्टदारिआए समवत्था संवुत्ता। [ ततः खल्वियं भर्तृदारिकायाः समवस्था संवृत्ता। ]

( परिव्राजिका बाष्पं विसृजति। )

**राजा**—भगवति, तनुत्यजामीदृशी लोकयात्रा। न शोच्यस्तत्रभवान्सफलीकृतभर्तृपिण्डः। ततस्ततः।

**परिव्राजिका**—ततोऽहं मोहमुपगता यावत्संज्ञां लभे तावदियं दुर्लभदर्शना संवृत्ता।

**राजा**—महत्खलु कृच्छ्रमनुभूतं भगवत्या।

**परिव्राजिका**—ततो भ्रातुः शरीरमग्निसात्कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीयं देशमवतीर्य इमे काषाये गृहीते।

---

**प्रथमा**—अहो = खेदे। हतः = युद्धे मृतः। सुमतिः = तन्नामा पुरुषः।

**द्वितीया**—ततः = तत्पश्चात्। खलु = निश्चये। इयम्=एषा। भर्तृदारिकायाः = मालविकायाः। समवस्था = दासीभावरूपा दशा।

( परिव्राजिका = सन्यासिनीकौशिकी। बाष्पं विसृजति = भ्रातरमनुशोचन्ती रोदनमाचरतीति भावः। )

**राजा**—भगवति=श्रीमति देवि !। तनुत्यजाम् = मरणधर्माणाम् मनुष्याणाम्। ईदृशी= एतादृशी। लोकयात्रा = विश्वरीतिः। न शोच्यः = मा शोचनीयः। तत्रभवान् = श्रीमान् सुमतिः। सफलीकृतभर्तृपिण्डः = स्वमृत्युना सार्थकीकृतमालविकापूर्वजालः। ततस्ततः = तत्पश्चात् किमभवत् ?

**परिव्राजिका** - ततोऽहं मोहमुपगता = तत्पश्चादहं संज्ञाशून्यतां प्राप्ता। यावत् संज्ञां लभे = यदा लब्धचेतना संजाता। तावदियम् = तदेषा मालविका। दुर्लभदर्शना=अदृश्या। संवृत्ता = संजाता।

**राजा**—महत्खलु कृच्छ्रम = प्रभूतं कष्टम्। अनुभूतं भगवत्या = प्राप्तं श्रीमत्या।

**परिव्राजिका**—ततो = तत्पश्चात्। भ्रातुः शरीरमग्निसात्कृत्वा = सुमतेः शवं दग्धं विधाय। पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया = पुनर्जागरितस्वामिमरणक्लेशया। मया त्वदीयं देशमवतीर्य। भवतो विषयमागत्य। इमे काषाये = एते काषायवस्त्रे। गृहीते = धृते।

---

**प्रथमा**—हाय ! सुमति मारे गए।

**द्वितीया**—इसी से तो राजकुमारी की यह दशा हुई।

**( परिव्राजिका रोती है। )**

**राजा**—भगवति ! शरीरधारियों के लिए मृत्यु स्वाभाविक है। आपके भाई ने स्वामी का ऋण चुकाने में अपने प्राण दिए अतएव वे शोचनीय नहीं हैं। तब उसके बाद—

**परिव्राजिका**—तब मैं मूर्च्छित हो गई। जब तक होश में आई तब तक यह खो गई थी।

**राजा**—तब तो आपको महान् कष्ट उठाने पड़े।

**परिव्राजिका**—तत्पश्चात् भाई की अन्त्येष्टि क्रिया करके मैंने अपने हृदय में वैधव्य वेदना को अभिनव रूप में अनुभव किया। और आपके राज्य में आकर ये काषाय वस्त्र धारण किये।

राजा—युक्तः सज्जनस्यैष पन्थाः । ततस्ततः ।

परिव्राजिका—सेयमाटविकेभ्यो वीरसेनं वीरसेनाच्च देवीं गता । देवीगृहे लब्धप्रवेशया मया चानन्तरं दृष्टेत्येतदवसानं कथायाः ।

मालविका—( आत्मगतम् ) किं णु खु संपदं भट्टा भणादि । [ किं नु खलु सांप्रतं भर्ता भणति । ]

राजा—अहो परिभवोपहारिणो विनिपाताः । कुतः—

**प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।**
**स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णं वोपयुज्यते ॥ १२ ॥**

---

राजा—युक्तः = उचितः । सज्जनस्य = साधोः । एषः = अयम् । पन्थाः = मार्गः ।

परिव्राजिका—सा इयम् = सा मालविका । आटविकेभ्यः = वनचारिभ्यः । वीरसेनम् = तदाख्यं भवदमात्यम् । वीरसेनाच्च = तथा वीरसेनसमीपात् । देवीं गता = धारिणी-पार्श्वमागता । देवीगृहे = धारिणीभवने । लब्धप्रवेशया = प्राप्तागमनावसरया । मया च । अनन्तरम् = पश्चात् । दृष्टा = अवलोकिता । इत्येतत् = इदमेव । कथायाः = कथानकस्य । अवसानम् = इति ।

मालविका—( आत्मगतम् = स्वमनस्येव ) किं नु खलु साम्प्रतम् = अस्मिन्नवसरे किम् । भर्ता = श्रुतमदीयवृत्तान्तो राजा । भणति = निर्णयं कृत्वा कथयति ।

राजा—अहो ! = आश्चर्यम् । परिभवोपहारिणः = कष्टदायकाः । विनिपाताः = आपदः ।

अन्वयः—देवीशब्दक्षमा सती इयं प्रेष्यभावेन नाम स्नानीयक्रियया पत्त्रोर्णं वा उपयुज्यते ॥ १२ ॥

प्रेष्यभावेनेति । देवीशब्दक्षमा = सौन्दर्यादिना गुणगणेन महाकुलप्रसूतत्वेन च देवी-पदव्यवहार्यतासम्पन्ना । सती = भवती । इयम् = मालविका । प्रेष्यभावेन = परिचारिका-भावेन । स्नानीयवस्त्रक्रियया = स्नानकाले गात्रमार्जनत्वकरणेन । पत्त्रोर्णम् = धौतकौशेय-वसनमिव । उपयुज्यते = प्रयुज्यते ॥ १२ ॥

समासः—देवीशब्दक्षमा = देवीशब्दस्य क्षमा देवीशब्दक्षमा । प्रेष्यभावेन = प्रेष्यते इति प्रेष्या तस्या भावेन प्रेष्यभावेन । स्नानीयवस्त्रक्रियया = स्नानीयं यद्वस्त्रम् तस्य क्रियया = स्नानीयवस्त्रक्रियया ।

अलंकारः—उपमाऽलङ्कारः । छन्दः—पथ्यावक्त्रम् ।

---

**राजा**—सज्जनों के लिए यही मार्ग उचित है । तब उसके बाद ।

**परिव्राजिका**—यह मालविका दस्युओं के पास से वीरसेन के पास और वीरसेन के पास से देवी के पास आई । जब मैं देवी के पास आई तो उसे यहाँ देखा । यहीं कथा की इतिश्री है ।

**मालविका—( स्वगत )** न जाने अब महाराज क्या कहते हैं ?

**राजा**—अहो ! विपत्तियाँ कितनी कष्टदायक होती हैं ?

जो मालविका देवी पद के योग्य है, उसे दासी भाव में रहना पड़ रहा है मानों बहुमूल्य रेशमी वस्त्र स्नानकालिक वस्त्र के कार्य में लाया जा रहा है ॥ १२ ॥

**अलङ्कार**—उपमा अलंकार ।

**धारिणी**—भअवदि, तुए अभिजणवर्दि मालविअं अणाचक्खन्तीए असंपदं किदम् । [ भगवति, त्वयाभिजनवतीं मालविकामनाचक्षाणयाऽसाम्प्रतं कृतम् । ]

**परिव्राजिका**—शान्तं पापम् । केनचित्कारणेन खलु मया नैर्घृण्यमवलम्बितम् ।

**देवी**—किं विअ तं कारणम् । [ किमिव तत्कारणम् । ]

**परिव्राजिका**—इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रागतेन सिद्धादेशकेन साधुना मत्समक्षं समादिष्टा । आसंवत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः सदृश-भर्तृगामिनी भविष्यतीति । तदेवं भाविनमादेशमस्यास्त्वत्पादशुश्रूषया परिणमन्त-मवेक्ष्य कालप्रतीक्षया मया साधु कृतमिति पश्यामि ।

**राजा**—युक्ता प्रतीक्षा ।

---

**धारिणी**—भगवति ! = परिव्राजिके ! । त्वया = भवत्या । अभिजनवतीम् = महाकुल-प्रसूताम् । मालविकाम् = इमां राजकुमारीम् । अनाचक्षणया = अब्रुवत्या । असाम्प्रतम = अनुचितम् । कृतम् = विहितम् । अज्ञानकृतापराधस्य क्षम्यता ध्वनिता ।

**परिव्राजिका**—शान्तम् पापम् = नहि नहि ईदृशी वार्ता नास्ति । केनचित् कारणेन खलु मया = कस्यचित् कारणस्य कृते मया । नैर्घृण्यम् = निर्दयत्वम् । अवलम्बितम् = कृतम् ।

**देवी**—किमिव तत्कारणम् = तत् कारणम् किमासीत् ?

**परिव्राजिका**—इयम् = मालविका । पितरि = स्वताते । जीवति = वर्तमाने । केनापि = केनचित् । देवयात्रागतेन = देवताविशेषस्योत्सवे समायातेन । सिद्धादेशकेन = प्रख्यातदैव-ज्ञेन । साधुना = सिद्धेन पुरुषेण । मत्समक्षम् = मदीयसम्मुखे । समादिष्टा = उक्ता । आसंव-त्सरमात्रम् = हायनमेकं यावत् । इयम् = मालविका । प्रेष्यभावम् = दास्यम् । अनुभूय = कृत्वा । ततः = तत्पश्चात् । सदृशभर्तृगामिनी = स्वानुरूपप्रियसंगता । भविष्यति । तदेवं भाविनम् = तदित्थं भविष्यन्तम् । आदेशम् = प्रेष्यभावम् । अस्याः = मालविकायाः । त्वत्पादशुश्रूषया = त्वच्चरणसेवनेन । परिणमन्तम् = सफलं भवन्तम् । अवेक्ष्य = दृष्ट्वा । कालप्रतीक्षया मया = समयं प्रतीक्षमाणया मया । साधु कृतम् = युक्तं कृतम् ।

**राजा**—युक्ता = उचिता । प्रतीक्षा = समयसहनम् ।

---

**धारिणी**—महाकुल प्रसूत इस मालविका का परिचय नहीं दिया यह आपने उचित नहीं किया ।

**परिव्राजिका**—ऐसी बात नहीं । मैंने किसी कारणवश ही इतनी निर्दयता की ।

**देवी**—वह कारण क्या था ?

**परिव्राजिका**—जब इसके पिता जी जीवित थे, उन्हीं दिनों तीर्थ यात्रा प्रसंग में आए हुए किसी सिद्ध महात्मा ने कहा था कि यह एक वर्ष तक दासी-जीवन बिताने के बाद योग्य पति प्राप्त कर सकेगी । अतः इसके आवश्यक योग्य आदेश को आपकी सेवा में चरितार्थ होते देखकर मैं समय की प्रतीक्षा कर रही थी । मैं समझती हूँ मैंने उचित ही किया ।

**राजा**—प्रतीक्षा उचित थी ।

**कञ्चुकी**—देव, कथान्तरेणान्तरितम् अमात्यो विज्ञापयति। विदर्भगतम-नुष्ठेयमनुष्ठितमभूत् । देवस्य तावदभिप्रायं श्रोतुमिच्छामीति ।

**राजा**—मौद्गल्य, तत्रभवतोर्यज्ञसेनमाधवसेनयोर्द्वैराज्यमिदानीमवस्थापयितु-कामोऽस्मि ।

**तौ पृथग्वरदाकूले शिष्टामुत्तरदक्षिणे ।**
**नक्तं दिवं विभज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव ॥ १३ ॥**

**कञ्चुकी**—देव, एवममात्यपरिषदे निवेदयामि ।

( राजाङ्गुल्यानुमन्यते । )

---

**कञ्चुकी**—देव ! = महाराज ! । कथान्तरेण = विषयान्तरालापेन । अन्तरितम् = तिरोहतम् । अमात्यः = मन्त्री । विज्ञापयति = कथयति । विदर्भगतम् = विदर्भदेशविषयम् । अनुष्ठेयम् = कर्तव्यम् । अनुष्ठितमभूत् = कृतमासीत् । देवस्य = महाराजस्य । तावदभिप्रायम् = तिदा उद्देश्यम् । श्रोतुमिच्छामि = आकर्णयितुमभिलषामि ।

**राजा**—मौद्गल्य ! तत्रभवतोः = श्रीमतोः । यज्ञसेनमाधवसेनयोः = एतयोः महापुरुषयोः । द्वैराज्यम् = राज्यद्वयम् । इदानीम् = अधुना । अवस्थापयितुकामः = सम्पादयितुं इच्छामि ।

**अन्वयः**—शीतोष्णकिरणौ नक्तं दिवमिव तौ उभौ उत्तरदक्षिणे वरदाकूले विभज्य पृथक् शिष्टाम् ॥ १३ ॥

तावििति । शीतोष्णकिरणौ = चन्द्रसूर्यौ । नक्तं दिवम् = रात्रि दिनञ्च । इव । तौ उभौ = यज्ञसेनमाधवसेनौ । उत्तरदक्षिणे = उदीच्यामवाच्याञ्च । वरदाकूले = वरदानदीतटे । विभज्य = पृथक्-पृथक् विषयीकृत्य । पृथक् = भिन्नम् । शिष्टाम् = पालयताम् ॥ १३ ॥

**समासः**—शीतोष्णकिरणौ = शीतकिरणश्च उष्णकिरणश्च शीतोष्णकिरणौ । वरदाकूले = वरदायाः कूले = वरदाकूले ।

**अलंकारः**—उपमाऽलङ्कारः । **छन्दः**—पथ्यावक्त्रम् ।

**कञ्चुकी**—देव ! = महाराज ! एवम् = इत्थम् । अमात्यपरिषदे = मन्त्रिमण्डलाय । निवेदयामि = निवेदनं करिष्यामि ।

( राजा अंगुल्या अनुमन्यते = महाराजः अंगुलिचालनरूपेणेङ्गितेन आज्ञां ददाति । )

---

**कञ्चुकी**—महाराज ! मैं दूसरी बात में उलझ गया । मन्त्री जी ने कहा है कि विदर्भदेश के विषय में जो कर्त्तव्य था, वह कर दिया गया । श्रीमान् की इच्छा क्या है ? यह जानना चाहता हूँ ।

**राजा**—मौद्गल्य ! मेरी इच्छा है कि यज्ञसेन और माधवसेन के अलग-अलग दो राज्य स्थापित कर दिए जायँ ।

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र अहोरात्र का विभाजन करके शासन करते हैं उसी प्रकार वे दोनों वरदा नदी के दक्षिण तथा उत्तर तट का अलग-अलग शासन करें ॥ १३ ॥

**अलंकार**—उपमा अलंकार ।

**कञ्चुकी**—महाराज ! यही बात मन्त्रिमण्डल से निवेदन कर आता हूँ ।

**विशेष**—उक्त विवरण से स्पष्ट है कि कालिदास के समय में मन्त्रिमण्डल होते थे ।

**( राजा अँगुली के इशारे से आदेश प्रदान करता है । )**

( निष्क्रान्तः कञ्चुकी । )

**प्रथमा**—( जनान्तिकम् । ) भट्टदारिए, दिट्ठिआ भट्टिणा भट्टदारओ अद्धरज्जे पडिट्ठं गमइस्सदि । [ **भर्तृदारिके, दिष्ट्या भर्ता भर्तृदारकोऽर्धराज्ये प्रतिष्ठां गमयिष्यते ।** ]

**मालविका**—एदं दाव बहु मणिदव्वं, जं जीविदसंसआदो मुत्तो । [ **एतत्तावद्बहुमन्तव्यम्, यज्जीवितसंशयान्मुक्तः ।**

( प्रविश्य । )

**कञ्चुकी**—विजयतां देवः । देव, आमात्यो विज्ञापयति । कल्याणी देवस्य बुद्धिः । मन्त्रिपरिषदोऽप्येतदेव दर्शनम् । कुतः—

**द्विधा विभक्तां श्रियमुद्वहन्तौ धुरं रथाश्वाविव संग्रहीतुः ।**
**तौ स्थास्यतस्ते नृपतेर्निदेशे परस्परावग्रहनिर्विकारौ ॥ १४ ॥**

---

( निष्क्रान्तः = निर्गतः । कञ्चुकी = वृद्धब्राह्मणः )

**प्रथमा**—(जनान्तिकम् = पृथग् रूपेण) भर्तृदारिके=राजकुमारि ! । दिष्ट्या = भाग्येन । भर्ता— स्वामी । भर्तृदारकः = माधवसेनः । अर्द्धराज्ये = द्विधाविभक्तस्य विदर्भराज्यस्यैकस्मिन् भागे । प्रतिष्ठाम् = स्वामित्वम् । गमयिष्यते = प्राप्स्यति ।

**मालविका**—एतत् = इदमेव । तावत् = तदा । बहुमन्तव्यम् = यथेष्टं बोद्धव्यम् । यत् जीवितसंशयात् = यज्ञसेनोपद्रवैः प्राणव्यसनात् । मुक्तः = वर्जितोऽभवत् ।

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा )

**कञ्चुकी**—विजयतां देवः = देवस्य विजयो भवतु । देव !=महाराज !, अमात्यो विज्ञापयति = मन्त्रीमहोदयः कथयति । कल्याणी = शुभा मंगला । देवस्य बुद्धिः = राज्ञः ज्ञानम् । मन्त्रिपरिषदः = मन्त्रिमण्डलस्य । अपि एतदेव=इदमेव । दर्शनम्=भावनम् । कुतः = यतः ।

**अन्वयः**—द्विधा विभक्तां श्रियम् उद्वहन्तौ तौ नृपती धुरम् रथाश्वौ इव परस्परावग्रहनिर्विकारौ संग्रहीतुः ते निदेशे स्थास्यतः ॥ १४ ॥

**द्विधेति** । द्विधा विभक्ताम्=समभागद्वयेन विभक्ताम् । श्रियम्=राजलक्ष्मीम् । उद्वहन्तौ= पालयन्तौ । तौ नृपती = द्वौ राजानौ । यज्ञसेनमाधवसेनौ । धुरम् = भारम् । उद्वहन्तौ =

---

**( कञ्चुकी निकल जाता है । )**

**प्रथमा—( अलग से )** राजकुमारी !. भाग्य से यह बड़ी अच्छी बात हुई कि राजकुमार को महाराज आधे राज्य पर बैठा रहे हैं ।

**मालविका**—यह भी बहुत बड़ी बात हुई कि राजकुमार के प्राण संकटों से बच गए ।

**( प्रवेश करके )**

**कञ्चुकी**—जय हो महाराज की । मन्त्रियों ने कहा है कि महाराज की बुद्धि विशेष कल्याणी है । मन्त्रिमण्डल का भी यही विचार था । क्योंकि—

दो भागों में विभक्त राजलक्ष्मी को प्राप्त करके वे दोनों परस्पर आक्रमण की प्रवृत्ति को भूलकर सदा आपकी आज्ञा में रहेंगे, जैसे दो भागों में विभक्त रथ के भार को रथाश्व ढोते हैं और एक दूसरे से नहीं झगड़ते तथा नियन्ता की आज्ञा में रहते हैं ॥ १४ ॥

**अलंकार—दृष्टान्त**

राजा--तेन हि मन्त्रिपरिषदं ब्रूहि । सेनान्ये वीरसेनाय लेख्यतामेवं क्रियतामिति ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । ( इति निष्क्रम्य, सप्राभृतकं लेखं गृहीत्वा पुनः प्रविष्टः । ) अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा । अयं देवस्य सेनापतेः पुष्यमित्रस्य सकाशात्सोत्तरीयप्राभृतको लेखः प्राप्तः । प्रत्यक्षीकरोत्वेनं देवः ।

( राजोत्थाय सप्राभृतकं लेखं सोपचारं गृहीत्वा परिजनायार्पयति । )

( परिजनो लेखं नाट्येनोद्घाटयति । )

---

कर्षन्तौ । रथाश्वौ इव = स्यन्दनघोटकौ इव । परस्परावग्रहनिर्विकारौ = अन्योन्याक्रमणाभिसन्धिरहितौ । संग्रहीतुः = नियन्तुः सारथेरिव । ते = भवतः । निदेशे=आदेशे । स्थास्यतः = भविष्यतः ॥ १४ ॥

समासः—रथाश्वौ = रथस्य अश्वौ रथाश्वौ । परस्परावग्रहनिर्विकारौ = परस्परस्य अवग्रहे निर्विकारौ परस्परावग्रहनिर्विकारौ ।

अलंकारः—दृष्टान्तोऽलङ्कारः । छन्दः— उपजातिर्वृत्तम् ।

राजा तेन = अतः । मन्त्रिपरिषदम् = मन्त्रिमण्डलम् । ब्रूहि = कथय । सेनान्ये वीरसेनाय = सेनापतये वीरसेनाय । लेख्यताम् = पत्ररूपेणादिश्यताम् । एवं क्रियताम् = इत्थं विधीयताम् ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः = महाराजस्य या आज्ञा । ( इति निष्क्रम्य = अनेन प्रकारेण निर्गत्य । सप्राभृतकं लेखं गृहीत्वा = उपढौकनेन सह पत्रमादाय । पुनः प्रविष्टः = पुनरागतः । ) अनुष्ठिता = कृता । प्रभोराज्ञा = महाराजस्यादेशः । अयम् = एषः । देवस्य सेनापतेः पुष्यमित्रस्य = राज्ञः बृहद्रथसेनानायकस्य अग्निमित्रपितुः पुष्यमित्रस्य । सकाशात् = समीपात् । सोत्तरीयप्राभृतकः = उत्तरीयवसनरूपोपढौकनसहितः । लेखः = पत्रम् । प्राप्तः = आगतः । प्रत्यक्षीकरोतु = पश्यतु । एनम् = पत्रम् । देवः = महाराजः ।

( राजा = महाराजः । उत्थाय । सप्राभृतकलेखम् = सोत्तरीयं पत्रम् । सोपचारम् = सप्रणामम् । गृहीत्वा = आदाय । परिजनाय = सेवकाय । अर्पयति = ददाति । )

( परिजनः = सेवकः । लेखम् = पत्रम् । नाट्येन = अभिनयेन । उद्घाटयति = अनावृत्तं करोति । )

---

**राजा**—मन्त्रिमण्डल से ऐसा कह दो कि सेनापति वीरसेन के पास इसकी लिखित आज्ञा भेज दें ।

**कञ्चुकी**—महाराज की जैसी आज्ञा । **( बाहर जाता है और भेंट के साथ पत्र लिए हुए फिर आता है । )** आपकी आज्ञा कह सुनाई । महाराज के सेनापति पुष्यमित्र के पास से उत्तरीय आदि भेंट की सामग्रियों के साथ-साथ पत्र भी आया है । इसे महाराज देखने की कृपा करें ।

**( राजा उठकर बड़े आदर के साथ भेंट की सामग्री और पत्र लेकर अपने सेवक को दे देते हैं । वह उस पत्र को अभिनय के साथ खोलता है । )**

**धारिणी** —( आत्मगतम् । ) अम्हो, तदोमुहं एव्व णो हिअअं । सुणिस्सं दाव गुरुअणस्स कुसलाणन्तरं वसुमित्तस्स वुत्तन्तं । अदिघोरे क्खु पुत्तओ सेनावदिणा णिउत्तो । [ **अहो, ततो मुखमेव नो हृदयम् । श्रोष्यामि तावद्गुरुजनस्य कुशलानन्तरं वसुमित्रस्य वृत्तान्तम् । अतिघोरे खलु पुत्रकः सेनापतिना नियुक्तः ।** ]

**राजा**—( उपविश्य लेखं सोपचारं गृहीत्वा वाचयति । ) स्वस्ति यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्येदमनुदर्शयति । विदितमस्तु । योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य वत्सरोपात्तनियमो निरर्गलस्तुरंगो विसृष्टः, स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थितः । तत उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः ।

---

**धारिणी**—( आत्मगतम् = स्वमनस्येव ) अहो = हर्षाश्चर्यसूचकमव्ययम् । ततो मुखमेव = तत्र बद्धमावम् एव । नो हृदयम् = अस्माकं मनः । श्रोष्यामि = आकर्णयिष्यामि । तावत् = तदा । गुरुजनस्य = श्रेष्ठलोकस्य । कुशलानन्तरम् = कुशलात्मकं वर्णनमाकर्ण्य । वसुमित्रस्य वृत्तान्तम् = स्वकीयपुत्रस्य कथानकम् । अतिघोरे = अत्यन्तमहति भारसमूहे । पुत्रकः = आत्मजो वसुमित्रः । सेनापतिना नियुक्तः = सेनाध्यक्षेण स्थापितः ।

**राजा**—( उपविश्य = स्थित्वा । लेखं सोपचारं गृहीत्वा = सोत्तरीयं लेखमादाय । वाचयति = पठति । ) स्वस्ति = कुशलम् । यज्ञशरणात् = अश्वमेधभवनात् । सेनापतिः पुष्यमित्रः = बृहद्रथसेनाध्यक्षः पुष्यमित्रः । वैदिशस्थम् = विदिशास्थितम् । पुत्रम् आयुष्मन्तम् अग्निमित्रम् = चिरञ्जीविनम् अग्निमित्रं पुत्रम् । स्नेहात् = प्रेम्णा । परिष्वज्य = आलिङ्ग्य । इदम् = कथनीयम् । अनुदर्शयति = सूचयति । विदितमस्तु = प्रकटितमस्तु । योऽसौ तुरंगमः = यः एषः घोटकः । राजयज्ञदीक्षितेन = अश्वमेधेष्टिना । मया = पुष्यमित्रेण । राजपुत्रशतपरिवृतम् = शतराजकुमारयुक्तम् । गोप्तारम् = रक्षकम् । वसुमित्रमादिश्य = वसुमित्रं नियुज्य । वत्सरोपात्तनियमः = प्राप्तवर्षावधिविधिः । निरर्गलस्तुरंगो विसृष्टः = रज्जुहीनो घोटकः परित्यक्तः । स सिन्धोः = सोऽश्वः सिन्धुनदस्य । दक्षिणरोधसि चरन् = दक्षिणतटे भ्रमन् । अश्वानीकेन यवनेन प्रार्थितः = अश्वसेनायुक्तेन यवनदेशाधिपेन याचितः । ततः = तत्पश्चात् । उभयोः सेनयोः = द्वयोरनीकयोः । महान् आसीत् संमर्दः = महद्युद्धमभूत् ।

---

**धारिणी**—( **मन ही मन** ) अरे ! मेरा जी भी इसे सुनने को छटपटा रहा है । बड़ों का कुशल समाचार सुनकर फिर वसुमित्र का समाचार सुनूँगी । सेनापति ने मेरे बच्चे को बड़ा संकट का काम सौंप दिया है ।

**राजा**—( **बैठकर सम्मानपूर्वक पत्र लेकर पढ़ते हैं** ) आपका कल्याण हो । विदिशा में आए हुए चिरजीवी पुत्र अग्निमित्र को स्नेहपूर्वक आलिंगन करके अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा लिए हुए सेनापति पुष्यमित्र लिख रहे हैं—हम यह बताना चाहते हैं कि अश्वमेध की दीक्षा लेकर मैंने एक वर्ष की अवधि के लिए जो रज्जुहीन घोड़ा छोड़ा था और जिसकी रक्षा के लिए सैकड़ों राजकुमारों के साथ वसुमित्र को भेजा था, वह घोड़ा जब सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर चर रहा था तो घुड़सवार सेना के एक यवन ने उसे पकड़ लिया । इस पर दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ ।

( देवी विषादं नाटयति । )

राजा—कथमीदृश संवृत्तम् । ( शेषं पुनर्वाचयति । )

**ततः परान्पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना ।**
**प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः ॥ १५ ॥**

धारिणी—इमिणा आससिदं मे हिअअं । [ **अनेनाश्वस्तं मे हृदयम् ।** ]

राजा—( शेषं पुनर्वाचयति । ) सोऽहमिदानीमंशुमता सगरपुत्रेणेव प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये । तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसेवनायागन्तव्यमिति ।

---

( देवी = धारिणी । विषादं नाटयति = दुःखाभिनयं करोति । )

**राजा**—कथम् = केन प्रकारेण । ईदृशम् = एतादृशम् । संवृत्तम् = संजातम् । ( शेषम् = अवशिष्टम् । पुनर्वाचयति = पुनः पठति । )

**अन्वयः**—ततः धन्विना वसुमित्रेण परान् पराजित्य प्रसह्य ह्रियमाणः मे वाजिराजः निवर्तितः ॥ १५ ॥

**तत इति ।** ततः = युद्धारम्भे संजाते । धन्विना = धनुर्धरेण । वसुमित्रेण = एतन्नाम्ना राजकुमारेण । परान् = शत्रून् । पराजित्य = विजित्य । प्रसह्य = बलपूर्वकम् । ह्रियमाणः = नीयमानः । मे = मम । वाजिराजः = मेध्यो घोटकश्रेष्ठः । निवर्तितः = परावर्तितः ॥ १५ ॥

**समासः**—धन्विना = धनुः अस्ति अस्येति धन्वी तेन धन्विना । वाजिराजः = वाजिषु राजा वाजिराजः ।

**अलंकारः**—छेकानुप्रासवृत्यनुप्रासयोः संसृष्टिः । **छन्दः**—पथ्यावक्त्रम् ।

**धारिणी**—अनेन=पुत्रविजयश्रवणेन । आश्वस्तम् = आश्वसितम् । मे हृदयम्=मे मनः ।

**राजा**—( शेषं पुनर्वाचयति = पत्रांशं भूयः पठति । ) सोऽहम् = सोऽग्निमित्रः । इदानीम् = अधुना । अंशुमता = अंशुमान् इति विख्यातेन ( स्वपौत्रेण ) सगरपुत्रेण = सगरात्मजेन । इव । प्रत्याहृताश्वः = परावर्त्यानीतघोटकः । यक्ष्ये = यज्ञं करिष्ये । तद् = तदा । इदानीम् = अधुना । अकालहीनम् = कालहीनमकृत्वा । विगतरोषचेतसा = अक्रोधमनसा । भवता = श्रीमता महाराजेन । वधूजनेन सह = नारीगणेन साकम् । यज्ञसेवनाय = अश्वमेधनिरीक्षणाय । आगन्तव्यम् = आगमनीयम् ।

---

**(देवी दुःखी होने का अभिनय करती हैं।)**

**राजा**—ऐसा कैसे हो गया ? **( फिर शेष पत्र पढ़ते हैं । )**

तत्पश्चात् शत्रुओं को परास्त करके धनुर्धर वसुमित्र ने हमारे अपहृत अश्वराज को बलपूर्वक छीन लिया ॥ १५ ॥

**अलंकार**—छेकानुप्रास वृत्त्यनुप्रास से संसृष्टि ।

**धारिणी**—इससे हमारे हृदय को आश्वासन मिला ।

**राजा ( पत्र का शेष अंश पढ़ता है । )** जिस प्रकार अंशुमान् ने घोड़ा लौटाकर ला दिया, तब सगर ने यज्ञ सम्पन्न किया, उसी प्रकार पौत्र की सहायता से मैं भी यज्ञ करूँगा । अतः यथा समय शान्त मन से सपरिवार यज्ञ में उपस्थित होना ।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि ।

परिव्राजिका—दिष्ट्या पुत्रविजयेन दम्पती वर्द्धेते ।

भर्त्रासि वीरपत्नीनां श्लाघ्यानां स्थापिता धुरि ।
वीरसूरिति शब्दोऽयं तनयात्त्वामुपस्थितः ॥ १६ ॥

धारिणी—भअवदि, परितुट्ठम्हि जं पितरं अणुजादो मे वच्छओ । [ भगवति, परितुष्टास्मि यत्पितरमनुजातो मे वत्सकः । ]

राजा—मौद्गल्य, ननु कलभेन यूथपतेरनुकृतम् ।

कञ्चुकी—देव, अयं कुमारः ।

---

राजा—अनुगृहीतः = अनुकम्पितः । अस्मि = भवामि ।

परिव्राजिका—दिष्ट्या = भाग्येन । पुत्रविजयेन = कुमारसाफल्येन । दम्पती = धारिण्यग्निमित्रौ । वर्द्धेते = एधेते ।

अन्वयः—भर्ता वीरपत्नीनां श्लाघ्यानां धुरि स्थापिता असि । वीरसूरिति अयं शब्दः तनयात् त्वम् उपस्थितः ॥ १६ ॥

भर्त्रासीति । भर्त्रा=स्वामिनाऽग्निमित्रेण । वीरपत्नीनाम्=शूरवनितानाम् । श्लाघ्यानाम्= प्रशंसनीयानाम् । धुरि = अग्रे । स्थापिता = महाबलस्य भार्याभावेन परिगणिताऽसि । वीरसूरिति = वीरजननी इति । अयं शब्दः = एषः वर्णसमूहः । तनयात् = पुत्रात् वसुमित्रात् । त्वाम् = धारिणीम् । उपस्थितः = सम्प्राप्तः ॥ १६ ॥

समासः—वीरपत्नीनाम् = वीराणां पत्न्यः तासाम् वीरपत्नीनाम् । वीरसूः = वीरम् सूते इति वीरसूः ।

अलङ्कारः—पर्यायोक्तम् अलंकारः । छन्दः—पथ्यावक्त्रम् ।

धारिणी—भगवति ! = परिव्राजिके ! । परितुष्टास्मि = सन्तुष्टास्मि । यत्पितरम् = पित्रा सदृशः शूरः । सञ्जातः = सम्भूतः । मे वत्सकः = मदीयः पुत्रः ।

राजा—मौद्गल्य ! ननु = प्रश्ने । कलभेन = करिशावकेन । यूथपतेरनुकृतम् = गज-समूहप्रधानस्य अनुकरणम् आचरितम् ।

कञ्चुकी—देव ! = महाराज ! । अयं कुमारः = एष वसुमित्रः राजकुमारः ।

---

राजा—अनुगृहीत हुआ ।

परिव्राजिका—भाग्य से पुत्रविजय के कारण महाराज दम्पति का उदय हो रहा है ।

देवि ! स्वामी ने आपको वीर पत्नी समुदाय में अग्रगण्य प्रमाणित किया है तो पुत्र ने भी आपको वीरजननी का गौरव प्रदान किया है ॥ १६ ॥

अलङ्कार—पर्यायोक्त अलंकार ।

धारिणी—भगवति ! मेरा पुत्र पिता के अनुरूप हुआ है अतएव मैं सन्तुष्ट हूँ ।

राजा—मौद्गल्य ! करिशावक ने गजगणस्वामी का अनुकरण किया ।

कञ्चुकी—महाराज ! यह राजकुमार—

नतावता वीरविजृम्भितेन चित्तस्य नो विस्मयमादधाति ।
यस्याप्रधृष्यः प्रभवस्त्वमुच्चैरग्नेरपां दग्धुरिवोरुजन्मा ॥ १७ ॥

राजा—मौद्गल्य, यज्ञसेनश्यालमूरीकृत्य मोच्यन्तां सर्वे बन्धनस्थाः ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । ( इति निष्क्रान्तः । )

---

**अन्वयः**—एतावता वीरविजृम्भितेन नः चित्तस्य विस्मयं न आदधाति, अपां दग्धुः वह्नेः ऊरुजन्मा इव अस्य त्वम् अप्रधृष्यः उच्चैः प्रभवः ॥ १७ ॥

**नैतावतेति** । एतावता = श्रुतिविषयेण ( इयता ) वीरविजृम्भितेन = शूरचेष्टितेन । नः = अस्माकम् । चित्तस्य = हृदयस्य । विस्मयम् = आश्चर्यम् । न आदधाति = नोत्पादयति । (एतावत्या यवनजयसम्बद्धया सफलतया अस्मान् अयं कुमारः न विस्माययति इति भावः) । अपाम् = जलानाम् । दग्धुः = शोषणकारिणः । वह्नेः = वडवानलस्य । ऊरुजन्मा = और्वो मुनिरिव । अस्य = कुमारवसुमित्रस्य । त्वम् = भवान् । अप्रधृष्यः = अजेयः । उच्चैः प्रभवः = महान् जनकः ॥ १७ ॥

**समासः**—वीरविजृम्भितेन = वीराणाम् विजृम्भितम् तेन वीरविजृम्भितेन । ऊरुजन्मा—ऊर्व्यो जन्म यस्य सः ऊरुजन्मा ।

**अलंकारः**—काव्यलिङ्गम् अलंकारः । **छन्दः**—उपजातिर्वृत्तम् ।

**राजा**—मौद्गल्य ! यज्ञसेनश्यालम् = विदर्भाधिपतेः श्यालम् । ऊरीकृत्य = यथेष्टं यातुमनुमत्य । सर्वे = सम्पूर्णाः । बन्धनस्थाः = कारागृहबद्धाः । मोच्यन्ताम् = बन्धनात् बहिर्गच्छेयुः ।

**कञ्चुकी**—यदाज्ञापयति देवः = महाराजस्य याज्ञा । (इति निष्क्रान्तः = निरगच्छत) ।

---

यह कुमार अपनी इतनी बड़ी वीरता से मेरे मन में कोई महान् आश्चर्य नहीं उत्पन्न कर रहा है क्योंकि इसके जन्मदाता आप स्वयं इतने बड़े अजेय वीर हैं । जैसे कि बड़वानल के जन्मदाता और्व ऋषि थे ।

**और्व ऋषि**—पुराणों में बड़वानल की उत्पत्ति और्व ऋषि से बताई गई है, जिसकी कथा इस प्रकार है :—राजा कृतवीर्य ने अपनी अत्यधिक सम्पत्ति अपने पुरोहित भृगु को दे दी । तत्पश्चात् राजा के वंशजों को यह कार्य बहुत बुरा लगा । उन्होंने सम्पूर्ण भृगुवंशियों को मार डाला, यहाँ तक कि गर्भस्थ बच्चे भी नहीं बचे । च्यवन की पत्नी अरुणी भी उस समय गर्भवती थी । डर के मारे गर्भस्थ बच्चे को अपनी जाँघों में छिपा लिया । इस प्रकार वह बच गया । जब वह बालक पैदा हुआ, तो उससे इतना बड़ा तेज निकला कि सबके सब कृतवीर्य के वंशज चौंधिया कर अन्धे हो गये । ऊरु से उत्पन्न होने के कारण ही बालक और्व अथवा ऊरुजन्मा कहलाया । जब अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व को जलाने की धमकी देने लगा, तो उसके पूर्वजों ने उसे शान्त किया और उस तेज को समुद्र में डाल देने के लिए कहा । जब तेज समुद्र में पड़ा तो घोड़ी के मुख जैसी उसकी आकृति हो गई । इसी से उसका नाम बडवानल पड़ा ।

**अलंकार**—काव्यलिंग अलंकार ।

**राजा**—मौद्गल्य ! यज्ञसेन के साले के साथ-साथ बन्दी मुक्त कर दिए जायँ ।

**कञ्चुकी**—जो आज्ञा । ( **जाता है** । )

**धारिणी**—जअसेणे, गच्छ । इरावदीपमुहाणं अन्तेवुराणं पुत्तस्स वुत्तन्तं णिवेदेहि । [ जयसेने, गच्छ । इरावतीप्रमुखेभ्योऽन्तःपुरेभ्यः पुत्रस्य वृत्तान्तं निवेदय । ]

( प्रतीहारी प्रस्थिता । )

**धारिणी**—एहि दाव । [ एहि तावत् । ]

**प्रतीहारी**—( प्रतिनिवृत्य । ) इअं म्हि । [ इयमस्मि । ]

**धारिणी**—( जनान्तिकम् ) जं मए असोअदोहलएणिओए मालविआए पइण्णादं, तं से अभिजणं च णिवेदिअ मह वअणेण इरावदि अणुणेहि । तुए अहं सच्चादो ण विब्भंसिदव्वे त्ति [ यन्मयाशोकदोहदनियोगे मालविकायै प्रतिज्ञातम्, तदस्या अभिजनं च निवेद्य मम वचनेनेरावतीमनुनय । त्वयाहं सत्यान्न विभ्रंशयितव्येति । ]

**प्रतीहारी**—जं देवी आणवेदि । ( इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य । ) भट्टिणि, पुत्तविजअणिमित्तेण परितोसेण अन्तेउराणं आहरणाणं मञ्जूसम्हि संवुत्ता । [ यद्देव्याज्ञापयति । भट्टिनि, पुत्रविजयनिमित्तेन परितोषेणान्तःपुराणामाभरणानां मञ्जूषास्मि संवृत्ता ।

---

**धारिणी**—जयसेने ! = पारिचारिके ! गच्छ = व्रज । इरावतीप्रमुखेभ्यः = इरावतीप्रभृतिभ्यः । अन्तःपुरेभ्यः = अन्तःपुरस्थेभ्यः । पुत्रस्य वृत्तान्तम् = यवनविजयरूपम् । निवेदय = कथय ।

( प्रतीहारी प्रस्थिता = गता । )

**धारिणी** —( एहि तावत् = आगच्छ तदा )

**प्रतीहारी**—( प्रतिनिवृत्य = पुनरागत्य ) ( इयमस्मि = एषास्मि । )

**धारिणी**—( जनान्तिकम् = शनैः शनैः ) यन्मया = यत् मया धारिण्या । अशोकदोहदनियोगे = तपनीयाशोकतरौ, दोहदाय = चरणप्रहाराय, नियोगे = आदेशकाले । मालविकायै = तस्यै परिचारिकायै । प्रतिज्ञातम् = मनोरथपूरणं प्रतिश्रुतम् । तत् = प्रतिज्ञातम् । अस्याः = मालविकायाः । अभिजनम् च = वंशं च । निवेद्य = कथयित्वा । मम वचनेन = मदीयादेशेन । इरावतीम् = कनिष्ठां राज्ञीम् । अनुनय = प्रसन्नां कुरु । सत्यात् = कृतात् प्रतिश्रुतात् । न विभ्रंशयितव्या = न मिथ्या करणीया ।

**प्रतीहारी**—यद्देवी आज्ञापयति = देव्या या आज्ञा । भट्टिनि ! = महाराज्ञि ! । पुत्र-

---

**धारिणी**—जयसेने ! जाओ, इरावती प्रभृति रानियों को पुत्र-विजय की सूचना दे दो ।

**( प्रतीहारी जाती है । )**

**धारिणी**—आओ तो ।

**प्रतीहारी**—**( लौटकर )** यह मैं उपस्थित हूँ ।

**धारिणी**—**( धीरे से )** अशोक दोहद के लिए भेजने के समय मालविका के साथ मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह बात तथा उसके वंशादि को बताकर इरावती को प्रसन्न करो । देखो, तुम मुझे सत्य से विचलित न करो ।

**प्रतीहारी**—जो आज्ञा । **( जाकर पुनः प्रवेश करके )** महारानी जी ! पुत्र-विजय की सूचना पाकर प्रदत्त आभूषणों से लदी हुई मैं अलंकार पेटिका हो गई हूँ ।

धारिणी—एदं किं अच्चरिअं । साहारणो क्खु ताणं मह अ अअं अब्भुदओ । [ एतत्किमाश्चर्यम् । साधारणः खलु तासां मम चायमभ्युदयः । ]

प्रतीहारी —( जनान्तिकम् । ) भट्टिणि, इरावती उण विण्णवेदि । सरिसं देवीए पहवन्तीए । तुह वअणं संकप्पिदं ण जुज्जदि अण्णहा कादुं त्ति । [ भट्टिनि, इरावती पुनर्विज्ञापयति । सदृशं देव्याः प्रभवन्त्याः । तव वचनं सकल्पितं न युज्यतेऽन्यथा-कर्तुमिति । ]

धारिणी—भअवदि, तुए अणुमदा इच्छामि अज्जसुमदिणा पढमसंकप्पिदं मालविअं अज्जउत्तस्स पडिवादेदुं । [ भगवति, त्वयानुगतेच्छाम्यार्यसुमतिना प्रथम-संकल्पितां मालविकामार्यपुत्राय प्रतिपादयितुम् । ]

परिव्राजिका—इदानीमपि त्वमेवास्याः प्रभवसि ।

---

विजयनिमित्तेन = कुमारविजयकारणेन । परितोषेण = सन्तोषेण । अन्तःपुराणाम् = अवरोध-जनानाम् । आभरणानाम् = आभूषणानाम् । मञ्जूषा = पेटिका । संवृत्तास्मि = संजातास्मि । यथा मञ्जूषा बहुविधाभरणानि धारयति तथैवाहमपि पुत्रविजयप्रसन्नैः राजावरोधैः दत्तानि बहूनि भूषणानि धारयामीति भावः ।

धारिणी—एतत् किमाश्चर्यम् = एतस्मिन् विषये किमपि नास्ति आश्चर्यम् । साधारणः= सर्वासां राजपत्नीनां समानः । खलु = निश्चये । तासाम् = राजपत्नीनाम् । मम च = मे च । अयम् अभ्युदयः = एषः पुत्रविजयोत्पन्ना वृद्धिः ।

प्रतीहारी—( शनैः शनैः ) भट्टिनि != राजमहिषि ! । इरावती = कनिष्ठा महिषी । पुनर्विज्ञापयति = भूयोऽपि कथयति । प्रभवन्त्याः = समर्थायाः देव्याः = राजमहिष्याः । सदृशम् = उचितम् । तव = भवत्याः । वचनम् = कथनम् । संकल्पितम् = मनोनीतम् (मालविकाया राज्ञे दानम् ) अन्यथाकर्तुम् = मिथ्याकर्तुम् । न युज्यते = नोपयोगि भवेत् ।

धारिणी — भगवति ! = श्रीमति ! । त्वया = भवत्या इरावत्या । अनुमता = अनुज्ञाता । इच्छामि = अभिलषामि । आर्यसुमतिना = मृतेन तदाख्येन तव भ्रात्रा । प्रथमसंकल्पिताम् = पूर्वमेव दातुमभिलषिताम् ( मालविकाम् ) । आर्यपुत्राय = राज्ञेऽग्निमित्राय । प्रतिपादयितुम्= समर्पयितुम् ।

परिव्राजिका—इदानीमपि = अधुनापि । त्वमेव = भवानेव । अस्याः = मालविकायाः । प्रभवसि = दातुमधिकारिणी असि ।

---

धारिणी—इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? यह अभ्युदय तो सबके लिये समान ही है ।

प्रतीहारी—( धीरे से ) देवि ! इरावती ने कहा है कि इस सम्पूर्ण पृथ्वी की समर्थस्वामिनी आपकी महत्ता है । प्रतिज्ञात कार्य में अन्यथा करना उचित नहीं ।

विशेष—इरावती के इस कथन में कुछ व्यंग्य अवश्य निहित है । यदि रानी, मालविका को सौत बनाना ही चाहती है, तो इस पर बेचारी इरावती कर ही क्या सकती है ? उसका आहत हृदय सचमुच शान्त नहीं हुआ है ।

धारिणी—भगवति ! यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आर्य सुमति के द्वारा संकल्पित मालविका का विवाह आर्यपुत्र के साथ सम्पन्न करा दूँ ।

परिव्राजिका—इस समय भी आप ही इसकी स्वामिनी हैं ।

**धारिणी**—( मालविकां हस्ते गृहीत्वा । ) इदं अज्जउत्तो पि अणिवेदणाणुरूवं पारितोसिअं पडिच्छदु त्ति । [ **इदमार्यपुत्रः प्रियनिवेदनानुरूपं पारितोषिकं प्रतीच्छत्विति ।**

( राजा व्रीडां नाटयति । )

**धारिणी**—( सस्मितम् ) किं अवधीरेदि अज्जउत्तो । [ किमवधीरयत्यार्यपुत्रः । ]

**विदूषकः**—भोदि, एसो लोअव्ववहारो । सव्वो णववरो लज्जादुरो होदि त्ति । [ **भवति, एष लोकव्यवहारः । सर्वो नरवरो लज्जातुरो भवतीति ।** ]

( राजा विदूषकमवेक्षते । )

**विदूषकः**—अहं देवीए एव्व किदप्पणअविसेसं दिण्णदेवीसद्दं मालविअं अत्तभवं पडिग्गहीदुं इच्छदि । [ **अथ देव्यैव कृतप्रणयविशेषां दत्तदेवीशब्दां मालविकामत्रभवान्प्रतिगृहीतुमिच्छति ।** ]

**धारिणी**—एदाए राअदारिआए अहिजणेण एव्व दिण्णो देवीसद्दो किं पुणरुत्तेण [ **एतस्या राजदारिकाया अभिजनेनैव दत्तो देवीशब्दः किं पुनरुक्तेन ।** ]

---

**धारिणी**—( मालविकाम् = कन्याम् । हस्ते गृहीत्वा = दातुं करे कृत्वा । ) इदम् = एतत् । आर्यपुत्रः = महाराजोऽग्निमित्रः । प्रियनिवेदनानुरूपम् = पुत्रविजयकथनानुसारम् । पारितोषिकम् = पुरस्कारम् । प्रतीच्छतु = स्वीकरोतु ।

( राजा व्रीडाम् = लज्जाम् । नाटयति = अभिनयति । )

**धारिणी**—( सस्मितम् = स्मितं कृत्वा ) किम् = कथम् । अवधीरयति = अवजानाति । आर्यपुत्रः ।

**विदूषकः**—भवति ! = श्रीमति ! । एषः = अयम् । लोकव्यवहारः = लोकाचारः । सर्वः = सम्पूर्णः । नववरः = नवीनो वरः । लज्जातुरः = व्रीडासम्पन्नः । भवति ।

( राजा = महाराजः । विदूषकम् = गौतमम् । अवेक्षते = पश्यति । )

**विदूषकः**—अथ = ततः । देव्या एव = धारिण्या एव । कृतप्रणयविशेषाम् = दत्तबहुस्नेहाम् । दत्तदेवीशब्दाम् = देवीशब्देनादृताम् । अत्रभवान् = मान्यो राजा । मालविकाम् प्रतिग्रहीतुम् = अङ्गीकर्तुम् । इच्छति = अभिलषति ।

**धारिणी**—एतस्याः = अस्याः । राजदारिकायाः = राजकुमार्याः । अभिजनेनैव =

---

**धारिणी—( मालविका का हाथ पकड़ कर )** आर्यपुत्र ने मुझे प्रिय संवाद सुनाया, उसके पुरस्कार स्वरूप इसे स्वीकार करें। **( राजा लज्जित होते हैं। )**

**धारिणी—( मन्द मुस्कान सहित। )** क्या आर्यपुत्र इसे अस्वीकार करते हैं।

**विदूषक**—देवि ! यह तो लोकाचार ही है। सभी नए वर लज्जा किया करते हैं।

**( राजा विदूषक की ओर देखते हैं। )**

**विदूषक**—देवि ! राजा की इच्छा है कि आप मालविका को अपने समान बनाकर देवी पद से विभूषित कर दें, तब वह उसे स्वीकार करें।

**धारिणी**—इस राजकुमारी को इसके उच्च कुल ने ही देवी शब्द प्रदान कर दिया है। अतः उसे पुनः दुहराने से क्या लाभ ?

परिव्राजिका—मा मैवम्

**अप्याकरसमुत्पन्नो रत्नजातिपुरस्कृतः ।**
**जातरूपेण कल्याणि मणिः संयोगमर्हति ।। १८ ।।**

धारिणी—( स्मृत्वा । ) मरिसेदु भअवदी । अब्भुदअकहाए उइदं ण लक्खिदं । जअसेणे, गच्छ दाव । कोसेअपत्तोण्णजुअलं उवणेहि । [ **मर्षयतु भगवती । अभ्युदय-कथयोचितं न लक्षितम् । जयसेने, गच्छ तावत् । कौशेयपत्रोर्णयुगलमुपनय ।** ]

प्रतीहारी—जं देवी आणवेदि । ( इति निष्क्रम्य पत्रोर्णं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य । ) देवि, एदम् । [ **यद्देव्याज्ञापयति । देवि एतत् ।** ]

धारिणी—( मालविकामवगुण्ठनवतीं कृत्वा । ) अज्जउत्तो दाणि इमं पडिच्छदु । [ **आर्यपुत्र इदानीमिमां प्रतीच्छतु ।** ]

---

उच्चकुलेनैव । दत्तः = प्राप्तः । देवीशब्दः = देवीपदव्यवहार्यता । किम् = कथम् । पुनरुक्तेन = मदीयकथनेन ।

**परिव्राजिका**—मा मा एवम् = इत्थं नहि नहि ।

**अन्वयः**—( हे ) कल्याणि ! आकरसमुत्पन्नो अपि ( स मणिः ) रत्नजातिपुरस्कृतः जातरूपेण संयोगं अर्हति ॥ १८ ॥

**अप्याकरेति** । हे कल्याणि ! = भो भद्रे ! मंगलमयि ! । आकरसमुत्पन्ना = खनि-समुद्धृतोऽपि ( समणिः ) रत्नजातौ = रत्नसामान्ये । पुरस्कृतः = श्रेष्ठभावेन परिगणितोऽपि । जातरूपेण = सुवर्णेन । संयोगम् = सहवासम् । अर्हति = अधिकरोति ॥ १८ ॥

**समासः**—आकरसमुत्पन्नः = आकरात् समुत्पन्नः आकरसमुत्पन्नः । रत्नजातिः = रत्नानां जातिः रत्नजातिः ।

**अलंकारः**—अप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः । **छन्दः**—पथ्यावक्त्रम् ।

**धारिणी**—( स्मृत्वा = स्मरणं कृत्वा । ) मर्षयतु भगवति ! = देवि ! क्षमां करोतु । अभ्युदयकथया = पुत्रविजयवार्त्तया । उचितं न लक्षितम् = न चेतितम् । जयसेने ! गच्छ तावत् । कौशेयपत्रोर्णयुगलम् = धौतकौशेयस्वरूप परिधानीयमुत्तरीयञ्च ।

**प्रतीहारी**—यद्देवी आज्ञापयति = देव्या या आज्ञा । ( इति निर्गत्य कौशेयवस्त्रमादाय भूय आगत्य ) देवि ! एतत् = वस्त्रयुगलम् ।

**धारिणी**—( मालविकाम् = राजकुमारीम् । अवगुण्ठनवतीं कृत्वा = प्रदेयकन्यावद्भास-मानां कृत्वा ) आर्यपुत्र ! = महाराज ! इदानीम् = अधुना । इमाम् = मालविकाम् । प्रतीच्छतु = अङ्गीकरोतु ।

---

**परिव्राजिका**—देवि ! आकर से उत्पन्न तथा श्रेष्ठ रत्न जाति में परिगणित होने पर भी किसी भी रत्न को स्वर्णसंयोग की आवश्यकता पड़ती ही है ।

**अलंकार**—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार ।

**धारिणी**—( **याद करके** ) आप क्षमा करें । अभ्युदय-कथा में लगी रही अतएव वस्त्र की ओर ध्यान नहीं गया । जयसेने ! शीघ्र जाओ और रेशमी जोड़े लाओ ।

**प्रतीहारी**—जो आज्ञा । **(जाती है, रेशमी जोड़े लेकर पुनः प्रवेश करके)** देवी ले आई ।

**धारिणी**—( **मालविका को अवगुण्ठनवती बनाकर** ) आर्यपुत्र ! अब इसे स्वीकार करें ।

**राजा**—त्वच्छासनात्प्रवृत्ता एव वयम् । ( अपवार्य । ) हन्त, प्रतिगृहीता ।

**विदूषकः**—अहो, देवीए अणुऊलदा । [ अहो, देव्या अनुकूलता । ]

( देवी परिजनमवलोकयति । )

**प्रतीहारी**—( मालविकामुपेत्य । ) जेदु भट्टिणी । [ जयतु भट्टिनी । ]

( देवी परिव्राजिकां निरीक्षते । )

**परिव्राजिका**—नैतच्चित्रं त्वयि ।

**प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः ।**
**अन्यसरितामपि जलं समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥ १९ ॥**

---

**राजा**—त्वच्छासनात् = त्वदादेशात् । प्रवृत्ताः एव = तत्पराः एव । वयम् । (अपवार्य= शनैः शनैः ) हन्त प्रतिगृहीता = स्वीकृता ।

**विदूषकः**—अहो = आश्चर्यम् ! देव्याः = धारिण्याः । अनुकूलता = स्वामिनि महाराजे दत्तानुरागा ।

( देवी = धारिणी । परिजनम् = अनुचरवर्गम् । अवलोकयति = पश्यति । )

**प्रतीहारी**—( मालविकामुपेत्य = मालविकासमीपं गत्वा ) । जयतु भट्टिनी = स्वामिन्या विजयो भवतु ।

( देवी = धारिणी । परिव्राजिकाम् = कौशिकीम् । निरीक्षते = अवलोकयति । )

**प्रतिहारी**—न एतत् चित्रं त्वयि = इदं कार्यम् । त्वयि न चित्रम्=भवत्यै न आश्चर्य-जनकमस्ति ।

**अन्वयः**—भर्तृवत्सलाः साध्व्यः प्रतिपक्षेण अपि पतिं सेवन्ते । समुद्रगा अन्यसरितां जलं हि अब्धिं प्रापयन्ति ॥ १९ ॥

**प्रतिपक्षेति ।** भर्तृवत्सलाः = स्वकीयपत्यौ अनुरक्ताः । साध्व्यः = साधुवृत्ताः स्त्रियः । प्रतिपक्षेण = विपक्षेण ( शत्रुभूतया सपत्न्या ) अपि पतिम् = भर्तारम् । सेवन्ते = प्रसन्नं कर्तुं यतन्ते (तथा हि) समुद्रगाः = समुद्रपर्यन्तगामिन्यो गङ्गादयो महानद्यः । अन्यसरिताम्= अपरासां लघुनदीनाम् । जलम् = पयः । अब्धिम् = समुद्रम् । प्रापयन्ति = गमयन्ति ॥१९॥

**समासः**—अन्यसरिताम् = अन्याश्च ताः सरितः तासाम् अन्यसरिताम् ।

**अलंकारः**—अर्थान्तरन्यासः समासोक्तिः तयोः सङ्करः । **छन्दः**—आर्या ।

---

**राजा**—तुम्हारे आदेश में हम सदा तत्पर हैं । ( **धीरे से** ) स्वीकार किया ।

**विदूषक**—अहा ! अनुकूल देवी धारिणी धन्य है ।

**( देवी परिजनों की ओर दृष्टिपात करती हैं । )**

**प्रतीहारी**—( **मालविका के समीप जाकर** ) जय हो, महारानी की जय हो ।

**( देवी परिव्राजिका की ओर देखती हैं । )**

**परिव्राजिका**—देवि ! आपके लिए यह कार्य आश्चर्यजनक नहीं है । साध्वी ललनाएँ अपनी सौत के द्वारा भी पति की प्रसन्नता सम्पादन करती ही हैं । महानदियाँ दूसरी नदियों का जल भी समुद्र के अङ्क तक पहुँचाती हैं ॥ १९ ॥

**अलंकार**—अर्थान्तरन्यास और समासोक्ति के योग से संकर अलंकार ।

( प्रविश्य । )

**निपुणिका**—जेदु भट्टा । इरावदी विण्णावेदि । जं उवआरातिक्कमेण तदा भट्टिणी अवराद्धा, तं सअं एव्व भत्तुणो अणुऊलं णाम मए आअरिदं । सपदं पुण्णमणोरहेण भत्तुणा पसादमेत्तेण संभावइदव्वेत्ति । [ जयतु भर्ता इरावती विज्ञापयति । यदुपचारातिक्रमेण तदा भर्त्रे अपराद्धा, तत्स्वयमेव भर्तुरनुकूलं नाम मयाचरितम् । सांप्रतं पूर्णमनोरथेन भर्त्रा प्रसादमात्रेण संभावयितव्येति । ]

**देवी**—णिउणिए, अवस्सं से सेविदं अज्जउत्तो-जाणिस्सदि । [ निपुणिके, अवश्यमस्याः सेवितमार्यपुत्रो ज्ञास्यति । ]

**निपुणिका**—अणुग्गहीदम्हि । [ अनुगृहीतास्मि । ]

**परिव्राजिका**—देव, अनुना युक्तसम्बन्धेन चरितार्थं माधवसेनं सभाजयितुं गच्छामः ।

**देवी**—भअवदीए ण जुत्तं अम्हे परिच्चइदुं । [ भगवत्या न युक्तमस्मान् परित्यक्तुम् । ]

---

**निपुणिका**—( प्रवेशं कृत्वा ) जयतु भर्त्ता = स्वामिनो विजयो भवतु । इरावती विज्ञापयति = कथयति । उपचारातिक्रमेण = शिष्टाचारलंघनेन । अपराद्धा = कृतापराधाभर्तुरनुकूलम् = स्वामिप्रियम् । नाम मयाचरितम्=मयाकृतम् । साम्प्रतं पूर्णमनोरथेन भर्त्रा अधुना सफलेच्छुना स्वामिना । प्रसादमात्रेण = अनुग्रहेण केवलेन । संभावयितव्या ।

**देवी**—निपुणिके ! अवश्यम् अस्याः = इरावत्याः । सेवितम् = अर्चितम् । आर्यपुत्रः= महाराजः । ज्ञास्यति = स्मरिष्यति ।

**निपुणिका**—अनुगृहीतास्मि = अनुकम्पितास्मि ।

**परिव्राजिका**—देव != महाराज ! । अमुना युक्तसम्बन्धेन=शीघ्रनिर्वृत्तेन मालविकायाः परिणयाज्ञातेन । समुचितराज्यलाभेन । चरितार्थम् = कृतकृत्यम् । सभाजयितुम्=प्रसादयितुम् । गच्छामः = व्रजामः ।

**देवी**—भगवत्या = भवत्या । न युक्तम् = नोचितम् । अस्मान् = अस्मद्विधान् जनान् । परित्यक्तुम्=विहातुम् ।

---

**निपुणिका**—( **प्रवेश करके** ) इरावती ने कहा है कि मैंने शिष्टाचार का उल्लंघन करके आर्यपुत्र के साथ अपराध किया था, वह उनके अनुकूल ही हुआ । अतः अब हमारे ऊपर प्रसन्नता का ही व्यवहार करें ।

**देवी**—निपुणिके ! आर्यपुत्र उसकी सेवा के लिए अवश्य कृतज्ञ रहेंगे ।

**निपुणिका**—बड़ी कृपा ( मैं अनुगृहीत हूँ । )

**परिव्राजिका**—महाराज ! इस समुचित सम्बन्ध से कृतकृत्य माधवसेन को बधाई देने जा रही हूँ ।

**देवी**—आपके लिए यह उचित नहीं है कि आप हमारा परित्याग करें ।

**राजा**—भगवति, मदीयेष्वेव लेखेषु तत्रभवतस्त्वामुद्दिश्य सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामः ।

**परिव्राजिका**—युवयोः स्नेहात्परवानयं जनः ।

**देवी**—अज्जउत्त, किं ते भूओ वि पिअं उवहरामि । [ आर्यपुत्र, किं ते भूयोऽपि प्रियमुपहरामि । ]

**राजा**—**त्वं मे प्रसादसुमुखी भव देवि नित्य-**
**मेतावदेव हृदये प्रतिपालनीयम् ।**
तथापीदमस्तु ( भरतवाक्यम् । )

---

**राजा**—भगवति=स्वामिनि ! मदीयेषु एव लेखेषु=मया लेखितेषु पत्रेषु । त्वामुद्दिश्य=तव सन्देशोऽयमिति सूचयित्वा । सभाजनाक्षराणि = अभिनन्दनोपयुक्तान् शब्दान् । पातयिष्यामः=लेखयिष्यामः । माधवसेनसमीपे मया प्रेष्यमाणे पत्रे आर्यकौशिकी "इदं सन्दिशति" इति पृथक् प्रकृत्य त्वयाऽभिमतानि सभाजनोपयुक्तानि शुभाक्षराणि लेखयिष्यामि, इत्याशयः ।

**परिव्राजिका**—युवयोः = धारिण्यास्तव च । स्नेहात्=अनुग्रहात् । परवान् = परतन्त्रोऽहम् ।

**देवी**—आर्यपुत्र ! = महाराज ! किम्, ते=तव । भूयोऽपि=पुनरपि । मालविकादानेन एकस्य प्रियस्य कृतत्वाद् भूय इत्युक्तम् । प्रियम्=अन्यमुपकारकार्यम् । उपहरामि = प्रतिपादयामि ।

**राजा**—

**अन्वयः**—( हे ) देवि ! त्वं मे नित्यं प्रसादसुमुखी भव, एतावत् एव हृदये प्रतिपालनीयम् प्रजानाम् इति विगतप्रभृति आशास्थम् अग्निमित्रे गोप्तरि न खलु सम्पत्स्यते इति न ॥ २० ॥

**त्वमिति** । हे देवि ! त्वम् = भवती । मे = मम । नित्यम्=सर्वदा । प्रसादसुमुखी = प्रसन्नतया शोभनानना । भव=भूयाः । एतावद् एव=इत्येव । हृदये=मनसि । प्रतिपालनीयम्=अपेक्षणीयम् । त्वं मयि सदा प्रसन्ना भव, एतावन्मात्रं प्रियमपेक्षे नातः परं किमपि कामय इति भावः । अतः परं भरतवाक्यमिति—प्रजानाम्=जनानाम् । इति विगमप्रभृति = ईतयः = अतिवृष्ट्यादयः षट् प्रजोपद्रवास्तेषां विगमः अभावस्तत् प्रभृति

---

**राजा**—भगवति ! मैं अपने पत्र में आपकी ओर से आनन्ददायक शब्दों को लिखवा दूँगा।

**परिव्राजिका**—आप दोनों के स्नेह के कारण मैं पराधीन हूँ ।

**देवी**—आर्यपुत्र का और क्या प्रिय करूँ ?

**राजा**—मेरे लिए यही प्रिय है कि आप प्रसन्न तथा अनुकूल रहें। इतनी कामना मेरे हृदय में है।

( भरत-वाक्य )

आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां
संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ॥ २० ॥
( इति निष्क्रान्ताः सर्वे । )

इति श्रीकालिदासस्य कृतौ मालविकाग्निमित्रे पञ्चमोऽङ्कः ।

---

तदादि । आशास्यम् = कास्यम् । गोप्तरि = रक्षके । अग्निमित्रे = मयि महाराजे । न संपत्स्यते इति न = अवश्यं सेत्स्यतीति भावः ॥ २० ॥

**समासः**—प्रसादसुमुखी = प्रसादेन सुष्ठु मुखं यस्याः सा प्रसादसुमुखी । ईतिविगमप्रभृति = ईतीनां विगमः प्रभृति यत्र तादृशम् ईतिविगमप्रभृति ।

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे = निर्गताः सम्पूर्णाः नटाः । )

---

प्रजाओं की कोई इच्छा पूर्ण नहीं होगी, ऐसी बात तो अग्निमित्र के राजत्वकाल में होगी ही नहीं अर्थात् सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण होंगी ॥ २० ॥

**( सभी चले जाते हैं । )**

पञ्चम अंक समाप्त ।

# परिशिष्टम्

## ( १ )

## "मालविकाग्निमित्र" नाटक में प्रयुक्त सूक्तियों की सूची

( १ ) अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् ।
नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ ( १–८ )

( २ ) अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः ।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ॥ ( १–१३ )

( ३ ) अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति ।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ॥ ( ३–१५ )

( ४ ) अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्यः । ( तृतीय अंक )

( ५ ) अन्योन्यकलहितयोर्मत्तहस्तिनोरेकतरस्मिन्ननिर्जिते–
कुतः उपशमः । ( प्रथम अंक )

( ६ ) अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥ ( १–९ )

( ७ ) अहो कुम्भीलकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका । ( चतुर्थ अंक )

( ८ ) अहो अविश्वसनीयाः पुरुषाः । ( तृतीय अंक )

( ९ ) अहो दुरासदो राजमहिमा । ( प्रथम अंक )

( १० ) अहो परिभवोपहारिणो विनिपाताः । ( पंचम अंक )

( ११ ) अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्यति । ( द्वितीय अंक )

( १२ ) आगामि सुखं वा दुःखं वा हृदयं समर्थीकरोति । ( पंचम अंक )

( १३ ) उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः ।
श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु ॥ ( २–९ )

( १४ ) कर्मगृहीतेन कुम्भीलकेन सन्धिच्छेदनं शिक्षि–
तोऽस्मीति वक्तव्यं भवति । ( तृतीय अंक )

( १५ ) कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता । ( प्रथम अंक )

( १६ ) कार्त्स्न्येन निवर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम् ।
न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रपातीनि विलोचनानि ॥ ( ४–८ )

( १७ ) किं नु खलु दर्दुरा व्याहरन्तीति देवः पृथिवीं विस्मरति । ( चतुर्थ अंक )

( १८ ) कुतूहलवानपि निसर्गशालीनः स्त्रीजनः । ( चतुर्थ अंक )

( १९ ) चन्दनं खलु मया पादुका परिभोगेण दूषितम् । ( पंचम अंक )

( २० ) आम्राङ्कुरं विचिन्वत्योरावयोः पिपीलिकाभिर्दष्टम् । ( तृतीय अंक )

( २१ ) तनुभृतामीदृशी लोकयात्रा । ( पंचम अंक )

( २२ ) न शोच्यस्तत्र भवान् सफलीकृतभर्तृपिण्डः । ( पंचम अंक )
( २३ ) नन्वाकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति । ( प्रथम अंक )
( २४ ) न शोभते प्रणयिजने निरपेक्षता । ( तृतीय अंक )
( २५ ) न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः । ( प्रथम अंक )
( २६ ) नहि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।
कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ॥ ( ४-६ )
( २७ ) निसर्गनिपुणाः स्त्रियः । ( तृतीय अंक )
( २८ ) पण्डितपरितोषप्रत्यया ननु मूढा जातिः । ( द्वितीय अंक )
( २९ ) पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा । ( प्रथम अंक )
( ३० ) पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ ( १-६ )
( ३१ ) पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ ( १-२ )
( ३२ ) प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः ।
अन्यसरितां शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥ ( ५-१९ )
( ३३ ) प्रायः समानविद्याः परस्परयशः पुरोभागाः । ( प्रथम अंक )
( ३४ ) बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतको विडालिकालोके पतितः । ( चतुर्थ अंक )
( ३५ ) भ्रमरसंबाध इति वसन्तावतारसर्वस्वभूतः किं नाम्रप्रसवोऽव-
तंसनीयः । ( तृतीय अंक )
( ३६ ) मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनम् । ( तृतीय अंक )
( ३७ ) मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ॥ ( २-७ )
( ३८ ) मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे-
जलपानमिष्टम् । ( द्वितीय अंक )
( ३९ ) रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतारः । ( चतुर्थ अंक )
( ४० ) लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ ( १-१७ )
( ४१ ) विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति । ( प्रथम अंक )
( ४२ ) श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥ ( १-१६ )
( ४३ ) सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय । ( प्रथम अंक )
( ४४ ) सर्वोऽपि नववरो लज्जातुरो भवति । ( पंचम अंक )
( ४५ ) साधुत्वं दरिद्र आतुर इव वैद्येनोपमीयमानमौषधमिच्छसि ( द्वितीय अंक )
( ४६ ) सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशदर्शने न निपुणो भवति । ( प्रथम अंक )
( ४७ ) स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः । ( ३-१४ )

## ( २ )
## "नाट्य-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द"

**नान्दी—**

नन्द्यन्ते स्तूयन्ते देवता अस्यामिति नान्दी। जिसमें देवताओं का अभिनन्दन किया जाय, उसे नान्दी कहते हैं। नान्दी की परिभाषा इस प्रकार है :—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥

अर्थात् ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आशीर्वादात्मक वाक्यों से युक्त नाटक के आरम्भ में की गई देव ब्राह्मण नृपादि की मांगलिक प्रार्थना को नान्दी कहते हैं।

काव्यप्रदीप में लिखा है :—

नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः।
यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी तस्मादियं सा कथितेह नान्दी॥

भरत ने कहा है :—

देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति कीर्तिता॥

**सूत्रधार—**

सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः अर्थात् नाटक का वह प्रधान नट जो नाटकीय कथावस्तु के भिन्न भिन्न उपकरणों के सूत्र को सँभाले रहता है उसे सूत्रधार कहते हैं।

परिभाषा :—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

अर्थात् नाट्य के भिन्न भिन्न उपकरणों को सूत्र कहते हैं और जो नट उन्हें सँभालता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

सूत्रधार की अन्य सरल एवं संक्षिप्त परिभाषा:—

वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समासाद्य सूत्रधारः स उच्यते॥

अर्थात् वह प्रधान नट विशेष, जो सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर वर्णनीय कथासूत्र की सूचना देता है, सूत्रधार कहा जाता है। सूत्रधार रंगमंच व्यवस्थापक होता है।

**प्रस्तावना—**

प्रस्तूयते = उपस्थाप्यते नाटकस्य कथावस्तु यत्र सा प्रस्तावना। अर्थात् जिसमें नाटक की कथावस्तु को प्रस्तुत किया जाय, उसे प्रस्तावना कहते हैं। जैसे कहा गया है—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा।
सूत्रधारेण सहिता संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥

अर्थात् नाटक का वह भाग, जिसमें नटी, विदूषक या पारिपार्श्वक अपने प्रस्तुत कार्य के सम्बन्ध में सुन्दर एवं रोचक शब्दों में सूत्रधार के साथ वार्तालाप करते हैं, उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं।

**नेपथ्य—**

कुशीलव कुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते।

अर्थात् रंगमंच के समीप के उस स्थान को जहाँ पर नट लोग अपनी वेशभूषा धारण करते हैं, नेपथ्य कहते हैं।

**विष्कम्भक—**

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्य प्रकल्पितः॥

अर्थात् विष्कम्भक नाटक में किसी भी अंक के आदि में आने वाला वह भाग है, जिसमें मध्यम श्रेणी के एक या दो पात्रों द्वारा पारस्परिक वार्तालाप में भूतकाल या भविष्य की नाटकीय कथावस्तु से सम्बद्ध घटनाओं को सूचित किया जाता है।

यह दो प्रकार का होता है :—

( १ ) शुद्ध विष्कम्भक। ( २ ) संकीर्ण या मिश्र विष्कम्भक। शुद्ध विष्कम्भक वह होता है, जिसमें दोनों पात्र मध्यम श्रेणी के हों। शुद्ध विष्कम्भक में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होता है।

मिश्र या संकीर्ण विष्कम्भक वह होता है, जिसमें एक पात्र मध्यम श्रेणी का हो और एक निम्न श्रेणी का। मिश्र विष्कम्भक में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग होता है।

**प्रवेशक—**

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

अथवा

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशाऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः॥

प्रवेशक भी उसी प्रकार ( विष्कम्भक के समान ) अतीत और भावी कथांशो का सूचक है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं होती ( इसकी भाषा सदा प्राकृत होगी तथा वह प्राकृत भी शिष्ट ( शौरसेनी ) प्राकृत न होकर मागधी शकारी आदि अशिष्ट प्राकृत होगी ) तथा इसमें नीच पात्रों का प्रयोग होता है। प्रवेशक की योजना सदा दो अंकों के बीच ही की जाती है तथा यह भी शेष अर्थों ( कथांशों ) का सूचक है।

### विष्कम्भक तथा प्रवेशक का भेद

| विष्कम्भक | प्रवेशक |
| --- | --- |
| १—यह अतीत और भावी कथांशों का सूचक है। | १—यह भी अतीत और भावी कथांशों का सूचक है। |
| २—इसमें एक मध्यम पात्र या दो मध्यम पात्रों का प्रयोग होता है। | २—इसके सम्पूर्ण पात्र ( एक या दो ) नीच कोटि के होते हैं। |
| ३—इसकी भाषा संस्कृत व शौरसेनी प्राकृत होगी। | ३—इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होगी। प्राकृत भी निम्न कोटि की होगी। यथा—मागधी, शकारी, आभीरी, चाण्डाली, पैशाची आदि। |
| ४—इसका प्रयोग नाटक ( रूपक ) के प्रथम अंक के पहले भी हो सकता है ( जैसे मालतीमाधव नाटक में वृद्धा तापसी की उक्ति वाला विष्कम्भक ) दो अंकों के बीच में भी ( जैसे शाकुन्तल के चतुर्थ अंक के पहले )। | ४—इसका प्रयोग सदा दो अंकों के बीच में होगा। रूपक के आदि में इसका प्रयोग कभी भी नहीं होगा। इसका प्रथम अंक में कभी भी प्रयोग नहीं होगा। ( अंकद्वयस्यान्त इति प्रथमांके प्रतिषेधः इति )। |
| ५—उदाहरण—जैसे शाकुन्तल का चतुर्थ अंक का विष्कम्भक। | ५—उदाहरण—जैसे शाकुन्तल के षष्ठ अंक के पहले का प्रवेशक। |

इसके अतिरिक्त इतना और भी ज्ञातव्य है कि नाटकीय कथावस्तु के साधारणतया दो भेद किए गए हैं। १–दृश्य २-सूच्य।

जो भाग अत्यन्त सरस और रोचक होता है, वही रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है, उसे दृश्य कहते हैं और जो भाग कुछ नीरस और अरुचिकर होता है, परन्तु नाटकीय कथावस्तु के पौर्वापर्य की शृंखला को समझने के लिए जिसका जानना अत्यावश्यक है, उसका रंगमंच पर प्रदर्शन नहीं किया जाता, प्रत्युत् विभिन्न प्रकार से उसकी सूचना मात्र दी जाती है।

सूचना देने के लिए संस्कृत नाटय शास्त्रकारों ने पाँच प्रकार माने हैं :—

१—विष्कम्भक २—चूलिका ३—अङ्कास्य ४—अङ्कावतार ५—प्रवेशक।

**प्रकाशम्—**

अभिनय की आवश्यकता के अनुसार नाटकीय कथावस्तु को तीन भागों में बाँटा गया है :—

१—सर्वश्राव्य २—नियत श्राव्य ३—अश्राव्य।

इसमें प्रथम अर्थात् सर्वश्राव्य नाटकीय कथावस्तु का वह भाग है, जिसका रंगमंच के सभी पात्रों को सुनाना अभीष्ट होता है। इसी को प्रदर्शित करने के लिए ''प्रकाशम्'' यह शब्द प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है, ''प्रकट रूप में''।

**जनान्तिकम्—**

यह एक नाटकीय पारिभाषिक शब्द है, जो कि रंगमंच पर प्रदर्शित किए जाने

वाले "नियतश्राव्य" कथावस्तु के लिए अर्थात् कथावस्तु के उस भाग के लिए जो रंगमंच पर सबको नहीं प्रत्युत् कुछ नियत व्यक्तियों को ही सुनाया जाता है प्रयुक्त होता है, सारांश यह कि "जनान्तिकम्" इस नाट्योक्ति का प्रयोग वहाँ होता है, जहाँ पर कोई पात्र रंगमंच पर स्थित अन्य पात्रों से किसी बात को छिपाने के लिए एक ओर को होकर शनैः शनैः किसी पात्र से बात करता है। इसकी परिभाषा दशरूपककार ने इस प्रकार दी है :—

त्रिपताकाकरेणाऽन्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् जनान्ते तज्जनान्तिकम्॥

अर्थात् रंगमंच पर किसी कथा के चालू होने पर जब कोई पात्र तीन अंगुली उठाए हुए अपने हाथ से दूसरों की दृष्टि को अपनी ओर से बचाकर किसी पात्र के समीप में होकर सम्भाषण करता है, तो उसे 'जनान्तिकम्' कहते हैं।

**स्वगतम्—**

इसका प्रयोग कथावस्तु के उस भाग के लिए होता है, जो किसी भी पात्र को नहीं सुनाया जाता। इसके द्वारा स्थिति-विशेष में मानसिक भावों की अभिव्यक्ति होती है। इससे पात्र-विशेष के मानसिक भावों की झलक मिलती है, जिससे उस पात्र के चरित्र की अभिव्यक्ति होती है। कभी कभी स्वगत सम्भाषण दर्शकों के लिए नाटकीय कथावस्तु के पौर्वापर्य की शृंखला बाँधने में भी सहायक सिद्ध होता है। "स्वगत" मन ही मन बोलना कहलाता है।

**अपवारितम्—**

इसकी परिभाषा साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने इस प्रकार की है :—

..........................तद्भवेदपवारितम्।
रहस्यं तु यद्वदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते॥

अर्थात् अन्य व्यक्तियों की ओर मुँह फेर कर किसी पात्र-विशेष के प्रति जो किसी गुप्त रहस्य का प्रकाशन किया जाता है, उसे अपवारित कहते हैं।

**कञ्चुकी—**

यह एक नाटकीय पारिभाषिक शब्द है, जिसकी परिभाषा नाट्यशास्त्रप्रणेता भरत मुनिने निम्न प्रकार से दी है:—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥

अर्थात् कञ्चुकी उस कार्य-कुशल व्यक्ति को कहते हैं, जो जाति से सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मण हो और राजा के अन्तःपुर में नियुक्त प्रबन्धक कञ्चुक पहना करता था। इस लिए उसे कञ्चुकी कहा करते थे।

**भरत-वाक्य—**

यह शब्द संस्कृत नाट्य साहित्य में नाटक के अन्त में आने वाले उस पद्य के लिए प्रयुक्त होता है, जिसमें राष्ट्र की समृद्धि के लिए नाटक के किसी प्रधान पात्र के द्वारा

प्रार्थना की जाती है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए ही इस अन्तिम श्लोक को भरतवाक्य कहा जाता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार "भरत" अर्थात् नाटक के किसी नट की उक्ति होने के कारण ही इसे "भरत-वाक्य" कहा जाता है। इस पद में कभी कभी कवि के जीवन के सम्बन्ध में बहुत महत्त्वपूर्ण संकेत भी मिल जाते हैं, यह नाटक की समाप्ति पर शुभ कामना है।

**बीजम्—**

अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति। फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजमित्यभिधीयते॥

अर्थात् रूपक के आरम्भ में अल्प रूप में संकेतित वह तत्त्व जो रूपक के फल का कारण है तथा इतिवृत्त में अनेक रूप में पल्लवित होता है, बीज कहलाता है। अल्प रूप में निर्दिष्ट हेतु जो वृत्त के कार्य ( फल ) का साधक है तथा वृक्ष के बीज के समान पल्लवित होकर अनेकशाख वृक्ष की भाँति वृक्ष के रूप में विवृद्ध होता है, वह पारिभाषिक रूप में बीज कहलाता है।

**विन्दुः—**

"अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेद कारणम्"

अर्थात् जहाँ किसी दूसरी कथा से विच्छिन्न हो जाने पर इतिवृत्त को जोड़ने और आगे बढ़ाने के लिए जो कारण होता है, वह विन्दु कहलाता है। यह अच्छेद कारण विन्दु वृत्त में आगे जाकर ठीक वैसे ही प्रसारित होता है, जैसे तेल की बूँद पानी में फैल जाती है। इसीलिए इसे विन्दु कहते हैं।

प्रश्न यह होता है कि नाटकीय कथावस्तु में विन्दु एक ही होता है या अनेक? विन्दु की परिभाषा के अनुसार विन्दु जहाँ कथांश, एक प्रयोजनसिद्धि के पूरे होने के कारण टूट जाता है, वहाँ उसे जोड़कर आगे बढ़ता है। इस तरह तो विन्दु अनेक हो सकते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि किसी नाटक में विन्दु अनेक हो सकते हैं।

**नायकः—**

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता॥

अर्थात् नायक, त्यागी, यशस्वी, उच्चकुल में उत्पन्न, सुन्दर शोभासम्पन्न सुन्दर स्वरूप वाला, यौवनावस्था से सम्पन्न, उत्साहपूर्ण, चतुर, प्रजाओं में अनुरागपूर्ण, तेजस्वी, वाक्चतुर तथा शीलवान् होता है।

**विदूषकः—**

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः॥

अर्थात् विदूषक कुसुम, वसन्त आदि नाम वाला होता है। अपने कर्म, शरीर, भाषा आदि के द्वारा हास्योत्पादक होता है। कलह प्रेमी होता है तथा स्वकर्मज्ञ अर्थात् भोजन आदि का ज्ञाता होता है।

( ३ )

## प्रस्तुत नाटक में आए हुए छन्द

'मालविकाग्निमित्र' नाटक में आए हुए छन्दों की परिभाषाएँ पृथक् पृथक् दी जाती हैं।

**१. अनुष्टप्—**

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

अर्थात् अनुष्टुप् या श्लोक छन्द में प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं जिनमें छठाँ अक्षर सर्वत्र गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। दूसरे और चौथे चरण में सातवाँ अक्षर ह्रस्व तथा अन्य दो पादों में अर्थात् प्रथम तथा तृतीय चरण में सातवाँ अक्षर दीर्घ होता है। यथा —

उभावप्यभिन्याचार्यौ परस्परजयोद्यतौ।
त्वां द्रष्टुमिच्छतः साक्षाद् भावाविव शरीरिणौ॥ (१-१०)

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं और प्रत्येक चरण का पंचम अक्षर लघु तथा छठाँ गुरु है। दूसरे और चौथे चरण का सप्तम अक्षर लघु है तथा प्रथम और तृतीय चरण का सप्तम अक्षर गुरु है। लिखा है:—

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्॥

**२. पथ्यावक्त्र—**

यह एक अनुष्टुप् जाति का छन्द है। इसमें यही विशेषता है कि इसके "युजोः" समपादों अर्थात् द्वितीय चतुर्थ चरणों में चतुर्थ अक्षर के बाद जगण ( । ऽ । ) होता है। यथा—

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दृष्टमात्राणां आयुषः प्रतिपत्तयः॥ (४-४)

**३. इन्द्रवज्रा—**

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

अर्थात् इन्द्रवज्रा छन्दके प्रत्येक चरण में वर्णों का क्रम दो तगण एक जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं।

**४. उपेन्द्रवज्रा—**

"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ"

अर्थात् उपेन्द्रवज्रा में जगण तगण जगण और दो गुरु होते हैं। इन दोनों के मेल से "उपजाति" छन्द बन जाता है। यथा—

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषरूपा।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥ (१-१६)

५. औपच्छन्दसिक—

"पर्यन्ते यौं तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् ।"

औपच्छन्दसिक छन्द में वर्णक्रम वियोगिनी छन्द के समान होता है। उसकी अपेक्षा इस छन्द में केवल इतना ही अन्तर होता है कि इसके प्रत्येक पाद के अन्त में रगण और यगण अवश्य होते हैं और शेष वर्णक्रम आदि वियोगिनी के समान होता है अथवा दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि यह एक अर्द्धसम छन्द है जिसके प्रथम और तृतीय चरण में क्रमशः दो सगण एक जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण में क्रमशः एक सगण एक भगण एक रगण और अन्त में एक यगण होता है।

इस छन्द को सुन्दरी या मालभारिणी भी कहते हैं।

विषमे ससजा गुरुः समे चेत् ।
सभरा येन तु मालभारिणीयम् ॥

उदाहरण—क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ ( ३–२ )

६. पुष्पिताग्रा—

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि तु न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।"

अर्थात् पुष्पिताग्रा छन्द में विषम ( अयुज् ) पाद में अर्थात् प्रथम तथा तृतीय पाद में दो नगण एक रगण तथा एक यगण और सम ( युज् ) पाद में अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ पाद में न, ज, ज, र और अन्त में गुरु, इस प्रकार वर्णों का क्रम होता है। यथा—

न च न परिचितो न चाप्यगम्यः चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य ।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः ॥ (१–११)

७. द्रुतविलम्बित—

"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" ।

अर्थात् द्रुतविलम्बित छन्द में वर्णों का क्रम नगण, भगण, भगण और रगण इस प्रकार होता है। यथा—

अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी लघुभिराभरणैः प्रतिभाति मे ।
उडुगणैरुदयोन्मुखचन्द्रिका गतहिमैरिव चैत्रविभावरी ॥ ( ५–७ )

८. प्रहर्षिणी—

"म्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्"

अर्थात् प्रहर्षिणी छन्द में वर्णों का क्रम म, न, ज, र और गुरु इस प्रकार होता है और तीसरे तथा दसवें अक्षर पर यति होती है। यथा—

जीमूतस्तनितविशंकिभिर्मयूरैः रुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य ।
निर्ह्लादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि ॥ ( १–२१ )

९. पृथ्वी—

"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः"

अर्थात् पृथ्वी छन्द में प्रत्येक चरण में वर्णों का क्रम ज, स, ज, स, य और अन्त में लघु और गुरु-इस प्रकार होता है। आठवें तथा उसके आगे नवें अक्षर पर यति होती है। यथा—

अनेन तनुमध्यया मुखरनूपुराराविणा।
नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन सम्भावितः॥
अशोक! यदि सद्य एव कुसुमैर्न संपत्स्यसे।
वृथा वहसि दोहदं ललित कामि साधारणम्॥ (३-१७)

१० मालिनी—

"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः"

अर्थात् मालिनी छन्द में वर्णों का क्रम न, न, म, य, य इस प्रकार होता है और आठवें तथा उससे आगे सातवें अक्षर पर यति होती है। यथा—

जनमिममनुरक्तं विद्धि नाथेति गेये वचनमभिनयन्त्या स्वांगनिर्देशपूर्वम्।
प्रणयगतिमदृष्ट्वा धारिणी संनिकर्षादहमिव सुकुमार प्रार्थना व्याजमुक्तः॥ (२-५)

११. मन्दाक्रान्ता—

"मन्दाक्रान्ताम्बुधि रसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्"

अर्थात् मन्दाक्रान्ता छन्द में वर्णों का क्रम म, भ, न, दो तगण और अन्त में दो गुरु, इस प्रकार होता है और चार छः तथा सात पर यति होती है। यथा—

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे।
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तयुक्तं द्वितीयम्॥
पादांगुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षम्।
नृत्तादस्या स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम्॥ (२-५)

१२. शार्दूलविक्रीडितम्—

"सूर्याश्वैर्मसजास्ततताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्॥"

अर्थात् शार्दूलविक्रीडित छन्द के वर्णों का क्रम म, स, ज, स, त, त और गुरु इस प्रकार होता है और बारहवें तथा सातवें अक्षर पर यति (विराम) होती है। यथा—

हस्तं कम्पयते रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः।
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिंग्यमाना बलात्॥
पातुं पक्ष्मलचक्षुरुन्नमयतः साचीकरोत्याननम्,
व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं निर्वर्तयत्येव मे॥ (४-१५)

ऊपर दिए गए लक्षण में "सूर्याश्वैः" इस पद का बारह और सात अर्थ होता है। क्योंकि एक वर्ष में बारह महीने होने के कारण महीनों के भेद से सूर्य के भी बारह

भेद मान लिए जाते हैं और अश्व शब्द सात के अर्थ में प्रयुक्त होता है क्योंकि पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य के सात घोड़े माने गए हैं।

१३. वंशस्थ—

"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ"

अर्थात् वंशस्थ छन्द के प्रत्येक चरण में वर्णों का क्रम ज, त, ज, र इस प्रकार होता है। यथा—

अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः॥ ( ३–१५ )

१४. वसन्ततिलका—

उक्ता वसन्ततिलक तभजा जगौ गः।

अर्थात् वसन्ततिलका छन्द के प्रत्येक चरण में वर्णों का क्रम, तगण, भगण, जगण, जगण और अन्त में दो गुरु, इस प्रकार होता है। यथा—

द्वारे नियुक्तपुरुषानुमतप्रवेशः सिंहासनान्तिकचरेण सहोपसर्पन्।
तेजोभिरस्य विनिवर्तितदृष्टिपातै--र्वाक्याद्दते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि॥ ( १–१२ )

१५. शिखरिणी—

"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी"।

अर्थात् शिखरिणी छन्द में वर्णों का क्रम य, म, न, स, भ और अन्त में लघु तथा गुरु इस प्रकार होता है तथा छठें और ग्यारहवें पर विराम ( यति ) होता है। यथा—

शरीरं क्षामं स्यादसति दयितालिंगनसुखे।
भवेत्सास्रं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति॥
तया सारंगाक्ष्या त्वमसि न कदाचित् विरहितं।
प्रसक्ते निर्वाणे हृदयपरितापं वहसि किम्॥ ( ३–९ )॥

१६. हरिणी—

"नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता"

अर्थात् हरिणी छन्द में वर्णों का क्रम न, स, म, र, स, तथा लघु एवं गुरु इस प्रकार होता है और छठें, चौथे तथा सातवें पर विराम होता है। यथा—

विरचितपदं वीरप्रीत्या सुरोपमसूरिभिः।
चरितमुभयोर्मध्ये कृत्य स्थितं क्रथकैशिकान्॥
तव हृतवतो द्रण्डानीकैर्विदर्भपतेः श्रियम्।
परिघगुरुभिः दोर्भिः शौरेः प्रसह्य च रुक्मिणीम्॥ ( ५–२ )॥

१७. शालिनी—

"मात्तौ गौ चेच्छालिनी भोगिलोकैः"

शालिनी छन्द में वर्णों का क्रम मगण, दो तगण, और अन्त में दो गुरु इस प्रकार होता है। आठ तथा तीन वर्ण पर यति होती है। यथा—

नायं देव्या भाजनत्वं न नेयः ।
सत्काराणामीदृशानामशोकः ॥
यः सावज्ञो माधवश्रीनियोगे ।
पुष्पैः शंसत्यादरं त्वन्नियोगे ॥ ( ५–८ ) ॥

१८. आर्या—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

अर्थात् आर्या छन्द में प्रथम और तृतीय पाद में बारह बारह मात्राएँ होती हैं और द्वितीय पाद में, अठारह तथा चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं । यथा—

किसलयमृदोर्विलासिनि निहितस्य पादपस्कन्धे ।
चरणस्य न ते बाधा सम्प्रति वामोरु वामस्य ॥ ( ३–१८ ) ॥

इस पद्य में मात्राओं को गिनने से ज्ञात होता है कि इसमें प्रथम तथा तृतीय चरण में बारह बारह मात्राएँ हैं । द्वितीय में अठारह तथा चतुर्थ में पन्द्रह मात्राएँ हैं ।

१९. रुचिरा—

लक्षण—जभौ सजौ गति रुचिरा चतुर्ग्रहैः ।

अर्थात् रुचिरा छन्द में वर्णों का क्रम जगण, भगण, सगण और अन्त में गुरु तथा ४–९ वर्णों पर विराम होता है । यथा—

कदा मुखं वरतनु कारणादृते ।
तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम् ॥
अपर्वणि ग्रहकलषेन्दुमण्डला ।
विभावरी कथय कथं भविष्यति ॥ ( ४–१६ ) ॥

२०. अपरवक्त्र—

लक्षण—अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ ।

अर्थात् अपरवक्त्र छन्द में विषम पादों में अर्थात् प्रथम और तृतीय चरणों में वर्णों का क्रम दो नगण एक रगण और अन्त में एक लघु तथा सम चरणों में अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पादों में नगण दो जगण और अन्त में रगण इस प्रकार होता है । यथा—

शठ इति मयि तावदस्तु ते ।
परिचयवत्यवधीरणा प्रिये ॥
चरणपतितया न चण्डि तां ।
विसृजसि मेखलयापि याचिता ॥ ( ३–२० ) ॥

२१. स्रग्धरा—

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्"

अर्थात् स्रग्धरा छन्द में वर्णों का क्रम मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण इस प्रकार होता है । यथा—

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां ।
सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचय द्वेषिपारावतानि ।।
बिन्दूत्क्षेपान्पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम् ।
सर्वैरुस्रैः समग्रस्त्वमिवनृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ।। ( २–१२ )

**२२. औपच्छन्दसिकम्—**

पर्यन्ते यौ तथैव शेषं त्वौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् ।

अर्थात् यदि विषम चरण की छः मात्राओं के अनन्तर और सम चरण की आठ मात्राओं के अनन्तर रगण यगण हों तो उसे औपच्छन्दसिक कहते हैं । यथा—

चरणान्तनिवेशितां प्रियायाः पश्य वयस्य रागरेखाम् ।
प्रथमामिव पल्लवप्रसूतिं हरदग्धस्य मनोभवद्रुमस्य ।। ( ३–२१ ) ।।

( ४ )

## छन्दः परिज्ञान

छन्द प्रायः दो प्रकार के होते हैं । १—वर्णिक छन्द २—मात्रिक छन्द ।

**१. वर्णिक छन्दः**—इस प्रकार के छन्दों में वर्णों की संख्या निश्चित होती है । वर्णिक छन्दों में लक्षण की सुगमता के लिए आठ गणों का विधान किया है, जो निम्नांकित हैं तथा एक ही सूत्र में उनके स्वरूपों का लक्षण भी दे दिया गया है ।

"यमाता राज भानसलगा"

| | | | |
|---|---|---|---|
| १—यगण = यमाता | ( । ऽ ऽ ) | ५—जगण = जमान | ( । ऽ । ) |
| २—मगण = मातारा | ( ऽ ऽ ऽ ) | ६—भगण = भानस | ( ऽ । । ) |
| ३—तगण = ताराज | ( ऽ ऽ । ) | ७—नगण = नसल | ( । । । ) |
| ४—रगण = राजभा | ( ऽ । ऽ ) | ८—सगण = सलगा | ( । । ऽ ) |

ल = लघु = ।
गा = गुरु = ऽ

**२. मात्रिक छन्द**—इन छन्दों के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या नियत होती है ।

१—ह्रस्व स्वर की एक मात्रा है तथा दीर्घ स्वर की दो मात्राएँ होती हैं । यथा किसी में "कि" लघु है तथा "सी" दीर्घ है ।

२—यदि किसी ह्रस्व स्वर से परे संयुक्ताक्षर हो, तो उसकी दो मात्राएँ होती हैं । यथा "अङ्क" में "अ" में दो मात्राएँ मानी जाएँगी ।

३—चरण के अन्त में यदि ह्रस्व है, तो आवश्यकतानुसार वह दीर्घ भी माना जा सकता है ।

( ५ )

## मालविकाग्निमित्र नाटक से सम्बद्ध ज्ञातव्य प्रकरण

( १ ) शिव का अर्धनारीश्वर स्वरूप :—

तन्त्रसार में लिखा है :—

अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुवद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ।

अर्थात् आधे शरीर में पार्वती युक्त, भिन्न-भिन्न वेशभूषावाले बालेन्दु का मुकुट बाँधे हुए शिवरूप को सदा प्रणाम करता हूँ।

( २ ) शिव का स्वरूप अष्टमूर्त्ति के रूप में :—

तोडल तन्त्र में लिखा है :—

क्षिति जलं तथा वायुश्चाकाशमेव च ।

यजमानं तथा सोमं सूर्यंश्च मूर्त्तिना सह । पूजयेदिति शेषः ।

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्रमा तथा सूर्य इन आठ मूर्त्तियों के साथ शिव का अर्चन करना चाहिए ।

( ३ ) मानव शरीर के विभिन्न रूप आयु के साथ—

श्रीधर स्वामी ने लिखा है :—

कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।

कैशोरमापञ्चदशात् यौवनन्तु ततः परम् ॥

अर्थात् पञ्चवर्ष की आयु तक कुमार, दशवर्ष की आयु तक पौगण्ड, पंचदश वर्ष की आयु तक किशोर तथा उससे ऊपर युवावस्था का रूप माना जाता है ।

( ४ ) रस का ब्रह्मानन्द सहोदर स्वरूप होना—

लोकेऽनुकार्यस्य रामादेश्चरितं सुखदुःखमिश्रात्मकमपि नाटयाभिनयसमर्पितं सत् ।

सुखरूपेणैव सामाजिकैरास्वाद्यते इति ।

तथा चोक्तं साहित्यदर्पणे—

करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम् ।

सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम् ॥

अर्थात् संसार में अनुकरणीय राम आदि का चरित्र, जो सुख और दुःख से मिश्रित होता है, वह नाटच के अभिनय को समर्पित होने पर, सामाजिकों के द्वारा सुख रूप से ही आस्वादित होता है ।

साहित्यदर्पण में लिखा है :—

करुणा आदि दुःखात्मक रसों के द्वारा जो सुख की प्राप्ति होती है, वह सहृदय रसिक जनों के द्वारा ही प्रमाणित होती है ।

( ५ ) नाटचकला का वैशिष्टय—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं नासौ विद्या न सा कला ।

नासौ योगो न तत्कर्म नाटयेऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥

अर्थात् कोई ऐसा ज्ञान नहीं है, कोई ऐसा शिल्प नहीं है, कोई ऐसी विद्या नहीं है, कोई ऐसी कला नहीं है, कोई ऐसा योग नहीं है तथा कोई ऐसा कर्म नहीं है, जो इस नाटक में न दिखाई देता है अर्थात् सम्पूर्ण कलायें नाटक में दृष्टिगत होते हैं।

( ६ ) नाटच-कला एक प्रकार का यज्ञ है। कहा गया है—

प्रयोगं यश्च कुर्वीत प्रेक्षते चावधानवान्।
या गति र्वेदविदुषां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्।
या गतिर्दान शीलानां तां गतिं प्राप्नुयान्नरः॥

अर्थात् जो नाटय का अभिनय करता है, जो सावधानी के साथ देखता है। वेदों के ज्ञानियों की जो गति है, यज्ञ करने वालों की जो गति है तथा दान देने वालों की जो गति है, उस गति को मनुष्य प्राप्त कर सकता है, इस नाटयाभिनय एवं दर्शन के द्वारा।

( ७ ) मुक्ता की उत्पत्ति का निर्देश :—

मुक्तोत्पत्तिस्थानानि निर्दिष्टानि युक्तिकल्पतरौ—
गजाहिकोलमत्स्यानां शीर्षे मुक्ता फलोद्भवः।
त्वक्सारशुक्तिशङ्खानां गर्भे मुक्ता फलोद्भवः॥
धाराधरेषु जायेत मौक्तिकं जलविन्दुभिः।

अर्थात् युक्तिकल्पतरु में मुक्ता की उत्पत्ति का स्थान निर्दिष्ट किया गया है— स्वाति नक्षत्र के बादलों के द्वारा जल की बूँदों से मुक्ता फल का उद्भव होता है, जो गज, अहि, कोल और मत्स्यों के शीर्ष स्थान से उत्पत्ति होती है तथा त्वक्सार, शुक्ति, शङ्खों के गर्भ स्थान से उत्पत्ति होती है।

( ८ ) पञ्चाङ्गादिक अभिनय—

संगीतरत्नाकर में लिखा है :—

नृत्तं तथा च कैवारो मर्मरो जागरं तथा।
गीतं चेति समाख्यातं प्रेरणस्यांगपञ्चकम्॥
त्रिभिस्त्वेतत् प्रयोज्यं स्यात् कैवारं जागरं विना।

अर्थात् नृत्त, कैवार, मर्मर, जागर तथा गीत ये पाँच प्रकार के अभिनय लिखे गए हैं जिनमें कैवार और जागर के विना तीन का प्रयोग होता है।

( ९ ) नगर का लक्षण—

देवतायतनैश्चित्रैः प्रासादापणवेश्मभिः।
नगरं दर्शयेद्विद्वान् राजमार्गैश्च शोभनः॥

अर्थात् जिस स्थान पर विचित्र से विचित्र देवताओं के मन्दिर हों, बड़े-बड़े हतल हों, मकान हों, आपण हों तथा सुन्दर से सुन्दर राजमार्ग हों, ऐसे स्थानों को विद्वान् लोग नगर कहते हैं।

( १० ) ग्राम लक्षण—

मार्कण्डेय पुराण में लिखा है—

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपयोगिभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिका ।।

जहाँ पर प्रायः शूद्र जन निवास करते हों, धन धान्य से सम्पन्न कृषकों का समूह निवास करता हो । खेतों के लिए उपयोगी भूमि के मध्य में जहाँ पर लोगों का निवास हो, उसे ग्राम संज्ञा दी जाती है ।

( ११ ) पुष्कर-वाद्यम्—

षोडशाक्षरसम्पन्नं चतुर्मार्गं तथैव च ।
द्विलेपनं षट्करणं त्रियति त्रिलयं तथा ।।
त्रिगतं त्रिप्रचारं च त्रिसंयोगं त्रिपाणिकम् ।
दशार्धपाणिप्रहतं त्रिप्रहारं त्रिमार्जनम् ।।
एभिरङ्गैस्तु सम्पन्नं वाद्यं पुष्करजं भवेत् ।
तत्र—मायूरी चार्धमायूरी तथा कार्मारवीति च ।
तिस्रस्तु मार्जना ज्ञेयाः पुष्करेषु स्वराश्रयाः ।।
गान्धारो वामके कार्यः षड्जो दक्षिणपुष्करे ।
मध्यमश्चोर्ध्वगः कार्यो मायूर्यास्तु स्वरा अमी ।।
वामके पुष्करे षड्ज ऋषभो दक्षिणे तथा ।
धैवतश्चोर्ध्वगोऽत्रार्धमायूर्याः निर्दिशेद् बुधः ।।
ऋषभः पुष्करे वामे षड्जो दक्षिणपुष्करे ।
पञ्चमश्चोर्ध्वगः कार्यः कार्माख्याः स्वरा अमी ।।

( १२ ) सौष्ठवम् नाम शोभनावस्था—तथा चोक्तम्—

अनुच्चनीचदलतामङ्गानां समपादताम् ।
कटिकर्पूरशीर्षासकण्ठानां समरूपताम् ।।
रम्यां प्रतीकविश्रान्तिमुरसश्च समुन्नतिम् ।
अभ्यासोपहितामाहुः सौष्ठवं नृत्यवेदिनः ।।

( १३ ) निर्वेदस्य लक्षणम्—

इष्टार्थविरहव्याधिनिन्दासदन मानसैः ।
दारिद्र्यसन्तानलनाश परवृद्ध्यवलोकनैः ।।
निष्फलत्वमतिर्नृणां निर्वेदो जीवितादिषु ।।

अर्थात् इष्ट अर्थ के वियोग से, व्याधिनिन्दा के स्थान हृदयों से, दरिद्रता, पुत्रनाश तथा परसम्पत्ति के अवलोकन से मनुष्यों के जीवन में निष्फलता ही निर्वेद माना जाता है ।

( १४ ) पूर्वराग :—

साहित्यदर्पण में लिखा है ।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः ।
दशाविशेषो यः प्राप्तः पूर्वरागः स उच्यते ।।

अर्थात् गुणों के श्रवण से, दर्शन से अथवा आपस के अनुराग के दृढ होने से जो विशेष दशा उत्पन्न हो जाती है, उसे पूर्वराग कहते हैं।

( १५ ) अभिनय के भेद—

साहित्यदर्पण में लिखा है—

भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।
आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा ॥

अर्थात् अवस्था का अनुकरण करने वाला अभिनय चार प्रकार का होता है। ( १ ) आङ्गिक। ( २ ) वाचिक। ( ३ ) आहार्य। ( ४ ) सात्त्विक।

( १६ ) स्मित तथा हसित का लक्षण—

साहित्यदर्पण में लिखा है—

किञ्चिद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरम्।
ईषल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः ॥

जिसमें नेत्र कुछ विकसित हो जायँ तथा अधर कुछ स्पन्दित हो जाय, उसे स्मित कहते हैं। किन्तु जिसमें कुछ दाँत दिखलाई पड़ने लगें, उसे पण्डितों ने हसित माना है।

( १७ ) मान का लक्षण—

साहित्यदर्पण में लिखा है :—

मानः कोपः स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः।
तद्भंगाय पतिः कुर्यात् षडुपायानिति क्रमात् ॥
साम भेदोऽथ दानञ्च नत्युपेक्षे रसान्तरम्।

अर्थात् मान जिसको कोप कहते हैं, दो प्रकार का होता है। ( १ ) प्रणय से उत्पन्न। ( २ ) ईर्ष्या से उत्पन्न। स्त्री के मान करने पर उसके मान को भंग करने के लिए पति को चाहिए कि वह निम्नांकित छः उपायों का आश्रय ले। ( १ ) साम ( २ ) भेद ( ३ ) दान ( ४ ) नति ( ५ ) उपेक्षा ( ६ ) अन्य रस को उत्पन्न करना।

( १८ ) विष-वेग आठ प्रकार का होता है :—

वैवर्ण्यं वेपथुर्दाहः फेनः स्कन्धस्य भञ्जनम्।
दुःखं जाड्यं मृतिश्चेति विषवेगाः स्युरष्टधाः ॥

अर्थात् रंग का फीका पड़ जाना, कम्पन, जलन, फेन उगलना, स्कन्ध का टूटना, दुःख, जडता, मरण ये आठ प्रकार के विष वेग होते हैं।

( १९ ) बन्धमोक्ष शान्ति का कारण—

महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है—

बन्धमोक्षे सर्वशान्तिः नृपाणामुपजायते।

अर्थात् कारागार से वन्दियों को मुक्त कर देने पर राजाओं के लिए हर प्रकार से शान्ति हो जाती है।

( २० ) जङ्गम विष से उत्पन्न कार्य—

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहं संपाकं लोमहर्षणम् ।
शोथञ्चैवातिसारञ्च कुरुते जङ्गमं विषम् ॥

अर्थात् जङ्गम विष से नींद, आलस्य, कष्ट, जलन, सन्ताप, रोमाञ्च, शोथ ( फूल जाना ) अतिसार उत्पन्न हो जाते हैं ।

( २१ ) विष-हीन मनुष्य का लक्षण—

भाव-प्रकाश में लिखा है—

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम् ।
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥

( २२ ) कृतघ्नता दोष का परिमार्जन कदापि सम्भव नहीं—

स्कन्दपुराणे लिखितम्—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे च गुरुतल्पगे ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥

अर्थात् ब्रह्महत्या करने वाला, मदिरा-पान करने वाला, चोरी करने वाला, गुरु तल्प पर गमन करने वाला व्यक्ति पाप से छूट सकता है किन्तु कृतघ्नता करने वाले की कदापि मुक्ति नहीं ।

( २३ ) ग्रहण विषयक विवरण—जमदग्नि वचनम्—

पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्राकौं छादयिष्यसि ।
भूमिछायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन ॥
अनुग्रहे च निर्बन्धे ग्रहणे च रणोद्यमे ।
पूतनादौ सैंहिकेये उपरागेऽपि च ग्रहः ॥

( २४ ) पूर्णिमा प्रतिपत्सन्धिसमये ग्रहणं भवति इत्यत्र ज्योतिषवचनम्—

यस्मिन्नृक्षे रविस्तस्माच्चतुर्दशगतः शशी ।
पूर्णिमा प्रतिपत्सन्धौ राहुणा ग्रस्यते शशी ॥

अर्थात् पूर्णिमा और प्रतिपदा के मिलन समय में ग्रहण होता है । इसमें ज्योतिष का वचन है । कि जिस ऋक्ष में सूर्य होता है, उससे चौदह दिन जब चन्द्रमा चला जाता है तब पूर्णिमा और प्रतिपदा की सन्धि में चन्द्रमा राहु से ग्रसा जाता है ।

( २५ ) निष्क का परिमाण निम्नांकित है—

अशीति रक्तिका परिमितेन स्वर्णेनैकः सुवर्णः, चतुर्भिः सुवर्णैरेको निष्कः । तथा च मनुः—

पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडशः ।
चतुःसौवर्णिको निष्कः विज्ञेयस्तु प्रकाशतः ॥

अर्थात् अस्सी रत्ती का एक सुवर्ण होता है और चार सुवर्ण का एक निष्क होता है । मनु ने कहा है—पाँच कृष्णालक का एक माष होता है तथा सोलह माष का एक सुवर्ण होता है और चार सुवर्ण का एक निष्क होता है ।

( २६ ) स्वर्णदान का फल—स्वर्णदानफलं प्रोक्तमग्निपुराणे—

सर्वान् कामान् प्रयान्त्येते पितामहसुतोऽब्रवीत् ।
मरीचिर्भगवान् पूर्वं ये प्रयच्छन्ति काञ्चनम् ॥

अर्थात् स्वर्णदान का फल अग्निपुराण में लिखा है—पितामह के पुत्र भगवान् मरीचि ने कहा है कि जो दान में सोना दान करते हैं, उनकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

( २७ ) तनुत्यजामीदृशी लोकयात्रा—

तनुत्यजाम् मरणधर्माणाम् मनुष्याणां ईदृशी मरणादिरूपा । लोकयात्रा जगतो रीतिः तथा च गीता—

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।"

अर्थात् शरीर का त्याग करने वाले मनुष्यों की मरणादि रूपा दशा निश्चित है । इस संसार को छोड़ देना एक प्रकार का नियम है । गीता में लिखा है—जो इस संसार में उत्पन्न हुआ उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मर गया, उसका जन्म भी निश्चित है ।

( २८ ) सफलीकृतभर्तृपिण्डः—

स्वाम्यर्थे तस्करैश्च घातितत्वात् न शोच्यः तथा चोक्तमाग्नेये पुराणे—

दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च तस्करैः ।
ये स्वाम्यर्थे हता यान्ति राजन् स्वर्गं न संशयः ॥

जो पुरुष स्वामी के ऋण को चुका देता है अर्थात् स्वामी के अर्थ के लिए यदि मारा जाता है, तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । अग्निपुराण में लिखा है :—

दाँत वाले सींग वाले पशुओं से तथा म्लेच्छों और तस्करों से जो लोग स्वामी के कार्य के लिए मारे जाते हैं, हे राजन् ! वे लोग स्वर्ग में जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

( २९ ) साध्वी स्त्री का लक्षण—

आर्त्ताऽऽर्त्ते मुदिता हृष्टे वियोगे मलिना कृशा ।
मृते म्रियेत या पत्नी साध्वी ज्ञेया पतिव्रता ॥

अर्थात् साध्वी या पतिव्रता स्त्री का लक्षण है कि—

पति के आर्त्त होने पर जो स्त्री दुःखी हो जाती है, प्रसन्न होने पर प्रसन्न हो जाती है, पति के वियोग में जो मलिन और कृश हो जाती है तथा पति के मर जाने पर जो मर जाती है, वही स्त्री साध्वी या पतिव्रता कहलाती है ।

( ३० ) षडीतयः—

ईतियाँ छः प्रकार की होती हैं । लिखा है :—

अतिवृष्टिरनावृष्टिः मूषकाः शलभाः शुकाः ।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृताः ॥

अर्थात् अधिक वर्षा का होना, वर्षा का बिल्कुल न होना, मूषकों का कृषि में लग जाना, टिड्डी दल का आक्रमण, सुग्गों का आक्रमण, तथा समीप में आक्रमणार्थ आए हुए राजा लोग । ये ही छः प्रकार की ईतियाँ हैं ।

( ३१ ) कवि-समय—

संस्कृत साहित्य के महाकवियों ने साहित्य में रमणीयता एवं सरसता लाने के विचार से प्रकृति सम्बन्धी कुछ ऐसे कार्य-कलापों को वास्तविक मान लिया है, जो सम्भवत: वास्तविक न भी हों। अनेक प्रकार के कवि-समयों के अन्तर्गत कुछ समय पुष्पों के सम्बन्ध में कल्पित कर लिए गए हैं अर्थात् प्राय: मुग्धा रमणियों के सान्निध्य से अनेक प्रकार के पुष्प वाले वृक्ष और लताएँ पुष्पित हो जाती हैं। महाकवि कालिदास द्वारा विरचित "मेघदूत" काव्य की टीका में टीकाकार मल्लिनाथ ने निम्नाङ्कित कवि समय का प्रतिपादन किया है, जो अत्यन्त रमणीय एवं मार्मिक है। लिखा है—

स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियंगु विकसति वकुल: सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोक: तिलक कुरवकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो गीतान्नमेरु: विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकार: ॥

अर्थात् प्रियंगु लता रमणियों के स्पर्श होने से पुष्पित हो जाती है। वकुल का वृक्ष रमणियों के मुखमद्य से सिञ्चित होकर पुष्पित हो उठता है। रमणियों के चरणों के आघात से अशोक में लाल लाल फूल खिल उठते है। रमणियों के मधुर अवलोकन से तिलक का वृक्ष विकसित होता है तथा रमणियों के आलिङ्गन करने से कुरबक का वृक्ष पुष्पित हो उठता है। जब रमणियाँ नर्म वाक्यों का उच्चारण करती हैं, तो उनकी ध्वनि का ऐसा प्रमाण होता है कि मन्दार का वृक्ष खिलने लगता है। चम्पा का वृक्ष सुन्दरी रमणियों के मधुर हास्य को देखकर पुष्पित होना प्रारम्भ हो जाता है। आम्र के वृक्ष में कोमल कोरकों का प्रादुर्भाव उस समय होने लगता है, जब सुन्दरी रमणियों के मुख की हवा उनको स्पर्श करती है। नमेरु वृक्ष के समक्ष खड़ी होकर जब रमणियाँ मधुर गान गाने लगती हैं, तो उन गानों के मधुर स्वर ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं कि नमेरु वृक्ष पुष्पित होने लगता है और कर्णिकार वृक्ष के सामने जब रमणियाँ मनो-मोहक नृत्य प्रारम्भ कर देती है तब उनमें पुष्पों के विकसित होने की अवस्था आ जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त पद्य में दश प्रकार के पुष्पों के विकसित होने का कारण बताया गया है। ये सम्पूर्ण कारण सुन्दर रमणियों के विभिन्न कार्य कलापों से सम्बन्ध रखते हैं। वैसे तो यह कवि-समय है, जो कल्पित कहे गए हैं किन्तु सम्भावना इस बात की भी है कि नारी के विभिन्न कार्य-कलाप शायद उन पर प्रभाव डालते हों, जिनको हम लोग नहीं जानते।

( ३२ ) अन्तर्गत कथा—

**रुक्मिणी—**

रुक्मिणी विदर्भ के राजा भीष्मक की पुत्री थी। उसके पिता ने शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह को निश्चित किया था किन्तु रुक्मिणी शिशुपाल से विवाह करना नहीं चाहती थी। उसका वास्तविक प्रेम भगवान् कृष्ण के साथ था। उसने कृष्ण के

पास अपना गुप्त सन्देश किसी प्रकार भिजवाया और कृष्ण उसे बलपूर्वक हर ले गए। यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। वैतालिक अग्निमित्र को देवोपम बतलाकर कृष्ण के समान कह रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् कृष्ण को प्राप्त विदर्भ-राजकुमारी रुक्मिणी के समान अग्निमित्र को भी विदर्भ राजकुमारी मालविका पत्नी रूप में प्राप्त हो जाएगी।

( ३३ ) बडवानल की उत्पत्ति—

पुराणों में वडवानल की उत्पत्ति और्व से बतलाई गई है। महर्षि भृगु राजा कृतवीर्य के कुल पुरोहित थे, जिनको राजा ने अत्यधिक सम्पत्ति दे दी थी। कृतवीर्य के वंशजों को अपनी सम्पत्ति पुरोहित के वंशजों के पास गई हुई देखकर असाधारण ईर्ष्या उत्पन्न हुई अतएव उन्होंने सम्पूर्ण भृगुवंशियों को मार डाला, यहाँ तक कि गर्भस्थ बच्चे भी नहीं बच सके। च्यवन की पत्नी आरुणी उस समय गर्भवती थी। भय के मारे उसने गर्भ के बच्चे को अपने ऊरु-जाँघ में छिपा लिया। इस प्रकार वह बच्चा बच गया। जब बच्चा आरुणी से उत्पन्न हुआ, तो उससे इतना बड़ा तेज निकला कि सब के सब कृतवीर्य के वंशज चकाचौंध में आकर अन्धे हो गए। ऊरु से उत्पन्न होने के कारण ही बालक और्व अथवा ऊरुजन्मा कहलाया। जब वह अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व को जला डालने की धमकी देने लगा, तो उसके पूर्वजों ने उसे रोक कर शान्त कर दिया और उसे अपने तेज को समुद्र में डाल देने को आदेश दिया। जब वह तेज समुद्र में पड़ा, तो घोड़ी के मुख की जैसी आकृति उसकी बन गई और अभीतक वह समुद्र के गर्भ में छिपा हुआ पड़ा है तथा समुद्र के अतिरिक्त जल को सुखाकर उसे सीमा के भीतर ही रखे हुए है। वडवा घोड़ी को कहते हैं इसलिए वडवा के सम्बन्ध से उस अग्नि का नाम वडवानल या वडवाग्नि पड़ा।

( ३४ ) सेनापति—

बिम्बक वंश में उत्पन्न महावीर पुष्यमित्र मौर्यवंश के अवशिष्ट अपने राजा बृहद्रथ को मारकर पाटलिपुत्र में अपना आधिपत्य कर लिया। वह बृहद्रथ का सेनापति था अतः उसका राज्याभिषेक होने पर भी उसे सेनापति ही कहते हैं। उसने अपने राजत्वकाल में ही अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा में राजा बना दिया। इस सम्बन्ध में "भारतीयेतिवृत्त" नामक अपने ग्रन्थ में पण्डित रामावतार शर्मा ने लिखा है—

चत्वारिंशतमब्दानामशोकः शोककर्षणः। प्रायः प्रत्यन्त सहिते भारते शासनं व्यधात् ॥
ततः परं दशरथः संगतश्च तथा नृपः। शालिशूको देववर्मा शतधन्वा बृहद्रथः ॥
षडित्येतेऽभवन्मौर्या निर्वीर्याः प्रायशः क्रमात्। अधुश्च मागधं राज्यं षट्चत्वारिंशतं समाः ॥
दर्शिता शेषसैन्यश्च बलदर्शनकैतवात्। सेनानी पुष्यमित्रोऽस्य निष्पिपेष बृहद्रथम् ॥
बृहद्रथं विनिष्पिष्य वन्दीकृत्यास्य मन्त्रिणम्। इष्टवानश्वमेधेन पुष्यमित्रो महामनाः ॥

# पद्यानुक्रमणिका

## महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

**अभिज्ञान शाकुन्तलम्**
श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

**पञ्चतन्त्रम्**
श्री गुरुप्रसाद शास्त्री एवं
श्री सीताराम शास्त्री

**ऋतुसंहारम्**
डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी

**हितोपदेशः**
श्री गुरुप्रसाद शास्त्री एवं
श्री सीताराम शास्त्री

**आर्य-सुभाषित-साहस्री**
(संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी)
डॉ. रामजी उपाध्याय

**भर्तृहरिशतकत्रयम्**
संस्कृत-हिन्दीटीका सहित
पं. ददन उपाध्याय

**कादम्बरी**
आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी

**किरातार्जुनीयम्**
श्रीबदरीनारायण मिश्र

**कालिदास-ग्रन्थावली**
पं. रामतेज पाण्डेय एवं
डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

**शाण्डिल्यभक्तिसूत्रम्**
नारायणतीर्थविरचित संस्कृत टीका
एवं हिन्दी अनुवाद सहित

**गीतगोविन्दकाव्यम्**
पं. शिवप्रसाद द्विवेदी

**मेघदूतम्**
डॉ. दयाशंकर शास्त्री

**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**
**वाराणसी**

**चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस**
**दिल्ली**